लेख-सूची

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

तेरहवाँ भाग

(१) भारशिव राजवंश

[लेखक—श्री काशीप्रसाद जायसवाल, विद्यावारिधि, पटना]

मुरुंड-तुखारों का अर्थात् कुषाण-कनिष्क-वंश का साम्राज्य उत्तरी भारत (आर्यावर्त्त) में सन् २४९ या २५० ई० के लगभग ढीला पड़ा। २४९ ई० में सातवाहन राजवंश का लोप हुआ। सातवाहन ब्राह्मण वंश था और ईसाई सन् से कोई २०० वर्ष पहले, इसका अभ्युदय हुआ। मौर्य साम्राज्य टूटने पर पहले ये दक्षिणापथ के सम्राट् हुए। ईसवी सन् के आदि काल के कोई ६०, ७० वर्ष पहले से सन् २०० तक वे बराबर, शक-कुषाणों का मुकाबला पश्चिमी भारत—गुजरात और महाराष्ट्र में करते रहे। इसी वंश में संवत्कार विक्रमादित्य और शालवाहिनी साका चलानेवाले दूसरे विक्रमादित्य आदि बड़े बड़े प्रतापी राजा हुए। ये हिंदू धर्म के रक्षार्थ शक-कुषाणों से बराबर लड़ते रहे और उनको हरा हिंदुओं की सम्राट् पदवी बचाए चले आए, जिससे महाराष्ट्र और नर्मदा के उस पार सारा दक्षिण देश मुरुंड शकों से बचा रह गया। पर आर्यावर्त्त शकों के अधीन हो

गया और कोई ७८ ई० से लेकर २४०, २४५ ई० तक पौने दो सौ या डेढ़ सौ बरस उनके अधिकार में रहा। शक मुरुंडों ने हिंदू-धर्म, वर्णाश्रम, वेद और शास्त्र को लुप्त सा कर डाला।

शक भाषा में, जो पुरानी फारसी के वंश में है, 'मुरुंड' राजा को कहते हैं। अपने महाराज को यह 'पाहानुपाहि' कहते थे, जिससे शाहनशाह शब्द निकला। राजा के लिये यह 'पाहि' पद का प्रयोग करते थे और अपनी राजपदवी इस तरह लिखते थे—**पाहि पाहानुपाहि राजातिराज महाराज**। पुराण तथा हमारे अन्य ग्रंथों ने इनके राज्य को बहुत अर्थलोलुप और क्रूर तथा धर्म-द्वेषी लिखा है। ब्राह्मण आदि ऊँची जातियों को यह नीचा करते थे, और छोटी जातियों को ऊपर उठाते थे। पुरानी हिंदू मूर्त्तियाँ, जो उनके समय के पहले की नहीं मिलतीं, मेरी समझ में उन्हीं के द्वारा नष्ट की गईं। समझना चाहिए कि औरंगजेब के समान इनका अत्याचार था। डेढ़ पौने दो सौ वर्ष उस अत्याचार को सहकर हिंदुओं ने आर्यावर्त्त में फिर सिर उठाया और सँभले तथा १०० वर्ष के लगातार प्रयास द्वारा शक-अत्याचार का समूल नाश कर सके। यह हिंदुओं का मुक्ति-प्रयत्न बड़े गौरव का है। पर इसका कोई इतिहास किसी माई के लाल ने अब तक नहीं लिखा। अपने पुरखों की याद कर, उनको सिर नवा, हम लोग इस अध्ययन में लगें। इसमें अपने भाइयों से मदद और सहयोग का भिखारी हो, यह धर्म की हुंडी लिख रहा हूँ, मेरे भाई इसे सकारें, उस समय का इतिहास लिखें।

सन् २५० के लगभग जैसे एक रात में केसर फूल जाता है, जहाँ कल कुछ नहीं था वहाँ आज देवदुर्लभ सौरभ और सौंदर्य खिल जाता है, वैसे ही धर्म, आत्मप्रतिष्ठा, ईश्वर के नाम का एकबारगी जादू सा पटने से ले मालवा तक एक साथ ही हर खेत में

फैल गया और हिंदुत्व का पुनर्विकास हो उठा। 'भारशिव-वंश' और 'वाकाटक-वंश' खड़े हो गए। पन्ना-अजयगढ़ के पास वाकाटक राजवंश भारद्वाज गोत्र को, जिसमें द्रोणाचार्य हुए थे, 'विष्णु-वृद्ध' नामक शाखा में प्रादुर्भूत हुआ। इस शाखा में इस राजवंश के स्थापक विंध्यशक्ति और उनके बेटे प्रवरसेन हुए। प्रवरसेन ने ४ बार अश्वमेध कर आर्यावर्त्त में हिंदू साम्राज्य का पुनरुत्थान किया। अपने वंश का नाम इन्होंने वाकाटक रखा। ये वाकाट स्थान के मूल निवासी थे। वाकाट का पता मुझे बहुत ढूँढ़ने पर चिरगाँव से ६ मील पर ओरछा राज्य में लगा।

मेरे भाई मैथिलीशरण गुप्त चिरगाँव के प्रकट चिरजीवी कवि हैं। उनकी सहायता से मेरी मिहनत सफल हुई। वाकाट ग्राम, जिसे अब 'बागाट' कहते हैं, प्राचीन ग्राम है जिसमें ब्राह्मण अधिक रहते हैं और जिसे द्रोणाचार्य का स्थान कहते हैं। वहाँ के एक ब्राह्मण से मुझे मालूम हुआ कि वहाँ बड़ी बड़ी गुफाएँ पहाड़ में खुदी हैं और गुप्त-समय की मूर्त्तियाँ भी हैं। इन वाकाटकों ने शकों को बुंदेलखंड से मार भगाया। इन्हें पुराणों में किलकिला के यवन कहा है। शक लोग अपने को 'जौवा', 'यौवा' और 'जौन्न' कहते थे। किलकिला नाम की एक नदी पन्ना के पास है। यह पता 'हिंदी के हीरा' रायबहादुर हीरालाल से लगा। पन्ने ही के पास अजयगढ़ राज्य में कुठारा या कुथारा एक पुराना किला है जहाँ एक अपूर्व दोमहला गुप्तकालीन मंदिर है और अनेक मूर्त्तियाँ हैं। यहीं वाकाटकों के समय के शिलालेख नाचना तलाई और गंज में मिले हैं। इन वाकाटकों ने हमारे देश, राष्ट्र और धर्म का नाम फिर से जगाया। ये परम धर्मिष्ठ थे। इन्हीं की देखा-देखी और इन्हीं के मार्ग का अनुसरण गुप्त महाराजों ने किया। समुद्रगुप्त मानो प्रवरसेन के, राज्यकरण में, चेला हुए। हिंदुओं का नाम जैसा समुद्र-

गुप्त और उनके लड़के चंद्रगुप्त ने किया वैसा आज तक कभी किसी ने न किया। चंद्रगुप्त ने शकों का निर्मूलन किया, दूसरी बार विक्रमादित्य की पदवी उज्जीवित की और उसे प्राप्त किया। बाप-बेटे को विष्णु भगवान् का इष्ट था और गरुड़वाहन उनका झंडा था।

गुप्तराज के गुरु वाकाटकों का नाम आज-कल के पढ़े-लिखे हिंदू तक नहीं जानते। उनकी महिमा जानना धर्म है। धर्म योद्धाओं की कीर्त्ति कहना और पढ़ना रामायण और महाभारत के पाठ सा पवित्र और पावन है। वाकाटकायण लिखना उनके उत्तराधिकारी हिंदुओं का कर्त्तव्य है।

वाकाटकों के समय में और उनसे भी कोई ५० वर्ष पहले राज्यकरण और धर्मकरण तथा हिंदू-स्वातंत्र्य का मूल कर्त्ता आर्यावर्त्त में 'भारशिव' नामक राजवंश हुआ जिनसे प्रवरसेन बुंदेले वाकाटक ने ब्याह संबंध कर अपना बल और गौरव बढ़ाया। वाकाटक ताम्रपत्रों की वंशावली में लिखा है कि—

> अंशभार-संनिवेशित-शिवलिङ्गोद्वहन-शिवसुपरितुष्ट-
> समुत्पादित-राजवंशानां पराक्रमाधिगत-
> भागीरथ्यमलजल-मूर्द्धाभिषिक्तानां
> दशाश्वमेधावभृथ-स्नानानां भारशिवानां।

भारशिव राजवंश के प्रवर्त्तक ने शिवपिंड को कंधे पर ढोकर शिव को परितुष्ट कर अपना वंश स्थापित किया। अपने पराक्रम से गंगातट पर राज्य कायम किया और भागीरथी के विमल जल से उनका राज्याभिषेक हुआ। दश अश्वमेध कर उनके वंशवालों ने गंगा में स्नान किया।

बुंदेलखंड के पास के ये भारशिव राजा थे। जो राजा प्रवरसेन का समधी हुआ उसका नाम **भवनाग** भारशिव था। भारशिव प्रयाग और काशी के राजा रहे होंगे, ऐसा मेरी समझ में आता

है। उन्हीं के दशाश्वमेधों से प्रयाग तथा काशी के **'दशाश्वमेध'** नामक पुण्यस्थल का नाम पड़ा जान पड़ता है[1]। जिन शिवजी ने उन्हें राज्य दिया वह काशीनाथ ही जान पड़ते हैं।

क्या काशी में या आस-पास भारशिव-वंश का कोई पता किसी स्थान, नाम, जाति या वंश नाम आदि रूप में अब भी वर्त्तमान है? किसी को कुछ पता लगे तो सूचित कर इस दास को कृतार्थ करें।

दश अश्वमेध करने में ३, ४ या ५ पीढ़ियाँ लग गई होंगी। प्रवरसेन, के जो ई० ३०० के लगभग हुए, पहले भारशिव महाराजों के दश अश्वमेध हो चुके थे। तो कोई २०० ईसवी सन् के लगभग भारशिवों का प्रादुर्भाव हुआ होगा। यही समय मथुरा में वासुदेव कुषाणवंशीय शक महाराज की मृत्यु और कुषाण-साम्राज्य

---

(१) भारशिवों के दश अश्वमेध का स्थान प्रयाग ही होना चाहिए, क्योंकि यज्ञ के लिये वहाँ की भूमि श्रेष्ठ मानी गई है। प्रयाग शब्द का अर्थ ही है—जहाँ यज्ञ करने से प्रशस्त फल मिले। आज भी दशाश्वमेध वहाँ का एक प्रसिद्ध तीर्थ है। प्रयाग-माहात्म्य के अनुसार यह वह स्थान है जहाँ वेदोद्धार करने पर ब्रह्मा ने दश अश्वमेध यज्ञ किए। इसी स्थान पर दशाश्वमेधेश्वर नामक शिवमंदिर है; यह भी प्रयाग माहात्म्योक्त है। वेदोद्धार के बाद दश अश्वमेध करके वहाँ शिव स्थापन, वैदिक धर्म के उद्धारक एवं शिवोपासक भारशिव पर ही घटित होता है।

काशी का दशाश्वमेध केवल आरोपित तीर्थ है। काशी में भारतवर्ष मात्र के तीर्थ आरोपित किए गए हैं; अतः यहाँ बदरी, केदार, हरद्वार, कुरुक्षेत्र, मानसरोवर इत्यादि सभी तीर्थ हैं। काशी का दशाश्वमेध केवल प्रयाग के दशाश्वमेध को निर्दिष्ट करता है, उसका स्वतः कोई अस्तित्व नहीं है। काशीखंड में इस संबंध में यह लिखा है कि एक बार पार्वती जी को तीर्थाटन की इच्छा हुई तो शिवजी ने समग्र पृथ्वी के तीर्थ काशी में ही कल्पित कर दिए।—संपादक।

के टुकड़े होने का है। भारशिवों का उत्थान एतद्देश गंगा-प्रदेश की मुक्ति का कारण रूप है। शक लोग मूर्धाभिषिक्त नहीं होते थे। मुसलमानों की तरह गद्दी पर बैठ जाते थे। मूर्द्धाभिषिक्त होकर अर्थात् हिंदूधर्म के अनुसार राज्य-स्थापन कर भारशिवों ने अपने देश की प्रथा और उसका स्वातंत्र्य पुनरपि रोपा। उनको बहु वार नमस्कार है और उनका नाम प्रातःस्मरणीय है। गुप्तों के गुरु वाकाटक और वाकाटकों के गुरु भारशिव थे। इससे उनकी महिमा हिंदू-पुनरुज्जीवन में असीम मानी जानी चाहिए।

भारशिवों का कोई सिक्का या लेख अभी तक नहीं मिला है। उनकी जाति और वर्ण का पता अभी तक कुछ नहीं है। काशी के आस-पास या ऊपर गंगातट पर कानपुर की ओर और नीचे रीँवा-राज्य बघेलखंड तक उनका अवशेष कहीं मिलना चाहिए।

---

(२) गौर नामक अज्ञात क्षत्रिय-वंश

[लेखक—महामहोपाध्याय रायबहादुर श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा, अजमेर]

अनेक पुरातत्त्ववेत्ताओं और पुरातत्त्व-विभागों के प्रयत्न से अब तक हजारों शिलालेख प्रसिद्धि मे आए हैं, किंतु गौरवंश का कोई शिलालेख नहीं मिला था, जिससे उस वंश का अस्तित्व अंधकार में ही रहा। महाराणा रायमल के समय के वि० सं० १५४५ (ई० स० १४८८) के एकलिंगजी के मंदिर के दक्षिण द्वार के सामने की बड़ी प्रशस्ति में रायमल और मांडू के सुलतान गयासशाह खिलजी के बीच की लड़ाई का वर्णन करते हुए लिखा है—"इस लड़ाई में एक गौरवीर प्रति दिन बहुत से शकों (मुसलमानों) को मारता था, इसलिये किले के उस शृंग (बुर्ज) का नाम गौरशृंग (गोरबुर्ज) रखा गया। फिर रायमल ने उसी शृंग पर चार और गौर योद्धाओं को नियत किया। बड़ी ख्याति पाया हुआ वह (पहला) गौरवीर मुसलमानों के रुधिरस्पर्श से अपने को अपवित्र जानकर उसकी शुद्धि के लिये सुरसरित् (स्वर्गगंगा) के जल में स्नान करने की इच्छा से स्वर्ग को सिधारा[1]।" अर्थात्

---

(१) तन्वानं तुमुलं महासिहतिभिः श्रीचित्रकूटे गलद्-
गर्वं ग्यासशकेश्वरं व्यरचयत् श्रीराजमल्लो नृपः ॥ ६८ ॥
कश्चिद्गौरो वीरवर्यः शकौघं युद्धेमुष्मिन् प्रत्यहं संजहार।
तस्मादेतन्नाम कामं बभार प्राकारांशश्चित्रकूटैकशृंगम् ॥ ६६ ॥
योधानमुत्र चतुरश्चतुरो महोचान्
गौराभिधान् समधिशृंगमसावचैपीत्।
श्रीराजमल्लनृपतिः प्रतिमल्लगर्व-
सर्वस्वसंहरणचंडभुजानिवाही ॥ ७० ॥

मारा गया। इस अवतरण से यह तो पाया जाता है कि इसमें 'गौर' शब्द वंश-सूचक है, न कि व्यक्ति-सूचक।

काव्य की चार रीतियों में एक गौड़ी, मद्यों में गौड़ी (गुड़ से बना हुआ मद्य), गौड़वध (काव्य), गौड़पाद (आचार्य), गौड़ (देश) आदि शब्दों से संस्कृत के विद्वान् भली भाँति परिचित थे। ऐसी दशा में प्रशस्तिकार गौड़ के स्थान में गौर शब्द का प्रयोग करे यह संभव नहीं। गौर क्षत्रिय वंश का कोई लेख न मिलने और उस वंश का नाम अज्ञात होने के कारण महाराणा रायमल का वृत्तांत लिखते समय मुझे लाचार होकर गौर क्षत्रियों को गौड़ क्षत्रिय अनुमान करना पड़ा, जो अब मुझे पलटना पड़ता है।

ई० स० १९३० (वि० सं० १९८७) में मुझे एक मित्र द्वारा यह सूचना मिली कि उदयपुर राज्य के छोटी सादड़ी गाँव से दो मील दूर एक पहाड़ी पर के भमरमाता के मंदिर में एक शिलालेख है, जो किसी से पढ़ा नहीं जाता। सादड़ी का जिला पहले दक्षिणी ब्राह्मणों की जागीर में रहा था, इसलिये उस लेख का मोड़ी लिपि में होना मैंने अनुमान किया, परंतु अनुसंधान करने पर यह उत्तर मिला कि उसकी लिपि मोड़ी नहीं, किंतु उड़िया है और उसकी एक पंक्ति सीधी तो दूसरी फारसी के समान उलटी अर्थात् दाहिनी ओर से बाईं ओर को लिखी हुई है। इस कल्पित बात पर मुझे विशेष आश्चर्य हुआ, क्योंकि कोई आर्यलिपि दाहिनी ओर से बाईं ओर को कभी नहीं लिखी गई। इस वास्ते मैंने स्वयं वहाँ

मन्ये श्रीचित्रकूटाचलशिखरशिरोध्यासमासाद्य सद्यो
यद्योधो गौरसंज्ञो सुविदितमहिमा प्रापदुच्चैर्नभस्तात्।
प्रध्वस्तानेकजाग्रच्छकविगळदसृक्पूरसंपर्कदोषं
निःशेषीकर्तुमिच्छुर्व्रजति सुरसरिद्वारिणि स्नातुकामः ॥ ७१ ॥
—भावनगर इंस्क्रिपशंस, पृष्ठ १२१।

जाकर उस लेख को पढ़ा तो ज्ञात हुआ कि वह लेख उस समय की ब्राह्मी लिपि का है और भाषा उसकी संस्कृत है। वह गौरवंश के क्षत्रिय राजाओं का है और एक काली शिला पर खुदा हुआ है। उसमें १७ पंक्तियाँ हैं, जिनमें १६ पंक्तियाँ श्लोक-बद्ध हैं और अंतिम पंक्ति गद्य की है। भमरमाता का मंदिर बहुत प्राचीन होने से उसका कई बार जीर्णोद्धार हुआ है और निज मंदिर (गर्भ-गृह) का नीचे का थोड़ा सा हिस्सा ही प्राचीन रूप में बचने पाया है। मंदिर के टूट जाने पर यह शिलालेख अरक्षित दशा में पड़ा रहा और लोगों ने उस पर मसाला पीसा, जिससे उसका लगभग एक चौथाई अंश अस्पष्ट हो गया है, तो भी जो अंश बचने पाया है वह भी बड़े महत्त्व का है। पीछे से उक्त मंदिर के जीर्णोद्धार के समय वह शिलालेख एक ताक में लगाया गया, जहाँ मेरे देखने में आया। बचे हुए अंश का आशय इस प्रकार है—

प्रारंभ के दो श्लोक देवी के वर्णन के हैं। आगे गौर वंश के क्षत्रिय राजाओं का वंशक्रम दिया हुआ है। उक्त वंश में राजा धान्यसोम अभिषिक्त हुआ। उसके पीछे राज्यवर्द्धन हुआ। उसका पुत्र राष्ट्र हुआ, जिसने शत्रुओं के राष्ट्रों को भय डाला। उसका पुत्र यशगुप्त हुआ। वह बड़ा प्रतापी, दानी, यज्ञ-कर्ता और शत्रुओं का विजेता था। उस गौर महाराज ने वि० सं० ५४७ माघ सुदी १० (ई० स० ४९१ जनवरी) को पहाड़ पर अपने माता-पिता के पुण्य के निमित्त देवी का मंदिर बनवाया[1]। इस लेख से निश्चित

---

(१) तस्याः प्रणम्य प्रकरोम्यहमेव...जस्त्रम्
[कीर्त्तिं शु]भां गुणगणौघम[यीं नृपाणाम्] [२]
............कुलो [रू] व व[ह्श] गौराः
क्षात्रे प[दे] सवत दीक्षित·· शौंडाः।
... ...
···धान्यसोम इति क्षत्रगणस्य मध्ये [४]

है कि गौर नामक क्षत्रिय वंश वि० सं० की छठी शताब्दि के मध्य में मेवाड़ में विद्यमान था और छोटी सादड़ी के आस-पास के प्रदेश पर उसके वंशवालों का राज्य था। महाराणा रायमल के समय भी गौरवंशी क्षत्रिय उक्त महाराणा की सेवा में थे और बड़ी वीरता से लड़े थे, जैसा कि ऊपर बतलाया गया है। वि० सं० की १४ वीं शताब्दी में भी गौरवंशी राजपूत मेवाड़ के राजाओं की सेना में थे। चित्तौड़ के किले पर पद्मिनी के महलों से कुछ दूर दक्षिण पूर्व में दो गुंबजदार मकान हैं, जिनको लोग गोरा बादल के महल कहते हैं। अलाउद्दीन खिलजी के साथ की चित्तौड़ के महारावल

... ...
... ...किल राज्यजितप्रतापो
यो राज्यवर्द्धय (न) गुणैः कृतनामधेयः
... ... [४]
... ...
जातः सुतो करिकरायतदीर्घबाहुः।
नाम्ना स राष्ट्र इति प्रोद्गतपुन्य(ण्य)कीर्त्तिः [६]
सोयम् यशोभरणभूषितसर्वगात्रः
प्रोत्फुल्लपद्मः···तायतचारुनेत्रः।
दक्षो दयालुरिह शासितशत्रुपक्षः
क्ष्मां शासति...यशगुप्त इति क्षितीन्दुः [८]
तेनेयं भूतधात्री क्रतुभिरिहचिता [पूर्व] भ्रूणेव भाति
प्रासादैरभ्रिदितुङ्गैः शशिकरवपुषैः स्थापितैः भूषिताय
नानादानेन्दुशुभ्रैर्द्विजवरभवनैर्येनलक्ष्मीर्विभक्ता
.........स्थितयशवपुषा श्रीमहाराज गौरः [११]
यातेषु पंचसु शतेष्वथवत्सराणाम्
द्वेविंशतीसमधिकेषु सप्तसकेषु
माघस्य शुक्लदिवसे स्वगमत्प्रतिष्ठाम्
प्रोत्फुल्लकुन्दधवलोज्वलिते दशम्याम् [१२]

—मूललेख की छाप से।

रत्नसिंह की लड़ाई में गोरा और बादल बड़ी वीरता से लड़ते हुए मारे गए ऐसा पिछले ग्रंथों में लिखा मिलता है। हि० स० ९४७ (वि० सं० १५९७=ई० स० १५४०) में मलिक मुहम्मद जायसी ने पद्मावत नाम की कथा बनाई तथा वि० सं० १६८० (ई० स० १६२३) में कवि जटमल ने गोरा बादल की कथा रची। इन दोनों पुस्तकों में गोरा और बादल को दो भिन्न व्यक्ति माना है, परंतु ये दोनों पुस्तकें गोरा बादल की मृत्यु से क्रमशः २३७ और ३२० वर्ष पीछे बनी हैं। इतने दीर्घकाल में नामों में भ्रम होना संभव है। गोरा और बादल दो पुरुष नहीं, किंतु एक ही पुरुष का नाम होना संभव है, जैसा कि राठौर दुर्गादास, सीसोदिया पत्ता आदि, जिसका पहला अंश (गोरा) वंशसूचक और दूसरा अंश (बादल) व्यक्तिगत नाम है। गोरा बादल का वास्तविक अभिप्राय गौर (गोरा) वंश के बादल नामक पुरुष से हो सकता है। वंशसूचक गौर नाम अज्ञात होने के कारण पिछले लेखकों ने भ्रम से ये दो नाम अलग अलग मान लिए होंगे।

---

(३) पद्मावत का सिंहल द्वीप

[लेखक—महामहोपाध्याय रायबहादुर श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा, अजमेर]

मलिक मुहम्मद जायसी ने पद्मावत की बड़ी मनोरंजक कथा लिखी, जिसका आधार तो ऐतिहासिक घटना है, किंतु ऊपर की भित्ति अपनी रचना को रोचक बनाने के लिये विशेषकर कल्पना से खड़ी की गई है। उसमें लिखा है कि "सिंहल द्वीप (सिंहल, लंका) में गंध्रवसेन (गंधर्वसेन) नाम का राजा था। उसकी पटरानी चंपावती से पद्मावती (पद्मिनी) नाम की एक अत्यंत रूपवती कन्या उत्पन्न हुई। उसके पास हीरामन नामका एक सुंदर और चतुर तोता था। एक दिन वह पिंजरे से उड़ गया और एक बहेलिए द्वारा पकड़ा जाकर एक ब्राह्मण के हाथ बेचा गया। उस (ब्राह्मण) ने उसको चित्तोड़ के राजा रतनसेन (रत्नसिंह) को एक लाख रुपए में बेचा। रतनसेन की रानी नागमती ने एक दिन शृंगार कर तोते से पूछा—क्या मेरे जैसी सुंदरी जगत् में कोई है? इस पर तोते ने उत्तर दिया कि जिस सरोवर में हंस नहीं आया वहाँ बगुला भी हंस कहलाता है। रतनसेन तोते के मुख से पद्मिनी के रूप, गुण आदि की प्रशंसा सुनकर उस पर मुग्ध हो गया और योगी बनकर तोते सहित सिंहल को चला। अनेक राजकुमार भी उसके चेलों के रूप में उसके साथ हो लिए। अनेक संकट सहता हुआ राजा सिंहल में पहुँचा। तोते ने पद्मावती के पास जाकर रतनसेन के रूप, कुल, ऐश्वर्य, तेज आदि की प्रशंसा कर कहा कि तेरे योग्य वर तो यही है और वह तेरे प्रेम से मुग्ध होकर यहाँ आ पहुँचा है। वसंत पंचमी के दिन वह बन-ठनकर उस मंदिर में गई, जहाँ रतनसेन ठहरा हुआ था वहाँ वे दोनों

एक दूसरे को देखते ही परस्पर प्रेम-बद्ध हो गए, जिससे पद्मावती ने उसी से विवाह करना ठान लिया। अंत में गंधर्वसेन ने उसके वंश आदि का हाल जानने पर अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ कर दिया और रतनसेन बड़े आनंद के साथ कुछ समय तक वहीं रहा। उधर चित्तोड़ में उसकी वियोगिनी रानी नागमती ने अपने पति की राह देखते हुए एक वर्ष बीत जाने पर एक पक्षी के द्वारा अपने दुःख का संदेश राजा के पास पहुँचाया। इस पर वह वहाँ से विदा होकर अपनी रानी सहित चला और समुद्र के भयंकर तूफान आदि आपत्तियाँ सहता हुआ अपनी राजधानी को लौटा। राघवचेतन नाम के एक ब्राह्मण ने पद्मिनी के रूप की तारीफ दिल्ली जाकर सुल्तान अलाउद्दीन से की, जिस पर वह (अलाउद्दीन) चित्तोड़ पर चढ़ आया। गोरा, बादल आदि अनेक सामंतों सहित रत्नसिंह मारा गया और पद्मिनी उसके साथ सती हुई"।

इस कथा में 'सिंहल द्वीप' का समुद्र के बीच होना बतलाया है और उसी को 'लंका' भी कहा है। अब हमें यह निश्चय करना आवश्यक है कि पद्मावत का सिंहलद्वीप वास्तव में समुद्र-स्थित लंका है अथवा जायसी ने भ्रम में पड़कर किसी अन्य स्थान को समुद्रस्थित लंका मानकर अपने वर्णन को मनोहर बनाने का उद्योग किया है। इसका निश्चय करने के पूर्व हमें चित्तोड़ के स्वामी रत्नसिंह के राजत्व-काल की ओर दृष्टि डालना आवश्यक है। रत्नसिंह चित्तोड़ के रावल समरसिंह का पुत्र था। रावल समरसिंह के समय के ८ शिलालेख अब तक मिले हैं, जिनमें सबसे पहला वि० सं० १३३० कार्तिक सुदि १ का चीरवेगाँव का और अंतिम वि० सं० १३५८ माघ सुदि १० का चित्तोड़ का है। इन शिलालेखों से निश्चित है कि वि० सं० १३५८ माघ सुदि १० तक तो समरसिंह जीवित था। रत्नसिंह के समय का केवल एक शिलालेख 'वि० सं० १३५९

माघ सुदि ५ बुधवार का उदयपुर—चित्तोड़ रेलवे के कांकरोली रोड स्टेशन से ८ मील दूर दरीबा स्थान के माता के मंदिर के स्तंभ पर खुदा हुआ है। इन लेखों से निश्चित है कि समरसिंह की मृत्यु और रत्नसिंह का राज्याभिषेक वि० सं० १३५८ माघ सुदि १० और वि० सं० १३५९ माघ सुदि ५ के बीच किसी समय होना चाहिए।

रत्नसिंह को राज्य करते हुए एक वर्ष भी नहीं होने पाया था कि पद्मिनी के वास्ते चित्तोड़ की चढ़ाई के लिये सुल्तान अलाउद्दीन ने सोमवार ता० ८ जमादिउस्सानी हि० स० ७०२ (वि० सं० १३५९ माघ सुदि ९=ता० २८ जनवरी ई० स० १३०३) को प्रस्थान किया, छः महीने के करीब लड़ाई होती रही, जिसमें रत्नसिंह मारा गया और सोमवार ता० ११ मुहर्रम हि० स० ७०३ (वि० सं० १३६० भाद्रपद सुदि १४=ता० २६ अगस्त ई० स० १३०३) को अलाउद्दीन का चित्तोड़ पर अधिकार हो गया।

रत्नसिंह लगभग एक वर्ष ही चित्तोड़ का राजा रहा; उसमें भी अंतिम छः मास तो अलाउद्दीन के साथ लड़ता रहा। ऐसी स्थिति में उसका सिंहल (लंका) जाना, वहाँ एक वर्ष तक रहना और पद्मिनी को लेकर चित्तोड़ लौटना सर्वथा असंभव है, अतएव जायसी का सिंहल द्वीप (सिंहल) लंका का सूचक नहीं हो सकता।

काशी की नागरीप्रचारिणी सभा-द्वारा प्रकाशित जायसी ग्रंथावली (पद्मावत और अखरावट) के विद्वान् संपादक पंडित रामचंद्र शुक्ल ने अपनी भूमिका में लिखा है "पद्मिनी क्या सचमुच सिंहल की थी? पद्मिनी सिंहल की हो नहीं सकती। यदि सिंहल नाम ठीक मानें तो वह राजपूताने या गुजरात का कोई स्थान होगा[1]।" उक्त विद्वान् का यह कथन बहुत ठीक है और उसका

(१) जायसी ग्रंथावली; काशी नागरी-प्रचारिणी सभा का संस्करण, भूमिका, पृ० २९।

पता लगाना आवश्यक है। उक्त भूमिका में गोरा बादल के विषय में यह भी लिखा है कि गोरा पद्मिनी का चाचा लगता था और बादल गोरा का भतीजा था[1]। कर्नल टॉड ने गोरा और बादल को सीलोन (सिंहल) के राजा के कुटुंबी बतलाया है और गोरा को पद्मिनी का चाचा तथा बादल को गोरा का भतीजा लिखा है[2]। ऐसा ही मेवाड़ की ख्यातों में भी लिखा मिलता है।

गौर (गोरा) नाम का वंश वि० सं० ५४७ से वि० सं० १५४५ तक मेवाड़ में विद्यमान था, जैसा कि 'गौर नामक अज्ञात क्षत्रियवंश' शीर्षक मेरे लेख में बतलाया जा चुका है। गोरा बादल दो नाम नहीं किंतु राठोड़ दुर्गादास, सीसोदिया पत्ता आदि के समान एक नाम होना संभव है, जिसका पहला अंश उसके वंश का सूचक और दूसरा उसका व्यक्तिगत नाम है। पिछले लेखकों ने प्राचीन इतिहास के अंधकार एवं गौरवंश का नाम भूल जाने के कारण गोरा और बादल दो नाम बना लिए। चित्तौड़ से करीब ४० मील पूर्व में सिंगोली नामका प्राचीन स्थान है, जिसके विस्तृत खंडहर और प्राचीन किले के चिह्न अब तक विद्यमान हैं, अतएव पद्मिनी का पिता सिंगोली का स्वामी होगा। सिंगोली और सिंहल (सिंहल द्वीप) नाम परस्पर मिलते हुए होने के कारण पद्मावत के रचयिता ने भ्रम में पड़कर सिंगोली को सिंहल (सिंहल द्वीप) मान लिया हो, यह संभव है। रत्नसिंह के राज्य करने का जो अल्प समय निश्चित है उससे यही माना जा सकता है कि उसका विवाह सिंहल द्वीप अर्थात् लंका के राजा की पुत्री से नहीं, किंतु सिंगोली के सरदार की कन्या से हुआ हो।

---

(१) वही; पृष्ठ २१।

(२) टॉड राजस्थान जिल्द 1; पृ० २८२ (कलकत्ता सं०)।

(४) मथुरा की बौद्ध कला

[लेखक—श्री वासुदेवशरण अग्रवाल, एम० ए०, एल-एल० बी०, मथुरा]

भारतवर्ष के इतिहास में वह दिवस बहुत ज्योतिष्मान् था जिस दिन शाक्यसिंह सम्यक् संबुद्ध परमार्हत भगवान् बुद्ध ने प्राचीन ऋषिपत्तन अर्थात् सारनाथ में पंच संन्यासियों के सामने धर्मचक्र का प्रवर्तन किया। उस दिन जिन चार 'अरीय सच्चों' (आर्य-सत्यों) का उपदेश हुआ वे दिग्दिगंत में फैल गए और उनकी विश्व-विजयिनी धर्म्म-पताका के नीचे असंख्य मानव जाति ने शांति, संतोष और जीवन की पूर्णता प्राप्त की। वे अरीय सच्च क्या थे? सारनाथ में कुशान ब्राह्मी अक्षरों में अति स्पष्टता से उत्कीर्ण एक टूटे छत्र के टुकड़े पर वे इस प्रकार दिए हुए हैं—

चत्तारि मानि भिक्खवे अरिय सच्चानि। कतमानि चत्तारि? दुक्खं भिक्खवे अरिय सच्चम्, दुक्खसमुदयो अरिय सचं, दुक्खनिरोधो अरिय सच्चम्, दुक्खनिरोधगामिनी च पटिपदा अरियसच्चम्।

अर्थात्—हे भिक्षुओ, चार आर्य (= अरीय = दृढ़, महत्, सनातन) सत्य हैं। वे कौन चार हैं? हे भिक्षुओ, दुःख है, यह आर्य सत्य है। उस दुःख का कारण है, यह आर्य सत्य है। दुःख रोका जा सकता है, यह तीसरा आर्य सत्य है और दुःख-निरोध को प्राप्त करानेवाला मार्ग है, यह चौथा आर्य सत्य है।

इन सीधे सादे उपदेशों से भरे हुए धर्म को आर्य जाति ने जी खोलकर अपनाया। संघ के सतत प्रयत्न, परिश्रम एवं पराक्रम से इन सत्यों का जनता में बहुत अधिक प्रचार हुआ।

मौर्य काल के सर्वश्रेष्ठ सम्राट् महाराज प्रियदर्शी अशोक (२७२ ई० पू० से २३२ ई० पू०) ने इन सीधे सत्यों से स्वयं शांति प्राप्त की और अपनी प्रियदर्शिता से अन्य प्राणियों पर करुणा करके उनका प्रचार नाना देशों में किया। उस समय से ही बौद्ध धर्म एक महान् संप्रदाय के रूप में इतिहास के पृष्ठों पर आता है। 'देवानां प्रिय' महाराज अशोक ने नीति-धर्म से ओत-प्रोत उपदेश और शासन समस्त भारतवर्ष में ऊँचे ऊँचे स्तंभों और चट्टानों पर खुदवाए। इन शासनलिपियों में धर्म, नीति और सदाचार के अमूल्य उपदेश लिखवाए गए थे। इन धर्मलिपियों की भाषा उस समय की हिंदी—मागधी—है जो उस समय भी देश की राष्ट्र-भाषा थी और पेशावर से दूर दक्षिण तक बोली-समझी जाती थी; तभी न प्रचार-कार्य में उसका प्रयोग हुआ। निस्संदेह वह समय बहुत अमूल्य रहा होगा जब सम्राट् के प्रयत्न से संगठित राजशक्ति का उपयोग लोगों की नीति-विषयक धर्म-भावनाओं को जगाने में किया गया।

अतएव मौर्य काल ही बौद्ध धर्म के अभ्युदय के साथ साथ बौद्ध कला के अभ्युदय का समय हुआ। मौर्य-शुंग काल (२७२ ई० पू० से प्रथम शताब्दी पूर्व तक) बौद्ध कला का प्रारंभिक युग है। इस युग में बौद्धों ने भगवान् बुद्ध की मूर्ति की कल्पना संभवतः नहीं की थी। वे लोग बुद्ध तथा धर्म की पूजा कुछ सांकेतिक चिह्नों द्वारा करते थे। उदाहरण के लिये— (१) बुद्ध ने सारनाथ में जिस धर्म का उपदेश किया था उस धर्म्म को कलाविद् एक चक्र के रूप में चित्रित करते थे। भगवान् की उस 'धम्मदेसना' की संज्ञा धम्म-चक्कपवत्तनसुत्त के नाम से विख्यात हुई। प्रथम युग की बौद्ध कला में 'धम्मचक्र' का प्रमुख स्थान है। कभी कभी धर्म्मचक्र चार सिंहों के सिर पर प्रतिष्ठित दिखाया जाता था। बौद्ध धर्म के दूसरे

चिह्न ये थे—(२) बोधिवृक्ष जिसके नीचे भगवान् बुद्ध को ज्ञान हुआ था। यह एक पीपल का पेड़ था जिसे बौद्ध लोग बोधिवृक्ष कहने लगे।

(३) स्तूप—इनमें बुद्ध अथवा उनके प्रधान शिष्यों के और प्रमुख बौद्ध भिक्षुओं के अवशेष रख दिए जाते थे। कहा जाता है कि बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद उनके अवशेष आठ भागों में बाँट लिए गए थे जिन पर आठ स्तूपों की रचना की गई। राजा अशोक के समय में स्तूप-निर्माण-पद्धति को बहुत प्रोत्साहन मिला। यहाँ तक प्रसिद्ध है कि उनके प्रयत्न से देश भर में चौरासी हज़ार स्तूपों का निर्माण हुआ। कहा जाता है कि स्तूप बौद्धों का ब्रह्माण्ड था। उसके गर्भ में महास्थविर शास्ता गौतम के अवशिष्ट प्रतिनिधिस्वरूप चिह्न एक सोने या अन्य धातु की मंजूषा में रख दिए जाते थे। उसके बाह्य आवरण को नाना प्रकार के उत्कीर्ण शिला-पट्टों से सजाते थे। ये स्तूप पहले बहुत दिग्गजाकार बनाए जाते थे। सारनाथ का धमेख स्तूप और साँची के स्तूप अद्यावधि वर्तमान हैं। उतना विशालकाय कोई स्तूप मथुरा में नहीं बचा है।

(४) बुद्ध का उष्णीष अर्थात् पगड़ी—यह भी पूजा का एक चिह्न था।

(५) बुद्ध का भिक्षा-पात्र।

इस प्रकार बौद्ध कला के प्रारंभिक काल में बौद्ध लोग अपनी धर्मभक्ति को कुछ चिह्न या स्मारकों की पूजा द्वारा व्यक्त करते थे। इस काल में थेरावादी बौद्धों का प्राधान्य था। थेरावादियों की एक शाखा विभज्यवादिन् थी जिस पर अशोक की विशेष श्रद्धा थी। थेरावादियों का मुकाबिला करनेवाले महासंघिक लोग थे। इनमें बहुत करके नवयुवक भिक्षु थे। ये लोग पहले कम संख्या में थे। अतएव थेरावादियों के युग में मूर्तिपूजा प्रचलित न हुई

या यों कहें कि बुद्ध मूर्तिरूप में चैत्यों में प्रतिष्ठित नहीं किए गए। यह युग हीनयान संप्रदाय के आधिपत्य का है।

इस समय बौद्ध कला के विशेष पोपक निम्न-लिखित स्थान थे—

(१) बोधि गया जहाँ भगवान् बुद्ध को ज्ञान या संबोधि प्राप्त हुई थी।

(२) साँचो—यहाँ काकनादबोट नामक महाविहार था जो उत्तर भारत के आर्यसंघ के भिक्षुओं का प्रधान केंद्र था। यहाँ पर आज भी बौद्धों के अनेक स्तूप अपनी प्राचीन अवस्था में वर्तमान हैं। बौद्ध प्रस्तर-कला के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण साँची में ही पाए जाते हैं। विशेषकर तोरण, वेदिका (railings), चहारदीवारी के जैसे उत्कृष्ट नमूने साँची में हैं वैसे अन्यत्र नहीं। साँची को बौद्ध कला की पट्ट महिषी कहना अत्युक्ति न होगी।

(३) भरहुत—यह स्थान नागोद रियासत में (मध्यभारत के अंतर्गत सतना के निकट) है। यहाँ भी बौद्धों के स्तूप थे जिनके बचे हुए महाकाय तोरण और वेदिकाएँ इस समय कलकत्ते के संग्रहालय में सजा दी गई हैं।

(४) मथुरा—यहाँ भी शुंग काल में अनेक स्तूप और चैत्य थे जिनके कुछ अवशेष इस समय मिले हैं और स्थानीय संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

(५) इनके अतिरिक्त एक स्थान सुदूर दक्षिण में अमरावती था जहाँ कि शुंग के समकालीन आंध्रों के प्रभाव से बौद्धकालीन कला की विशेष उन्नति हुई। परंतु प्रारंभिक काल की बौद्ध कला का सर्वोत्तम प्राप्ति स्थान साँची है और वह कला प्रायः साँची कला के नाम से भी पुकारी जाती है।

इस लेख में हमें मथुरा की बौद्ध कला का ही विशेष विवेचन करना है। प्राक्कुशान काल की मथुरा कला साँची और भरहुत

की सगोती बहिन है। मथुरा का साँची से संबंध अविच्छिन्न था। यह कहना न होगा कि शुंग काल में मथुरा राजनीतिक दृष्टि से विशेष महत्त्व न रखती थी। अतएव साँची ही शुंग कला का अप्रतिद्वंद्वी क्षेत्र था। तो भी मथुरा के शिल्पी अपने कौशल का परिचय दे रहे थे। गायत्री टीले से घेरे (चहारदीवारी) का एक पत्थर प्राप्त हुआ है जो एक सूची (अर्थात् रेलिंग—वेदिका—का बेंड़ा पत्थर जिसे वर्तमान इमारती परिभाषा में 'तकिया' कहते हैं) है और उसके मध्यभाग में स्फुरत्कमल में एक सुंदर हस्ती और दो आरोही चित्रित किए गए हैं। सूची के दोनों पार्श्वों पर एक सा ही चित्र उत्कीर्ण है और कला की सुष्ठुता में यह नमूना साँची और भरहुत के सर्वोत्कृष्ट नमूनों से टक्कर लेता है। मथुरा म्यूजियम में इसका नंबर १३४१ है।

इस प्राक्कुशक(कुशान)कालीन मथुरा कला में एक मूर्ति विशेष उल्लेख योग्य है। यह मूर्ति मथुरा से चौदह मील, आगरे की सड़क पर, परखम नाम के गाँव में प्राप्त हुई थी। इसका संग्रह नंबर सी-१ है और यह परखम यक्ष के नाम से विख्यात है। प्रारंभ में विद्वानों का विचार था कि यह यक्ष की प्रतिमा है क्योंकि शुंग काल में यक्षों की पूजा प्रचलित थी। इसके अतिरिक्त साँची, भरहुत और कारली में भी यक्षों की मूर्तियाँ पत्थरों पर उभारकर खुदी हुई मिली हैं। परंतु परखम यक्ष की मूर्ति किसी शिलापट्ट की आश्रित नहीं है। यह निरवलंब उत्कीर्ण हुई अर्थात् कोरी हुई है[1]। इसकी ऊँचाई आठ फुट आठ इंच है और चौड़ाई दो फुट आठ इंच। करीब पौने नौ फुट ऊँची यह मूर्ति बहुत ही विलक्षण है। डा० रामप्रसाद चंदा का मत है कि मौर्य-शुंग काल में भारतवर्ष

---

(१) जब मूर्त्तियों को चारों ओर से काट छाँटकर अर्थात् पीछे शिला का आधार न देकर बनाते हैं तब उस प्रक्रिया को कोरना कहते हैं।

में एक कला-शैली प्रचलित थी जो अशोक की कला से भिन्न थी और जो लोक (ठेठ) कला कही जा सकती है। डा० आनंदकुमार स्वामी का भी यही मत है कि अशोक काल में हमें द्विविध कला-शैली के दर्शन होते हैं। एक की संज्ञा राजाश्रित शैली और दूसरी की लोकशैली प्रतीत होती है। वस्तुतः हम इस प्रकार राजाश्रित तक्षाओं और ग्रामाश्रित तक्षाओं के भेद का वर्णन पाणिनि के ग्रंथों मे भी पाते हैं। अष्टाध्यायी में एक सूत्र है—ग्रामकौटाभ्यां तक्ष्णः (५।४।९५), जिससे ग्राम-तक्षः रूप सिद्ध होता है। अष्टाध्यायी जैसे प्राचीन ग्रंथ में तक्षाओं (सिलवटों, मूर्त्तिकारों) का और उनके विभेदों का वर्णन मिलना इस बात का द्योतक है कि यह कला उनसे भी बहुत पहले की है, यहाँ तक कि उनके समय तक इसकी कम से कम दो शैलियाँ हो चुकी थीं जो किसी कला के बहुत विकास होने पर ही संभव है। जीविकोपार्जन-भेद से तक्षा लोग दो प्रकार की कला-शैली को प्रोत्साहित और विनिर्मित करते थे। एक वह शैली थी जिसका सम्मान राजदरबार में था और दूसरी वह कला थी जिसको ग्राम या जनपदों से उत्तेजन मिलता था। एक दूसरे स्थान पर पाणिनि ने स्पष्ट ही ग्रामशिल्पी और राज-शिल्पियों (६।२।६२, ६३) का पृथक् पृथक् उल्लेख किया है। हमारे मत में डा० आनंदकुमार स्वामी का उक्त अनुमान पाणिनि की अष्टाध्यायी जैसे प्राचीन ग्रंथ से, जिसमें लिपिकारों का भी उल्लेख है, सिद्ध हो जाता है। इससे डा० चंदा महाशय का यह अनुमान भी संगत प्रतीत होता है कि परखम यक्ष की लोक-कला-शैली प्राचीन काल से प्रचलित थी।

परखम यक्ष जिस कला-शैली का प्रतिनिधि है उसका संबंध बौद्ध शैली से नहीं के बराबर ही है। बौद्ध शैली धर्मानुप्राणित थी। परंतु प्राचीन शैली में धार्मिक भावना की अपेक्षा ठेठ मानवी तक्षण

की ही प्रधानता थी। इस परखम यक्ष मूर्ति पर एक लेख भी उत्कीर्ण है। कनिंघम ने इसे पहले पहल पढ़ा था। सन् १९१७ में श्री काशीप्रसाद जायसवाल ने इस ब्राह्मी लेख को फिर से पढ़ा और यह मत स्थिर किया कि यह मूर्ति सम्राट् अजातशत्रु उपनाम कुणिक की है जो मगध देश के राजा थे। उनकी वाचना से यह बात सिद्ध भी हो जाती है। अनेक प्रमुख विद्वानों ने, जिनमें विंसेंट स्मिथ जैसे अनुदार पुरातत्त्वकोविद् भी थे, जायसवालजी के इस आविष्कार के सामने माथा झुका दिया। परंतु इधर कई प्रमाण ऐसे उपलब्ध हुए हैं जिनके आधार पर डा० आनंदकुमार स्वामी जैसे कला-कोविद परखम की मूर्ति को यक्ष ही प्रमाणित करते हैं। वस्तुतः इस संबंध में दो मत हो गए हैं। एक श्री जायसवाल का अनुयायी, दूसरा उसे यक्ष माननेवाले डा० चंदा तथा डा० आनंदकुमार स्वामी आदि का अनुयायी।

इस मूर्ति पर जिस कुणिक का नाम है वह प्राचीन मथुरा का एक प्रसिद्ध शिल्पी जान पड़ता है जिसके एक अंतेवासी (शिक्षा पाते हुए शिष्य) ने परखमवाला यक्ष बनाया था। उसी कुणिक के दूसरे शिष्य ने इसी शैली की एक विशाल यक्षिणी बनाई थी जो इस समय मथुरा से १२ मील उत्तर झींग के नगरा में मनसा देवी के नाम से पूजी जाती है। उस मूर्ति पर यह लेख खुदा है—

सा पुतेहि कारिता
यखि ला आवा कुनिकाते
वासिना [नाके]न कता

अर्थात् यह ला-आवा नाम की यक्षी—सा के पुत्रों से बनवाई गई और कुनिक के अंतेवासी नाक ने बनाई।

अभी हाल में हमने मथुरा से लगभग बीस मील उत्तर एक दूसरी यक्ष मूर्ति का पता लगाया है जो आकार-प्रकार और पत्थर

में ठीक परखम की प्रतिमूर्ति सी है। इस मूर्ति से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि परखम की शैली की विशिष्ट कला प्राचीन शूरसेन देश में प्रचलित थी और मानवी आकार की मूर्ति बनाने में मथुरा के शिल्पियों ने उस समय दक्षता प्राप्त कर ली थी जब कि गांधार शिल्प का जन्म भी न हुआ था। उसी समय की मृण्मय मूर्त्तियाँ आज भी अगणित संख्या में मथुरा में मिलती हैं। प्रथम शताब्दी के लगभग मथुरा के शिल्पी अपनी प्राचीन परपराओं को बहुत परिष्कृत कर चुके थे। उस समय मथुरा को भारतवर्ष की राजनीति में विशेष स्थान प्राप्त था। महाराष्ट्र और उज्जैन में क्षत्रपों का साम्राज्य था। पंजाब और पश्चिमी प्रांत में यूनानी राजा और पार्थिव क्षत्रप राज्य कर रहे थे। १३० ई० पू० में शकों ने वाल्हीक (=बलख=बैक्ट्रिया) और पल्हव (=पार्थिया) के यूनानी शासक-वर्शों का अंत कर दिया था, फिर भी कुछ क्षत्रप अफगानिस्तान और पश्चिमी पंजाब पर अधिकृत रहे। ई० पू० प्रथम शताब्दी में मथुरा में क्षत्रप रंजुवुल या राजुल राज्य करता था जिसकी स्त्री ने प्रसिद्ध खरोष्ठी लेखवाला सिंह-स्तंभ बनवाया था। राजुल का पुत्र महाक्षत्रप शोडास था जिसने ईसवी प्रथम शताब्दी के पूर्व में राज्य किया। इसके समय में मथुरा ने राजनैतिक अभ्युदय प्राप्त किया और वह पूर्व और पश्चिम की संधि पर सबसे महत्त्व का स्थान बन गया।

इस बात के ऐतिहासिक प्रमाण हैं कि ईसा के पूर्व की द्वितीय और प्रथम शताब्दियाँ भक्ति-धर्म के लिये बहुत उर्वर सिद्ध हुई। बेस नगर में हीलियोडोरस यवन ने विष्णु की भक्ति में गरुड़-स्तंभ की स्थापना की[१]। इसी भक्ति—धर्म के उद्रेक—से बौद्ध धर्म में भी बुद्ध को ईश्वर कल्पित करके उनकी मूर्त्ति बनाने की आवश्यकता

(१) देखिए ना० प्र० पत्रिका (नवीन संस्करण) भाग १ पृष्ठ १०४

लोगों को मालूम हुई। जो काम अब तक धर्मचक्र, बोधिवृक्ष, स्तूप आदि चिह्नों की पूजा से चलता था, उसके लिये स्वयं बुद्ध को ही प्रतिमा रूप में मूर्त्तिमान् देखने का उत्साह लोगों में हुआ। शिल्पियों से आशा की जाने लगी कि परखम यक्ष के समान ही बुद्ध भगवान् की प्रस्तरमयी मूर्त्तियों का निर्माण करें।

हमें इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि मथुरा के कुशल तक्षकों ने ही पहले पहल ध्यानावस्थित योगी के समस्त लक्षणों को आत्मसात् करके योगीश्वर बुद्ध की मूर्ति तैयार कर दी। भक्तों को जिस पद्मासनस्थित ध्यानी भगवान् को पाने की इच्छा थी उसे पाकर वे बहुत ही प्रसन्न हुए। सबसे प्रारंभ के बुद्ध और बोधिसत्त्वों की मुखाकृति में परखम यक्ष की सी समानता पाई जाती है। प्रथम शताब्दी में ही तक्षशिला के आस-पास गांधार कला का प्रादुर्भाव हुआ। इस कला पर स्पष्ट ही यूनान की कला की गहरी छाप थी। फिर भी बौद्ध धर्म की सेवा के लिये सब कुछ समर्पित करके इस कला-शैली ने भारतीय शैली को बहुत अंशों में ग्रहण कर लिया था। यह विवाद कभी अंत होता नहीं दीखता कि बुद्ध की मूर्ति की पहले पहल रचना कहाँ हुई। पश्चिमी विद्वानों की सम्मति में इस आविष्कार का श्रेय गंधार के शिल्पियों को है जिन्होंने यूनानी देवताओं की मूर्ति के आधार पर बुद्ध की मूर्ति बनाकर तैयार कर दी। हमारा अनुमान है कि मौर्य काल में भी मूर्ति-निर्माण-विद्या का प्रचार था। पाणिनि के समय में भी प्रतिकृतियाँ (मूर्तियाँ) बनाई जाती थीं। इवे प्रतिकृतौ (५।३।९६) सूत्र में इस बात का अकाट्य प्रमाण है कि कम से कम ई० पू० चौथी शताब्दी में प्रतिकृतियों की प्रथा थी; यों तो कितने विद्वान् पाणिनि को बुद्ध से भी पहले का अर्थात् ई० पू० छठी आठवीं शताब्दी का माना है। ये प्रतिकृतियाँ मिट्टी की (Terra cottas) हो सकती हैं। महाभाष्य

में जिन्हें अश्वक, उष्ट्रक, गर्दभक या हस्तिक कहा है वैसी मृण्मूर्तियाँ (Terra cottas) बहुतायत से मथुरा तथा अन्य प्राचीन स्थानों में पाई जाती हैं जिन्हें कम से कम मौर्य काल का मानना ही पड़ता है। वस्तुतः वे और भी अधिक प्राचीन हैं। जीविकार्थे चापण्ये सूत्र (५ । ३ । ९९) के आधार पर यह अनुमान होता है कि देव-प्रतिमाएँ भी पाणिनि के समय में लोगों को ज्ञात थीं। महाभाष्य में तो शिव, स्कंद और विशाख की मूर्तियों का स्पष्ट वर्णन है। जब शुंग काल मे हिंदू देवताओं की मूर्तियों का प्रमाण मिलता है तब यह सहज ही समझा जा सकता है कि बुद्ध को पाषाण रूप में प्रतिष्ठापित करने के लिये मथुरा या मध्य देश के शिल्पियों को गांधार के यूनानी शिक्षकों से उपदेश ग्रहण करने की आवश्यकता न थी। जिस समय महायान बौद्ध धर्म ने ईसा की प्रथम शताब्दी में जोर पकड़ा और अश्वघोष ने उसे एक अत्युन्नत संप्रदाय का रूप दे दिया उसी समय बौद्ध भक्तिमार्ग के उपासकों ने बुद्ध की मूर्ति की माँग प्रकट की जिसकी सबसे पहले पूर्ति करनेवाले संभवतः मथुरा के चतुर शिल्पी ही थे।

भारतवर्ष की भौगोलिक एकता का जो भाव उस युग मे पश्चिम से पूर्व तक फैला हुआ था यदि हम उसे ग्रहण करने मे थोड़ी देर के लिये भी समर्थ हो जायँ तो फिर इस प्रश्न का महत्त्व बहुत घट जाता है कि बुद्ध की मूर्ति का निर्माण पहले कहाँ हुआ। यद्यपि अब जैसे शीघ्रगामी यंत्रों का उस समय अभाव था, तो भी गंधार और मध्यदेश के बीच में यातायात बहुत ही अधिक था। और तो क्या, काशी और मगध तक के विद्यार्थी तक्षशिला के विश्व-विद्यालय में पढ़ने के लिये जाते थे; और पांचाल के विद्वान् दिग्वि-जय के लिये पंजाब के मद्र और कठ आदि प्रदेशों में चले जाते थे। दूरी मानों थी ही नहीं। गंधार से मगध तक धर्म और संस्कृति का

एक-प्राण था। एक जगह जो बात होती दूसरी जगह के विद्वानों में शीघ्रातिशीघ्र उसका समाचार व्याप्त हो जाता था। इसलिये एक स्थान में बुद्ध मूर्ति का आविष्कार होते ही अन्यत्र भी लोगों ने उसे ग्रहण कर लिया। मथुरा की कला ने अपनी परंपराओं के अनुकूल बुद्ध और बोधिसत्त्व की प्रतिमाएँ बनाने में प्रगति की और गंधार में यूनानी कला के प्रभाव का विकास हुआ। गंधार और मथुरा कलाओं की स्वतंत्र सत्ता थी और आज भी उनका भेद स्पष्ट लक्षित होता है।

अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व रखते हुए भी मथुरा कला पर कुशान वंश के समय गंधार कला का प्रभाव पड़ना शुरू हुआ। कुशान राजाओं ने पुरुषपुर या पेशावर को अपनी पश्चिमी राजधानी बनाया। उनका पूर्वी केंद्र मथुरा ही था। वस्तुतः मथुरा कुशानकालीन कला (ईस्वी १०० से ई० ३०० तक) का सबसे बड़ा केंद्र है। आज तक जितनी मूर्तियाँ इस युग की मथुरा जिले में उपलब्ध हुई हैं यदि वे सब एक स्थान पर ही मथुरा के निजी संग्रहालय में जमा होतीं, तो आज यह संग्रहालय संसार के सबसे समृद्ध संग्रहालयों में होता और कुशान-कला के लिये तो फिर अन्यत्र कहीं भटकने की आवश्यकता ही न होती। किंतु दुर्भाग्य से मथुरा की प्रत्नतत्त्व-सामग्री लखनऊ, कलकत्ता, तो क्या बोस्टन, म्यूनिक तथा लंदन के अजायबघरों तक में बिखर गई है और कितनी ही बार तो ऐसा अनर्थ हुआ है कि एक ही मूर्ति के दो खंड दो जगह पहुँच गए हैं!

गंधार कला ने जिस प्रकार मथुरा-कला को प्रभावान्वित किया उसके स्पष्ट प्रमाण मथुरा की खुदाई में मिले हैं। इनमें से कुछ का वर्णन अप्रासंगिक न होगा—

(१) सबसे पहले कर्नल स्टेसी को १८३६ में आसवपायी कुबेर की मूर्ति प्राप्त हुई। इसमें कुबेर का वेश तो विशुद्ध भारतीय

ढंग का है, परंतु उसकी पत्नी का वेश यूनानी स्त्रियों से मिलता है। पहले के विद्वानों ने उसे यूनानी सिलेनस की मूर्ति समझा था। पर अब इसमें संदेह नहीं है कि यह समुदाय कुबेर या जंभाल के परिवार का है।

(२) उक्त मूर्ति से बिलकुल मिलता-जुलता, परंतु और भी स्पष्ट, प्रमाण श्री ग्राउज महोदय को मथुरा से पश्चिम ३ मील पर पाली-खेड़ा गाँव मे १८७३ में मिला। यह मूर्ति वैकेनेलियन ग्रूप कही जाती है, पर यथार्थ में यह कैलास पर अधिष्ठित आसवानुरक्त क्षीब कुबेर की सपरिवार मूर्ति है। इसमें यूनानी वेश स्पष्ट लक्षित है। यह मूर्ति इस समय मथुरा के संग्रहालय में ही सुरक्षित है।

(३) एक मूर्ति इस समय कलकत्ते के अजायबघर में है, जो मथुरा से ही मिली थी और जिसमें यूनानी भीम हरक्यूलीज की सिंह के साथ कुश्ती दिखाई गई है।

(४) इन तीनों से भी पुष्टतर एक प्रमाण और है। वह नीले स्लेट पत्थर की एक स्त्री मूर्ति है। यह पत्थर गंधार प्रदेश में ही पाया जाता है। मथुरा का प्रसिद्ध पत्थर लाल रंग का होता है। सीकरी की खानों से जो लाल पत्थर निकलता है उसमें ही मथुरा की अधिकांश कारीगरी है। नीली स्लेट की यह स्त्री मूर्ति वेष-भूषा में यूनानी कला की बहुत ऋणी है। यह संभव है कि इसका निर्माण भी गंधार देश में ही हुआ हो और यह प्रसंगवशात् वहाँ से यहाँ लाई गई हो।

(५) मथुरा से पश्चिम महोली ग्राम में, जो प्राचीन मधुपुरी का दूसरा नाम है, कुछ गंधार कला के बुद्ध, बोधिसत्त्व और अन्य नमूने प्राप्त हुए हैं, जिनसे इस बात का निश्चित प्रमाण मिल जाता है कि मथुरा में गंधार-कला का आदान-प्रदान विशेष प्रचलित था। इसके साथ साथ मथुरा के कारीगर पूर्व में सारनाथ, सहेत-

महेत और कुशीनार तक फैले हुए थे। दूसरी और तीसरी शताब्दी में मथुरा की शिल्पशालाएँ समस्त उत्तरी भारत के लिये मूर्ति भांडार बनी हुई थीं। मथुरा के भिक्षु बल ने सम्राट् कनिष्क के राज्यकाल के तीसरे वर्ष में एक विशाल बोधिसत्त्व की मूर्ति की सारनाथ में स्थापना की। इसी भिक्षु ने श्रावस्ती में एक दूसरी बोधिसत्त्व मूर्ति स्थापित की। मथुरा के ही एक तक्षक दिन्न ने कुशीनार की बहुत बड़ी निर्वाण मूर्ति की रचना की।

बोधिसत्त्व और बुद्ध

मथुरा की बौद्ध कला में सर्वप्रमुख बुद्ध की मूर्ति है। ध्यान-मग्न योगी की भारतीय कल्पना इन मूर्तियों में चरितार्थ की गई है। यह निर्विवाद है कि योगी का भाव विशुद्ध भारतीय है। इस कल्पना में विदेशीपन की कहीं झलक नहीं है। बुद्ध की मूर्तियाँ दो प्रकार की हैं, एक खड़ी, दूसरी पद्मासन लगाए। कुशान काल में दोनों ही प्रकार बहुतायत से पाए जाते हैं, परंतु गुप्तकाल में ध्याना-सीन मूर्तियाँ कुछ कम बनने लगीं। इतिहास के विद्यार्थी यह जानते होंगे कि ज्ञान या संबोधि से पहले तक गौतम की संज्ञा बोधिसत्त्व है, बोधि के बाद वे बुद्ध कहे जाते हैं। महायान संप्रदाय का विश्वास है कि मनुष्यों पर कृपा करके तथागत बुद्ध बोधिसत्त्व बन कर आते हैं और फिर बुद्धत्व या निर्वाण को प्राप्त हो जाते हैं। यह भाव बहुत कुछ हिंदुओं के भक्त-संप्रदाय के अवतारवाद से मिलता है जिसके अनुसार करुणा के वश हो भगवान् मनुष्य देह में प्रकट होते हैं और फिर लीला का संवरण करके अनंत में मिल जाते हैं। बौद्ध यह मानते हैं कि गौतम बुद्ध से पहले भी बुद्ध हो चुके थे। अशोक के समय में भी पूर्व बुद्धों का विश्वास प्रचलित था। अशोक ने कनकमुनि (गौतम बुद्ध के पहले के एक बुद्ध) के स्तूप

की मरम्मत कराई थी और २४६ ई० पू० में निग्लीव स्थान में एक स्तंभ भी उसके स्मारक मे बनवाया था। कला में बुद्ध और बोधिसत्त्व का भेद इस प्रकार प्रदर्शित किया जाता है,—बुद्ध कोई आभूषण नहीं पहनते, उनके सिर पर जटाजूट बँधा रहता है, वे भिक्षुओं का वेश रखते हैं। परंतु बोधिसत्त्व की मूर्तियों में आभूषण अवश्य रहते हैं, सिर पर राजकीय मुकुट होता है और वेश भी राजसी रहता है। मथुरा की जिन मूर्तियों पर गंधार का प्रभाव है उनमें आभूषणों का बाहुल्य है। गले में कई प्रकार के हार, जिनमें रत्नजटित पदक लगे रहते हैं, बाहुओं पर अंगद और कलाइयों मे कटक तथा कानों में प्रभूत कुंडल पाए जाते हैं। इन बोधिसत्त्वों की मूर्ति कभी कभी बहुत दर्शनीय बनती है।

कुशानकालीन बुद्ध और बोधिसत्त्वों की घनगात्रता, चतुरस्रता और विशालता बहुत प्रसिद्ध हैं। खड़े हुए बोधिसत्त्वों में प्राचीन यक्षों की परिष्कृत अनुकृति है। कुशानकाल की एक विशेषता यह है कि इस युग मे मूर्तियाँ कोरकर (carved in round) बनाई गई थीं, उनमें पृष्ठावलंबन न होता था। ये मूर्तियाँ चतुर्दिक् दर्शनवाली हैं, परंतु गुप्तकाल में मूर्ति का दर्शन सामने के भाग में ही रह जाता है।

इन बुद्ध मूर्तियों का मस्तक प्रायः मुंडित रहता है, उसके ऊपर एक ककुद् जैसा उभार रहता है जिसे बौद्ध उष्णीष (bump of intelligence) कहते थे। गुप्त काल की मूर्तियों में सर्वदा ही सिर पर कुंचित केश रहते हैं जिनके विन्यास का क्रम रूढ़िगत सा हो गया है। माथे पर तृतीय ज्ञाननेत्र की स्थानापन्न ऊर्णा पाई जाती है। यह एक बिंदु के रूप में प्रकट की जाती है। कभी कभी ललाट में एक छोटा गर्त सा बना रहता जिसमें बहुमूल्य रत्न लगा दिया जाता होगा। कुशान काल में मूर्तियों में

मूछों का नितांत अभाव है। योगी बुद्ध में किशोरावस्था का सा यौवन रहता है। परंतु कालांतर में गंधार-कला के प्रभाव से बोधिसत्त्व की मूर्तियों में मूछें भी दिखाई जाने लगीं।

मुद्राएँ

भारतीय कला की यह विशेषता है कि उसमें हाथों की उँगलियों की रचना-विशेष से विविध भावों को व्यक्त करने में सहायता ली जाती है। वस्तुतः मुद्राएँ और हिंदू देवों के आयुध-वाहनादि कलाकारों की एक अपनी वर्णमाला होती हैं जिनके प्रस्तार से वे अपनी भाषा को दर्शकों तक पहुँचाते हैं। मथुरा में पाई जानेवाली मुद्राएँ निम्न-लिखित हैं—

(१) ध्यान मुद्रा—इसमें ध्यानमग्न बुद्ध पद्मासन में विराजते हैं और उनके हाथ एक दूसरे के ऊपर प्रफुल्ल-पद्म के समान गोद में रखे रहते हैं। इस मुद्रा से भगवान् बुद्ध की ध्यानावस्था का पता लगता है।

(२) अभय मुद्रा—बुद्धत्व प्राप्त करने के बाद लोक को अपने उपदेशों द्वारा अभय प्रदान करनेवाले बुद्ध में अभय मुद्रा की प्रतिकृति रहती है। इस मुद्रा में केवल दाहिना हाथ काम में लाया जाता है। उसको मोड़ कर कंधे की ओर इस प्रकार उठाते हैं कि हथेली दर्शकों की ओर रहती है। मथुरा की बुद्ध-प्रतिमाओं में अभय मुद्रा का बहुत प्रचार है और गुप्त काल में तो प्रायः सब बुद्धों को अभय मुद्रा में ही बनाया है।

(३) भूमि-स्पर्श मुद्रा—इस मुद्रा में बाँया हाथ गोद में रहता है और दाहिना हाथ भूमि को स्पर्श करता है। यह मुद्रा बहुत सार्थक है। इससे यह बताया जाता है कि भगवान् बुद्ध ने बोधिगया में समाधि लगाते हुए मार की विजय के समय अपनी पूर्वजन्म-संचित

निष्ठा की साक्षी के लिये धृति की परम अधिष्ठात्री पृथ्वी देवी का आह्वान किया था। कहा जाता है कि भगवान् अपने ध्यान में अविचल रहे और मार परास्त होकर उनके सामने गिर पड़ा। यही भाव शिव के मदन-दहन में है। काम का निग्रह करके ही शिव योगीश्वर बन सकते हैं। मनुष्य की समाधि या ध्यानावस्था तभी पूर्ण हो सकती है जब वह अपने भीतर और बाहर (Subjective and objective) की काम-वासना को निगृहीत कर ले। हमारे जन्म-जन्मांतर की दौड़ के मूल में सब वासनाओं से प्रबल काम-तृष्णा है। बुद्ध की मार-विजय या शिव के मदन-दहन में इसी काम-भाव के मूलोच्छेद का तत्त्व है। यह सिद्धि भगवान् ने बोधि-गया में प्राप्त की थी। उसी की परिचायक भूमिस्पर्श मुद्रा है। इस दृश्य को चित्रित करते हुए बुद्ध के चारों ओर मार और उसकी सेना, अप्सराएँ बनाई जाती हैं जो अपने हाव-भाव से बुद्ध के ध्यान को भंग करने का प्रयत्न करती हैं। मथुरा-संग्रहालय में तीन मूर्तियों में भूमि-स्पर्श मुद्रा पाई जाती है जिनमें से एक तो बुद्ध के जीवन की घटनाओं को चित्रित करनेवाला शिलापट्ट है और दूसरा एक स्तूप का नीचे का भाग (drum) है। तीसरी एक बहुत ही छोटी बुद्ध मूर्ति है जिस पर दोनों पार्श्वों में दो अप्सराएँ बनी हुई हैं। यह छोटी मूर्ति गुप्तोत्तर कालीन की विदित होती है।

इन तीन मुद्राओं के अतिरिक्त और भी अनेक मुद्राएँ गांधार कला में पाई जाती हैं। सारनाथ में धर्मचक्र-प्रवर्त्तन मुद्रा भी उल्लेख योग्य है। पर मथुरा की कला में इन तीन मुद्राओं से ही सफलता प्राप्त की गई है।

बुद्ध के जीवन की घटनाएँ

मथुरा, गांधार, सारनाथ इन तीन कलाओं की एक विशेषता यह भी है कि इनमें भगवान् बुद्ध के जीवन की चित्रण योग्य प्रमुख

और गौण घटनाओं की संख्या में मतभेद है। चार प्रधान घटनाएँ चार स्थानों से संबंध रखती हैं—

(१) लुंबिनी—बुद्ध का जन्म।

(२) बोधिगया—संबोधि।

(३) सारनाथ—धर्मचक्र-प्रवर्तन या प्रथम उपदेश।

(४) कुशीनगर—परिनिर्वाण।

मथुरा कला में इन चारों दृश्यों का चित्रीकरण पाया जाता है। उनके विषय में मथुरा और सारनाथ के कला-कोविद सम्मत थे। उनका भेद तो अप्रधान चार घटनाओं के चुनने में है। मथुरा में जिन दृश्यों को लोगों ने पसंद किया वे ये थे—

(१) इंद्रशैल गुफा में तपस्या करते हुए इंद्र ने अपने सखा पंचशिख गंधर्व के साथ भगवान् बुद्ध के दर्शन किए थे। यह इंद्र या शक्र देवताओं का राजा है जो हिंदू पुराण-कथाओं में तपस्वी मुनियों की परीक्षा लेता है। उसी ने बुद्ध की तपस्या से प्रसन्न होकर उनको अपनी प्रणामांजलि अर्पित की। मथुरा के शिल्पियों के अनुसार इंद्र बुद्ध के दर्शन करके आश्चर्य से स्तब्ध सा हो गया है। मूर्ति नं० एच ११ और एम ३ में इस घटना के चित्रण में बहुत ही उत्कृष्टता पाई जाती है। वस्तुतः तोरण के एक पार्श्व पर इस दृश्य का चित्रण मथुरा कला का अतिश्रेष्ठ नमूना है।

(२) दूसरा दृश्य भगवान् बुद्ध का त्रयस्त्रिंश स्वर्ग से अपनी माता को ज्ञान सिखाने के बाद वापिस लौटना है। इस दृश्य में तीन सीढ़ियाँ (निःश्रेणियाँ) बनाई जाती हैं जिनसे बुद्ध उतरते हुए दिखाए गए हैं। उनके दाहिने और बायें पार्श्व में ब्रह्मा और इंद्र उतर रहे हैं। महायान बौद्ध धर्म में हिंदू देवी देवताओं को ग्रहण करके बौद्ध और हिंदू धर्म के अंतर को मिटाने का प्रयत्न किया गया था। वस्तुतः गुप्तोत्तर हर्षकाल में दोनों धर्मों की विभिन्नता

दार्शनिक सी हो गई है। सामाजिक क्षेत्र में वे शैव-वैष्णवों के समान अध्यारोपी बन गए थे; अर्थात्—एक ही व्यक्ति बौद्ध और हिंदू दोनों धर्मों में आस्था रख सकता था।

(३) मथुरा कला में तीसरी अप्रधान घटना लोकपालों का बुद्ध को भिक्षापात्र समर्पित करना है। इसका बहुत सुंदर चित्रण एच १२ नंबर के पत्थर में है जिसमें सिंहासन पर अभयमुद्रा में आसीन बुद्ध के दोनों ओर चार लोकपाल भिक्षापात्र देते हुए दिखाए गए हैं। इस बुद्ध मूर्ति का आकार और शिरोवस्त्र कुशान कला के सर्वप्रथम काल का निदर्शन है।

इन तीन दृश्यों के अतिरिक्त बुद्ध के जन्म के कुछ ही काल बाद का स्नान-दृश्य भी मथुरा कला की प्रिय वस्तु है। इस प्रकार एक बात स्पष्ट मालूम होती है। वह यह कि सारनाथ में जो चार अप्रधान दृश्य हैं—यथा त्रयस्त्रिंश स्वर्गावतरण, नालागिरि हस्ती का दमन, वानरेंद्र का मधु-दान तथा श्रावस्ती में विश्वरूप-प्रदर्शन, जिनका संबंध कौशांबी, राजगृह, वैशाली और श्रावस्ती से था—उनमें से केवल प्रथम ही मथुरा में पाया जाता है। इस प्रकार सारनाथ की अपेक्षा मथुरा कला पूर्वतर है। गंधार कला में भी मथुरा की अपेक्षा बुद्ध के जीवन की घटनाओं का चित्रण बहुत अधिक पाया जाता है। गंधार और सारनाथ दोनों से मथुरा एक पग प्राचीन है।

जातक कथाएँ

इसी संबंध में यह विचारणीय है कि मथुरा में कौन कौन जातक पत्थर में चित्रित किए गए थे। गंधार कला में जातकों की संख्या सबसे अधिक है। उसकी तुलना में मथुरा के तक्षकों ने

बहुत ही कम जातकों को अपनाया था। अभी तक मथुरा में निम्नलिखित जातकों का पता लगा है—

(१) कच्छप जातक।

(२) उलूक जातक जिसमें सब पक्षियों ने वैराज्य दशा में राजा की आवश्यकता का अनुभव करके सर्वसम्मति से उलूक को राजा मानकर उसका अभिषेक किया। केवल कौए ने इसका विरोध किया। मथुरा में दो वानर उलूक का अभिषेक करते हुए दिखाए गए हैं।

(३) व्याघ्री जातक जिसमें बुद्ध भगवान् ने भूखी व्याघ्री और उसके बच्चों की प्राण-रक्षा के लिये अपने शरीर को उसे अर्पण कर दिया था।

(४) वेस्संतर जातक जिसमें विश्वंतर के रूप में बुद्ध ने एक ब्राह्मण को अपने दो लड़कों का दान कर दिया था।

(५) सुतसोम जातक जिसमे एक राक्षस ने एक वृक्ष के देवता को प्रसन्न करने के लिये एक सौ एक बच्चों की बलि देने का संकल्प किया। फिर बुद्ध ने प्रकट होकर उसे ज्ञान सिखाया।

(६) दीपंकर जातक जो महोली से प्राप्त गंधार कला का नमूना है।

वेदिका-स्तंभ

यह बात निर्विवाद है कि मथुरा कला का सर्वश्रेष्ठ विकास उसके वेदिका-स्तंभों की सजावट मे हुआ। वेदिका घेरे का संस्कृत नाम है, जिसे अँगरेजी में रेलिंग कहते हैं। इसके चार भाग होते हैं—

(१) स्तंभ (upright pillars)—ये खंभे सैकड़ों की संख्या में एक श्रेणी में लगाए जाते थे। इनके दोनों ओर अनेक प्रकार

की मूर्तियाँ बनाई जाती थीं। इन खंभों पर उत्कीर्ण वृक्षकाएँ या यक्षियाँ भारतीय तक्षण कला का अद्वितीय उदाहरण हैं। बड़े बड़े सहृदयों ने मुक्त कंठ से इनकी प्रशंसा की है। मथुरा के भूतेश्वर टीले से जो खंभे प्राप्त हुए थे उनकी सुघराई सर्वातिशायी है। उनमें से दो इस समय मथुरा के संग्रहालय में हैं। उनके अतिरिक्त छोटे बड़े और भी सैकड़ों वेदिका-स्तंभ हैं जिनकी शोभा देखते ही बनती है। नए संग्रहालय में इनका प्रदर्शन बहुत ही सुंदर ढंग से हुआ है। डा० आनंदकुमार स्वामी के मत से इन स्तंभों पर जो वृक्षकाओं की मूर्तियाँ हैं उनका बौद्ध या जैन धर्म से कुछ भी सीधा संबंध नहीं है। यह भारत की प्राचीन कला है जो साँची और भरहुत में फूली फली थी। इसका उद्देश्य धर्म-संस्पृष्ट नहीं है। जीवन को फूल के समान हलका समझकर प्रकृति के आनंद में विभोर हो जानेवाले मनुष्यों के मनोभावों की कलात्मक अभिव्यक्ति ही इन अंगनाओं का रूप है। कहीं वन-अरण्य की शोभा में पुष्पों का अवचयन है, कहीं अशोक वृक्षों के वामपादाभिलाषी दोहद की पूर्ति है, कहीं सलिलविहारी प्रमदाओं के केश-ग्रथित मुक्ताजालों के लोभी हंसों का दर्शन है। विद्धशाल-भंजिका, उद्दालक-पुष्प-भंजिका आदि में जिन प्राचीन क्रीड़ाओं का उल्लेख है, उन्हीं के सानंद महोत्सवों की कुछ झलक साँची, भरहुत और मथुरा के वेदिका-स्तंभों की स्त्रियों में पाई जाती है। नूपुर, कांचीदाम, केयूर, कटक, कुंडल, कर्णिका, ललाटिका, दंत्रपत्र आदि जिन अलंकार-रत्नों का भारतीय काव्यों में वर्णन है उन्होंने इन यक्षियों के शृंगार को नाना भाँति से पुष्ट किया है। स्वस्थ शृंगार का इतना उत्कृष्ट प्रदर्शन अन्यत्र नहीं पाया जाता। इसी कला ने धर्म को निर्जीव या एकांगी होने से बचाया। लोग संसार को त्याग-कर संघारामों में जाने की अपेक्षा अपने जगत् को ही देवधाम बनाते

का प्रयत्न अधिक श्रेयस्कर समझते थे। संसार और धर्म का बहुत ही स्पृहणीय समन्वय उन चैत्यों में हुआ जहाँ बाहर तो शतसंख्यक वेदिका-स्तंभों में इंद्रियों के अनंत-विस्तृत जीवन का दर्शन होता था और भीतर मनोभावों पर अंकुश रखनेवाले आदर्श की बुद्ध रूप में प्रतिष्ठा थी। मनुष्य क्या है और उसे कहाँ जाना है, इस यथार्थता और आदर्श का मेल इन स्तंभों की कला में पाकर सहृदय जनता ने अपने आपको धन्य समझा। इसमें कोई संदेह नहीं कि कालिदास की यक्षिणी, पार्वती, शकुंतला का नवयौवनोन्मिषित रूप इन वेदिका-स्तंभों पर ही सर्वप्रथम स्फुरित हुआ। उसके अनिंदित इंद्रिय-प्रत्यक्ष स्वरूप को तपःपूत करने में महाकवि का कौशल है।

(२) सूची (cross-bar)—प्रत्येक दो स्तंभों के बीच में तीन आड़े पत्थर लगते थे जिनका नाम सूची था। इन पर भी कमलों के भीतर स्त्री-पुरुषों के मुख चित्रित किए गए हैं। इनको देखकर स्फुरत्प्रभामंडल मुखारविंदों का स्मरण हो आता है।

(३) आलंबन या पिंडिका (base)—इन पत्थरों पर स्तंभ टिके रहते थे।

(४) मूर्धस्थ पत्थर (coping stone) ये दो तीन स्तंभों के ऊपर उन्हें मिलाने के लिये रखे जाते थे और इन पर भी अनेक प्रकार के फूल-पत्तों की खुदाई रहती थी।

इस प्रकार की चहारदीवारी स्तूप और चैत्यों के चारों ओर बनाई जाती थी। उससे इन स्थानों की शोभा बहुत भव्य हो जाती थी।

दंपती

वेदिका-स्तंभों पर जिस प्रकार की स्त्रियों का चित्रण होता था, उसी का रूपांतर दंपती में पाया जाता है। द्वारोपांत के स्तंभों

(door-jambs) में स्त्री-पुरुष या दंपती के नाना स्वरूपों की शोभा पाई जाती है। प्राय: वे फूलों और मालाओं से प्रसाधन-प्रसक्त उत्कीर्ण किए गए हैं। इसके अतिरिक्त छोटे छोटे शिलापट्टों पर भी दंपती का चित्रण करके उनसे घरों को सज्जित करने की प्रथा थी। ऐसे अनेक उदाहरण मथुरा के संग्रहालय में विद्यमान हैं। कला की दृष्टि से इन मिथुन मूर्तियों का संबंध भी प्राचीन भरहुतादि की कला से ही है। सामाजिक दृष्टि से यह युग स्त्रियों के लिये विकास की चरम सीमा का प्रमाण देता है। संभवत: इसी युग में प्रत्येक देवता भी दंपती रूप में कल्पित किए गए। पुरुष के अवतार के साथ प्रकृति ने भी प्रत्यच की उपासना की। देवों के साथ देवियों का विकास हुआ। यह दांपत्य भाव नवीन भक्ति धर्म का मौलिक प्राण था। इसमें प्रत्येक बोधिसत्त्व के लिये एक शक्ति, प्रत्येक जिन के लिये एक यची और प्रत्येक पौराणिक देवता के लिये एक देवी की आवश्यकता हुई। स्त्री-पुरुष के इस द्वन्द्व मे ही भविष्य के सब काव्यों और पुराणों की सफलता का रहस्य अंकित था। इसकी छाया में प्रकृति को पुरुष की अर्धांगिनी का पद मिला, वह देवी और गृह-स्वामिनी कहकर पूजी गई।

कुबेर हारीती

मथुरा की बौद्ध कला का वर्णन पूर्ण होने के लिये कुबेर का परिचय आवश्यक है। बौद्ध ग्रंथों में धन के अधिपति कुबेर या जंभाल का विशेष वर्णन है। मालूम होता है मथुरा के श्रेष्ठियों को जंभाल की पूजा बहुत रुचिकर थी। कुबेर के दाहिने हाथ में बीजा-पूर (= बिजौरा नींबू) फल और बाँये में एक नकुलाकृति थैली रहती है जिसमें से रत्न प्रसूत होते हैं। कुबेर का आकार तुंदिल होता है, कभी कभी वह आसवपान में आसक्त भी दिखाए जाते हैं।

कुबेर के साथ उनकी स्त्री हारीती की भी अनेक मूर्तियाँ मिलती हैं। हारीती पहले क्रूर-हृदया बालघातिनी थी, पर कालांतर में उसे प्रसव की अधिष्ठात्री देवी मानने लगे और वह कुबेर की पत्नी मानी जाने लगी। समृद्धि और संतान के चाहनेवाले हारीती को पूजते थे।

नाग देवता

यक्षों के समान ही प्राचीन समय में नागों की पूजा भी प्रचलित थी। मथुरा में विशेषतः नागों की प्रतिष्ठा थी क्योंकि बलराम जी को शेष का अवतार मानते थे। इस कला में बलराम की और नाग की मूर्तियों में कुछ भेद नहीं होता और प्रायः नागों की मूर्तियों को लोग बलराम कहकर पूजते हैं। इस समय भी महावन में चौरासी खंभों का एक मंदिर है। उसमें जो बलराम या दाऊजी की प्रतिमा है उसकी समानता नागों जैसी है। वह मूर्ति गुप्तकालीन जान पड़ती है। उसमें वैजयंती माला है और बायें हाथ में वारुणी-पात्र है, सिर पर शेषनाग के फनों का विस्तार है। मथुरा संग्रहालय में गुप्त समय की ही एक बहुत सुंदर बलदाऊ की मूर्ति है जिस में उपर्युक्त सभी बातें मौजूद हैं। मथुरा की सबसे प्रसिद्ध नाग-मूर्ति छार गाँव का नाग है [सूची नं० सी १३]। इसकी ऊँचाई पौने आठ फुट है। नाग की कुंडलियाँ दोनों पार्श्वों में दिखाई गई हैं। इन कुंडलियों की लपेटों में जो बल दिखाई पड़ता है उससे इसके तक्षक की भूरि भूरि प्रशंसा करनी पड़ती है। आंतरिक शारीरिक शक्ति का ऐसा ऊर्जस्वल प्रदर्शन प्राचीन भारतीय कला में बिल्कुल असामान्य बात है। सिर पर सात फनों का घटाटोप है। मूर्ति का दर्शन चतुर्दिक् था। इसके पृष्ठ पर एक लेख उत्कीर्ण है जिससे मालूम होता है कि महाराज राजाधिराज हुविष्क के राज्यकाल में सेनहस्ती और भोणुक नाम के दो मित्रों ने एक पुष्करिणी बनवाकर

उसमें इस नाग भगवान् की स्थापना की। इससे यह विदित होता है कि यह मूर्ति कुशान कला के अभ्युदय-काल में बनी थी। यह उस कला की सब विशेषताओं को बहुत ही उत्तम रीति से प्रकट करती है। यह भी ज्ञात होता है कि जलाशयों में प्रचुर जलराशि की प्राप्ति के लिये नागों की पूजा होती थी क्योंकि नागों की राजधानी पाताल में समझी जाती थी।

एक छोटी मूर्ति यमुना जी से नाग दधिकर्ण की मिली है जिस पर दधिकण्ण ये चार अक्षर खुदे हैं। इसी नाग दधिकर्ण की एक मूर्ति हुविष्क के जमालपुर वाले विहार के पास ही मिली थी जिसके लेख से मालूम होता है कि उस विहार से मिला हुआ ही नाग दधिकर्ण का मंदिर था।

बौद्ध लोग यह मानते थे कि बुद्ध की अस्थियों पर जिन आठ स्तूपों की रचना हुई थी उन में से रामग्राम वाले स्तूप की रक्षा नाग लोग स्वयं करते थे। आश्चर्य है कि मथुरा के लोगों में इस स्तूप की बहुत ख्याति थी। अभी तक और किसी विशेष स्तूप का चित्रण नहीं प्राप्त हुआ, पर रामग्राम के स्तूप के दो नमूने मिल चुके हैं जिनमें नाग लोग स्तूप की छत्रयष्टि में कुंडलित होकर उसकी रक्षा कर रहे हैं [जे० ७१ और आई ६]

हिंदू और बौद्ध धर्मों के अतिरिक्त जैन धर्म से भी नागों का संबंध है। जैन धर्म के चौबीस तीर्थंकर हैं जिनके अपने अपने चिह्न हैं। उदाहरण के लिये नेमिनाथ की मूर्ति के नीचे शंख बना रहता है, ऋषभ नाथ के नीचे एक छोटा बैल। इसी प्रकार दो तीर्थंकर सुपार्श्व और पार्श्वनाथ नागों के आटोप से पहचाने जाते हैं। मथुरा कला में जैन मूर्तियों की संख्या बौद्ध मूर्तियों के समान ही समझनी चाहिए। मथुरा की जैन कला महत्त्व में भी हिंदू या बौद्ध कला से कम नहीं है। नागावृत जैन तीर्थंकरों की

कई बहुत ही श्रेष्ठ और सजीव मूर्तियाँ मथुरा के संग्रहालय में हैं। जैन कला में सर्वतोभद्र प्रतिमाएँ बहुत मिलती हैं जिनमें, एक ही पत्थर में, चार दिशाओं को मुँह किए चार तीर्थंकर बने रहते हैं। इनमें एक तीर्थंकर सदा ही नाग के छत्रवाला पाया जाता है जिसे हम सुपार्श्व या पार्श्वनाथ मान सकते हैं।

इस प्रकार संक्षेप में हमने मथुरा कला की बौद्ध शाखा का दिग्दर्शन किया है। वस्तुतः मथुरा कला-शैली का महत्त्व अभी तक पूरी तरह लोगों के सामने प्रकट नहीं हुआ है। मथुरा की कला में गंधार और ईरान से कुछ आदान-प्रदान हुआ, यह बात ठीक है; परंतु खेद इस बात का है कि कला के पारखी आचार्यों का समग्र ध्यान इसी विवेचना में समाप्त हो गया कि गंधार का प्रभाव कितना और क्या है। मथुरा के शिल्पियों में जो विशुद्ध स्वदेशी प्रतिभा थी, जिसके बल पर उन्होंने एक अति उन्नत् कला-शैली का आविष्कार और प्रचार किया, उसके सहानुभूतिपूर्ण अध्ययन की ओर अभी तक विद्वान् दत्तचित्त नहीं हुए। शक क्षत्रप—कुशान—काल [प्रथम शताब्दी पूर्व से ईसा की तृतीय शताब्दी तक] निर्माण का युग था। यह शांति और समृद्धि का समय था। इस युग में देश के वैभव, कला-साहित्य और संस्कृति को बहुत ही अभ्युदय प्राप्त हुआ। शक क्षत्रप तथा महाक्षत्रपों ने और उनके उत्तराधिकारी शाहानुशाही कुषाण-पुत्र वेम, कनिष्क, वासिष्क, हुविष्क, वासुदेव आदि सम्राटों ने तन मन धन से समाज, देश और धर्म की उन्नति के लिये चेष्टा की। मथुरा ही उनके प्रयत्नों का प्रधान क्षेत्र बना। यों तो उत्तरी भारत के प्रायः सभी प्राचीन स्थानों में कुशान समय की कला-वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। मथुरा इस समय एक बहुत बड़ा त्रिवेणी-संगम बन गया था। प्रथम तो यहाँ बौद्ध, जैन और हिंदू तीनों धर्मों का समन्वय हुआ। सम्राट् लोग सब धर्मों और मतों का

संवर्धन करके अपने पूर्ववर्ती मौर्य-गुरु के उपदेशों को चरितार्थ कर रहे थे। इस धर्म-त्रिवेणी में आप्लावित समाज परम शांति का अनुभव कर रहा था। सर्वत्र विहार, स्तूप, चैत्य, मंदिर, पुण्य-शाला, धर्मशाला, पुष्करिणी, उदपान, आराम, कूपादि के निर्माण में समस्त जनता अपूर्व उत्साह का परिचय दे रही थी। शिल्पकला मूर्धाभिषिक्त होकर समाज की आंतरिक वृत्तियों का परिष्कार कर रही थी। काव्य-साहित्य का भी बहुत सम्मान था। अश्वघोष और नागार्जुन सदृश कवि और दार्शनिकों के आविर्भाव का यही युग था। गुप्तकालीन सर्वतोमुखी उन्नति के बीज इसी युग में बोए गए। आगे चलकर धर्म और संस्कृति के अभ्युत्थान में जिस देवोपम ज्योति के दर्शन हुए उसके प्रकाश की उषःकालीन छटा कुशान समय में ही देखी गई। दूसरी पवित्र त्रिवेणी, जिसका संगम मथुरा में हुआ, तीन संस्कृतियों की थी। शाकद्वीपी जातियाँ अपनी संस्कृति को लाईं; पश्चिमी सीमा पर बसे हुए यूनानी राजाओं ने यूनान की संस्कृति का प्रचार किया। ऐसे समय ईरान और यूनान के प्रवाहों ने भारतीय धारा में मिलकर उसकी वर्ण छटा को बहुत ही अलौकिक बना दिया और उस धारा को धक्का देकर एक वेग उत्पन्न किया जिसकी शक्ति से कुशान युग में सर्वत्र ही नवीन सृष्टि की धूम मच गई। मथुरा की कला में उपर्युक्त द्विविध त्रिवेणियों के अस्तित्व और प्रभाव के सैकड़ों प्रमाण मिलते हैं। ईरानी ढंग की मुखाकृतिवाले सिंह-स्तंभ कितने ही हैं। परसि-पोलिस के ढंग के स्तंभ सर्वत्र ही मिलते हैं। अकांथस पत्रों से अलंकृत कारिंथियन ढंग के स्तंभ भी अनेक हैं। वेश-भूषा भी दोनों प्रकार की खूब मिलती है। साथ ही भारतीय कमल, अशोक, कदंब की शोभा तो मथुरा के शिल्पियों का प्राण ही है। भारतीय आभूषण और धोती तथा मुकुट ही सर्वत्र दीख पड़ते हैं। उस

संस्कृति-युग की वेश-भूषा की स्वाभाविकता तथा सौंदर्य से चित्त अनायास ही मुग्ध हो जाता है। स्त्रियों के स्रस्त दुकूल और कांची-दामों ने कला को सँवारने में इतिश्री कर दी है। मथुरा के संग्रहालय में खड़े होकर चारों ओर दृष्टिपात करने से आश्चर्य-चकित सहृदय मनुष्य यही सोचता है कि इस महार्घ कला-सामग्री के पर्याप्त परिचय के लिये कोई कालिदास ही समर्थ हो सकते हैं।

(१) इस लेख को समाप्त करते हुए अब हम मथुरा की बौद्ध कला के कुछ प्राप्ति-स्थानों का परिचय भी करा देना चाहते हैं। भारतवर्ष में कला की सामग्री के लिये सबसे धनी प्रदेश शूरसेन देश या मथुरा जिला है जिसकी सीमाओं का विस्तार भरतपुर, आगरा, देहली और अलीगढ़ की तरफ भी समझना चाहिए। जिस प्रकार योरप में एथेंस कला का तीर्थ है, वैसे ही भारतवर्ष में मथुरा है। परंतु दुर्भाग्य से अभी तक इस ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है। आज तक इस जिले में मूर्तियों की लूट सी रही है। जो जिसके हाथ पड़ी ले गया। यह नीति मथुरा कला के लिये बहुत ही घातक सिद्ध हुई है। यहाँ के अनेक उत्कृष्ट नमूने दूसरे दूसरे अजायबघरों में पहुँच गए। मथुरा कला का सर्वश्रेष्ठ संग्रह तो लखनऊ के अजायबघर में है। सन् १८८८ में डाक्टर फ्यूहरर ने मथुरा के कंकाली टीले में खुदाई कराई। यह टीला मथुरा के बहुत ही धनी टीलों में था। इसमें से जैन और बौद्ध कला की सब प्रकार की करीब एक सहस्र मूर्तियाँ तथा अन्य सामग्री लखनऊ चली गई। कंकाली टीले में किसी समय बौद्ध, जैन और हिंदू तीनों धर्मों के विहार और मंदिर थे।

(२) जमालपुर—दूसरा स्थान वहाँ था जहाँ आजकल कलक्टर की कचहरी है। यहाँ पर महाराज हुविष्क ने १६७ ई० में एक विहार बनवाया था। दुर्भाग्य का विषय है कि इस स्थान के महत्त्व

को न जानने के कारण इसका नाम निशान भी मिटा दिया गया। यदि यहाँ वैज्ञानिक रीति से खुदाई होती तो हम विहारों की रचना के विषय में बहुत कुछ जान सकते थे। इसी हुविष्क विहार के पास किसी समय दधिकर्ण नाग का मंदिर था।

(३) कटरा केशवदेव—यह स्थान मौर्यकालीन था। यहाँ कुशान समय में यशाविहार की स्थापना हुई। कालांतर में ई० १००० के लगभग केशवदेव के हिंदू मंदिर की रचना हुई और आज उन सब को ध्वस्त करके औरंगजेब की मस्जिद बनी हुई है। इसी स्थान पर राजा वसुष्क के एक स्तूप का पुनर्निर्माण कराने का प्रमाण मिलता है। कटरा के स्थान से ही मथुरा पुरातत्त्व का प्रारंभ १८५६ में हुआ।

(४) गुहाविहार—यमुना के किनारे ध्रुव सप्तर्षि आदि टीले हैं। यहाँ से खरोष्ठी लेखवाला सिंहस्तंभ मिला था। यहाँ ईसा से प्रथम शताब्दी पूर्व में महाक्षत्रप राजुल की रानी ने एक विहार बनवाया था।

(५) चौबारा गाँव के स्तूप—इन टीलों से एक सुवर्ण की मंजूषा मिली थी जो इस समय कलकत्ते के संग्रहालय में है। इस स्थान में बौद्धों के अनेक स्तूप थे। इन स्थानों के अतिरिक्त और भी सैकड़ों जगहों से, जिनमें भूतेश्वर, अर्जुनपुरा, माट, परखम, सितोहा, गणेशरा आदि प्रसिद्ध हैं, कितनी ही कला की मूल्यवान् चीजें प्राप्त हुई। वे स्थान जिनकी या तो अब तक अधूरी खुदाई हुई या बिलकुल ही नहीं हुई सैकड़ों की संख्या में हैं। आशा है, समृद्धि के समय भारत सरकार का इस ओर यथोचित ध्यान आकृष्ट होगा। एक बात और भी उल्लेखनीय है। अब मथुरा में एक बहुत ही वृहत् और सुंदर संग्रहालय तैयार हो गया है। मथुरा कला की बहुमूल्य सामग्री इस संग्रहालय में सजा दी गई है। किसी समय

जब यहाँ अजायबघर का उचित प्रबंध नहीं था मथुरा कला की चीजें अन्य स्थानों में पहुँचा दी गई थीं, परंतु अब यह प्रयत्न होना चाहिए कि उन चीजों में से कला की दृष्टि से बहुमूल्य और महत्त्वपूर्ण सामग्री फिर मथुरा के संग्रहालय को लौटा दी जाय। इससे वैज्ञानिक लाभ यह होगा कि एक कला-शैली का सर्वांगीण अध्ययन एक ही स्थान पर करना सुलभ हो जायगा। इस विषय में डाक्टर आनंदकुमार स्वामी के शब्द ध्यान देने योग्य हैं—

"Few sites in India are of greater interest than Mathura. If all that has been excavated had been adequately surveyed at the time, or if all that remains could be made accessible, it is probable that many of the most doubtful problems of Indian political and artistic history might be solved, and much light would be thrown on the early development of iconography.————The Mathura excavations were conducted solely with a view to collecting sculptures and without regard to scientific observation of the sites, and the difficulties of study have been increased by a distribution of sculptures from the same site amongst at least three different museums"

अर्थात् प्रत्नतत्त्व की दृष्टि से मथुरा के समान महत्त्वपूर्ण स्थान भारतवर्ष में थोड़े ही हैं। जितने स्थानों में यहाँ खुदाई हुई है यदि सबका ठीक अध्ययन पहले हो जाता, या जो कुछ अभी तक निकला है वह सभी उपलब्ध होता तो संभवतः भारतवर्ष के राजनीतिक और कला संबंधी इतिहास की बहुत सी उलझनें दूर हो जातीं और मूर्ति-विद्या के प्राथमिक विकास के बारे में नया हाल मालूम हो जाता।

मथुरा में खुदाई करनेवालों को मूर्तियों के संग्रह का जितना ध्यान था, वैज्ञानिक रीति से स्थानों के निरीक्षण का उतना नहीं। और एक बड़ी कठिनाई यह भी है कि एक ही प्राचीन स्थान से मिली हुई चीजें कम से कम तीन अजायबघरों में बँट गई हैं। आशा है, भविष्य में इन त्रुटियों के सुधार का पूरा उद्योग किया जायगा।

---

(५) संध्यक्षरों का अपूर्ण उच्चारण

[लेखक—श्री गुरुप्रसाद एम० ए०, काशी]

सूचना—इस लेख में अपूर्ण ए और ओ के लिये निम्नलिखित चिह्न काम में लाए गए हैं—

ऍ } —अपूर्ण ए
ॅ }

ॊ —अपूर्ण ओ

संध्यक्षरों से तात्पर्य ए, ऐ, ओ और औ इन चार स्वरों से है। संस्कृत में इन सबका उच्चारण सदा पूर्ण होता है। इसका प्रमाण संस्कृत व्याकरण में मिलता है। पाणिनि ने अक्षरों के उच्चारण के लिये तीन प्रकार से भेद किए हैं—(१) ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत; (२) उदात्त, अनुदात्त और स्वरित तथा (३) अनुनासिक और अननुनासिक। इस प्रकार प्रत्येक अक्षर के, उच्चारण-भेद से, १८ रूप होने चाहिएँ। पर वार्तिककार ने इसके दो अपवाद बतलाए हैं। ऌवर्णस्य द्वादश तस्य दीर्घाभावात् एचामपि द्वादश तेषां ह्रस्वाभावात्—अर्थात् ऌ के बारह ही भेद होते हैं क्योंकि उसका दीर्घ नहीं होता और एच् अर्थात्, ए, ऐ, ओ और औ के भी बारह ही भेद होते हैं क्योंकि उनके ह्रस्व नहीं होते। इससे स्पष्ट है कि संस्कृत में संध्यक्षरों का अपूर्ण उच्चारण नहीं होता।

पर हिंदी में यह बात नहीं है। हिंदी में कुछ स्वरों के अपूर्ण उच्चारण भी पाए जाते हैं। जैसे 'एक' और 'एक्का' दोनों शब्दों में 'ए' स्वर आया है पर दोनों 'ए' का उच्चारण समान नहीं होता। 'एक' के 'ए' का उच्चारण लंबा होता है और 'एक्का' के

'ए' का उच्चारण छोटा। अर्थात् 'एक' के 'ए' का उच्चारण पूर्ण होता है और 'एका' के 'ए' का उच्चारण अपूर्ण। इस लेख में इसी बात पर विचार किया जायगा कि संध्यक्षरों का उच्चारण कहाँ पूर्ण होता है और कहाँ अपूर्ण अर्थात् संध्यक्षरों के उच्चारण का अपूर्ण होना किन किन नियमों पर निर्भर करता है।

अपभ्रंश में अपूर्ण उच्चारण

पर इस विषय पर विचार करने के पूर्व यह देखना उचित होगा कि हिंदी से पहले की और किसी भाषा में उच्चारण की यह अपूर्णता मिलती है अथवा नहीं। हिंदी से पहले की भाषाओं में से हमें केवल अपभ्रंश में यह बात देखने को मिलती है। अपभ्रंश में 'ए' और 'ओ' का उच्चारण प्राय: अपूर्ण हो जाया करता था। इसका प्रमाण हेमचंद्र के प्राकृत व्याकरण में मिलता है। हेमचंद्र ने लिखा है—

कादिस्थैदोतोरुच्चारलाघवम्।

संस्कृत भाष्य—

अपभ्रंशे कादिषु व्यञ्जनेषु स्थितयोरे ओ इत्येतयोरुच्चारणस्य लाघवं प्रायो भवति। —प्राकृत व्याकरण ८।४।४१०

अर्थात् अपभ्रंश में क आदि व्यंजनों में स्थित 'ए' और 'ओ' का उच्चारण प्राय: लघु होता है।

उदाहरण—

अम्मीए सत्थावत्थेहिं सुघें चिंतिजइ माणु।
पिए दिट्ठे हल्लोहलेण को चेअइ अप्पाणु॥
जो गुण गोवइ अप्पणा पयडा करइ परस्सु।
तसु हउँ कलिजुगि दुल्लहहो बलि किज्जउँ सुअणस्सु॥

ऊपर के काले अक्षरों में एकार और ओकार अपूर्ण हैं।

इससे मालूम होता है कि अपभ्रंश में ए और ओ को अपूर्ण कर देने की प्रवृत्ति थी और यह माना जा सकता है कि उसी से हिंदी में भी यह प्रवृत्ति आई।

हिंदी में संध्यक्षरों का अपूर्ण उच्चारण

ऊपर कहा जा चुका है कि संध्यक्षरों से तात्पर्य ए, ऐ, ओ और औ इन चार स्वरों से है। पर वास्तव में अपूर्ण उच्चारण केवल ए और ओ का होता है। ऐ और औ कहीं अइ, अउ तथा कहीं अय्, अव् आदि में बदल जाते हैं[1]। अतएव यहाँ केवल ए और ओ के अपूर्ण उच्चारण पर विचार किया जायगा। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि अपूर्ण उच्चारण केवल तद्भव शब्दों में होता है। तत्सम शब्दों का इससे कोई संबंध नहीं है।

ए और ओ के अपूर्ण उच्चारण पर विचार करने के पूर्व यह जान लेना चाहिए कि इनको अपूर्ण कर देने की प्रवृत्ति बिहारी तथा पूर्वी हिंदी ही में प्रधान रूप से पाई जाती है[2]। अतएव यहाँ इस

---

(१) डाक्टर ग्रियर्सन ने ऐ और औ का भी अपूर्ण उच्चारण होना माना है। पर यह बात ठीक नहीं मालूम होती। जिस तरह से ए और ओ पूर्ण से अपूर्ण हो जाते हैं उस तरह से ऐ और औ नहीं होते। ऐ और औ जब पूर्ण नहीं बोले जाते हैं तब वे अइ, अउ और कहीं अय्, अव् आदि में बदलकर बोले जाते हैं। जैसे—कनौजिया। यहाँ "कनौजिया" के 'नौ' का औकार पूर्ण नहीं है। पर जिस तरह से 'एक्का' का 'ए' अपूर्ण है उस तरह से यह औकार अपूर्ण भी नहीं है बल्कि यह अउ के रूप में बदल जाता है और 'कनौजिया' का रूप बदलकर 'कनउजिया' हो जाता है जोकि सुनने में अपूर्ण ही सा मालूम होता है। ऐ और औ का उच्चारण अपूर्ण नहीं होता है। इस मत की पुष्टि अपभ्रंश से भी होती है। अपभ्रंश में भी ऐ और औ का उच्चारण अपूर्ण नहीं होता है; क्योंकि हेमचंद्र ने केवल ए और ओ के ही उच्चारण का अपूर्ण होना लिखा है, ऐ और औ का नहीं।

(२) पश्चिमी हिंदी बोलनेवाले भी कभी कभी अपूर्ण ए, ओ बोलते हैं। जैसे—'पहॅला' का हे अथवा 'मैं कहॅता था' में कहॅता का हे। पर यह ध्यान में रखना चाहिए कि यहाँ पर पूर्ण ए को अपूर्ण नहीं किया गया है बल्कि

संबंध में जो कुछ लिखा जायगा वह बिहारी तथा पूर्वी हिंदी ही के संबंध में होगा।

बिहारी तथा पूर्वी हिंदी में जहाँ जहाँ ए और ओ का उच्चारण अपूर्ण होता है, पश्चिमी हिंदी में उन स्थानों में (१) प्रायः ऍ और ऑ के स्थान में क्रमशः इ और उ का प्रयोग होता है और (२) कहीं कहीं उनका उच्चारण पूर्ण ही रहता है। जैसे—

(१) ऍ और ऑ के स्थान में इ और उ—

बिहारी और पूर्वी हिंदी			पश्चिमी हिंदी
ऍकतीस	...	...	इकतीस
ऍका	...	...	इका
ऍकट्ठा	...	...	इकट्ठा
ऑलहना	...	...	उलहना
कौहरा	...	...	कुहरा
खोदवाना	...	...	खुदवाना
गोबरैला	...	...	गुबरैला
घोड़सार	...	...	घुड़सार
चोराना	...	...	चुराना
जेठानी	...	...	जिठानी
मोटरी	...	..	मुटरी
मोहरा	...	...	मुहरा
लेटाना	...	...	लिटाना
लोहार	...	...	लुहार
सोनार	...	...	सुनार इत्यादि

'पहला' और 'कहना' के ह को हॅ किया गया है। अर्थात् अ को अपूर्ण किया गया है।

(२) ए और ओ का पूर्ण उच्चारण—

ओखली, केवड़ा, केकड़ा, कोठरी, केंचुआ, टोटका, नेवला, भेदिया, कोयला इत्यादि। (इन सब में बिहारी तथा पूर्वी हिंदी में ए और ओ का उच्चारण अपूर्ण होता है और पश्चिमी हिंदी में पूर्ण।)

कहीं कहीं पश्चिमी हिंदी में ए के स्थान में य हो जाता है। जैसे—एकाएक के स्थान में यकायक।

नोट—ऊपर का बिहारी, पूर्वी तथा पश्चिमी हिंदी आदि का विभाग डाक्टर ग्रियर्सन के अनुसार है।

ए और ओ के उच्चारण के नियम

ए और ओ का उच्चारण शब्द में ए-ओ-घटित वर्ण के स्थान पर निर्भर करता है। अर्थात् किसी एकारयुक्त या ओकारयुक्त वर्ण के उच्चारण का पूर्ण या अपूर्ण होना इस बात पर निर्भर करता है कि शब्द में उस एकारयुक्त या ओकारयुक्त वर्ण का स्थान शब्द के अन्य वर्णों की अपेक्षा कौन सा है। केवल निम्नलिखित दो साधारण नियम हैं जो कि ए-ओ-घटित-वर्ण के स्थान की अपेक्षा नहीं करते हैं।

साधारण नियम—

१—क्रियाओं को सकर्मक या प्रेरणार्थक बनाने में पूर्ण ए और ओ का उच्चारण अपूर्ण हो जाता है और ए और ओ का स्वरबल प्रेरणार्थक बनाने के लिये लगाए हुए आ, वा, ला, लवा आदि अक्षर या अक्षरसमूह के दीर्घ स्वर पर चला जाता है। जैसे—

ओढ़ना—ओ़ढ़ाना, ओ़ढ़वाना
कोड़ना—कौड़ाना, कौड़वाना
खेलना—खॆलाना, खॆलवाना
लेटना—लॆटाना, लॆटवाना
खोजना—खौजाना, खौजवाना

घोखना—घौखाना, घौखवाना
घोटना —घौटाना, घौटवाना
छोड़ना—छौड़ाना, छौड़वाना
जोड़ना—जौड़ाना, जौड़वाना
बेचना —बॅचाना, बॅचवाना
घोना —धौलाना, धौलवाना
निचोड़ना—निचौड़वाना
परेखना—परॅखवाना
बटोरना—बटौरवाना
लपेटना—लपॅटवाना इत्यादि

२—क्रियाएँ जब संज्ञा के रूप में व्यवहृत होती हैं तब उनके पूर्ण ए और ओ का उच्चारण अपूर्ण हो जाता है और ए और ओ का स्वरबल शब्द के अंतिम स्वर पर चला जाता है। जैसे—

क्रिया	संज्ञा
ओढ़ना	औढ़ना
घोटना	घौटना
गोदना	गौदना
पोतना	पौतना
बेलना	बॅलना इत्यादि

ऊपर कहा जा चुका है कि ए और ओ का उच्चारण शब्द में ए-ओ-घटित-वर्ण के स्थान पर निर्भर करता है। इसके अनुसार नियमों पर विचार करने के पूर्व, ए-ओ-घटित-वर्ण के स्थान के अनुसार ए-ओ-घटित शब्दों के निम्न-लिखित चार विभाग किए जाते हैं—

(१) ऐसे शब्द जिनमें ए-ओ-घटित-वर्ण अंत में हों।

(२) ऐसे शब्द जिनमें ए-ओ-घटित-वर्ण उपांत्य अर्थात् अंत से दूसरे स्थान पर हों।

(३) ऐसे शब्द जिनमें ए-ओ-घटित-वर्ण अंत से तीसरे स्थान पर हों।

(४) ऐसे शब्द जिनमें ए-ओ-घटित-वर्ण अंत से चौथे स्थान पर या उसके पश्चात् हों।

ऊपर के विभागों को अलग अलग लेकर यहाँ उनके नियम लिखे जायँगे।

ए-ओ-घटित-वर्ण के स्थान के अनुसार नियम—

(१) ऐसे शब्द जिनमें ए-ओ-घटित-वर्ण अंत में हों—

१—जब शब्द के अंत में एकारयुक्त या ओकारयुक्त वर्ण हो तब उसके ए या ओ का उच्चारण सदा पूर्ण होता है। जैसे—अबे, आगे, उलटे, कैसे, गहगहे, जैसे, जो, दो, नीचे, परे, पीछे, भले, मुझे, यों, लो, सलोनो, सामने इत्यादि।

(२) ऐसे शब्द जिनमें ए-ओ-घटित-वर्ण उपांत्य अर्थात् अंत से दूसरे स्थान पर हों—

२—जब एकारयुक्त या ओकारयुक्त वर्ण शब्द में अंत से दूसरे स्थान पर हो और अंतिम वर्ण द्विरुक्त हो तब उस एकारयुक्त या ओकारयुक्त वर्ण के ए या ओ का उच्चारण अपूर्ण होता है। जैसे—ऍक्का, ऍक्की, चौट्टा इत्यादि।

२ (क)—अंतिम वर्ण द्विरुक्त नहीं होने से अंत से दूसरे एकारयुक्त या ओकारयुक्त वर्ण के ए या ओ का उच्चारण पूर्ण होता है। जैसे—अनोखा, ऐंड़ी, ओंठ, ककोड़ा, खेत, गोद, घोड़ा, चोर, छोर, जेठ, झोला, टोपी, ठेका, डेरा, ढेर, तंबोली, थोक, देना, धोखा, नेता, पेट, फोड़ा, बटेर, भेट, मेला, रसोई, लोटा, सहेली, होली इत्यादि।

नोट—अंतिम वर्ण द्विरुक्त न होकर केवल संयुक्त हों तब भी अंत से दूसरे एकारयुक्त या ओकारयुक्त वर्ण के ए या ओ का उच्चारण पूर्ण ही होता है।

जैसे—कोल्हू।

(३) तीसरे विभाग के, अर्थात् ऐसे शब्दों के जिनमें ए-ओ-घटित-वर्ण अंत से तीसरे स्थान पर हो, यहाँ दो उपविभाग किए जाते हैं—

(अ) ऐसे शब्द जो क्रिया हों, और

(इ) ऐसे शब्द जो क्रिया से भिन्न हों।

(३) (अ) क्रिया जिनमें ए-ओ-घटित-वर्ण अंत से तीसरे स्थान पर हो—

३—क्रिया में जब एकारयुक्त या ओकारयुक्त वर्ण अंत से तीसरे स्थान पर हो और अंत से दूसरा वर्ण दीर्घ हो तब उस एकारयुक्त या ओकारयुक्त वर्ण के ए या ओ का उच्चारण अपूर्ण होता है। जैसे—ओसाना, कौड़ाना, चोटाना, चोराना, डोलाना, फेंकाना ब्योंताना, मोटाना, लोभाना, सोहाना इत्यादि।

३ (क)—क्रिया में जब एकारयुक्त या ओकारयुक्त वर्ण अंत से तीसरे स्थान पर हो और अंत से दूसरा वर्ण ह्रस्व हो तब उस एकारयुक्त या ओकारयुक्त वर्ण के ए या ओ का उच्चारण पूर्ण होता है। जैसे—उमेठना, ओटना, कोड़ना, खदेरना, खसोटना, खोजना, घेरना, घोलना, छेड़ना, जोतना, झेलना, टटोलना, ठेलना, ढकोसना, तोड़ना, थोपना, देखना, नोचना, परेखना, फोड़ना, बेचना, भकोसना, लपेटना, सिकोड़ना इत्यादि।

(३) (इ) क्रिया से भिन्न शब्द जिनमें ए-ओ-घटित-वर्ण अंत से तीसरे स्थान पर हों—

४—क्रिया से भिन्न शब्दों में जब एकारयुक्त या ओकारयुक्त वर्ण अंत से तीसरे स्थान पर हो और अंतिम दोनों अथवा कोई एक वर्ण दीर्घ हो तब उस एकारयुक्त या ओकारयुक्त वर्ण के ए या ओ का उच्चारण अपूर्ण होता है। जैसे—ऍकट्ठा, ओझैती, ओसारा, ओहार, कॅहुनी, कॅराव, कोठारी, कोड़ाई, कोढ़िया, कोयला, खॅलाड़ी,

खसारी, खौइचा, खोदाई, गोराई, गौतिया, गोसैंया, घोटाई, चोटहा, छोटका, जेठानी, जोड़वा, जौताई, जौहार, झोंकाई, टोटका, ठेंगना, डेवढ़ा, ढेकली, तेंदुआ, दोधारा, नेनुआ, पोखरा, बल्ले-ड़िया, बेसवा, बौआई, बोहनी, भेदिया, भोंकार, मेहरी, मोटाई, मोटापा, रसोइया, लेवाल, लोहारी, सेंवई, सेवार इत्यादि।

४ (क)—क्रिया से भिन्न शब्दों में जब एकारयुक्त या ओकार-युक्त वर्ण अंत से तीसरे स्थान पर हो और अंतिम दोनों वर्ण ह्रस्व हों तब उस एकारयुक्त या ओकारयुक्त वर्ण के ए वा ओ का उच्चारण पूर्ण होता है। जैसे—उमेढ़न, ओभ्कल, केवट, कोयल, गोबर, चोकर, जोगिन, ठोकर, डोमिन, तेवर, देहर, धोबिन, पलेथन, पोखर, फोकट, बटोरन, बेलन, मेंढक, रोकड़ लपेटन, सोलह, हेकड़ इत्यादि।

चौथे विभाग के, अर्थात् ऐसे शब्दों के जिनमें ए-ओ-घटित-वर्ण अंत से चौथे स्थान पर या उसके पश्चात् हो, यहाँ दो उपविभाग किए जाते हैं—

(अ) ऐसे शब्द जो द्वंद्व समासापन्न न हों, और

(इ) ऐसे शब्द जो द्वंद्व समासापन्न हों।

(४) (अ) द्वंद्व समासापन्न से भिन्न शब्द जिनमें ए-ओ-घटित-वर्ण अंत से चौथे स्थान पर या उसके परचात हों—

५—द्वंद्व समासापन्न से भिन्न शब्दों में जब एकारयुक्त या ओकार-युक्त वर्ण अंत से चौथे स्थान पर या उसके पश्चात् हो तब उसके ए या ओ का उच्चारण अपूर्ण होता है। जैसे—ऍकतीस, ऍकटंगा, ऍक-रंगा, ऍकलौवा, ऍतवार, ऍकौतना, ऒठँगना, ऒनवना, ऒलहना, कॅवड़ई, कॅसरिया, कोहबर, खॅलिहर, खॅलवाड़, गहुँअन, गोबराना, गोलियाना, घोड़सार, तॅलहन, सॅहराना, तोवलाना, दॅखावट, पोपलाना, बॅवरेवार, भोजपुरिया, रोकड़िया, सॅंदुरिया इत्यादि।

(४) (अ) द्वंद्व समासापन्न शब्द जिनमे ए-ओ-घटित-वर्ण अंत से चौथे स्थान पर या उसके परचात् हो —

५ (क)—द्वन्द्व समासापन्न शब्दों में जब एकारयुक्त या ओकारयुक्त वर्ण अंत से चौथे स्थान पर या उसके पश्चात् हो तब उसके ए या ओ का उच्चारण पूर्ण होता है। जैसे—देखभाल, लेनदेन, रेलपेल इत्यादि।

नोट—यह कहा जा चुका है कि ए और ओ को अपूर्ण कर देने की प्रवृत्ति बिहारी तथा पूर्वी हिंदी ही में प्रधान रूप से पाई जाती है। अतएव यह ध्यान में रखना चाहिए कि ऊपर के नियम उन्हीं शब्दों पर लागू होते हैं जो कि बिहारी तथा पूर्वी हिंदी बोलनेवाले प्रदेशों में बोले जाते हैं। जो शब्द इन प्रदेशों में व्यवहृत नहीं होते उन पर इन नियमों का लागू होना आवश्यक नहीं है। नीचे कुछ ऐसे शब्द दिए जाते हैं जिनमें उपर्युक्त नियम लागू नहीं होते—

(१) केहरि, भेड़िया इत्यादि—ऊपर के नियम सं० ४ के अनुसार इन शब्दों के एकार का अपूर्ण उच्चारण होना चाहिए। पर बिहारी और पूर्वी हिंदी बोलनेवाले प्रदेशों में ये शब्द व्यवहृत नहीं होते, इनके स्थान पर इनके समानार्थक अन्य शब्द बोले जाते हैं। अतएव इन पर वह नियम लागू नहीं होता।

(२) खोटापन, चटोरापन, छोटापन, हेठापन इत्यादि—ऊपर के नियम सं० ५ के अनुसार इन शब्दों के एकार और ओकार का उच्चारण अपूर्ण होना चाहिए। पर ये शब्द बिहारी और पूर्वी हिंदी बोलनेवाले प्रदेशों में इन रूपों में नहीं बोले जाते हैं। इनके स्थान पर क्रमशः खोटाई, चटोरपन, छोटाई, हेठी आदि शब्द बोले जाते हैं जिनका उच्चारण नियमानुकूल है।

———

(६) विविध विषय

[१] हिंदी साहित्य की खोज

हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों के शोध की रिपोर्ट सन् १९१७-१८-१९ की प्रकाशित हुई है। काशी नागरीप्रचारिणी सभा की ओर से यह कार्य रायबहादुर श्री हीरालालजी के निरीक्षण में संयुक्तप्रांत की सरकार की सहायता से होता है। खोज भी विशेषकर इसी प्रांत में हो रही है। इस रिपोर्ट में अलीगढ़, मथुरा, बुलंदशहर, इलाहाबाद, प्रतापगढ़, मेरठ, रायबरेली, फर्रुखाबाद, फैजाबाद, लखनऊ जिलों तथा भरतपुर और इंदौर राज्यों में की गई खोज का वर्णन है।

४४८ ग्रंथों का पता लगा जिनमें ३३६ के लेखकों के नाम लिखे हैं। १२ वीं, १४ वीं, १५ वीं शताब्दियों के एक एक लेखक, १६ वीं के १९, १७ वीं के २७, १८ वीं के ६६ और १९ वीं के ६६ लेखक मिले हैं।

इन ४४८ ग्रंथों में से २४९ धार्मिक हैं, ३८ दार्शनिक हैं, १२ पिंगल काव्य के हैं, २१ अलंकार नायिकाभेद के और १४ शृंगार के हैं। बाकी और और विषयों के हैं।

इस शोध से भूपति कवि का समय सन् १६८७ ई० के लगभग निश्चित हुआ है। इस शोध में १२५ नए कवियों का पता लगा है जिनमें बहरियाबाद के अहमदुल्ला (ग्रंथ-दक्षिणविलास), बुंदेलखंड के अखयराम (ग्रंथ-हस्तामलकवेदांत), अवधूतसिंह, बेनीप्रसाद (ग्रंथ-रस-शृंगार-समुद्र), बिहारीदास, वृंदावनदास, चंद इत्यादि मुख्य हैं।

[२] प्राचीन शोध

(क) भारतीय पुरातत्त्व विभाग की १९२७-२८ की रिपोर्ट प्रकाशित हुई है। उसमें भगवान् बुद्ध की निर्वाण-प्राप्ति का स्थान कसिया जिला गोरखपुर निश्चित हुआ है। पूर्व काल में यहाँ निर्वाण-स्तूप और विहार थे। सन् १८७६ ई० में यहाँ भगवान् बुद्ध की लेटी हुई लंबी मूर्ति एक मंदिर में स्थापित मिली थी। उस मंदिर और विहार का जीर्णोद्धार हाल में लगभग १८५००) खर्च करके हुआ है। यह रकम कुछ उदार बर्मा-निवासियों ने दी थी। निर्वाण-स्तूप के गर्भ में कुछ वस्तुओं के साथ एक ताम्र-लेख भी रखा गया है। उसमें लिखा है कि—

* * *This Stupa, which is situated near the village Kasia (Pali—Kuśinārā) marks the spot, where the Buddha attained Parinirvāṇa about the year 483 B. C. * * * * The inscriptions which have helped to prove the identity of these remains with the Parinirvāṇa Chaityā, include a copper plate epigraph containing, besides certain Buddhist Sutrās, the words "Parinirvāna Chaitya Tāmra-Paṭṭs Iti." The copper plate was found in this very Stupa. * * * * * The original Stupa, in which a portion of the corporeal remains of the Master was deposited immediately after the demise presumably lies buried under this very structure. * * * *

"कसिया × × × (पाली में कुशीनार) ग्राम के निकट यह स्तूप उस स्थान पर स्थित है जहाँ भगवान् बुद्ध लगभग ४८३ वर्ष सन्

ईसवी के पूर्व परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। × × × × × × जिन लेखों से इन भग्नावशेषों का परिनिर्वाण-चैत्य होना सिद्ध होता है उनमें एक ताम्रलेख भी है जिसमें कुछ बौद्ध सूत्रों के सिवाय ये शब्द भी लिखे हैं, "परिनिर्वाणचैत्ये ताम्रपट्ट इति" × × × × यह ताम्रलेख भी इसी स्तूप में मिला था। जिस मूल स्तूप में भगवान् के निधनोत्तर ही उनके शरीर-धातु का अंश रखा गया था वह इसी इमारत के नीचे गड़ा हुआ जान पड़ता है। × ×

श्री विंसेंट स्मिथ साहब का मत है कि कुशीनगर नैपाल राज्य में भवेश्वर घाट के निकट छोटी राप्ती और गंडक नदियों के संगम के पास होना चाहिए। कसिया विहार उस बड़े विहार की एक शाखा था। दोनों को परिनिर्वाण विहार कहते हैं क्योंकि उनका संबंध भगवान् बुद्ध के निर्वाण से है। उनका कहना है कि कसिया कुशीनगर नहीं हो सकता क्योंकि चीनी यात्रियों के समय में लोग कुशीनगर को भूल गए थे और कसिया में, सारे गुप्तकाल में और उसके पीछे भी, बराबर विहारादि बनते रहे। निदान "परिनिर्वाण-चैत्ये ताम्रपट्ट इति" शब्दों से केवल यही सिद्ध होता है कि यह एक परिनिर्वाण चैत्य है। पर यदि दूसरे परिनिर्वाण चैत्य का अस्तित्व सिद्ध है तो ताम्रपट्ट से निर्वाण-स्थान का निर्णय नहीं होता।

(ख) पुरातत्त्वज्ञों का मत है कि (शिव) लिंग-पूजा और योनि-पूजा दोनों की उत्पत्ति आर्य-काल से पूर्व की है।

(ग) झकर-जो-दरो (झकर का टीला) उत्तरीय सिंध में लार-कना ग्राम से प्रायः ६ मील पश्चिम को है। बेरो-चंदिवो (N.W.R) उसका स्टेशन है। यहाँ पर खुदाई का काम जारी है। उसमें ऊपर के १२ फुट की खुदाई में गुप्तकालीन (ई० स० की पाँचवीं शताब्दी) चिह्न मिले हैं। २० और २३ फुट गहरी खुदाई पर इतिहास-काल के पूर्व के चिह्न मिले हैं जैसे ताँबे और पत्थर के

औजार, चित्राक्षरयुक्त मुहर (pictographic seals), गुरिए, मिट्टी के चित्रित बर्तन इत्यादि। यहाँ मोहेंजोदारो और हरप्पा के समान ईंटें और दूसरे पदार्थ भी मिले हैं। यहाँ लोहे का निशान भी नहीं मिला।

(घ) पहाड़पुर एक स्थान बंगाल में है। यहाँ पर खुदाई का काम १९२५-२६ से जारी है। ऐसा सिद्ध होता है कि नवीं शताब्दी में और उसके पीछे इस स्थान का नाम धर्मपाल का बौद्ध विहार था। यहाँ एक ताम्रपत्र लेख मिला है जो छठी शताब्दी का है। धर्मपाल के विहार बनने के पूर्व यहाँ ६—७ वीं शताब्दी में दूसरा विहार था जिसके अंश से धर्मपाल का विहार बना। यहाँ एक ताम्रलेख ४७८-७९ सन् ई० का मिला है जिससे प्रकट होता है कि एक ब्राह्म और उसकी स्त्री ने कुछ भूमिदान इस काल के इस निर्ग्रंथि मठा धीश को दिया था।

(ङ) नागार्जुनकोंडा (नागार्जुन का पहाड़) गंटूर जिले पलनाड़ तालुके में कृष्णा के दक्षिण किनारे पर नरसरू पैठ रे स्टेशन से ६५ मील की दूरी पर है। कहा जाता है कि नागा र्जुन यहाँ के श्रीपर्वत के विहार में मरे थे। उस समय यहाँ ए बहुत बड़ा महाचैत्य और विहार था। यहाँ खुदाई का काम जार है और कई शिलालेख मिले हैं। सन् ई० की द्वितीय और तृतीय शताब्दियों में यहाँ इक्ष्वाकुवंश की एक शाखा राज्य करती थी। यह माना जाता है कि यहाँ का महाचैत्य सन् ई० से २०० वर्ष पूर्व बना होगा, क्योंकि इसी जिले का भट्टीप्रोलु का महाचैत्य उस समय बना था। ऐसी दंतकथा है कि शंकराचार्य ने यहाँ के बौद्धों को निकालकर उनके स्थानों का नाश किया। इतना तो निश्चय है कि यहाँ की सारी उपजाऊ भूमि शंकराचार्य को पूर्व-काल में प्रदान की गई थी। यहाँ के एक लेख से प्रकट होता है

कि सीलोन से बौद्ध भिक्षुओं ने यहाँ आकर ये महाचैत्य और विहार विजयपुरी के निकट बनाए थे। इनका माहात्म्य इतना बढ़ गया था कि लोग सीलोन से यहाँ यात्रार्थ आते थे।

(च) कर्नूल जिले का श्री शैल इस श्री पर्वत से भिन्न है। इक्ष्वाकुवंशज रानियों की इस संस्था पर बड़ी कृपा थी और वे बहुत दान किया करती थीं।

(छ) मद्रास हाते के तंजौर जिले में नेगापट्टम एक स्थान है। यह किसी काल में डच लोगों के अधिकार में था। यहाँ सरकारी दफ्तरों के सामने एक बड़ा मैदान पड़ा है जहाँ १९ वीं शताब्दी के मध्य में एक जेस्यूट कालेज था। यहाँ बहुत पूर्व काल में एक बौद्ध विहार था। कालेज बनने के पूर्व यहाँ एक मंदिर था जिसको सन् १८६७ में कालेज के लिये तोड़ डाला गया था। तब इसे चीनी या जैन मंदिर कहते थे। सन् १८४६ ई० में इसका चित्र बना लिया गया था। यह मंदिर तीन खंड का था। उपर्युक्त मैदान में हाल में बौद्ध धर्म संबंधी पीतल की २९४ मूर्तियाँ गड़ी मिली हैं। कुछ ताम्रलेखों से सिद्ध है कि यहाँ १००५ सन् ई० में चूड़ामणि-पद्म विहार था जिसे राजराज चोला प्रथम ने एक ग्राम तब प्रदान किया था। इस विहार को कटाह और श्री विषय (= सुमात्रा) के शैलेंद्र राजकुल के राजपुत्र चूड़ामणिवर्मन् ने बनाया था।

तीन खंड के मंदिर मद्रास इलाके में नहीं होते पर सुमात्रा में वे मध्यकाल में बहुत प्रचलित थे। ऐसा माना जाता है कि जो मूर्तियाँ मिली हैं वे इस विहार की थीं और यह विहार उस मैदान में स्थित था और इसे ही आरंभ में सुमात्रा के राजपुत्र ने बनाया था।

काशी } पंड्या बैजनाथ

[३] औरंगजेब का "हितोपदेश"

उपर्युक्त शीर्षक से एक लेख नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग ११, अंक २ में निकला है जिसके लेखक पं० लज्जाराम मेहता को 'रामरेख' तीर्थ का निश्चित पता नहीं है। वे 'रामरेख' के संबंध से पुस्तकलेखक श्यामदास के संबंध में भी जानने के इच्छुक हैं। इस संबंध में अपनी ज्ञातव्य बातें नीचे अंकित करता हूँ। संभव है, इससे कुछ काम निकल जाय।

पुनीत गंगा के तट पर बक्सर में 'चरित्रवन', है और वहीं गंगा के एक घाट का नाम 'रामरेखा' घाट है, जहाँ मकर-संक्रांति के दिन स्नान का बड़ा भारी मेला लगता है। स्थान के संबंध में लिखी लेखक की सारी बातें ठीक हैं।

अब रहा, लेखक के विषय में। मेरा विश्वास है कि 'हितोपदेश' के लेखक का असली नाम 'हरिसेवक' था। इस नाम के एक महात्मा भृगु आश्रम (बलिया) के समीप वजीरापुर में जन्म ले चुके हैं, जो योगशास्त्र के गूढ़ नियमों के जानकार और पूर्ण योगी थे। गंगा के दाहिने तट पर बक्सर और बायें पर, उससे कुछ ही पूर्व हटकर, बलिया स्थित है; अत: उक्त महात्मा का बक्सर निवास करना अथवा ग्रंथ की समाप्ति के अवसर पर उपस्थित रहना असंभव नहीं प्रतीत होता।

लेखक का नाम श्यामदास के बदले हरिसेवक मानने का कारण यह है कि उक्त पुस्तक में ही एक स्थान पर लिखा है—गुरु हरिसेवक संत जे, अंत करें विचार। बलिया के हरिसेवक जी ने भी अपने गुरु की प्रशंसा में लिखा है—

सोई हरिसेवक को मानस पुरावहीं।

जब कुंभज का पुलस्त्य, मनसिज का मनमथ, शत्रुघ्न का अरिहा

इत्यादि हो सकता है तब 'हरिसेवक' का श्यामदास हो जाना कुछ कठिन नहीं है। हाँ, महात्मा हरिसेवक के सब ग्रंथ उपलब्ध नहीं हैं जिससे निश्चयात्मक रूप से मैं कह सकूँ कि 'हितोपदेश' उक्त महात्मा की ही कीर्ति है।

बाबा नवनिधिदास इनके गुरु थे जिनका जन्म संवत् १८१० 'बलिया के कवि और लेखक' में अनुमानित है। मैंने भी बलिया के कवि और लेखक के लिये बहुत कुछ खोज की थी, पर खेद है कि मेरे सारे संग्रह का सारांश इस समय मिश्रबंधुओं के पास है और उस लिखित प्रमाण के अभाव में मैं निश्चित रूप से नहीं कह सकता कि महात्मा हरिसेवक का लेखनकाल भी संवत् १८४४ ही है। हाँ, अब विशेष छानबीन करने का विचार है। देखें, कहाँ तक सफलता होती है।

बलिया } **शिवपूजनसिंह, विशारद**

---

७) बुंदेलखंड का संक्षिप्त इतिहास

[लेखक—श्री गोरेलाल तिवाड़ी, बिलासपुर]

(पत्रिका भाग १२, पृष्ठ ४८१ से आगे)

सुजानराय की मृत्यु से चंपतराय को बहुत दुःख हुआ और उनकी कार्यसिद्धि में एक बड़ी बाधा हुई। इस युद्ध में चंपतराय के पुत्रों ने भी उन्हें बहुत सहायता दी। चंपतराय की फौज कम हो जाने के कारण वे सहरा के जागीरदार इंद्रमणि के पास गए। इंद्रमणि चंपतराय के पुराने मित्र थे। पर ये घर पर न थे। तो भी साहिब-सिंह धंधेरे ने चंपतराय का स्वागत किया। इसके पश्चात् राजा चंपतराय ने छत्रसाल को थानसिंह के पास भेजा। ये छत्रसाल के बह-नोई थे, परंतु ऐसे अवसर पर छत्रसाल का स्वागत करना तो दूर रहा बहिन ने बात तक न पूछी। थानसिंह घर में नहीं थे। वे रात्रि को आए।

१०—सहरा में भी रहना चंपतराय ने उचित न समझा। इससे वे बीमारी की हालत में ही अपनी रानी "महारानी लालकुँवरि" को साथ ले मोरनगाँव जाने के लिये निकल पड़े। सहरा के साहिबसिंह धंधेरे ने अपने दो सौ सिपाही महाराज के साथ रक्षा के लिये कर दिये थे। सहरा से ये कोई ७ कोस आए थे कि सिपाहियों ने इनके साथ विश्वासघात कर मारना चाहा। किंतु महारानी लालकुँवरि और महाराज चंपतराय ने सिपाहियों के हाथ से मरने की अपेक्षा आत्महत्या करना ही उचित समझा। दोनों ने अपने अपने पेट में कटारें मार लीं। यह घटना वि० सं० १७२१ में हुई।

अध्याय १७

महाराज छत्रसाल (बाल्यकाल)

१—चंपतराय औरंगजेब से लड़ते हुए स्वर्ग को सिधारे। उनके जीवन का अधिकांश लड़ाई ही में बीता। वे मुगलों की अधीनता स्वीकार करने को कभी तैयार न हुए परंतु सदा ही स्वतंत्रता के लिये युद्ध करते रहे। चंपतराय धनवान् मनुष्य न थे। जागीर महेवा से उन्हें बहुत ही थोड़ी आमदनी होती थी। रुद्रप्रताप के पुत्र उदयजीत को जो जागीर मिली थी उसकी कुल आमदनी वार्षिक १२०००) रुपए थी। यह महेवा नामक स्थान आजकल छतरपुर राज्य के भीतर है। यह छोटी जागीर उदयाजीत के पुत्र औ पौत्रों में बँटती आई और जो चंपतराय को मिली उसकी वार्षि आय केवल ३५०) थी, परंतु चंपतराय ने अपना नाम अपन वीरता ही के द्वारा किया। उनमें सेना इकट्ठी करने और उसक सदुपयोग करने की विशेष योग्यता थी। सबसे पहले, ज चंपतराय तरुण भी न हुए थे, उन्होंने कुछ थोड़े से सिपाहं एकत्र करके मुगल राज्य के एक गाँव को लूट लिया था। मुगलों के गाँव के मुगल शासकों को लूटकर उन्होंने कुछ धन एकत्र किया था। इसी धन से इन्होंने और सेना तैयार की थी। मुगलों से युद्ध के समय इनके अतुल रण-कौशल का परिचय सारे जगत को मिल गया था।

२—जिस समय शाहजहाँ के सरदार बाकीखाँ से युद्ध हुआ और बाकीखाँ हारकर वापिस गया उसी समय बाकीखाँ ने अचानक चंपतराय के ज्येष्ठ पुत्र सारबाहन को घेरकर मार डाला था। उस समय सारबाहन की उमर केवल १४ वर्ष की थी परंतु इस

महाराज छत्रसाल

समर में अपनी वीरता के कारण वे बुंदेलों को बहुत प्रिय हो गए थे। इनके मरने से इनकी माता को असह्य दुःख हुआ। कहा जाता है कि इनकी माता ने स्वप्न में देखा कि सारवाहन उनसे कह रहे हैं कि मैं फिर से गर्भ में आऊँगा। इसी के कुछ दिनों के पश्चात् सारवाहन की माता ने गर्भ धारण किया और सबका यही विश्वास हो गया कि जेठे राजकुमार सारवाहन फिर से रानी के गर्भ में आए हैं।

३—रानी गर्भावस्था में भी अपने पति चंपतराय के साथ रहा करती थीं। वे दिन ऐसे ही थे कि बुंदेले वीरों की रमणियाँ अपने घरों में न रहकर रणभूमि में जाकर अपने पति के साथ रहती थीं और समय समय पर सहायता करती थीं। रानी की गर्भावस्था का समय लड़ाइयों के मैदानों में ही कटा। इसी समय में चंपतराय अपनी रानी के साथ ककरकचनए की पहाड़ी में मुगलों की सेना के द्वारा घेर लिए गए। ऐसी दशा मे भी चंपतराय अपनी स्त्री को ले अचानक मुगलों की सेना मे बचकर भाग गए। इस कृत्य से मुगल सेना को बड़ा आश्चर्य हुआ[1]।

४—इसके छः महीने बाद मोर पहाड़ी के जंगल मे, जो कटेरा नामक ग्राम से तीन कोस है, रानी ने बुंदेलखंड के भावी विख्यात वीर छत्रसाल को जन्म दिया। महाराज छत्रसाल का जन्म ज्येष्ठ शुक्ल तीज शुक्रवार संवत् १७०५ विक्रमीय विलंबि नामक संवत्सर में हुआ था। यद्यपि उनकी जन्मपत्री में उच्च

(१) कोई कोई ऐसा भी कहते हैं कि चंपतराय अपनी स्त्री को पीठ पर बाँधकर पहाड़ी पर से कूदे और भागकर ऐसे स्थान में चले गए जहाँ मुगलसेना उन्हें न पा सकी। एक ऐसी भी कथा है कि चंपतराय अपने घोड़े पर रानी को बैठाकर एक पहाड़ी से दूसरी पर पहुँचे और फिर घोड़ा ऐसा भागा कि मुगलसेना उसे न पा सकी। ऐसा भी कहा जाता है कि किसी योगी ने उन्हें ऐसा वरदान दिया था कि इनमें अलौकिक शक्ति आ गई थी।

का कोई भी ग्रह नहीं है पर नवांश कुंडली के अनुसार उसमें ५ राजयोग हैं। जिस समय वीर बालक छत्रसाल का जन्म हुआ उस समय मुगल लोगों की चंपतराय से लड़ाई चल रही थी। छत्रसाल

जन्मांग कुंडली (२) नवांश कुंडली

६ ७ १० ८ के ६ गु ११ ५ मं १२ र. श २ ४ बु १ शु च १३

संवत् १७०६
जेठ सुदी ३
शुक्रवार
४८-१७ मृग-
शिरा नक्षत्र
७५-५

६ ४ श ७ बु ५ मं ३रा गु ८ २ चं.क ११ र १ ६ १० १२शु

रव्यादि सजवाः स्पष्टाः		नवमांश कुण्डली फलम्—
रवि १—५-४०-५६	५७—३४	धर्मापत्यपीद्यूनोन केन्द्रे लग्नपयुतौ चाट्योराजः।
चन्द्रमा २-६-२५-४	७४२—३५	ज्ञारार्के व्ययेषु घटेषु सर्वे राजाधिराजः॥
भौम ४-१३-५८-२१	१३—२६	द्यूनोनकेन्द्रकोणे सुलेशे भूपजो भूपान्यजो मंत्री।
बुध ०-१३-५६-३०	८६——८	निवसेतां व्यत्ययेन ताशुभौ धर्मकर्मणोः।
गुरु ५-१४-३-२५	३——४	एकत्रान्यतरो चापि यशश्चेद्योगकारकौ॥
शुक्र २-१६-५५-२२	५३—४८	यदि केन्द्रे त्रिकोणे वा निवसेतां तमौ ग्रहौ।
शनि २-०-१-२२	७——२७	नाथेनान्यतरेणापि सम्बन्धाद्योगकारकौ।
राहु १-१८-७-३६	३——११	विलग्ननाथस्थितराशिनाथस्य राशिनाथो यदि तुङ्गयुक्तः।
केतु ७-१८-७ ३६	३——११	निशाकरारकेन्द्रगतोऽथवा स्याद्योगो महाकालसुसौख्ययुक्त।
लग्न—७-५-३८-१२		

का जन्म भी उस जंगल में हुआ था जहाँ पर मुगल लोग चंपतराय को घेर लेने का प्रयत्न कर रहे थे। जन्म से ही बालक छत्रसाल को महलों की सेज सोने को न मिली किंतु प्रकृति देवी की गोद ही इन्हें जन्म से खेलने के लिये मिली। संसार मे आते ही वीर छत्रसाल को तोपों और बंदूकों का शब्द और धरो, मारो, पकड़ो का शोर सुनने को मिला। इस दशा में रहते ही छत्रसाल की अवस्था छः मास की हो गई।

५—एक समय, जब छत्रसाल की अवस्था केवल सात मास की थी, राजा चंपतराय उनकी रानी और कुछ सैनिक एक जंगल में अपना भोजन बनाकर खा रहे थे। अचानक मुगल सेना ने इन सबको घेर लिया और इनका भागकर निकल जाना भी कठिन हो गया। सब सैनिक भागे और चंपतराय भी अपनी रानी के साथ भाग गए, पर सात महीने के छत्रसाल को उठा लेने का किसी को ध्यान न रहा। चंपतराय और उनके सैनिकों के भाग जाने के पश्चात् मुगल सेना उस स्थान पर आ पहुँची और चंपतराय को वहाँ पर न देखकर चली गई। छत्रसाल उसी स्थान पर पड़े रहे और सौभाग्य से बच गए। इसके पश्चात् चंपतराय ने जब देखा कि बालक छत्रसाल उनके साथ नहीं हैं तो उन्होंने ढूँढ़ने के लिये अपने सिपाही भेजे और एक सिपाही छत्रसाल को उठा लाया। छत्रसाल को पाकर चंपतराय को असीम आनंद हुआ, परंतु उन्होंने छत्रसाल को ऐसी दशा में अपने पास न रखने का निश्चय कर लिया। इस घटना के दूसरे ही दिन रानी अपने पुत्र छत्रसाल को लेकर अपने नैहर चली गई। यहाँ पर छत्रसाल और उनकी माता चार वर्ष तक रहे।

६—जिस समय छत्रसाल की अवस्था चार वर्ष की हुई उस समय बालक छत्रसाल और उनकी माता नैहर से चंपतराय के पास

वापिस आई। छत्रसाल की वीरता के चिह्न इसी समय से दीखने लगे। लड़ाइयों में से निकली हुई रुधिर की नदियाँ और युद्ध में मरे हुए वीरों के शरीर देखकर इनके मन में डर न उत्पन्न होता था, वरन् वे इन वीभत्स दृश्यों को बड़े चाव से देखा करते थे। बंदूकों और तोपों का शब्द सुनकर वे डरकर भागने का प्रयत्न न करते थे, परंतु जिस ओर से शब्द आता था उसी ओर देखने को दौड़ते थे। छोटी अवस्था से ही छत्रसाल ने तलवार लेकर खेलना आरंभ कर दिया था।

७—छत्रसाल की तेजपूर्ण मुद्रा और बाललीला देखकर सब लोगों को यही मालूम होने लगा था कि यह बालक कोई विक्रमी पुरुष होकर चत्रिय-कुल का उद्धार करेगा। इनका नाम "छत्रसाल" इनके गुणों पर से ही पड़ा था। बाल्यकाल से ही छत्रसाल का सरदारों के साथ का व्यवहार भी उत्तम था। जो सरदार चंपत-राय से मिलने आते थे उनसे छत्रसाल, बालक होने पर भी, रीति के अनुसार वंदना करते थे। इनका यह व्यावहारिक चातुर्य देखकर पिता को हर्ष और विस्मय होता था।

८—छत्रसाल को बाल्यकाल में चित्र बनाने का भी शौक था। परंतु वे हाथी, घोड़े, सवार, बंदूक और तोप आदि के ही चित्र बनाते थे। धर्म में भक्ति भी छत्रसाल को बाल्यकाल से ही थी। वे सदा मंदिरों में नियमपूर्वक जाते थे और प्रार्थना करते थे। रामायण और महाभारत की कथाओं के सुनने की उन्हें विशेष इच्छा रहती थी। इन कथाओं के योद्धाओं की वीरता का हाल सुनकर उनके हृदय में बहुत उत्साह उत्पन्न होता था।

९—छत्रसाल का विद्याध्ययन सात वर्ष की आयु से आरंभ हुआ। इस समय वे अपने मामा के यहाँ रहते थे। विद्याध्ययन के साथ इन्होंने सैनिक शिक्षा भी प्राप्त की। सेना-संबंधी कार्य और

विद्याध्ययन दोनों में ही इन्होंने अपनी तीव्र बुद्धि का परिचय दिया। महाराज छत्रसाल एक चतुर सेनापति ही नहीं वरन् विद्वान् और कवि भी थे। दस वर्ष की आयु के पहले से ही वीर छत्रसाल ने बरछी चलाना, तलवार और अन्य शस्त्र से अचूक निशाने मारना और दौड़ते हुए घोड़े पर से शिकार खेलना सीख लिया। जंगल के हिंस्र जंतुओं से युद्ध करते समय उन पर कैसे वार करना चाहिए, यह वे शीघ्र सीख गए। पुस्तकों के पढ़ने में इनका मन बहुत लगता था। ओड़छे के कवि केशवदास-कृत रामचंद्रिका को ये बड़े चाव से पढ़ते थे और उस पुस्तक को सदा अपने पास रखते थे[1]।

१०—छत्रसाल सहरा नामक ग्राम में थे, जब इन्हें इनके माता-पिता की मृत्यु का हाल मालूम हुआ। यह हाल उनको उस सैनिक ने सुनाया था जो चंपतराय और उनकी स्त्री के साथ उस स्थान में था जहाँ चंपतराय घेरे गए थे। वह किसी प्रकार अपने प्राण बचाकर खबर देने को भाग आया था। जब चंपतराय की मृत्यु हुई तब छत्रसाल के पास न सेना थी और न धन ही था। पिता-माता की मृत्यु सुनने पर शोक होना स्वाभाविक ही है। परंतु ये उत्साही और धैर्यवान् युवक थे। इन्होंने अपने रहने इत्यादि का स्थान और सेना संग्रह करने का प्रबंध तुरंत ही सोच लिया। उन्हें चंपतराय का वृद्ध सैनिक मिला। इसने छत्रसाल का आदर किया। फिर छत्रसाल महेवा में अपने काका सुजानराय के पास गए। इनके काका ने छत्रसाल को पहले न देखा था। वे छत्रसाल के बड़े भाइयों को जानते थे। इससे छत्रसाल ने अपना पूरा परिचय सुजानराय को दिया, जिसे सुनकर सुजानराय ने बड़े प्रेम से भेंट की। इसके पश्चात् कुछ दिनों तक छत्रसाल अपने काका

---

(१) कविवर केशवदास का जन्म लगभग विक्रम-संवत् १६१२ में हुआ। ओड़छे के राजदरबार में इनका बड़ा मान था।

के पास रहे, परंतु शीघ्र ही ऐसा प्रसंग आया कि जिसमें छत्रसाल को अपना बाहुबल और रणचातुर्य दिखलाने की आवश्यकता पड़ी।

११—छत्रसाल को काका के यहाँ रहना अच्छा न लगा। वे मुसलमानों से युद्ध करने के लिये उत्सुक हो रहे थे। उन्होंने अपने विचार अपने काका से भी प्रकट किए, परंतु छत्रसाल की बातों को सुनकर काका डरे और उन्होंने छत्रसाल से शांत रहने और मुगलों से बिगाड़ न करने के लिये कहा। छत्रसाल को अपने काका की बात अच्छी न लगी और वे अपने भाई अंगदराय[1] के पास चले आए। उस समय अंगदराय देवगढ़ में थे। इन लड़ाइयों के समय में छत्रसाल के सब भाई अलग अलग थे। महेवा की जागीर इतने बड़े कुटुंब के लिये काफी न होती थी। इससे सब अपना निर्वाह जहाँ पर बन पड़ा करते थे। अंगदराय देवगढ़ के किले में नौकर थे। जब छत्रसाल अंगदराय से मिले तब अंगदराय इनको देखकर बड़े प्रसन्न हुए। छत्रसाल ने यवनों से स्वतंत्रता प्राप्त करने का अपना उद्देश्य अंगदराय से कह सुनाया। अंगदराय ने छत्रसाल के उद्देश्यों को सुनकर बहुत प्रसन्नता प्रकट की, परंतु छत्रसाल से कहा कि बहुत सावधानी से चलना अच्छा होगा। इस प्रकार दोनों भाई एकमत होकर मुसलमानों से युद्ध करने और देश जीत लेने का प्रयत्न करने लगे।

१२—बुंदेलखंड का कुछ भाग चंपतराय ने अपने अधिकार में कर लिया था, परंतु पीछे से मुसलमानों ने बुंदेलों की ही सहायता से उसे छीन लिया था। अब सेना के बिना छत्रसाल के उद्देश्य की सिद्धि दुस्साध्य थी और धन के बिना सेना इकट्ठी करना कठिन कार्य्य था। इससे दोनों भाइयों ने अपनी माता का जेवर

---

(१) छत्रसाल के बड़े भाइयों का नाम सारबाहन, रतनशाह, अंगदराय और गोपालराय था। इनमें से सारबाहन का देहांत बाकीखाँ के युद्ध में हो गया था।

बेचकर सेना एकत्र करने का निश्चय किया। अब इन दोनों ने देवलवारा नामक ग्राम में, जहाँ इनकी माता के गहने थे, जाकर उन्हें ले लिया और बेच दिया, फिर उस धन के द्वारा एक छोटी सी सेना तैयार की।

१३—वि० सं० १७२७ में देवगढ़ (छिंदवाड़ा) में राजा कूरमकल्ल (कोकशाह) का राज्य था। इस राजा ने राजपूत सेना के सहारे देवगढ़ में मुगलों से युद्ध करने का निश्चय कर लिया। मुगल-राज्य की ओर से जयसिंह[1] कूरमकल्ल (कोकशाह) के हाथ से देवगढ़ का किला ले लेने के लिये जा रहा था। इस समय छत्रसाल और अंगदराय ने अपना पराक्रम दिखाने का अवसर जान राजा जयसिंह को सहायता देने का वचन दिया। इसने इन दोनों का बड़ा आदर किया और उनसे सहायता लेना स्वीकार किया। इसी समय दिल्ली दरबार से हुक्म आया कि जयसिंह अपना काम बहादुरखाँ के सुपुर्द कर दें। पीछे से बहादुर खाँ भी सेनापतित्व का भार लेने के लिये आ पहुँचा। बहादुर खाँ और राजा चंपतराय से मित्रता रही थी। इन दोनों में पागबदलौवल[2] भी हो चुकी थी। इसलिये बहादुर खाँ ने भी छत्रसाल और अंगदराय से अच्छा बर्ताव किया और उन्हें सहायता देने के लिये धन्यवाद दिया। छत्रसाल इस युद्ध में बहुत वीरता से लड़े। कूरमकल्ल (कोकशाह) की राजपूत सेना ने मुगल सेना को आगे न बढ़ने दिया, परंतु छत्रसाल ही कुछ वीर सिपाहियों को लेकर आगे बढ़े। छत्रसाल वैरी की सेना को काटते हुए आगे बढ़े और उन्होंने

(१) राजा जयसिंह (जसवंतसिंह प्रथम) वि० सं० १७२१ पौष कृष्ण १ को औरंगाबाद पहुँचे थे।

(२) जब दो मित्र आपस में गाढ़ी मित्रता करना चाहते थे तब वे अपनी पागें बदल लेते थे। वे फिर सदा एक दूसरे को सहायता देने को तैयार रहते थे।

शीघ्र ही देवगढ़ के क़िले की ढाल की रस्सी पकड़ ली। इससे मुगल सेना भी उत्साहित हुई और कूरमकल्ल (कोकशाह) की सेना पीछे हटी। अंत में देवगढ़ ले लिया गया, परंतु जिस समय छत्रसाल आगे बढ़े थे उसी समय एक राजपूत सरदार ने छत्रसाल के गले पर एक तलवार जोर से मारी, पर गले पर बिछुआ होने के कारण छत्रसाल की जान बच गई। तिस पर भी ऐसी गहरी चोट आई कि छत्रसाल वहीं रणभूमि में गिर पड़े और उनके विश्वासी घोड़े ने उनके शरीर की रक्षा की।

१४—मुसलमान लोग देवगढ़[1] लेकर खुशी मनाने लगे पर जिसके शौर्य से उन्हें विजय मिली थी उसकी उन्होंने कोई फिकर न की। अंत में छत्रसाल के साथी सैनिक छत्रसाल को उठा लाए और छत्रसाल का घाव कुछ दिनों में अच्छा हो गया। छत्रसाल को मुसलमानों का यह बर्ताव बहुत बुरा लगा। जब मुसलमानी सेना विजय प्राप्त करके दिल्ली पहुँची तो बहादुर खाँ को मनसबदारी मिली, परंतु छत्रसाल का कोई सम्मान न हुआ दिल्लीपति औरंगजेब हिंदुओं का कट्टर द्वेषी था और वह सदा हिंदुओं को नष्ट करने के प्रयत्न में ही रहता था। उसने हिंदुओं पर जजिया नामक कर लगा दिया था, काशी के ब्राह्मणों का वेदाभ्यास बंद करा दिया, त्योहारों पर हिंदुओं के विमानों का निकालना बंद कर दिया, काशी आदि कई स्थानों के मंदिर गिरवा दिए और उनके स्थानों पर मस्जिदें बनवा दीं। उसने मूर्तियों को पैरों के नीचे कुचलवाया। इन्हीं कारणों से हिंदू प्रजा इससे नाराज़ थी और जिस प्रकार मध्य भारत में हिंदू धर्म की रक्षा वीर छत्रसाल

(१) वीर छत्रसाल नामक ऐतिहासिक उपन्यास के लेखक ने दौलताबाद (देवगिरि) को देवगढ़ माना है। यह ठीक नहीं, क्योंकि मध्यप्रदेश के देवलगढ़ के गोंड़ (राजगोंड़) राजा पर चढ़ाई हुई थी।

ने की उसी प्रकार दक्षिण में वीर शिवाजी ने हिंदू धर्म द्वेषी मुसलमानों का साम्राज्य नष्ट करने में कोई कसर न की[1]।

---

(१) औरंगजेब के अत्याचार और शिवाजी की वीरता का वर्णन भूषण कवि ने इस प्रकार किया है—

देवल गिरावते फिरावते निसान अली,
ऐसे डूबे राव राने सबी गए लबकी।
गौरा गनपति आप औरन को देत ताप,
आपके मकान सब मारि गए दबकी॥
पीरा पयगबरा दिगबरा दिखाई देत,
सिद्ध की सिधाई गई रही बात रब की।
कासिहु ते कला जाती मथुरा मसीद होती,
सिवाजी न होतो तौ सुनति होति सबकी॥
साँच को न मानै देवी देवता न जानै अरु,
ऐसी उर आनै मैं कहत बात जब की।
और पातसाहन के हुती चाह हिंदुन की,
अकबर साहजहाँ कहै साखि तब की॥
बब्बर के तिब्बर हुमायूँ हद्द बाँधि गए,
दो मैं एक करी ना कुरान बेद ढब की।
कासिहु की कला जाती मथुरा मसीद होती,
सिवाजी न होतो तौ सुनति होती सब की॥
कुंभकर्न असुर औतारी अवरंगजेब,
कीन्ही कत्ल मथुरा दोहाई फेरी रब की।
खोदि डारे देवी देव सहर मुहल्ला बाँके,
लाखन तुरुक कीन्हे छूटि गई तब की॥
भूषन भनत भाग्यो कासीपति बिस्वनाथ,
और कौन गिनती मैं भूली गति भव की।
चारौ वर्न धर्म्म छोडि कलमा नेवाज पढि,
सिवाजी न होतो तौ सुनति होति सब की॥

(शिवाबावनी)

अध्याय १८

छत्रसाल और शिवाजी

१—औरंगजेब के अन्यायपूर्ण शासन से प्रजा असंतुष्ट हो गई और मुगल साम्राज्य के भिन्न भिन्न भागों में नए राज्य स्थापित होने लगे। दक्षिण में औरंगजेब के अत्याचारी साम्राज्य के नाश कर देने का बीड़ा मराठों ने उठाया। इस प्रांत में मुसलमानों ने अपना राज्य जमा लिया था, परंतु राजस्व इत्यादि वसूल करने का काम महाराष्ट्र सरदारों के हाथ में था और ये सरदार देशमुख कहलाते थे। इन देशमुखों को वेतन-स्वरूप जागीरें दी गई थीं जिनके द्वारा ये अपना निर्वाह करते थे। दक्षिण की बीजापुर नामक मुसलमानी रियासत में शाहजी भोंसले नामक एक जागीरदार थे। छत्रपति शिवाजी महाराज इन्हीं के पुत्र हैं।

२—शिवाजी का जन्म विक्रम-संवत् १६८४ में हुआ। शाह जी भोंसले जिस समय बीजापुर राज्य की ओर से करनाटक जीतने गए थे उस समय शिवाजी दादाजी कोनदेव के पास रहे। ये दादाजी शाहजी के मित्र थे और शाहजी की ओर से उनकी पूना की पैतृक जागीर की देख-रेख करते थे। शिवाजी ने बाल्यकाल में सैनिक शिक्षा इन्हीं से पाई। बाल्यकाल से ही इनका उद्देश्य यवन-सत्ता का अंत कर स्वतंत्र हिंदू राज्य की स्थापना करने का था। शिवाजी ने इसी उद्देश्य से सेना एकत्र करना आरंभ किया। महाराष्ट्र के मावली लोग शिवाजी को इस कार्य के लिये विशेष करके योग्य जान पड़े और शिवाजी की पहली सेना इन मावलियों की ही थी। ये लोग जंगल के रहनेवाले थे और वचन के बड़े पक्के और सत्यनिष्ठ थे। मावलियों की सहायता से शिवाजी ने बीजापुर राज्य

के किलों का लेना आरंभ कर दिया। इन किलों में अपना प्रधान किला शिवाजी ने राजगढ़ में बनाया। यह कार्य शिवाजी ने इतनी शीघ्रता से किया कि बीजापुर की सेना इनके कार्य में हस्तक्षेप करने न आ सका। इसके पश्चात् शिवाजी ने एक समय बीजापुर राज्य का खजाना मार्ग में लूट लिया। इसमें ३००००० पेगोडा अर्थात् १८ लाख रुपए थे।

३—बीजापुर राज्य में शिवाजी के पिता शाहजी का बहुत मान था, परंतु जब शिवाजी के इन कार्यों की खबर बीजापुर दरबार में पहुँची तब राजा ने शाहजी को इन सबका दोषी समझा। ये वि० सं० १७०६ में कैद कर लिए गए और बीजापुर के राजा ने शिवाजी को खबर दी कि यदि बीजापुर के सब किले बीजापुर राज्य को वापिस न किए जायँगे तो शाहजी मार डाले जायँगे। शिवाजी को इस समय सब काम छोड़कर शाहजी को बचाने का प्रयत्न करना पड़ा। इन्होंने उसकी युक्ति भी शीघ्र ही सोच ली। उस समय दिल्ली के बादशाह शाहजहाँ और बीजापुर राज्य मे अनबन हो गई थी। शिवाजी ने शाहजी के कैद करने का हाल शाहजहाँ को लिखा और उससे सहायता माँगी। शाहजहाँ ने सहायता देने का केवल वचन ही नहीं दिया बल्कि शिवाजी को पाँच हजारी मनसब भी दिया और बीजापुर के शासक को लिखा कि शाहजी को छोड़ दो। शाहजहाँ से युद्ध करने के लिये बीजापुर राज्य तैयार न था इसलिये बीजापुर दरबार ने शाहजी को वि० सं० १७१० में छोड़ दिया और शाहजी की जागीर, जो करनाटक में थी, वह भी शाहजी को दे दी।

४—शिवाजी अपने पिता को इस प्रकार मुक्त कराके थोड़े दिन शांत रहे। जब शिवाजी ने देखा कि शाहजी करनाटक में सुरक्षित हैं और बीजापुर एकाएक उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता तो

शिवाजी ने फिर अपना कार्य आरंभ कर दिया। इसलिये वि० सं० १७१६ में बीजापुर के मुसलमान शासक अलीआदिलशाह ने अपने अफजल खाँ नामक सरदार को, शिवाजी को हराकर उससे सब किले छीन लेने के लिये, भेजा। इस समय ये परतापगढ़ में रहते थे। शिवाजी ने अफजल खाँ की फौज का पहले सामना न किया और किसी बहाने उसे अलग बुलाकर ले गए और मल्लयुद्ध करके उसे मार डाला। फिर उसकी सेना को हराकर उन्होंने भगा दिया। इसके पश्चात् शिवाजी का आतंक सारे देश में फैल गया और बीजापुर के शासक ने शिवाजी से युद्ध करना ठीक न समझ उनसे संधि कर ली। इस संधि के अनुसार जो गढ़ शिवाजी ने ले लिए थे वे शिवाजी के पास रह गए[1]।

५—बीजापुर राज्य से संधि होने के पश्चात् शिवाजी के पास बहुत से गढ़ हो गए और उनके पास बहुत सी सेना हो गई। अब उन्होंने समझ लिया कि वे मुगलों से भी सामना कर सकते हैं। यह सोचकर उन्होंने मुगलों के राज्य पर आक्रमण करना और खजानों की संपत्ति लूटना आरंभ कर दिया।

---

(१) भूषण कवि ने शिवाजी और अफजल का युद्ध और सारे देश में शिवाजी के डर का ऐसा वर्णन किया है—

> अफजल खान को जिन्होंने मयदान मारा
> बीजापुर गोलकुंडा मारा जिन आज है।
> भूषन भनत फरासीस त्यों फिरंगी मारि
> हबसी तुरक डारे उलटि जहाज है॥
> देखत मैं ऐसे रुसतम खाँ को जिन खाक किया
> साल की सुरति आजु सुनी जो अवाज है।
> चौंकि चौंकि चकता कहत चहुँघा ते यारो
> लेत रहौ खबर कहाँ लो सिवराज है॥
>
> (शिवा बावनी)

६—वि० स० १७१९ मे शाइस्ताखाँ मुगलों की ओर से दक्षिणी प्रदेश का सूबेदार था। वह शिवाजी को हराने और शिवाजी के कार्य को बंद करने के उद्देश्य से बड़ी सेना लेकर पूने मे पहुँचा। जिस स्थान में वह ठहरा था वहीं, रात्रि के समय, शिवाजी भी कुछ सैनिकों को लेकर पहुँच गए और उन्होंने शाइस्ताखाँ को मार डाला। इसके पश्चात् शाइस्ताखाँ की फौज भगा दी गई। वि० सं० १७२० मे शिवाजी ने सूरत को लूटकर बहुत सा धन प्राप्त किया। इसके पश्चात् शिवाजी ने छत्रपति शिवाजी महाराज का विरुद धारण कर वि० सं० १७३१ में अपना राज्याभिषेक करवाया।

७—शिवाजी महाराज का यश सारे भारतवर्ष मे फैल रहा था और उसका वर्णन सुनने से छत्रसाल को बड़ी प्रसन्नता होती थी। शिवाजी महाराज की स्वातंत्र्यप्रियता का वर्णन सुनकर छत्रसाल के हृदय में शिवाजी महाराज के प्रति प्रेम उत्पन्न होता था। देवगढ़ के युद्ध के पश्चात् मुसलमानों का व्यवहार देखकर छत्रसाल मुसलमानों से बहुत असंतुष्ट हो गए थे। इसलिये चतुर और स्वदेशाभिमानी छत्रसाल ने धर्मभक्त श्री शिवाजी महाराज की सहायता से मुगलों का साम्राज्य नष्ट करने का विचार किया।

८—छत्रसाल के उद्देश्य में उनके भाई अंगदराय ने भी सहायता दी। ये दोनों पहले दैलवारे गए और वहाँ छत्रसाल ने अपना व्याह परी के प्रमारों की बेटी देवकुँवरि के साथ किया। देवकुँवरि के साथ छत्रसाल की सगाई चपतराय के समय में ही हो गई थी। इसी कारण व्याह कर लेना इस समय बहुत आवश्यक समझा गया। व्याह करने के पश्चात् छत्रसाल अपनी रानी देवकुँवरि और अपने भाई अंगदराय के साथ पूना को रवाना हुए।

९—उन दिनों में दक्षिण का मार्ग बहुत दुर्घट था। मार्ग में भी उत्तर की श्रोर से आनेवाले सैनिकों की जाँच के लिये शिवाजी महाराज की श्रोर से चौकियाँ थीं। छत्रसाल इन सबको पार कर और अपना पूरा परिचय किसी को न देते हुए शिवाजी महाराज के राज्य में पहुँचे। शिवाजी महाराज से भेंट भीमा[1] नदी के किनारे जंगल के समीप हुई। हिंदूधर्म की रक्षा श्रौर हिंदू स्वातंत्र्य का बीड़ा उठानेवाले ये दोनों वीर एक दूसरे को देखकर बड़े प्रसन्न हुए। इसके पहले दोनों ने एक दूसरे की कीर्ति सुनी थी श्रौर दोनों के हृदयों में परस्पर मिलने की उत्कंठा हो रही थी। इस दिन उनकी वह इच्छा पूर्ण हुई श्रौर मिलने में उन दोनों को जो आनंद हुआ उसे कहना असंभव है। इन दोनों में शिवाजी महाराज वय में बहुत अधिक थे श्रौर उन्होंने अपना राज्य भी जमा लिया था। वे छत्रसाल की वीरता श्रौर चातुर्य को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। छत्रसाल की स्वातंत्र्यप्रियता, अद्वितीय स्वधर्माभिमान श्रौर अप्रतिम साहस देखकर शिवाजी महाराज की छाती गद्गद हो गई। उन्होंने छत्रसाल का प्रेम के साथ आलिंगन किया श्रौ बहुमूल्य उपदेश दिया। उस उपदेशामृत का सार छत्रप्रकाश नामक ग्रंथ में है। वह उपदेश इस प्रकार था—"हे पराक्रमी राजा, तुम अपने शत्रुओं का नाश करो श्रौर विजय प्राप्त करो। अपने देश पर अधिकार करके फिर उस पर अपना राज्य जमाओ बादशाही सेना की परवाह मत करो। कपटी तुर्क लोगों का विश्वास न कर मुगलों का नाश करो। जब तुम्हारे ऊपर मुगल लोग आक्रमण करेंगे तब मैं तुम्हारी सहायता करूँगा श्रौर तुम्हारे स्वतंत्र होने का प्रण रखूँगा। जब जब मुगलों ने मुझसे युद्ध किया

(१) कुँवर कन्हैया जू के कथनानुसार छत्रसाल ने राजदरबार में शिवाजी से भेंट की, परंतु यह ठीक नहीं जान पड़ता।

देवी भवानी ने मेरी सहायता की। देवी भवानी की कृपा से मैं मुगलों की विशाल शक्ति से बिलकुल नहीं डरता। कपटी मुसलमानों के कई सरदार मेरे सहायक बनकर मेरे पास आए और उन्होंने धोखे से मेरे ऊपर कई वार करने चाहे परंतु मैंने, उन पर अपनी तलवार चलाकर, उनका नाश किया। इसलिये तुम जल्दी अपने देश को वापिस जाओ। सेना तैयार करो और मुसलमानों को बुंदेलखंड से मार भगाओ, सदा अपने हाथ में नंगी तलवार लिए हुए युद्ध के लिये तत्पर रहो। ईश्वर अवश्य ही तुम्हें विजय देगा। गो-ब्राह्मणों का पालन करना, वेदों की रक्षा करना और समरभूमि में शौर्य दिखलाना ही क्षत्रियों का धर्म है। इसमें यदि मृत्यु हुई तो स्वर्ग मिलता है और यदि विजय हुई तो राज्य और अमर कीर्ति मिलती है। इसलिये तुम अपने देश में जाकर विजय प्राप्त करो।"

१०—शिवाजी महाराज का यह उपदेशामृत पान करके छत्रसाल का हृदय उत्साह और हर्ष से भर गया। इसके पश्चात् शिवाजी महाराज ने अपनी तलवार छत्रसाल को भेंट दी और आशीर्वाद देकर विदा किया। छत्रसाल ने बुंदेलखंड में आकर सेना एकत्र करके मुसलमानों को बुंदेलखंड से निकालकर स्वतंत्र हिंदू राज्य स्थापित करने का निश्चय कर लिया।

अध्याय १९

बुंदेलों का मेल

१—इस समय ओड़छे का राज्य राजा जसवंतसिंह के हाथ में था। राजा जसवंतसिंह ओड़छे के पहले राजा पहाड़सिंह के

पौत्र थे। इन्होंने मुगलों के अधिकार मे रहना स्वीकार कर लिया था और ओड़छे के राज्य ने छत्रसाल के पिता चंपतराय के विरुद्ध मुसलमानों को सहायता भी दी थी जैसा कि ऊपर कह आए हैं। बुंदेलखंड के अन्य स्थानों की देखरेख के लिये शुभकरण नामक बुंदेला सरदार था। इस शुभकरण ने चंपतराय के साथ युद्ध भी किया था। ऐसी स्थिति में छत्रसाल ने पहले इन लोगों से मिलकर और इन्हे समझाकर अपनी ओर कर लेने का विचार किया। छत्रसाल ने शुभकरण से मिलने का उद्देश्य बतलाया। इस समय छत्रसाल मुगलों के वैरी न थे क्योंकि छत्रसाल ने मुगलों को देवगढ़ के युद्ध में सहायता दी थी। इसी कारण मुगलों के नौकर शुभकरण ने छत्रसाल से मिलने में कोई आपत्ति न की और जब छत्रसाल शुभकरण के पास पहुँचे तब शुभकरण ने उनका स्वागत किया। शुभकरण नाते मे छत्रसाल के काका लगते थे। इसी कारण शुभकरण ने चाहा कि छत्रसाल भी औरंगजेब के नौकर हो जायँ और शुभकरण ने औरंगजेब के दरबार मे नौकरी स्वीकार करने के लिये उन्हें सलाह दी। परंतु छत्रसाल तो इसके बिलकुल ही विरुद्ध थे। उन्होंने शुभकरण से मुगलों की अधीनता छोड़कर बुंदेलों को स्वतंत्र करने के कार्य मे सहायता माँगी। देवगढ़ की विजय के पश्चात् मुगलो ने इनसे जो व्यवहार किया था उसका वर्णन करके छत्रसाल ने शुभकरण को समझाया कि मुसलमान लोग हिंदू लोगों की भलाई कभी न करेंगे; परंतु शुभकरण को छत्रसाल की बात अच्छी न लगी और उन्होंने छत्रसाल को राजविद्रोही समझ तुरंत ही अपने घर से विदा कर दिया[1]।

२—छत्रसाल को शुभकरण की बातों पर बड़ा दुःख हुआ परंतु

(१) छत्रप्रकाश में लिखा है कि छत्रसाल शुभकरण के यहाँ एक मास तक रहे थे।

उन्होंने अपना कार्य जारी रखा। छत्रसाल इसके पश्चात् औरंगाबाद गए जहाँ पर छत्रसाल के चचेरे भाई बलदिवान रहते थे। बलदिवान ने छत्रसाल का हृदय से स्वागत किया और तत्कालीन राजनैतिक परिस्थिति पर दोनों भाइयों की बहुत देर तक बातें हुईं। वहाँ पर छत्रसाल ने अपना विचार बुंदेलखंड में स्वतंत्र बुंदेलराज्य स्थापित कर मुसलमानों को मार भगाने का बताया। बलदिवान का हृदय मुसलमानों के अत्याचार से प्रथम ही खिन्न हो रहा था। उन्होंने छत्रसाल की सहायता करने का वचन दिया और छत्रसाल के वीर उद्देश्य की बहुत बड़ाई की। बलदिवान ने छत्रसाल से यह भी कहा कि जब तुम जहाँ मुझे बुलाओगे वहाँ पर मैं तुम से मिलकर जो सहायता बन सकेगी करूँगा[1]।

३—छत्रसाल ने फिर विक्रम संवत् १७२८ में मोर पहाड़ी पर सेना एकत्र करना आरंभ किया[2]। छत्रसाल के इन सब कामों की खबर औरंगजेब को पहुँची। उसने बुंदेलों को दबाने के लिये ग्वालियर के सूबेदार फिदाईखाँ को हुक्म दिया। उस समय ओड़छे की रियासत ग्वालियर के सूबेदार के अधिकार में थी। ग्वालियर के सूबेदार फिदाईखाँ को जो हुक्म औरंगजेब ने दिया उसमें यह भी लिखा था कि मुसलमान लोग बुंदेलखंड के लोगों को जबरदस्ती मुसलमान बनावें, जो न बनें उन्हें जान से मारें, मंदिरों को

---

(१) बलदिवान और छत्रसाल ने मुसलमानों से युद्ध करने के प्रश्न पर सगुनौती उठाई थी और उसमें भी यही निकला कि मुसलमानों से युद्ध करना चाहिए।

(२) छत्रसाल का जन्म इसी मोर पहाड़ी के निकट के जंगल में हुआ था। महाराज छत्रसाल ने अपनी दिग्विजय इसी वर्ष आरंभ की। इस विषय में समकालीन कवि लाल का निम्नलिखित दोहा है—

"संवत सत्रह सै लिखे आगरे बीस।
लागत बरस बाईसई उमड़ चल्यो अवनीस॥"

तोड़ें और मूर्तियों को फोड़ें। औरंगजेब की फौज जब कोई देश जीतने जाती थी तब उसे यही हुक्म दिया जाता था और जो देश औरंगजेब के राज्य में थे वहाँ भी हिंदुओं की अच्छी दशा न थी।

४—ग्वालियर के सूबेदार फिदाईखाँ ने बादशाह औरंगजेब का यह हुक्म पाकर ओड़छे के राजा सुजानसिंह को एक पत्र लिखा। उस पत्र में फिदाईखाँ के पास से ओड़छे के राजा को फौज का प्रबंध करने और मंदिर और मूर्तियाँ तोड़ने में सहायता देने का हुक्म था। राजा मुसलमानों के अधीन थे ही। यह पत्र पाते ही वे सोच में डूब गए। मुसलमानों के अधिकार में वे अवश्य थे परंतु उन्होंने हिंदू धर्म न खोया था। उन्हें बादशाह का हुक्म मानना धर्म के प्रतिकूल मालूम हुआ परंतु हुक्म न मानने से उनके राज्य का भी निकल जाना निश्चित था। इस समय ओड़छा राज्य के पुराने वैरी चंपतराय के पुत्र छत्रसाल का समाचार ओड़छे के राजा सुजानसिंह को मिला। छत्रसाल अपनी सेना लिए मोर पहाड़ी के जंगल में ठहरे थे। दिन प्रति दिन मोर पहाड़ी में छत्रसाल के सैनिकों का जमाव अधिक होता जाता था। राजा सुजानसिंह के मंत्रियों ने छत्रसाल से सहायता लेने की सलाह दी। यद्यपि छत्रसाल ओड़छे के वैरी चंपतराय के पुत्र थे तथापि प्रत्येक बुंदेला इस बात को जानता था कि धर्म की रक्षा और यवनों से युद्ध के लिये छत्रसाल सदा ही तत्पर रहेंगे। ओड़छे के राजा ने छत्रसाल को बुलाने का निश्चय कर लिया और रतिराम नामक एक सभासद, छत्रसाल के पास, ओड़छे का पत्र लेकर पहुँचा। पत्र पाते ही छत्रसाल अपना आपसी वैर भूल गए और उन्होंने ओड़छे की सहायता ऐसे धर्म-संकट पर करने का निश्चय कर लिया। पत्र पाने के दूसरे ही दिन छत्रसाल, अंगदराय और बलदिवान ओड़छे के लिये चले। ओड़छा पहुँचने पर सुजानसिंह की ओर से छत्रसाल का यथोचित

सम्मान हुआ। सुजानसिंह और छत्रसाल की बहुत देर तक सलाह होती रही। अंत में छत्रसाल और राजा सुजानसिंह दोनों ओड़छे के राम राजाजी के मंदिर में गए और यहाँ पर दोनों ने अपना पुराना आपसी वैर भूलकर सदा के लिये एक दूसरे को सहायता देने का वचन दिया। यवनों के दुराचार से बचने का दोनों ने एक उपाय यही सोचा कि बुंदेलखंड को स्वतंत्र कर लें। छत्रसाल ने इस कार्य के करने का वादा किया और ओड़छे के राजा सुजानसिंह ने हर प्रकार छत्रसाल को सहायता देने का वचन दिया। इसके पश्चात् छत्रसाल और सेना एकत्र करने और बुंदेलखंड के वीरों को सहायक बनाने के उद्देश्य से ओड़छे से लौट गए।

५—छत्रसाल उनके पिता के संगी और उनके पुराने मित्रों ने बड़ी सहायता दी। जिन लोगों ने उन्हें विशेष सहायता दी उनमें से प्रधान ये हैं—गोविंदराय जैतपुरवाले, कुँवर नारायणदास, सुंदरमन प्रमार, राममन दौआ, मेघराज पड़िहार, धुरमांगद बख्शी कायस्थ, किशोरीलाल, लच्छे रावत, मानशाह, हरवंश, भानु भाट, बंवल कहार और फत्ते वैश्य। इन सबने सेना तैयार करने में विशेष सहायता दी परंतु इस समय छत्रसाल की सेना बहुत न थी।

६—छत्रसाल के भाई रतनशाह बिजौरी में रहते थे। छत्रसाल ने उनसे भी सहायता लेने का निश्चय किया। इसलिये छत्रसाल उनके पास गए। रतनशाह ने छत्रसाल का स्वागत किया। फिर छत्रसाल ने अपने आने का अभिप्राय रतनशाह से कहा। रतनशाह ने छत्रसाल से बहुत वाद-विवाद किया। अंत में छत्रसाल को अपने कार्य में रतनशाह से अधिक सहायता मिलने की आशा न हुई[1]। छत्रसाल रतनशाह के पास अठारह दिन रहे।

---

(१) रतनशाह ने पहले छत्रसाल को बहुत निरुत्साहित किया, परंतु छत्रसाल अपने प्रण से न डिगे और ईश्वर में अपना विश्वास बताने के लिये उन्होंने अनन्य कवि का निम्नलिखित कवित्त कहा—

७—रतनशाह के पास से लौटकर राजा छत्रसाल औड़ेरा नामक ग्राम में आए। यहाँ पर राजा छत्रसाल को सब साथियों ने मिलकर अपना मुखिया बनाया और बलदिवान को उनका मंत्री बनाया। युद्ध में और लूट में जो माल मिले उसमें छत्रसाल का हिस्सा $\frac{५५}{१००}$ और बलदिवान का हिस्सा $\frac{४५}{१००}$ नियत हो गया। सब वीर बुंदेलों ने यहाँ पर स्वाधीनता प्राप्त करने का प्रण किया और अपने प्रण के नियम इस प्रकार निश्चित किए—(१) क्षत्रियों का धर्म पालना, (२) देश और जाति की रक्षा का प्रयत्न करते रहना, (३) धर्म के विरुद्ध आचरण करनेवाले, और प्रजा को कष्ट देनेवाले यवनों का नाश करना और (४) उन राजाओं या सूबेदारों को यथोचित दंड देना जो विजातीय यवनों से मेल करके हिंदुओं पर अत्याचार करें।

८—इस प्रकार निश्चय करके और युद्ध की तैयारी करके छत्रसाल ने अपनी दिग्विजय आरंभ कर दी। जहाँ जहाँ छत्रसाल ने विजय की उसका वर्णन छत्र-प्रकाश नामक ग्रंथ में किया गया है। उस समय छत्रसाल के पास केवल ३४७ पैदल सिपाही और ३० सवार थे। इस थोड़ी सी सेना को लेकर छत्रसाल पहले धंधेरखंड की ओर चले। यहाँ पर कुँवरसेन धंधेरा राज्य करता था और वह मुसलमानों के अधीन था। कुँवरसेन ने छत्रसाल का सामना किया परंतु छत्रसाल के सिपाहियों ने उसे हरा दिया। कुँवरसेन फिर सकरहटी के किले में जा छिपा पर छत्रसाल ने उसका वहाँ भी पीछा किया और उसे कैद कर लिया। तब उसने

जेहि अमित सरितान सागरान नीर सोखो सोई सरितान सागरान नीर भरिहै।
जेहि तरुवरन को पत्रन विहीन कियो सोई तरुवरन माँझ फेरि पत्र करिहै॥
जेहि राजा बलि को ऊँच आसन से पाताल भेजो सोई राजा बलि को फेरि इंद्र करिहै।
धरे रहो धीरज वीर अक्षर अनन्य भने जेहि उपजाई पीर सोई पीर हरिहै॥

वीर छत्रसाल की अधीनता स्वीकार की और अपने भाई हिरदेशाह की लड़की दानकुँवरि का ब्याह छत्रसाल के साथ कर दिया। इतना ही नहीं, वरन् केसरीसिंह नाम का अपना एक सरदार छत्रसाल की सहायता के लिये दिया और २५ पैदल सिपाही भी छत्रसाल को दिए।

९—इसका समाचार मुगल बादशाह को मिला। उस समय छत्रसाल से लड़ने के लिये कोई बड़ी सेना नहीं आई परंतु इन लोगों को डाकू समझ एक थानेदार इन्हें पकड़ने आया। सिरौंज मुगल बादशाह के बड़े नगरों में से था और यहाँ पर एक थानेदार भी रहता था। इस थानेदार का नाम मुहम्मद हाशिमखाँ था। यह अपने तीन सौ सिपाही लेकर छत्रसाल को पकड़ने के लिये आया। छत्रसाल ने इन तीन सौ आदमियों को शीघ्र ही मारकर भगा दिया। सिरौंज के समीप ही तिवरा नाम का ग्राम था। यह ग्राम भी उसी थानेदार के अधीन था। उस गाँव को भी छत्रसाल ने लूट लिया। इन लूटों से उन्हें खूब धन मिला जो उदारता से सिपाहियों में बाँटा गया। इससे छत्रसाल के अनुयायी उनसे बहुत प्रसन्न हुए और प्रतिदिन छत्रसाल के सैनिकों की संख्या बढ़ने लगी। स्वतंत्रता प्राप्त करने के पवित्र कार्य में सहायता देने के लिये दूर दूर से बुंदेले लोग आकर छत्रसाल की सेना में भरती होने लगे। बुंदेलखंड में क्या सारे भारतवर्ष में छत्रसाल की वीरता प्रसिद्ध हो गई[1]।

---

(१) छत्रसाल का डर किस प्रकार हो गया था, उसका वर्णन भूषण ने इस प्रकार किया है—

चाक चक चमू के अचाक चक चहूँ ओर,
घाक सी फिरति धाक चंपति के लाल की।
भूषन भनत पातसाही मारि जेर कीन्हीं,
काहू उमराव ना करेरी करवाल की॥

१०—धामौनी का जागीरदार मुगलों के अधीन था और इसने चंपतराय पर आक्रमण करते समय मुगलों को सहायता दी थी। छत्रसाल ने अपने पिता के शत्रु को नीचा दिखाने के लिये अपनी सेना लेकर धामौनी पर हमला किया। धामौनी का जागीरदार भी तैयार होकर बैठा था। उसने छत्रसाल से आठ दिन तक युद्ध किया पर अंत में वह हार गया। उसने छत्रसाल की अधीनता स्वीकार कर बहुत सा धन दिया और हमेशा के लिये छत्रसाल को अपनी जागीर की आमदनी का चौथा भाग अर्थात् चौथ देना स्वीकार किया।

११—धामौनी के पश्चात् छत्रसाल ने मैहर पर आक्रमण करने का विचार किया। उस समय मैहर का जागीरदार एक बालक था और उसकी माँ उस बालक की तरफ से देख-रेख करती थी। मैहर की सेना का मालिक माधवसिंह गूजर था। छत्रसाल ने मैहर पर चढ़ाई की और बारह दिन के युद्ध के पश्चात् मैहर का किला ले लिया गया और माधवसिंह बंदी कर लिया गया। तब जागीरदार ने ३०००) सालाना वार्षिक कर देने की प्रतिज्ञा की और माधवसिंह छोड़ दिया गया।

१२—मुसलमानी राज्य के इस विभाग में अशांति होने से जागीरदार लोग भी सेना रखते थे और उन्हें मुगलों की ओर से इस विषय में आज्ञा थी। छत्रसाल के सैनिक इतनी शीघ्रता से देश के इस छोर से उस छोर को चले जाते थे कि मुगल सेना को उन्हें आकर हराना कठिन होता था।

सुनि सुनि रीति बिरदैत के बड़प्पन की,
थप्पन उथप्पन की बानि छत्रसाल की।
जंग जीतिलेवा ते वै ह्वैकै दामदेवा भूप,
सेवा लागे करन महेवा-नहिपाल की॥

१३—बाँसा के जागीरदार के पास भी एक बड़ी सेना थी और वह जागीरदार अपने बल का बहुत घमंड करता था। उसे छत्रसाल की विजय देखकर बहुत बुरा लगता था। छत्रसाल ने बाँसा के जागीरदार के पास, जिसका नाम केशवराय दुरंगी था, यह संदेश भेजा कि या तो अधीनता स्वीकार करो अथवा युद्ध करो। बाँसा के जागीरदार केशवराय ने अधीनता स्वीकार करना ठीक न समझा और छत्रसाल को परस्पर युद्ध में बल की परीक्षा करने के लिये ललकारा। छत्रसाल के मंत्रियों ने छत्रसाल को बिना सेना के युद्ध करने की सलाह न दी, क्योंकि छत्रसाल की सारी सेना की विजय छत्रसाल के ऊपर ही अवलंबित थी और मंत्रियों ने यह निश्चय किया कि छत्रसाल के प्रधान मंत्री बलदिवान ही अकेले केशवराय से लड़ें। बलदिवान भी बड़े बलवान् पुरुष थे और वे भाला बरछी चलाने में भी निपुण थे। परंतु छत्रसाल ने केशवराय से लड़ना स्वीकार न करना भीरुता समझा और उन्होंने स्वयं केशवराय से युद्ध करने का निश्चय कर लिया। इस समय केशवराय और छत्रसाल दोनों अपने अपने घोड़ों पर सवार होकर अपने बल की परीक्षा करने आए। दोनों को अपने बल पर विश्वास था। केशवराय ने छत्रसाल से पहले वार करने के लिये कहा। परंतु छत्रसाल ने उत्तर दिया कि केशवराय ही अतिथि का सत्कार अपनी बरछी से पहले करें। केशवराय ने पहले बरछी चलाई जो छत्रसाल की छाती में लगी पर छत्रसाल ने उसे निकाल अपनी बरछी केशवराय के हृदय में मारी और जब केशवराय तलवार लेकर मारने को आने लगा तब छत्रसाल ने बरछी मारकर केशवराय को घोड़े पर से गिरा दिया। उस बरछी की चोट बहुत गहरी होने से केशवराय मर गया। इस प्रकार दोनों का धर्म-युद्ध समाप्त हुआ। सारी सेना अलग खड़ी चुपचाप देखती रही। केशवराय के मरने

के पश्चात् उसके पुत्र विक्रमसिंह को छत्रसाल ने आश्वासन दिया और उसे अपनी सैन्य का सेनापति बनाया। विक्रमसिंह ने भी छत्रसाल के अधीन होना स्वीकार कर लिया[1]।

१४—मुगलों के सेनापति हमेशा छत्रसाल को हराने के प्रयत्न में रहते थे। वे कभी कभी छत्रसाल की बड़ी सेना को देखकर भाग जाते और कभी उन्हें पा ही न सकते थे। एक समय एक जंगल में अचानक बहादुरखाँ नामक सेनापति ने छत्रसाल को आ घेरा। यह सेनापति ग्वालियर के सूबेदार के अधीन था,। जिस समय बहादुरखाँ ने छत्रसाल को घेरा उस समय छत्रसाल के पास न तो कोई बड़ी सेना थी और न अधिक हथियार ही थे। इस कारण छत्रसाल उससे युद्ध करना ठीक न समझ हिकमत से एक घाटी के समीप से निकल गए और बहादुरखाँ को लौटकर चला जाना पड़ा।

१५—जब छत्रसाल अपने डेरे पर आए तब उन्होंने तुरंत ही ग्वालियर के सूबेदार के प्रांत पर धावा किया। पहले छत्रसाल ने पवाँया नामक ग्राम लूटा और फिर आकर धूमघाट नामक स्थान पर डेरा किया। ग्वालियर का सूबेदार मुनीवर खाँ यह हाल सुनते ही एक बड़ी सेना लेकर वहाँ पहुँचा और वहाँ पर छत्रसाल से और ग्वालियर सूबे की सेना से खूब युद्ध हुआ। मुसलमान सेना को हारकर पीछे हटना पड़ा और छत्रसाल ने उसका पीछा किया। मुसलमानी सेना फिर अपने बचाव के लिये ग्वालियर के किले में घुस गई। यह किला लेना बड़ा कठिन कार्य समझ छत्रसाल ग्वालियर लूटकर लगभग सवा करोड़ रुपए और बहुत से रत्न लेकर वापिस आए।

---

(१) छत्रप्रकाश में लिखा है कि छत्रसाल ने बांसा को लूट भी लिया।

१६—इस समय सिरौंज का थानेदार मुहम्मद हाशिम भी फौज लेकर ग्वालियर की सहायता को पहुँचा। ग्वालियर से भी कुछ फौज और आई और दूसरी ओर से मुहम्मद हाशिम की फौज पहुँची। तीसरी ओर से आनंदराय चौधरी नामक एक व्यक्ति भी सेना लेकर मुसलमानों की सहायता को पहुँचा। इस समय छत्रसाल का डेरा कटिया नामक जंगल में था। तीनों सेनाओं ने तीन तरफ से छत्रसाल पर आक्रमण किया परंतु वीर बुंदेले जरा भी न डरे और उन्होंने अपने रणकौशल के सहारे सारी सेना छिन्न-भिन्न कर दी। वहाँ से विजय-पताका उड़ाते हुए बुंदेले लोग हनूटेक आए और यहाँ वीर छत्रसाल की तीसरी शादी मोहार के धंधेरे हरिसिंह की बेटी उदेतकुँवरि से हुई।

१७—हनूटेक से छत्रसाल मऊ के पास आए और यहाँ उन्होंने एक दूसरा गाँव बसाया। यह गाँव भी महेवा कहलाता है। परंतु यह स्थान सुरक्षित न था, इस कारण रनिवास के लिये पन्ना ही ठीक समझा गया। परंतु सेना अधिकतर मऊ में रही।

१८—छत्रसाल की वीरता और उनकी विजय का हाल सुनके प्रत्येक बुंदेले के हृदय में प्रसन्नता होती थी। इस कारण वे सब लोग छत्रसाल को सहायता देने के लिये सदा तैयार रहते थे। जो मुसलमानों के भय के मारे छत्रसाल के दल में सम्मिलित न होते थे वे भी अब छत्रसाल की शक्ति पर विश्वास कर छत्रसाल की सहायता के लिये तत्पर हो गए। इस प्रकार बुंदेले लोग अब सब मिलकर मुसलमानों से युद्ध करने के लिये तत्पर हुए।

अध्याय २०

मुसलमानों से युद्ध

१—जब ग्वालियर का सूबेदार मुनौवरखाँ छत्रसाल से हार

गया तब उसने इसकी खबर औरंगजेब बादशाह को दी। औरंगजेब को यह बात सुनकर बहुत अचंभा हुआ और उसने छत्रसाल को दबाने के लिये बड़ी तैयारियाँ की। इस समय औरंगजेब की बादशाहत को तीनों ओर से आफतें थीं। दक्षिण में शिवाजी महाराज के मारे बादशाहत की रक्षा करना कठिन था। मध्यभारत में छत्रसाल अपना राज्य जमा रहे थे। बूँदी के राजा छत्रसाल ने भी औरंगजेब को बहुत तंग किया था। पर वि० सं० १७१५ में राजा छत्रसाल हाड़ा की मृत्यु होने के पश्चात् उनके पुत्र भी औरंगजेब को भरपूर तंग कर रहे थे[1]। छत्रसाल का पराभव करने के लिये बादशाह औरंगजेब ने दिल्ली दरबार के बाईस वजीरों और आठ सरदारों को सेना तैयार करने का हुक्म दिया। इस सेना का अधिनायक रणदूलहखाँ नाम का एक सेनापति हुआ।

२—छत्रसाल के पास भी एक बड़ी सेना तैयार हो गई थी। इनके पास के भी ७२ सरदार अपनी अपनी सेना लेकर जमा हो गए थे। इन सरदारों में मुख्य ये थे—रतनसाह, अमरदीवान,

---

(१) बूँदी के राजा छत्रसाल रावरतन के नाती थे। रावरतन को शाहजहाँ ने राजा बनाया था और रावरतन के मरने पर छत्रसाल बूँदी के राजा हुए थे। जब औरंगजेब बादशाह होना चाहता था तब बूँदी के छत्रसाल औरंगजेब से लड़े थे। औरंगजेब के बादशाह होने पर भी छत्रसाल बूँदीवाले औरंगजेब से लड़ते रहे। औरंगजेब को बूँदी के छत्रसाल और बुंदेले छत्रसाल दोनों से ही बड़ा डर रहता था। भूषण कवि ने इसी का वर्णन निम्नलिखित दोहों में किया है।

"इक हाड़ा बूँदी धनी मरद महेवा वाल।
सालत नौरँगजेब को ये दोनों छतसाल॥
वै देखौ छत्ता पता वै देखौ छतसाल।
वै दिल्ली की ढाल वै दिल्ली ढाहनवाल॥"

(छत्रसाल-दशक)

सबलसिंह, केशवराय पड़िहार, धारूशाह प्रमार, दीवान दीपचंद बुंदेला, पृथ्वीराज, माधवसिंह, उदयभानु, अमीरसिंह, प्रतापसिंह, राव इंद्रमन, उग्रसेन कछवाहा, जगतसिंह, सकतसिंह, जामशाह, वखतसिंह धंधेरे, देवदीवान, भरतशाह, अजीतराय, जसवंतसिंह (बलदिवान के पुत्र), राजसिंह, जयसिंह, यादवराय, करणसिंह, गाजीशाह, गुमानसिंह दौआ। इन सब की सेना मिलकर एक बड़ी सेना तैयार हो गई थी। ये लोग अब पहाड़ियों में न रहकर शहरों और महलों में रहते थे तथा मुसलमानों की विशाल सेना का सामना करने के लिये अच्छी तरह से तैयार थे।

३—रणदूलहखाँ अपनी बड़ी सेना लेकर दक्षिण-बुंदेलखंड में युद्ध करने को पहुँचा। इसके पास ३०००० सवार और पैदल सिपाहियों की सेना और कई तोपें भी थीं। इसके सिवाय ओड़छा, सिरौंज, कौंच, धामौनी और चंदेरी के भी बुंदेले अपने भाइयों के विरुद्ध मुसलमानों को सहायता देने के लिये तैयार थे।

४—छत्रसाल को मुसलमानों की सेना के आक्रमण का हाल मालूम हो गया। ये सेना के पहुँचने के पहले छत्रमऊ से चलकर गढ़ाकोटा पहुँचे। उस समय गढ़ाकोटा में थोड़ी सी मुसलमानों की सेना थी। छत्रसाल ने वह किला ले लिया और उस किले में अपने मंत्री बलदिवान को कुछ सेना के साथ छोड़ आप खुद शेष सेना को लेकर युद्ध के लिये तैयार हो गए। मुसलमानों की सेना भी बहुत वेग से आ रही थी और जिस समय मुसलमानों की सेना शाहगढ़ के समीप थी उस समय छत्रसाल ने उस सेना पर एक समीपस्थ पहाड़ की घाटी पर से गोली बरसाना आरंभ कर दिया। मुसलमानी सेना का पंचम भाग यहाँ पर सत्यानाश हो गया। फिर मुसलमान सेना ने घाटी पर चढ़ने का प्रयत्न किया, परंतु उसी समय छत्रसाल अपनी सेना लेकर वहाँ से दूर चले गए। मुसल-

मानों की सेना फिर गढ़ाकोटा के पास तक बढ़ती आई और जब सेना गढ़ाकोटा के किले के पास पहुँची तब एक ओर से राजा छत्रसाल ने गोली चलाना शुरू कर दिया और दूसरी ओर से किले के भीतर से बलदिवान गोली चलाने लगे। बादशाह औरंगजेब की सेना इस दुहरी मार को न सह सकी और रणदूलहखाँ को सागर की ओर भागना पड़ा। इस युद्ध में रणदूलहखाँ के दस सरदार और सात सौ सिपाही मारे गए और दस तोपें छत्रसाल के हाथ लगीं[1]।

---

(१) लाल कवि ने अपने छत्र-प्रकाश में गढ़ाकोटा के युद्ध का निम्नलिखित वर्णन किया है—

सुनत साह मन में अनखानै। भेजे रनदूलह मरदानै॥
सँग बाइस उमराव पठाए। आठक लिखे मुहत्ती ठाए॥
बिदा भए मुजरा करि ज्यौंही। बजे निसान कूच करि तबहीं॥
दतिया अरु ओंड़छौ वगैनी। सजी सिरौंज कौंच धामौनी॥
उमड़ि ईंदुरखी चढ़ी चँदेरी। पिछि पाढौर युद्ध की टेरी॥
ये मुहत्ती उमर चढ़ि आए। मनसिबदार तीस ठिक ठाए॥
करयौ गढ़ाकोटा पर पेला। जहाँ सुनै छत्रसाल बुँदेला॥
उमड़्यौ रनदूलह सजे, तीस हजार तुरंग।
बजे नगारे जूझ के, गाजे मत्त मतंग॥
दिन के पहर तीन तब बाजे। लागी लाग मीर गल गाजे॥
त्यौं छत्रसाल चढ़ाई भौंहैं। अड़े बंब दै भए मिरौंहैं॥
उमड़ि रारि तुरकन त्यौं मांडी। छूटे तीर उड़ति ज्यौं टाँडी॥
त्यों रन उमड़ि बुँदेला हाँके। रंजक धुँवन धामनिधि ढांके॥
बाजन लगीं बँदूकैं सोई। गिरे तुरक जे लगे अगोई॥
गिरत हरौल गोल के साऊ। कढ़ि कतार तैं ठिले अगाऊ॥
लगे रान गोलिन की चोटैं। नट ज्यौं उछल लाग लै लौटैं॥
समर बिलोकि सुरन भय कीनौ। सूरज सरक अस्तगिरि लीनौ।
जोत जामगिन में जगी, लागे नखत दिखान।
रन असमान समान भौ, रन समान असमान॥
पहर रात भर भई लराई। गोलिन सर सैथिन झर लाई॥

५—रणदूलहखाँ को भगाते हुए छत्रसाल ललितपुर होते हुए नरवर आए। मार्ग में मुसलमानों के गाँव लूट लिए। नरवर पर पता लगा कि दक्षिण से मुगलों का बहुत सा खजाना आ रहा है। छत्रसाल ने तुरंत रास्ता रोककर बादशाही सब खजाना लूट लिया।

६—रणदूलहखाँ की हार का हाल सुनने पर बादशाह औरंगजेब को बहुत रंज हुआ। इसी समय बादशाही खजाने के लूटे जाने की खबर मिली। औरंगजेब ने अब तुर्क लोगों की सेना छत्रसाल से लड़ने के लिये भेजने का निश्चय किया। तुर्क लोग बड़े जवाँमर्द समझे जाते थे और मुगल बादशाह के पास इन लोगों की भी एक विशाल सेना थी। मुगल बादशाह औरंगजेब को पूरा विश्वास था कि यह सेना छत्रसाल को अच्छी तरह से हरा देगी। तुर्क सेना अपनी तैयारी करके रवाना हुई और उसने छत्रसाल को अचानक बसिया नामक स्थान पर आ घेरा। इस समय छत्रसाल के पास फौज ज्यादा न थी इससे उन्होंने तुर्की सेना का सामना न किया और थोड़ी लड़ाई करके वे पीछे हट गए। फिर छत्रसाल के एक विश्वस्त मनुष्य ने जाकर तुर्की सेना के तोपखाने में आग लगा दी। तुर्की सेना का तोपखाना जलने लगा। ऐसी दशा में छत्रसाल की सेना ने मुसलमानी सेना पर आक्रमण करके उसे छिन्न-भिन्न कर दिया। इस प्रकार इस युद्ध में भी बुंदेलों की विजय प्राप्त हुई।

७—मुगल बादशाह की तुर्की सेना को हराकर छत्रसाल जिगनी आए। यहाँ के जागीरदार सिंहजू पड़िहार ने इनका स्वागत किया और अपनी लड़की भगवान कुँवरि का ब्याह छत्रसाल के साथ कर दिया।

खाइ घाइ सब स्वान अघानै। लोह मानि तजि कोह परानै॥
डेरा कोस द्वैक पर पारे। हिम्मत रही हिये सब हारे॥
अड़े बुँदेला टरे न टारे। जीते जूझ बजाइ नगारे॥
रनदूलह रन से बिचलाए। हाँ ते हनूटक को धाए॥

८—जब बसिया के युद्ध का हाल मुगल बादशाह औरंगजेब को मालूम हुआ तब वह बहुत फिकर में पड़ गया। उसे अब यह डर लगने लगा कि कहीं छत्रसाल आकर दिल्ली भी न लूट ले। उसके सर्दारों में से तहवरखाँ नाम का एक सरदार बड़ा प्रवीण समझा जाता था। बुंदेलों को हराने के लिये अब यह सरदार नियुक्त किया गया। यह सरदार बड़ा युक्तिवान् और कूटनीति में चतुर था। इस कारण इसने छत्रसाल पर खुले मैदान हमला करना ठीक न समझा और छत्रसाल को अचानक किसी स्थान में घेर लेने की युक्ति सोची। इस समय छत्रसाल मऊ से अपनी बारात लेकर सँड़वा-बाजने में अपना ब्याह करने आए थे। जिस समय भाँवरें पड़ रहीं थीं उसी समय तहवरखाँ ने अपनी फौज लेकर छत्रसाल को घेर लिया। भाँवरें पड़ चुकने के बाद छत्रसाल ने अपने थोड़े से सैनिकों को युद्ध करने की आज्ञा दी और आप खुद किसी तरह से निकल भागे तथा दूसरी ओर से उसी फौज पर मार करना आरंभ कर दिया। जिस समय सारी फौज ने अपना ध्यान जिस ओर छत्रसाल थे उस ओर किया उसी समय छत्रसाल की बाकी फौज भी, जो दूसरी ओर से लड़ रही थी, छत्रसाल से आकर मिल गई और छत्रसाल अपनी सारी सेना लेकर मऊ में चले आए। तहवरखाँ भी छत्रसाल का इस प्रकार कुछ न कर सका और वह निरुपाय होकर दिल्ली को वापिस चला गया।

९—छत्रसाल सँड़वा-बाजने से ब्याह करके मऊ में आ गए। यहा पर चार मास बरसात में विश्राम करके विजयादशमी को अस्त्र-शस्त्र सजाकर और सेना लेकर इन्होंने कालिंजर के किले पर धावा किया। कालिंजर का किला मुसलमानों के अधिकार में था। मुसलमानों की एक बड़ी सेना इस किले में रहती थी। यहाँ के किलेदार का नाम करम इलाही था। छत्रसाल ने अपनी सेना

लेकर चारों ओर से किला घेर लिया। छत्रसाल की ओर से सेनापति बलदिवान थे। किले के भीतर खूब गोली और बारूद था। किले से लगातार गोलियाँ चलती रहीं जिससे बुंदेला सेना की बहुत हानि हुई। परंतु वीर बुंदेले सब सहते हुए लड़ाई करते रहे और चारों ओर से इस प्रकार घेरा डाले रहे कि किले के भीतर की फौज को खाने पीने का सामान पहुँच सके। किले के भीतर की फौज १८ दिन तक भीतर गोले चलाती रही। परंतु इस समय तक उसके खाने पीने का ामान कम हो गया और किले की फौज को लड़ने के लिये बाहर नकलना पड़ा। जिस द्वार से मुसलमान सेना बाहर निकलने गी उसी द्वार को रोककर बुंदेलों ने भीतर घुसना आरंभ कर दिया। फर किले में घुसकर बुंदेले उस पर अधिकार कर बैठे। यह द्ध बड़ा भयंकर हुआ और इसमें बुंदेले भी बहुत मारे गए। नंदन ोपी, कृपाराय चंदेल, बाघराज पड़िहार इत्यादि दस बुंदेलों े सरदार इस युद्ध में काम आए और २७ सरदार घायल हुए। रंतु बुंदेलों ने अपनी वीरता और धैर्य के बल किले को ले ही लेया। गढ़ कालिंजर में छत्रसाल ने अपनी ओर से मान्धाता चौबे को नियत किया। वहाँ पर कुछ फौज छोड़कर वे पन्ना होते हुए मऊ आए। इन चौबेजी के वंश के लोग कालिंजर में बहुत दिनों तक रहे और अब भी ये समीप के नगरों में जागीरदार हैं।

१०—मऊ के समीप एक जंगल में छत्रसाल को बाबा प्राणनाथ मिले। बाबा प्राणनाथ जामनगर के खेमजी नामक एक धनी पुरुष के लड़के थे। उन्होंने घरबार छोड़कर वैराग्य ले लिया था। ये एक पहुँचे हुए योगी थे। छत्रसाल ने इन्हें अपना दीक्षा-गुरु बनाया। छत्रसाल को योग्य पुरुष देखकर बाबा प्राणनाथ ने

आशीर्वाद दिया और वे सदा छत्रसाल को धर्म और देश-रक्षा के कार्य में सलाह और सहायता देते रहे[1]।

११—छत्रसाल ने विक्रम संवत् १७४२ मे सागर को लूटा। सागर इस समय मुगल बादशाह के अधिकार मे था। सागर लूटने के बाद दमोह लूटा और फिर बरहटा के राजा को अपने अधिकार में किया। फिर एरच की ओर धावा किया और एरच और जलालपुर को लूटा। इनकी लूटमार में प्रजा को अधिक कष्ट न होता था और जो जागीरदार छत्रसाल की अधीनता स्वीकार कर उन्हें दंड दे देते थे उन जागीरदारों को वे बिलकुल तंग न करते थे। बेतवा के समीप जलालखाँ नामक मुसलमान सरदार ने छत्रसाल को रोकना चाहा परंतु छत्रसाल ने जलालखाँ को कैद कर लिया। उसकी फौज भागकर सैयद लतीफ नामक मुगल सरदार की फौज मे जा मिली।

१२—सैयद लतीफ ग्वालियर के समीप ही था। छत्रसाल ने इस पर भी धावा मारा और लतीफ को जान बचाने के लिये दक्षिण की ओर भागना पड़ा। उसकी फौज के १०० अरबी घोड़े, ७० ऊँट और १३ तोपें छत्रसाल को मिलीं। छत्रसाल वहाँ से बाँदा की ओर गए। बाँदा के निवासियो ने छत्रसाल का स्वागत किया इसलिये छत्रसाल ने उन्हें अभयदान दिया। राजगढ़ के समीप फिर तहवरखाँ की फौज मिली। छत्रसाल ने इस फौज को फिर अच्छी तरह से हराया। मौदहा, मुरकरा इत्यादि अट्ठारह

---

(१) बाबा प्राणनाथ ने छत्रसाल से कहा था—
छत्ता तेरे राज में धक धक धरती होय।
जित जित घोड़ा मुख करे तित तित फत्ते होय॥
कहते हैं कि जिस ओर राजा छत्रसाल का घोड़ा मुख करता था उसी ओर वे दिग्विजय के लिये जाते थे।

गाँवों के जमींदारों ने छत्रसाल को रोकना चाहा परंतु वे दंड के भागी हुए और उनके गाँव लूट लिए गए। छत्रसाल ने महोबा, राठ, पनवाड़ी इत्यादि गाँव लूटे और उन पर अपने पहरे लगा दिए। अजनर पर फिर जमींदारों ने छत्रसाल को रोका पर उन्होंने भी रोकने की सजा पाई।

१३—फिर छत्रसाल काल्पी की ओर चले। यहाँ के एक सरदार दुर्जनसिंह पड़िहार ने छत्रसाल की शरण ली और छत्रसाल ने उन्हें अभय दान दिया। जिन लोगों ने छत्रसाल की अधीनता स्वीकार कर ली वे चैन में रहे; पर जिन लोगों ने उनका सामना किया वे सीधे किए गए। काल्पी का थाना छत्रसाल ने ले लिया और वहाँ से मुसलमानी खजाना लूटकर थानेदार को भगा दिया। छत्रसाल ने उस थाने पर अपनी ओर से उत्तमसिंह धंधेरे को नियत कर दिया।

१४—इस समय ओड़छे में राजा भगवंतसिंह राज्य करते थे। राजा यशवंतसिंह का परलोकवास विक्रम संवत् १७४१ में हो गया था। जिस समय भगवंतसिंह राजगद्दी पर बैठे उस समय वे बालक ही थे। इससे राज्य का सब काम मंत्री लोग ही किया करते थे। इनकी माता भी, जो इस समय जीवित थीं, राज्यकार्य में सलाह दिया करती थीं। मंत्रियों ने छत्रसाल से अपना संबंध तोड़कर औरंगजेब की अधीनता स्वीकार कर ली। यह समाचार पाते ही छत्रसाल विक्रम संवत् १७४२ में काल्पी से ओड़छे को रवाना हुए। उन्होंने ओड़छे को लूटने का निश्चय कर लिया। यह हाल राजा भगवंतसिंह की माँ अमरकुँवरि ने सुना तो वे धसान नदी पर छत्रसाल से मिलीं। उन्होंने छत्रसाल से ओड़छे पर आक्रमण न करने के लिये विनती की और छत्रसाल को धसान के पूर्व की भूमि का अधिपति मान लिया।

फिर छत्रसाल को निमंत्रित कर वे ओड़छे में ले गईं। वहाँ छत्रसाल का अच्छा सम्मान किया।

१५—इसके पश्चात् छत्रसाल ने ग्वालियर पर चढ़ाई की। वहाँ का सूबेदार तहवरखाँ पहले ही छत्रसाल से हार चुका था। छत्रसाल को आते देखकर उसे अपनी जान की फिकर पड़ गई। उसने बीस हजार रुपए नकद देकर अपनी रैयत की रक्षा की। तहवरखाँ ने छत्रसाल को चौथ देना भी स्वीकार कर लिया।

१६—फिर छत्रसाल ने भिलसे के किलेदार को बुंदेलों की अधीनता स्वीकार करने और बुंदेलों को चौथ देने की प्रतिज्ञा करने के लिये लिखा। परंतु उसने छत्रसाल को कोई उत्तर न दिया, इसलिये छत्रसाल ने भिलसे के किले पर आक्रमण करके किले को खाली करा लिया और उस पर अपना अधिकार कर लिया।

१७—इसी समय ग्वालियर के सूबेदार ने छत्रसाल के आक्रमण का हाल दिल्ली दरबार में भेजा और बुंदेलों को चौथ देने से इनकार कर दिया। काल्पी का किलेदार भी दिल्ली दरबार में पहुँचा। उसने बुंदेलों से काल्पी के किले को वापिस ले लेने के लिये बादशाह से सहायता माँगी। यह हाल जब औरंगजेब ने सुना तब उसके क्रोध और आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने छत्रसाल के विरुद्ध अनवरखाँ नामक वीर सरदार को, बहुत बड़ी सेना के साथ, भेजने का निश्चय किया। अनवरखाँ बुंदेलों से युद्ध करने के लिये १२ हजार घोड़े, कई हजार पैदल, बहुत से हाथी, ऊँट और गोला बारूद का पूरा सामान लेकर चला। छत्रसाल उस समय भिलसे से लौट रहे थे। अनवरखाँ ने उन्हें मार्ग में ही रोकने का विचार किया। बादशाह की इतनी बड़ी सेना देखकर बुंदेले लोग तनिक भी न घबराए। उन्होंने अपनी सेना

को कई भागों में बाँटकर युद्ध करने का निश्चय किया। बुंदेलों का छोटा सा झुंड मुसलमान सेना से लड़ने आकर भाग जाता था और मुसलमान उसका पीछा करने लगते थे। इस प्रकार बुंदेले योद्धा मुसलमान सेना को ऐसे स्थान पर ले गए जहाँ चारों ओर ऊँची पहाड़ियाँ थीं जिन पर बुंदेले अपनी सेना लिए हुए उपस्थित थे। यहाँ पर बुंदेलों ने चारों ओर से मुसलमान सेना पर आक्रमण कर उस विशाल सेना का बिलकुल नाश कर दिया और मुगलों के प्रसिद्ध योधा और सेनापति अनवरखाँ को कैद कर लिया। उसने कैद से छुटकारा पाने के लिये सवा लाख रुपये बुंदेलों को दिए। यह हाल सुनने पर औरंगजेब को जो विस्मय हुआ उसका वर्णन करना असंभव है। वह क्रोध के मारे लाल हो गया। उसने भरे दरबार में अनवरखाँ की बेइज्जती की और उससे सरदारी की पदवी छीन ली।

अध्याय २१

मुगलों की हार

१—औरंगजेब बादशाह ने अपने सब दरबारियों को बुलाया और बुंदेलों से लड़ने के लिये सबसे अधिक योग्य सेनापति नियत करने का विचार किया। अभी तक जितने लोग बुंदेलों से लड़ने के लिये गए थे वे सब हार गए थे। अब मिरजा सदरुद्दीन[1] नामक एक सरदार ने बुंदेलों को हराकर छत्रसाल को गिरफ्तार करने का बीड़ा उठाया। औरंगजेब ने इस सरदार का बड़ा मान किया और इसने जितनी सेना माँगी उतनी साथ कर दी। मिरजा सदरुद्दीन शूर और कूटनीतिज्ञ भी था। औरंगजेब ने इसे धामौनी[1] का सूबे-

(१) धामौनी का किला गोंड राजाओं का बनवाया है। इस किले को

दार भी मुकर्रर कर दिया। धामौनी उस समय मुगलों के सूबों की राजधानी थी। सागर, दमोह और भोपाल का शासन इसी स्थान से होता था।[1]

गोंड लोगों से ओड़छे के राजा वीरसिंहदेव ने ले लिया था। जब जुझारसिंह गोंड राजाओं के साथ युद्ध करता मारा गया तब यह किला मुगलों ने ले लिया। सदरद्दीन इसी किले का सूबेदार नियत किया गया था। सदरुद्दीन और छत्रसाल के युद्ध का वर्णन छत्रप्रकाश में लाल कवि ने निम्नलिखित किया है—

सदरुद्दीन को लालकवि ने सुतरदीन लिखा है।

"सुतरदीन स्यौं कुरनिस कीनी। तिन्हैं साह धामौनी दीनी ॥ × × ×
स्यौं मिरजा धामौनी आए। बैंकोमख कीनै मन भाए॥
सजी हजार तीस असवारी। दल में निसुदिन रहैं तयारी ॥ × × ×
इन समान उमराइ न कोई। को रन इन्हैं मुकाबिल होई ॥ × + ×
माची मार दुहूँ दिस भारी। जनि जम दई तमकि करतारी॥
गिरे तुरक छत्ता के मारे। जोजन लौं धर पै धर डारे ॥ × × ×

सुतरदीन की कूटि दल, लीनी चौथ चुकाय।
पहुँचे दल दरकूच ही, चित्रकूट कौ जाय ॥ × × × × ×

आग लगाइ देस में दीनी। सुन चहलोल खान रिस कीनी॥
त्यौं दल सजि इलगा रन धायो। मरद मयानौ लौ जग आयौ॥
नौ हजार बख्तरिया ताजे। देत पाइरै पाइ गराजे॥
धामौनी तै चढ़्यो मयानौ। बांधै सीस जूझ को बानौ॥
तीन द्यौस लौं लरो मयानो। चौथे दिन उठ कियो पयानो ॥ × ×

खेत छांड़ि सूबा चल्यौ, दिल मैं दहसत खाइ।
छत्रसाल के धाक तै, मच्यौ धमौनी जाइ ॥ × × × × ×

छत्रसाल त्यौं करी तयारी। कुटरौ मारि जसोपुर जारी ॥ × × ×
मौधा लूट महा मन भाए। उमड़ि कटक सिंहुड़ा पर धाए ॥ × × ×

बदभट भीर मदौंध सैं, तुरी टान रन ठान।
उमड़ि दलन खासौं लरयौ, छत्रसाल बलवान ॥ × × × × ×

मारि मदौंध डाँड़ लै छाँड़्यो। फिर धामौनी विग्रह माँड़्यो ॥"

२—मिरज़ा सदरुद्दीन ने चाहा कि छत्रसाल को बातें देकर मिला लें और औरंगजेब के अधीन रहने का वचन ले लें। इस उद्देश्य से मिरज़ा सदरुद्दीन ने छत्रसाल के पास दूत भेजा। इस दूत ने छत्रसाल के सामने मिरज़ा सदरुद्दीन की उदारता की बड़ी प्रशंसा की और कहा कि मिरज़ा साहब औरंगजेब से कहकर आपके सब क़ुसूर माफ़ करा देंगे। इसके उत्तर में छत्रसाल ने दूत से कह दिया कि मिरज़ा सदरुद्दीन मुझसे यवनों की सत्ता स्वीकार कराने का व्यर्थ यत्न न करें; मैं कभी मुगलों के अधीन रहना पसंद न करूँगा। इसके सिवा छत्रसाल ने सदरुद्दीन से चौथ भी माँगी।

३—छत्रसाल ने कई बार मुगलों के प्रसिद्ध सेनापतियों को हरा दिया था, परंतु इस बार सदरुद्दीन से खुले मैदान युद्ध करना कठिन था। छत्रसाल के पास बहुत सा प्रदेश था और उनकी सेना राज्य के भिन्न भिन्न भागों में थी। सब सेना को ऐसे युद्ध के समय वे एक ही स्थान पर न ला सकते थे। इसलिये छत्रसाल ने सारी सेना को एक ही स्थान पर एकत्र कर लेना ठीक न समझा। मिरज़ा सदरुद्दीन ने अपनी असंख्य सेना लेकर छत्रसाल की सेना पर हमला किया परंतु वीर बुंदेलों ने धीर न छोड़ा। यह युद्ध बहुत बड़ा हुआ और बुंदेलों के कई सरदार मारे गए। तिस पर भी बुंदेले वीरता से लड़ते रहे। छत्रसाल की ओर से परशुराम, नारायणदास; अजीतराय, बालकृष्ण, गंगाराम, मेघराज इत्यादि सरदारों ने बहुत पराक्रम दिखाया। घनघोर युद्ध के पश्चात् बुंदेलों को विजय मिली। मुसलमानी सेना भागी और मिरज़ा सदरुद्दीन और उनके साथी कई सरदार छत्रसाल के हाथ में बंदी हो गए। परंतु छत्रसाल ने उदारता से मिरज़ा सदरुद्दीन को, चौथ देने का वचन देने पर, छोड़ दिया।

४—मिरजा सदरुद्दीन के चले जाने के पश्चात् छत्रसाल ने अपने जीते हुए प्रदेश में दौरा किया और सब स्थानों की राज्य-व्यवस्था देखी। जहाँ के जागीरदार छत्रसाल के अधिकार में थे उन जागीरदारों से नजराना इत्यादि वसूल किया। इसके बाद छत्रसाल चित्रकूट के तीर्थस्थान में जाने का विचार कर रहे थे कि खबर मिली कि चित्रकूट के समीप अब्दुल हमीदखाँ नामक एक मुसलमान सरदार हिंदू यात्रियों को कष्ट दे रहा है। यह समाचार पाते ही बलदिवान पाँच सौ सवार लेकर हमीदखाँ के पास पहुँचे। रात को उन्होंने हमीदखाँ को घेर लिया। हमीदखाँ प्राण बचाके भागा। उसका सब साज सामान बुंदेलों के हाथ लगा। फिर छत्रसाल चित्रकूट गए और वहाँ पर चार दिन रहे। यहाँ पर खबर लगी कि भागे हुए हमीदखाँ ने महोबे के जमींदारों को भड़काया है और जमींदार भी छत्रसाल के विरुद्ध हो गए हैं। महोबे के जमींदारों को अधिकार में करने के लिये और उन्हें अपने किए का दंड देने के लिये छत्रसाल अपनी सेना लेकर महोबे की ओर गए। बुंदेलों की फौज के आने का हाल सुनते ही वे जमींदार तो भाग गए परंतु उन जमींदारों को भड़कानेवाला हमीदखाँ, कुछ थोड़े पठानों को लेकर, बरहट्टा में लड़ने को तैयार हुआ। छत्रसाल के आज्ञानुसार कुँअरसेन धंधेरे ने हमीदखाँ और उसके साथियों को मार भगाया।

५—महोबे से छत्रसाल महाराज ने अपनी सेना दक्षिण की ओर भेजी। इस समय सागर जिले का कुछ भाग राजपूतों के अधिकार में था। ये राजपूत निहालसिंह राजपूत के वंश के थे। निहालसिंह ने अपना अधिकार इस ओर संवत् १०८० में जमाया था[१]। इसका पौत्र राजा पृथ्वीपति गढ़पहरा में राज्य करता

(१) इस वंश में उदानशाह राजा हुआ है। उसने वि० सं० १०१० में

था और वह मुगलों की ओर से जागीरदार की हैसियत से रहता था। महाराज छत्रसाल ने विक्रम संवत् १७४६ में यह इलाका पृथ्वीपति से छीन लिया और गढ़पहरा ऊजड़ हो जाने से यहाँ के निवासी सागर में आकर रहने लगे[1]। फिर छत्रसाल ने देवगढ़ पर आक्रमण करके उसे भी अपने अधिकार में कर लिया। यहाँ पर महाराज छत्रसाल को मालूम हुआ कि काल्पी के समीप के स्थानों के जमींदार फिर से उठ खड़े हुए हैं, इससे काल्पी की ओर फौज भेजी गई। छत्रसाल ने फौज लेकर कौंच काल्पी आदि स्थान अपने अधिकार में कर लिए और फिर कोटरे पर आक्रमण किया। कोटरे में मुसलमानों की ओर से सैयद लतीफ नाम का किलेदार था। बुंदेलों का इससे खूब युद्ध हुआ और जब मुसलमानों के पास गोला बारूद न रहा तब उन्होंने छत्रसाल की अधीनता स्वीकार कर ली। एक लाख रुपए भी नजराने में दिए। औरंगजेब की सेना हर वार छत्रसाल से हारती थी परंतु औरंगजेब छत्रसाल को हराने का प्रयत्न न छोड़ता था। अब की वार खास दिल्ली के सूबेदार अब्दुल समद को छत्रसाल से लड़ने का हुक्म मिला। बादशाह औरंगजेब की आज्ञा पाते ही अब्दुल समद ने तीस हजार सवार और कई सौ पैदल सिपाहियों की सेना तैयार की, और वह बुंदेलखंड की ओर चला। इस विशाल सेना

सागर शहर बसाया था और सागर शहर के पास का परकोटा ग्राम भी इसी का बसाया हुआ बताते हैं।

(१) गढ़पहरा वि० सं० १७८४ में जयपुर के राजा जयसिंह ने बुंदेलों से ले लिया और फिर से पृथ्वीपति को उसका राज्य दे दिया। पर थोड़े दिनों के बाद कुरवाई के नवाब दिलीपखाँ ने पृथ्वीपति को निकालकर उस पर अपना अधिकार कर लिया। उससे मराठों ने छीन लिया और मराठों ने राजा बिलहरा को यहाँ का जागीरदार बनाया। इनके वंशज अब भी हैं। इन्हें बिलहरा के सिवा और भी चार ग्राम माफी में लगे हैं।

का मुकाम मैादहा पर हुआ। छत्रसाल भी अपनी सेना लेकर लगभग दो कोस की दूरी पर पहुँचे। उन्होंने अपनी सेना के विभाग कर दिए। एक पर स्वयं छत्रसाल, दूसरे पर बलदिवान, तीसरे पर कुँवरसेन धंधेरे और चौथे पर अंगदराय नियत हुए। इस समय युद्ध खुले मैदान में हुआ। दोनों ओर से सेना बढ़ी और युद्ध के लिये आ जुटी। इस युद्ध में बादशाही फौज की सारी नजर छत्रसाल के ऊपर ही थी। एक समय देवकरण नामक बादशाही सरदार ने छत्रसाल को घेर लिया और छत्रसाल का घोड़ा भी घायल हो गया। परंतु छत्रसाल वीरता से लड़ते रहे। यह खबर पाकर अंगदराय अचानक अपनी सेना लेकर आ पहुँचे और मुगल सेना को भगा दिया। युद्ध एक ही दिन हुआ और उसी दिन युद्ध का फैसला भी हो गया। मुगल सेना अच्छी तरह से हार गई। अंगदराय ने मुसलमानों का तोपखाना ले लिया। उसमें २१ तोपें बुंदेलों को मिलीं। अब्दुल समद हार मानकर पीछे हट गया और छत्रसाल कालिंजर होते हुए पन्ना आए।

६—इस महायुद्ध में छत्रसाल घायल भी हो गए थे। इस कारण जब तक छत्रसाल के घाव अच्छे न हुए तब तक वे अपनी सेना को लिए पन्ना में रहे, और कहीं पर आक्रमण न किया। दो मास के बाद कोठी सुहावल के जागीरदार हरिलाल गजसिंह ने बुंदेलों के विरुद्ध तैयारियाँ की थीं इस कारण छत्रसाल की सेना ने उस पर धावा किया और हरिलाल ने छत्रसाल के अधीन रहना स्वीकार कर लिया तथा चौथ देने का वचन दिया।

७—भिलसे के किले को छत्रसाल ने ले लिया था परंतु छत्रसाल के वापिस आने पर भिलसे में फिर मुगलों का अधिकार हो गया था। इसलिये छत्रसाल अपनी सेना लेकर भिलसे पर अपना अधिकार करने के लिये चले। ज्योंही छत्रसाल अपनी सेना लेकर

भिलसे की ओर चले त्योंही इस बात की खबर धामौनी के सरदार बहलूलखाँ को लग गई। वह ६००० काबुली फौज लेकर भिलसे की ओर छत्रसाल से लड़ने के लिये चला। छत्रसाल से बहलूल के साथ गहरा युद्ध हुआ। इस युद्ध में बहलूल की सहायता करनेवाला जगतसिंह नाम का एक जागीरदार भी मारा गया। वहलूल फिर पीछे हट गया परंतु छत्रसाल की सेना ने उसका पीछा न छोड़ा। छत्रसाल बहलूलखाँ का पीछा करते चले आए और शाहगढ़ का किला ले लिया। शाहगढ़ का किला ले लेने के पश्चात् उस किले में छत्रसाल ने अपना थानेदार नियत कर दिया और फिर धामौनी पर आक्रमण किया। इस समय बहलूलखाँ खूब लड़ा, पर उसे हारना पड़ा। वह युद्ध में मारा गया। छत्रसाल ने धामौनी पर भी अधिकार कर लिया।

८—धामौनी से वीर छत्रसाल मऊ को चले और बलदिवान ने कोटरे पर अपना अधिकार कर लिया। फिर वे महोबे पहुँचे। महोबे और बाँदे में अपना प्रबंध देखते हुए वे सेहुँड़ा पहुँचे। उस समय सेहुँड़ा दलेलखाँ के सूबे में था और दलेलखाँ की ओर से उसका नायब मुरादखाँ इस प्रांत का प्रबंध देखता था। छत्रसाल ने मुरादखाँ की सेना से युद्ध किया। सेना हार गई और मुरादखाँ मारा गया। इस बात का पता लगते ही दलेलखाँ को बहुत फिक्र हुई। वह चंपतराय का मित्र था और चंपतराय और दलेलखाँ के बीच पागबदलौअल भी हुई थी। इसी नाते से दलेलखाँ चंपतराय के भाई होने का और छत्रसाल के काका होने का दावा करता था। दलेलखाँ ने छत्रसाल से लड़ने में कोई लाभ न देख छत्रसाल को बड़ी नम्रता से, अपना पुराना नाता बताते हुए, पत्र लिखा और सेहुँड़ा का प्रांत छत्रसाल से वापिस

माँगा। छत्रसाल ने उसकी नम्रता देखकर उदारता से वह प्रांत वापिस कर दिया।

९—बलदिवान छत्रसाल के आज्ञानुसार सेहुँड़े को खाली करके वापिस आ रहे थे कि रास्ते में रात को कई जागीरदारों ने अपनी सेना लेकर उनकी सेना पर छापा मारा। छापा मारने के बाद ये जागीरदार मरौंद के किले में जा छिपे। बलदिवान ने इस किले पर आक्रमण कर दिया और उन सब जागीरदारों को मारकर उनकी सेना का नाश कर दिया। इस युद्ध में बलदिवान का एक प्रिय सरदार राममन दौआ मारा गया।

१०—औरंगजेब ने बुंदेलखंड जीतने के लिये फिर दूसरा सेनापति शाहकुली नाम का भेजा। शाहकुली बहुत बड़ी सेना लेकर बुंदेलखंड में घुसा और शुरहट, कोटरा, जलालपुर इत्यादि छत्रसाल के फतेह किए हुए स्थान लेता हुआ नौली के मुकाम पर ठहरा। यह खबर पाते ही छत्रसाल मऊ से बलदिवान और अपनी सारी सेना को साथ लेकर शाहकुली से युद्ध करने के लिये पहुँचे। इसी समय असमदखाँ नामक एक दूसरा मुसलमान सरदार भी, शाहकुली की सहायता के लिये, पहुँच गया और इन दोनों की सेना ने छत्रसाल और उनकी सेना को घेर लिया। बड़ा भयंकर युद्ध हुआ और छत्रसाल की सारी सेना छिन्न-भिन्न हो गई। छत्रसाल को इस समय पीछे भी हटना पड़ा। परंतु उन्होंने सब बुंदेलों को अपने वीररसपूरित शब्दों से उत्तेजना दी और उन योद्धाओं में फिर से युद्ध करने का उत्साह आ गया। बुंदेले लोग फिर हिम्मत बाँधकर लड़े और घनघोर युद्ध हुआ। इस युद्ध में बुंदेलों की विजय हुई। असमदखाँ कैद कर लिया गया। छत्रसाल ने दंड लेकर उसे छोड़ दिया। शाहकुली इस समय अपनी सेना लेकर अलग रह गया था। उसने दिल्ली दरबार से

और सेना अपनी सहायता के लिये मँगाई। दिल्ली से बादशाह के आज्ञानुसार नंदराम नाम का एक सरदार ८०० सवार और सेना लेकर पहुँचा। शाहकुली ने इस सेना की सहायता से फिर मऊ पर आक्रमण किया। यह युद्ध उसी स्थान पर हुआ जहाँ आजकल नवगाँव की छावनी है। यहाँ पर फिर छत्रसाल ने शाहकुली की सेना को अच्छी तरह से हरा दिया। शाहकुली यहाँ से भागकर अलीपुर के निकट ठहरा था। वहाँ पर छत्रसाल ने इसे घेरकर कैद कर लिया और जब इसने बहुत सा दंड दिया तब छोड़ा।

११—शाहकुली के पराभव के पश्चात् दिल्ली दरबार में कुछ ऐसे फेरफार हुए जिससे छत्रसाल को मुगलों की ओर से कोई कष्ट न हुआ और दिल्ली दरबार छत्रसाल से प्रसन्न हो गया। औरंगजेब अहमदनगर में विक्रम संवत् १७६४ में मरा। उसके तीन लड़के थे जिनके नाम मुअज्जम, आजमशाह और कामबख्श थे। इनमें से बड़ा लड़का मुअज्जम काबुल में था इस कारण दूसरा लड़का आजमशाह बादशाह बन गया और उसने कामबख्श को, दक्षिण का राज्य देने का वचन देके, मिला लिया। परंतु, राजगद्दी का असली मालिक औरंगजेब का बड़ा लड़का मुअज्जम था, इस कारण वह काबुल से बहुत बड़ी सेना लेकर भारतवर्ष में पहुँचा। औरंगजेब के स्वभाव से कई मुसलमान सरदार नाराज थे और औरंगजेब हिंदुओं को कष्ट देता था इससे हिंदू लोग भी नाराज हो गए थे। औरंगजेब के मरते ही राज्य-शासन शिथिल हो गया और सूबेदार लोग स्वतंत्र बनने का प्रयत्न करने लगे। ऐसे समय में मुअज्जम ने देशी राजाओं को मिलाकर उनसे सहायता लेने में ही अपना भला समझा। उसने शाहू महाराज को कैद से छुटकारा दे दिया। शाहू महाराज शिवाजी महाराज के नाती थे। इन्हें औरंगजेब ने दिल्ली में कैद कर

लिया था। यही शाहू महाराज महाराष्ट्र राज्य के अधिकारी थे। शाहू महाराज को छोड़ देने के पश्चात् मुअज्जम ने अपने वजीर खानखाना को, छत्रसाल से मित्रता कर लेने के लिये, भेजा। खानखाना ने छत्रसाल की वीरता की तारीफ की और छत्रसाल से लोहगढ़ फतेह करने के लिये सहायता माँगी। छत्रसाल ने सहायता दी और वि० सं० १७६८ में लोहगढ़ का किला जीतकर दे दिया। इस पर मुअज्जम बहुत प्रसन्न हुआ। वह छत्रसाल की स्वतंत्रता स्वीकार करके उनके साथ बराबरी का बर्ताव करने लगा। मुअज्जम ने छत्रसाल को मनसबदारी देने का वचन दिया परंतु छत्रसाल ने मुगलों का मनसबदार बनना स्वीकार न किया और स्वाभिमान के साथ कह दिया कि हम स्वतंत्र हैं और हमारे पास बहुत सा देश है, हम किसी दूसरे शासक के अधीन मनसबदार बनना पसंद नहीं करते। मुअज्जम ने अपना नाम अब बहादुरशाह रख लिया था। बुंदेलखंड को इस प्रकार स्वतंत्र करने के पश्चात् छत्रसाल पन्ना में आकर राज्य करने लगे।

अध्याय २२

मराठों से सहायता

१—औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् दिल्ली दरबार में जो कलह हुई उससे बादशाहत दिन पर दिन कमजोर होती गई। बहादुरशाह, जो औरंगजेब के पश्चात् बादशाह हुआ, योग्य शासक न था। उसने अपनी दशा सुरक्षित करने के लिये महाराज शाहू से मित्रता की और बुंदेलखंड की स्वतंत्रता स्वीकार की। इससे बुंदेले और मराठे दोनों ही स्वतंत्र हो गए। जिस प्रकार छत्रसाल को राज-

धानी पन्ना में थी उसी प्रकार शाहू की राजधानी सतारा में थी। इन दोनों का राज्य प्रजा के लिये सुखकर था और ये दोनों हिंदूधर्म के रक्षक थे। इसलिये इन दोनों की कीर्ति सारे हिंदू संसार में फैल गई थी[1]। जिस प्रकार बुंदेलखंड में छत्रसाल ने हिंदुओं की भलाई का प्रयत्न किया उसी प्रकार दक्षिण में शाहू ने किया।

२—बहादुरशाह विक्रम संवत् १७४९ में मरा। उसके पश्चात् फर्रुखसियर दिल्ली की बादशाहत का अधिकारी हुआ। यह नाम मात्र के लिये ही बादशाह था, राज्य का सब कारबार अब्दुल्ला और हुसैनअली चलाते थे। ये दोनों भाई भाई थे और जाति के सैयद थे। दिल्ली की बादशाहत का सब कार्य करनेवाले ये ही दो मनुष्य थे। इन दोनों ने दक्षिण के सूबेदार दाऊदखाँ को वहाँ से हटाकर उस स्थान पर कमरुद्दीन (उर्फ चिनकुलीचखाँ) को नियुक्त किया। इस सूबेदार ने स्वतंत्र होने का प्रयत्न करना आरंभ कर दिया। दिल्ली दरबार में फर्रुखसियर से सैयद भाइयों की बढ़ती हुई शक्ति न देखी गई। इसलिये बादशाह ने इनकी शक्ति को कम करने के लिये इन्हें दिल्ली दरबार से हटा देना ही ठीक समझा। सैयद हुसैनअली को दक्षिण का

---

(१) भूषण कवि ने इन दोनों ही की कीर्ति का वर्णन निम्न-लिखित कवित्त में किया है—

"राजत अखंड तेज छाजत सुजस बड़ो
गाजत गयंद दिग्गजन हिय साल को।
जाहि के प्रताप सों मलीन आफताप होत
ताप तजि दुजन करत बहु ख्याल को॥
साज सजि गज तुरी पैदरि कतार दीन्हें
भूषन भनत ऐसो दीन-प्रतिपाल को।
और राव राजा एक मन में न ल्याऊँ अब
साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को॥"

सूबेदार नियत किया और कमरुद्दीन को दक्षिण से अलग करके मुरादाबाद का सूबेदार बनाया। गुजरात में दाऊदखाँ सूबेदार था। यह सैयद भाइयों के हुक्म से दक्षिण के सूबे से हटाया गया था और इसी की जगह कमरुद्दीन की नियुक्ति हुई थी। इस कारण दाऊदखाँ सैयद भाइयों का शत्रु हो गया था। बादशाह ने दाऊदखाँ को यह हुक्म भेजा कि अगर तुम मराठों से मेल करके सैयद हुसैनअली का नाश कर दो तो तुम्हें फिर से दक्षिण की सूबेदारी दे दी जावे। यह हुसैनअली से बदला लेना ही चाहता था, अतः वि० सं० १७७३ में इसने हुसैनअली पर आक्रमण किया। इस युद्ध में दाऊदखाँ हार गया और वह मारा गया। मुसलमानों के सूबेदारों में इस प्रकार का झगड़ा देख मराठों ने मुसलमानों के अधिकार में से देश जीत लेने का उत्तम अवसर देखा। इस समय मराठों में अनेक वीर सेनापति थे। खंडेराव दाभाड़े, कंठाजी कदम और परसोजी भोंसले इत्यादि मराठे सरदारों ने मुगल राज्य पर धावा मारकर देश जीतना आरंभ कर दिया। मराठों की सहायता के बिना अपना राज्य कायम रखना कठिन देख मुसलमान सूबेदारों ने मराठों से मित्रता करने का प्रयत्न करना आरंभ किया। इस उद्देश्य से दक्षिण के सूबेदार सैयद हुसैनअली ने मराठों से वि० सं० १७७३ ही में संधि कर ली और उसने दक्षिण के छः जिले और तंजोर, त्रिचनापल्ली और मैसूर इन राज्यों की चौथ मराठों को देना स्वीकार किया और मराठों ने बादशाह को १० लाख रुपए वार्षिक देना स्वीकार किया। फर्रुखसियर बादशाह सैयद भाइयों के विरुद्ध था, इस कारण उसने सैयद हुसैनअली की की हुई शर्तें मंजूर न कीं। बादशाह ने कमरुद्दीन[1] (मुरादाबाद के सूबेदार), सादत खाँ और जयसिंह के

(१) यही कमरुद्दीन बाद में निजामुल्मुल्क कहलाया।

पास इन शर्तों को नामंजूर करने का हुक्म भेज दिया। सैयद हुसैनअली ने इस समय मराठों की सहायता और सेना लेकर इस सेना के जोर से दिल्लीपति से शर्तें कबूल कराने और दिल्ली में अपना प्रभाव जमाने का विचार बाँधा और मराठों ने उसकी सहायता के लिये बालाजी विश्वनाथ को एक विशाल सेना के साथ भेजा। बालाजी विश्वनाथ सैयद हुसैनअली के साथ दिल्ली गए। मराठों के साथ फर्रुखसियर ने वि० सं० १७७६ में युद्ध किया और कैद होकर दो मास के पश्चात् वह मारा गया और सैयद हुसैनअली ने दिल्ली के तख्त पर रफीउद्दाराजात और रफीउद्दौला नामक बालकों को बैठाया परंतु ये दोनों ६ मास के भीतर मर गए इससे मुअज्जिम का नाती रोशनअख्तर नाम का बादशाह बनाया गया। रोशन-अख्तर ने अपना नाम मुहम्मदशाह रखा। मुहम्मदशाह के समय में फिर सब कारबार सैयद भाइयों के हाथ में आ गया। दिल्ली के इस युद्ध में मराठों की बहुत सी सेना मारी गई परंतु सैयद भाइयों ने मराठों का उपकार मानकर वि० सं० १७७७ में उन्हें चौथ और सरदेशमुखी देने की सनद बादशाह से दिलवाई और देवराव हिंगणे नाम का एक होशियार वकील मराठों की ओर से दिल्ली दरबार में रखा। इस प्रकार अपना काम साधकर बालाजी विश्वनाथ दक्षिण में आए परंतु कुछ दिनों के पश्चात् उनकी मृत्यु हो गई। बालाजी विश्वनाथ के पश्चात् उनके पुत्र बाजीराव को शाहू महाराज ने पेशवा नियत किया।

३—बाजीराव पेशवा अपने पिता से अधिक पराक्रमी हुआ। इसने सेंधिया, होलकर, पँवार, गायकवाड़, जाधव इत्यादि मराठे सरदारों की सहायता से गुजरात, खानदेश और मालवा प्रांतों पर चढ़ाई करके वहाँ से मुसलमानी सत्ता उखाड़ना आरंभ कर दिया।

४—सैयद भाइयों को मुहम्मदखाँ बंगश नाम के एक मुसलमान सरदार ने बहुत सहायता दी थी। इसलिये सैयद भाइयों ने प्रसन्न

होकर उसे नवाब की पदवी देकर बुंदेलखंड के एरछ, कौंच, काल्पी, सेहुँड़ा, मौदहा, सीपरी और जालौन इन परगनों का सूबेदार बनाया था। इन परगनों पर मुहम्मदखाँ बंगश की ओर से दलेलखाँ, अहमदखाँ, पीरखाँ और सुजानखाँ नियुक्त किए गए थे। फर्रुख-सियर के समय में दिल्ली दरबार में जो झगड़े हुए उनमें मुहम्मदखाँ बंगश ने भी स्वतंत्र हो जाने की बात सोची। दिल्ली में सैयद भाइयों में और बादशाह मुहम्मदशाह से अनबन हो गई थी। मुहम्मदखाँ बंगश ने बादशाह मुहम्मदशाह की सहायता दी थी इस कारण बादशाह ने मुहम्मदखाँ बंगश को ७००० सवारों का मनसबदार बनाया और उसे सात लाख रुपए इनाम में दिए थे। विक्रम संवत् १७७८ में मुहम्मदखाँ बंगश इलाहाबाद का सूबेदार नियत किया गया। मुहम्मदखाँ बंगश ने आसपास के कई राजाओं को अपने अधिकार में कर लिया था। वह बड़ा योग्य सेनापति था। पीरखाँ मुहम्मदखाँ बंगश की ओर से काल्पी का सरदार था। राजा छत्रसाल ने पीरखाँ को काल्पी से निकाल दिया और उसकी बनवाई मसजिदें तुड़वा दीं। यह बात मुहम्मदखाँ बंगश से न सही गई। वह जिन परगनों का सूबेदार बनाया गया था उनमें से कई छत्रसाल महाराज के अधिकार में थे। इस कारण मुहम्मदखाँ बंगश ने कई बार उन्हें बुंदेलों से ले लेने के प्रयत्न किए, परंतु वे सब निष्फल हुए। जब बंगश को काल्पी का हाल मालूम हुआ तब उससे न रहा गया। उसने अपने सब नायब सूबेदारों को फौज इकट्ठी करने और बुंदेलखंड पर आक्रमण करने का हुक्म दिया। मुहम्मदखाँ बंगश की सहायता के लिये दलेलखाँ नामक एक शूर सरदार था। दलेलखाँ जाति का हिंदू राठौर वंश का क्षत्रिय था। इसको मुहम्मदखाँ बंगश ने मुसलमान बना लिया था। इस बात पर महाराज छत्रसाल को खेद हुआ था और वे चाहते थे कि दलेल-

खाँ से न लड़ना पड़े। इसलिये राजा छत्रसाल ने दलेलखाँ को एक पत्र भी लिखा परंतु दलेलखाँ ने मुसलमानों का पक्ष छोड़कर राजा छत्रसाल का पक्ष लेना स्वीकार न किया[1]। मुहम्मदखाँ बंगश ने

---

(१) बाँदा जिले में एक कहावत है कि राजा छत्रसाल ने निम्न-लिखित पद्य दलेलखाँ को लिख भेजे थे—

हिरदेसाह से नहिं छली, कीरत से न कपूत।
बेटा कहिए दलेल से बंगशवंत सपूत॥
भाई मुहम्मदखान ने डारो मोरी गोद।
तब से तुम बेटा मेरे जगत समान सुबोध॥
मोहन ठारी दे गए हिरदे रहे लुकाय।
तुमहूँ पँनावा देहु तौ मैं जगतै लेहुँ समझाय॥

इसका उत्तर, कहा जाता है कि, दलेलखाँ ने यह दिया—

तुम राजा महाराज हौ सब राजन में छाज।
अब दलेल कैसे हटे दुहूँ दीन की लाज॥

राजा छत्रसाल के पत्र में उनके पुत्रों की बुराइयाँ लिखी हैं, परंतु इनका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता। इस कारण ये पद्य विश्वास के योग्य नहीं। परंतु दलेलखाँ की वीरता प्रसिद्ध है। उसके विषय में बुंदेलखंड में निम्न-लिखित पद्य प्रचलित हैं—

गज भर छाती दलेल की बीस बिसे को ज्वान।
जोत में जोत समा गई पायो पद निर्वान॥
सारी सरन सकेल के मरन कियो इक ठौर।
दिल्ली से दलेलखाँ चलो खड़ग गढ़ चाहि॥
जगतराज महराज को मार मौदहा बीच।
× × × × × × × × × ×
भयो युद्ध पट्ठान को बही रक्त की कीच॥
तीन दिवस पट्ठान ने कियो बड़ा घमसान।
जगतराज कंपित भयो छोड़ भगो मैदान॥
चौथे दिन के पहर को घेर बुंदेलन लीन।
तब दलेल भुइसा गिरे खड़ग न धाई कीन॥

युद्ध की बड़ी तैयारी की। उसने दिल्ली दरबार से सहायता माँगी। दिल्ली के अमीर-उल-उमरा खाँ दौरान ने बहुत सी सेना बंगश की सहायता के लिये भेजी। इस सब सेना को एकत्र करके बंगश ने बुंदेलखंड पर आक्रमण करना आरंभ कर दिया। बाँदा और सेहुँड़ा पर उसने कई धावे किए। परंतु इसी समय मराठों ने ग्वालियर पर आक्रमण कर दिया जिससे मुहम्मदखाँ बंगश को ग्वालियर की ओर जाना पड़ा। जब बंगश ग्वालियर की ओर गया तब राजा छत्रसाल ने बंगश के प्रदेशों पर आक्रमण कर दिए। इसलिये बंगश फिर इलाहाबाद को लौट आया। उसे सेना के बंदोबस्त के लिये दिल्ली दरबार से दो लाख रुपए माहवार भी मिला करते थे। इस धन की सहायता से बंगश ने सैनिकों की तनख्वाहें भी बढ़ा दीं[1]। फिर अपने पुत्र आबादखाँ के साथ एक बड़ी सेना देकर उसे यमुना के दक्षिण में भेजा।

५—इस समय मुहम्मदखाँ बंगश को कई बुंदेलों ने भी सहायता दी। इस समय ओड़छे में हरदौल के प्रपौत्र उदोतसिंह का राज्य था। यह वि० सं० १७४६ में गोद आकर गद्दी पर बैठा था। इसने मुगलों के अधीन रहना स्वीकार कर लिया था और इस समय वह छत्रसाल के विरुद्ध मुसलमानों को सहायता दे रहा था। सेहुँड़ा[2] में इस समय पृथ्वीसिंह नाम के जागीरदार थे। ये भी बुंदेले थे और मुगलों के अधीन थे। इन्होंने भी मुसलमानों को

---

(१) उस समय बंगश की सेना में सिपाहियों को १७) रुपए माहवार और जमादारों को २०) माहवार मिलते थे। उस समय अनाज सस्ता था, इसलिये वही तनखाह आजकल के कई गुने अधिक रुपयों के बराबर होगी।

(२) यह बहुत प्राचीन स्थान है। दतिया से ३६ मील काली सिंध के किनारे पर बसा है।

इस समय सहायता दी। दतिया वास्तव में ओड़छे राज्य की एक बड़ी जागीर थी। परंतु जब से ओड़छे के राजा मुगलों के अधीन हुए तब से यह जागीर भी मुगल राज्य की जागीर हो गई। इस समय दतिया के जागीरदार राय रामचंद्र थे। इन्होंने भी बुंदेलों के विरुद्ध मुसलमानों को सहायता दी। चंदेरी के जागीरदार दुर्जन-सिंह भी मुसलमानों की सहायता कर रहे थे। मौदहा के जागीर-दार जयसिंह ने भी छत्रसाल के विरुद्ध लड़ना स्वीकार कर लिया था। खेद की बात है कि ऐसे समय में इन सबने अपने जाति और धर्म-बंधुओं का साथ न देकर मुहम्मदखाँ बंगश को सहायता देना उचित समझा। इन हिंदू राजाओं के सिवाय इस समय दिल्ली की बादशाहत की सारी शक्ति मुहम्मदखाँ बंगश की सहायता के लिये लगा दी गई थी। दिल्ली के बादशाह के प्रसिद्ध सरदार सैयद नजीमुद्दीन अलीखाँ, साबितखाँ, जाँनिसारखाँ, वजारतअलीखाँ इत्यादि अपनी अपनी सेना लेकर मुहम्मदखाँ बंगश की सहायता को तत्पर थे[1]।

---

(१) इस समय मालवे के सूबेदार ने छत्रसाल को मुगलों के अधीन रहना स्वीकार करने का संदेशा भेजा था। उसका उत्तर छत्रसाल ने बहुत उत्तम दिया। इस उत्तर का वर्णन एक कवि ने इस प्रकार किया है—

"देवागढ़ देश नाहीं दक्खिन नरेश नाहीं,
चाँदाबाद नहीं जहाँ घने महल पाइहौ।
सौदागर सान नाहीं देवन को थान नाहीं,
जहाँ तुम पाहुने लै बहुतक उठ धाइहौ॥
मैं तो सुत चंपत को युद्ध बीच लैहौं हाथ,
यही जिय जान उलटी चौथ दे पठाइयो।
लिखके परवाना महाराजा छत्रसाल जू ने,
औरन के धोके यहाँ कबहूँ न आइयो॥"

महाराज छत्रसाल की उन्नति देखकर कई बुंदेले प्रसन्न न होकर और उलटे

६—यह समय बुंदेलखंड के लिये सचमुच बड़े ही संकट का था। बुंदेलों के विरुद्ध केवल सारा यवन दल ही नहीं किंतु कई बुंदेले भी अपनी सेनाएँ लेकर तैयार थे। छत्रसाल महाराज की वय अधिक हो गई थी परंतु उनकी धीरता और वीरता में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। इन मुगलों की प्रचंड सेना और बुंदेलों का छत्रसाल के विरुद्ध हो जाना छत्रसाल के संकल्प को और दृढ़ करने में सहायक हुआ। राजा छत्रसाल के पुत्र भी वीर और पराक्रमी थे। वे अपने पिता के अनुसार यवनों से बुंदेलखंड को मुक्त करने का प्रण कर चुके थे। अपने पुत्रों की सहायता से छत्रसाल महाराज ने मुगलों से युद्ध करने की तैयारी कर ली।

७—मुहम्मदखाँ बंगश ने अपनी असंख्य सेना लेकर बुंदेलखंड पर आक्रमण कर दिया। बुंदेलों और मुसलमानों की सेना से कई लड़ाइयाँ हुईं। राजा छत्रसाल के पुत्रों ने युद्ध में वीरता दिखलाई। परंतु कई बार बुंदेलों की सेना को पीछे भी हटना पड़ा। पर बुंदेलों ने कभी भी हिम्मत न हारी और लगातार मुसलमानों से एक वर्ष तक लड़ते रहे। मुहम्मदखाँ बंगश के पास बहुत सा धन था। युद्ध के समय में सेना के लिये वह सैनिकों को भरती करता जाता था और मुगल राज्य के अन्य प्रांतों से खाने-पीने का सामान मँगवाता जाता था। बुंदेलों ने इस समय गोंडवाने के जागीरदारों से सहायता माँगी और उन लोगों ने कुछ सहायता भी

हृदय में डाह करते थे। ओड़छेवालों ने ताना देकर छत्रसाल को लिखा था कि "ओड़छे का अधिराज्य दतिया की राई, अपने मुँह छत्रसाल बने धना बाई।"

छत्रसाल महाराज स्वयं कवि थे। उन्होंने इसका उत्तर निम्नलिखित दिया—
"सुदामा तन हेरे तब रंक हू तें राव कीनो, विदुर तन हेरे तब राव कियो चेरे तें।
कुबजा तन हेरे तब सुंदर सरूप दियो, द्रौपदी तन हेरे तब चीर बाढ़ो टेरे तें॥
कहत छत्रसाल प्रह्लाद की प्रतिज्ञा राखी, हिरनाकुश मारो नेक नजरहु के फेरे तें।
एरे गुर ज्ञानी अभिमानी भए होत कहा, नामी नर होत गरुड़गामी के हेरे तें॥"

दी। इनसे कुछ सहायता लेकर और बुंदेलों की सारी सेना एकत्र करके बुंदेलों ने जैतपुर के दक्षिण में मुगलों से एक बड़ी लड़ाई की। इस युद्ध में बुंदेलों ने अपनी वीरता का पूरा परिचय दिया और कई बुंदेले इस युद्ध में लड़ते हुए मारे गए। इस युद्ध के समय राजा छत्रसाल औ मुहम्मदखाँ बंगश के हाथियों का सामना हो गया और मुहम्मदखाँ ने अचानक अपनी बरछी फेंककर छत्रसाल को मारी। उस बरछी के घाव से राजा छत्रसाल मूर्च्छित हो गए। राजा छत्रसाल के मूर्च्छित होते ही बुंदेले लोग हताश हो गए और महावत राजा छत्रसाल को सुरक्षित स्थान में ले गया। इस युद्ध में इस प्रकार बुंदेलों को पीछे हटना पड़ा।

८—राजा छत्रसाल मूर्च्छा से जागते ही अपने महावत से समरभूमि से अलग लाने के कारण क्रुद्ध हुए और उन्होंने उसे तुरंत समरभूमि में ले चलने का हुक्म दिया। परंतु राजा छत्रसाल के घाव गहरे होने से उनके मंत्रियों ने समझाया और राजा छत्रसाल को मानना पड़ा।

९—इस प्रकार कई युद्ध बुंदेलों ने यवनों से किए। मुसलमानों का जोर बढ़ता गया और बुंदेलों को भय लगने लगा। महाराज छत्रसाल का उद्देश्य हिंदूधर्म की रक्षा करना और भारतवर्ष को यवन-सत्ता से मुक्त करना था। इस कार्य के लिये वे किसी भी स्वधर्माभिमानी हिंदू से सहायता लेने को तत्पर थे। जिस प्रकार बुंदेलखंड में हिंदूधर्म के रक्षक वीर छत्रसाल थे उसी प्रकार दक्षिण में मराठे भी यवन सत्ता को दक्षिण से उठा देने का प्रयत्न कर रहे थे। इस संकट के समय महाराज छत्रसाल ने मराठों की ही सहायता लेने का निश्चय किया। उस समय मराठों में बाजीराव पेशवा ही नायक थे। इससे इनको ही छत्रसाल ने एक

लिखा। बाजीराव पेशवा ने बुंदेलखंड को ऐसे धर्म-संकट के समय सहायता देना स्वीकार कर लिया[1]।

१०—बाजीराव पेशवा शाहू महाराज से अनुमति लेकर अपनी सेना के साथ बुंदेलखंड में छत्रसाल महाराज की सहायता को पहुँचे। मराठों ने विक्रम संवत् १७८६ में मालवे में प्रवेश किया। मालवे के सूबेदार को हराते हुए बाजीराव पेशवा बाईस दिनों में बुंदेलखंड पहुँचे। मुहम्मदखाँ बंगश ने कई लड़ाइयों में बुंदेलों को हरा दिया था, इससे उसे बहुत अभिमान हो गया था। उसने अपनी कुछ फौज इलाहाबाद भेज दी थी और कुछ फौज को लेकर वह बुंदेलखंड के कुछ भाग पर अधिकार किए बैठा था। उसे मराठों के आक्रमण का हाल मालूम हो गया परंतु तिस पर भी उसने उसकी कुछ बड़ी फिकर न की। मराठों के आने का हाल सुनते ही कई हिंदू राजा लोग मुसलमानों का साथ छोड़कर अलग हो गए। परंतु ओड़छे के राजा का छोटा भाई लक्ष्मणसिंह और मौदहा का जागीरदार जयसिंह मुसलमानों की सहायता करते ही रहे। मुहम्मदखाँ बंगश के पास बहुत सेना न थी, इसलिये उसने सेना और सामान मँगवाया परंतु वह समय पर न पहुँच सका। मराठों ने अपनी सेना की बहुत उत्तम व्यवस्था की थी। मराठों के सरदार विट्ठल शिवदेव चिंचूरकर और मल्हारराव होल्कर अपनी अपनी सेना का विभाग लिए भिन्न भिन्न स्थानों पर नियत थे। यह युद्ध वि० सं० १७८७ में जैतपुर के समीप ही हुआ।

---

(१) महाराजा छत्रसाल ने बाजीराव को पत्र दोहों में लिखा था। उन दोहों में से निम्न-लिखित दोहा बहुत प्रसिद्ध है—

जो गति भई गजेंद्र की, सो गति पहुँची आज।
बाजी जात बुँदेल की, राखो बाजी लाज॥

बाजीराव का हृदय इस पत्र को पढ़ने से द्रवित हो गया और उन्होंने राजा छत्रसाल को अपनी बड़ी सेना लेकर इस समय [illegible] दी।

जैतपुर का किला बंगश ने अपने अधिकार में कर लिया था। मराठों से युद्ध इसी स्थान के निकट हुआ। बुंदेलों को मराठों की सहायता से बहुत उत्तेजना मिली और ये लोग बड़ी वीरता से लड़े। इसमें छत्रसाल के पुत्रों ने भी बड़ी वीरता दिखाई। मराठों ने अपनी सेना के कई विभाग करके कई ओर से मुसलमानों पर आक्रमण किया और मुसलमानों की सेना को बहुत हानि पहुँचाई। चौथे दिन मुहम्मदखा बंगश ने अचानक मराठों की सेना पर आक्रमण किया परंतु मराठे लोग इस समय एक पहाड़ी के निकट छिप गए और ज्योंही मुसलमान सेना वापिस हुई त्योंही मराठों ने उस पर आक्रमण करके उस सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया। इस प्रकार कई दिनों तक युद्ध होता रहा। मराठों ने किला घेरकर मुसलमानों की रसद बंद कर दी। यह दशा होते हुए भी मुसलमान दो मास तक किले में रहे आए और मराठों से बराबर लड़ते रहे। प्रत्येक बार मुसलमान सेना बलहीन होती गई। मुहम्मदखाँ बंगश का पुत्र कायमखाँ अपनी सेना लेकर सहायता के लिये आ पहुँचा। इस समय बुंदेले अजनर के समीप पहुँचे और उस ओर मुहम्मदखाँ बंगश की जो सेना बढ़ी थी उसे हराकर जैतपुर के किले की ओर भगा दिया। मराठों ने जाकर कायमखाँ से युद्ध किया और उसे वहाँ पर हराकर भगा दिया। फिर मराठे और बुंदेले दोनों ही जैतपुर के किले को मुसलमानों से ले लेने के लिये तत्पर हो गए और दोनों ने किले के ऊपर आक्रमण करना आरंभ कर दिया। मुसलमान लोग जैतपुर के किले के भीतर से ही गोली चला रहे थे। जब किले के भीतर का अनाज-पानी खर्च हो गया तब किले के भीतर के मुसलमानों ने सेना के गाय, बैल और ऊँट मार मारकर खाना आरंभ कर दिया। अपनी जान बचाने के लिये जिन मुसलमानों ने अपने हथियार छोड़कर मराठों से अभयदान माँगा उन्हें बाजीराव

लिखा। बाजीराव पेशवा ने बुंदेलखंड को ऐसे धर्म-संकट के समय सहायता देना स्वीकार कर लिया[1]।

१०—बाजीराव पेशवा शाहू महाराज से अनुमति लेकर अपनी सेना के साथ बुंदेलखंड में छत्रसाल महाराज की सहायता को पहुँचे। मराठों ने विक्रम संवत् १७८६ में मालवे में प्रवेश किया। मालवे के सूबेदार को हराते हुए बाजीराव पेशवा बाईस दिनों में बुंदेलखंड पहुँचे। मुहम्मदखाँ बंगश ने कई लड़ाइयों में बुंदेलों को हरा दिया था, इससे उसे बहुत अभिमान हो गया था। उसने अपनी कुछ फौज इलाहाबाद भेज दी थी और कुछ फौज को लेकर वह बुंदेलखंड के कुछ भाग पर अधिकार किए बैठा था। उसे मराठों के आक्रमण का हाल मालूम हो गया परंतु तिस पर भी उसने उसकी कुछ बड़ी फिकर न की। मराठों के आने का हाल सुनते ही कई हिंदू राजा लोग मुसलमानों का साथ छोड़कर अलग हो गए। परंतु ओड़छे के राजा का छोटा भाई लक्ष्मणसिंह और मौदहा का जागीरदार जयसिंह मुसलमानों की सहायता करते ही रहे। मुहम्मदखाँ बंगश के पास बहुत सेना न थी, इसलिये उसने सेना और सामान मँगवाया परंतु वह समय पर न पहुँच सका। मराठों ने अपनी सेना की बहुत उत्तम व्यवस्था की थी। मराठों के सरदार विट्ठल शिवदेव चिंचूरकर और मल्हारराव होल्कर अपनी अपनी सेना का विभाग लिए भिन्न भिन्न स्थानों पर नियत थे। यह युद्ध वि० सं० १७८७ में जैतपुर के समीप ही हुआ।

---

(१) महाराजा छत्रसाल ने बाजीराव को पत्र दोहों में लिखा था। उन दोहों में से निम्न-लिखित दोहा बहुत प्रसिद्ध है—

जो गति भई गजेंद्र की, सो गति पहुँची आज।
बाजी जात बुँदेल की, राखो बाजी लाज॥

बाजीराव का हृदय इस पत्र को पढ़ने से द्रवित हो गया और उन्होंने राजा छत्रसाल को अपनी बड़ी सेना लेकर इस समय उचित सहायता दी।

जैतपुर का किला बंगश ने अपने अधिकार में कर लिया था। मराठों से युद्ध इसी स्थान के निकट हुआ। बुंदेलों को मराठों की सहायता से बहुत उत्तेजना मिली और ये लोग बड़ी वीरता से लड़े। इसमें छत्रसाल के पुत्रों ने भी बड़ी वीरता दिखाई। मराठों ने अपनी सेना के कई विभाग करके कई ओर से मुसलमानों पर आक्रमण किया और मुसलमानों की सेना को बहुत हानि पहुँचाई। चौथे दिन मुहम्मदखाँ बंगश ने अचानक मराठों की सेना पर आक्रमण किया परंतु मराठे लोग इस समय एक पहाड़ी के निकट छिप गए और ज्योंही मुसलमान सेना वापिस हुई त्योंही मराठों ने उस पर आक्रमण करके उस सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया। इस प्रकार कई दिनों तक युद्ध होता रहा। मराठों ने किला घेरकर मुसलमानों की रसद बंद कर दी। यह दशा होते हुए भी मुसलमान दो मास तक किले में रहे आए और मराठों से बराबर लड़ते रहे। प्रत्येक बार मुसलमान सेना बलहीन होती गई। मुहम्मदखाँ बंगश का पुत्र कायमखाँ अपनी सेना लेकर सहायता के लिये आ पहुँचा। इस समय बुंदेले अजनर के समीप पहुँचे और उस ओर मुहम्मदखाँ बंगश की जो सेना बढ़ी थी उसे हराकर जैतपुर के किले की ओर भगा दिया। मराठों ने जाकर कायमखाँ से युद्ध किया और उसे वहाँ पर हराकर भगा दिया। फिर मराठे और बुंदेले दोनों ही जैतपुर के किले को मुसलमानों से ले लेने के लिये तत्पर हो गए और दोनों ने किले के ऊपर आक्रमण करना आरंभ कर दिया। मुसलमान लोग जैतपुर के किले के भीतर से ही गोली चला रहे थे। जब किले के भीतर का अनाज-पानी खर्च हो गया तब किले के भीतर के मुसलमानों ने सेना के गाय, बैल और ऊँट मार मारकर खाना आरंभ कर दिया। अपनी जान बचाने के लिये जिन मुसलमानों ने अपने हथियार छोड़कर मराठों से अभयदान माँगा उन्हें बाजीराव

पेशवा ने क्षमा प्रदान करके छोड़ दिया। इसी समय कुछ थोड़े से पठानों की सहायता से मुहम्मदखाँ बंगश जैतपुर का किला छोड़कर भाग गया और मराठों और बुंदेलों ने उस किले पर अधिकार कर लिया। फिर वह किला छत्रसाल महाराज के अधिकार में रहा[1]। इस प्रकार इस बड़े युद्ध में भी मराठों की सहायता से बुंदेलों को विजय-श्री प्राप्त हुई। इस किले के लेने में छः मास लगे थे।

अध्याय २२

छत्रसाल महाराज का राज्य

१—राजा छत्रसाल बाजीराव पेशवा पर बहुत प्रसन्न हुए। बाजीराव पेशवा का अद्भुत पराक्रम देख वीर छत्रसाल को बहुत हर्ष हुआ। राजा छत्रसाल ने बाजीराव को पन्ना में बुलाया और वहाँ उनका हर प्रकार से सम्मान किया। इस समय राजा छत्रसाल वृद्ध हो गए थे। उन्होंने बाजीराव पेशवा को हृदय से लगा लिया और उनकी आँखों से आनंदाश्रु बहने लगे। राजा छत्रसाल का हार्दिक प्रेम देखकर बाजीराव पेशवा को भी बड़ा हर्ष हुआ। भरे दरबार में राजा छत्रसाल ने बाजीराव को अपना पुत्र माना।

२—जिस समय राजा छत्रसाल ने पेशवा को सहायता के लिये बुलाया था उस समय राजा छत्रसाल ने पेशवा को वचन दिया था कि वे पेशवा को भी अपना एक पुत्र समझेंगे और पेशवा को अपने राज्य का एक भाग देंगे। जब पेशवा युद्ध जीतकर पन्ना पहुँचे तब पेशवा को अपने भाग की फिकर पड़ गई। राजा छत्रसाल के कई पुत्र

(१) कहा जाता है कि मुहम्मदखाँ बंगश स्त्री का वेश धारण करके किले से भागा था।
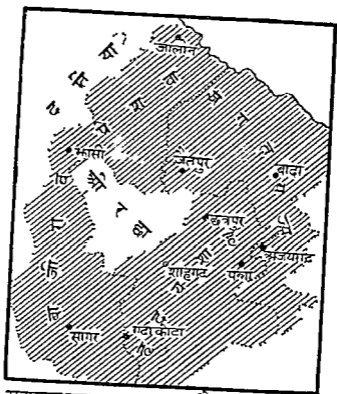
महाराज छत्रसाल का राज्य और उसके विभाग

[अ० २३

थे। उस समय राजाओं में कई रानियों के साथ ब्याह करने की अनुचित प्रथा थी। इस प्रथा के अनुसार राजा छत्रसाल के भी कई ब्याह हुए थे। परंतु समय को देखकर राजा छत्रसाल को इस बात में दोषी मान लेना ठीक नहीं। कई भले लोग अपनी पुत्रियों का, उनकी रक्षा के निमित्त, किसी प्रसिद्ध वीर के साथ ब्याह कर देते थे और वीर का यह कर्तव्य समझा जाता था कि वह उस विवाह संबंध को स्वीकार करे। इस प्रकार राजा छत्रसाल के कई विवाह हुए थे और इनकी १७ रानियाँ थीं। मराठे शासकों और सरदारों में भी यही प्रथा थी। इन रानियों से छत्रसाल के ६९ पुत्र थे। बाजीराव पेशवा को मालूम हुआ था कि राजा छत्रसाल के ५६ पुत्र हैं। संभव है कि उन्हें शेष पुत्रों का हाल मालूम न हुआ हो। पुत्रों की संख्या का हाल जानकर बाजीराव ने सोचा कि यदि राज्य का सत्तावनवाँ हिस्सा मिला तो बहुत ही कम हुआ। इस कारण बाजीराव चाहते थे कि ऐसे हर्ष के प्रसंग पर राजा छत्रसाल कोई बड़ा हिस्सा देने का वचन दे दें। जब राजा छत्रसाल ने बाजीराव को अपना पुत्र कहा और बाजीराव को पुत्रों में बैठने की आज्ञा दी तब बाजीराव पेशवा को संतोष न हुआ। उन्होंने चातुर्य से भरे वाक्यों में कहा कि "महाराज आप के ५६ पुत्र हैं इनमें मैं कहाँ बैठूँ"। राजा छत्रसाल बाजीराव के वाक्यों का अर्थ समझ गए। वे स्वयं बहुत उदार थे। उन्हें अधिक राज्य का लालच न था और वे चाहते थे कि उनके पुत्र भी लालची न होवें। जो कुछ राज्य उन्होंने लिया था वह स्वार्थ-बुद्धि से नहीं किंतु हिंदू जनता की रक्षा के हेतु परमार्थ-बुद्धि से लिया था। वे जानते थे कि महाराष्ट्र लोग हिंदू धर्म की रक्षा उसी प्रकार कर सकेंगे जिस प्रकार कि बुंदेले करते हैं। बाजीराव पेशवा की योग्यता के विषय में भी उन्हें कोई संदेह न था। उन्होंने तुरंत बाजीराव पेशवा को उत्तर दे दिया

कि "मेरे पहले पुत्र हृदयशाह, दूसरे जगतराज और तीसरे आप हैं। आप इनके ही समीप बैठिए।" बाजीराव राजा छत्रसाल का अर्थ समझ गए और राजा छत्रसाल से राज्य का तीसरा भाग देने की प्रतिज्ञा लेकर बहुत प्रसन्न हुए। इनके पश्चात् वृद्ध छत्रसाल महाराज ने स्वयं उठकर बाजीराव पेशवा को अपने पुत्र जगतराज के पास बैठाया। उन्हें उत्तम वस्त्र और नजराने दिए और उनका बड़ा मान किया। फिर हृदयशाह ने और जगतराज ने पेशवा को अपना भाई मानकर उनसे पाग बदली। इसके पश्चात् महाराज छत्रसाल का दरबार बरखास्त हुआ। बाजीराव पेशवा फिर थोड़े दिन पन्ना में रहे और महाराज छत्रसाल की आज्ञा लेकर दक्षिण की ओर चले गए।

३—अब महाराज छत्रसाल को यवनों से कोई डर न रहा और वे स्वतंत्रतापूर्वक राज्य करने लगे। महाराज छत्रसाल पृथ्वी के उन थोड़े से वीर पुरुषों में से हैं जिन्होंने अपनी आत्मशक्ति के भरोसे पर ही असंभव दिखनेवाले कार्य कर डाले हैं। जिस समय महाराज छत्रसाल के पिता मरे उस समय महेवा जागीर की आमदनी के सिवाय कुछ न था। महाराज छत्रसाल के पिता चंपतराय ने अपने बाहुबल से काल्पी की जागीर ले ली थी, परंतु ओड़छेवालों ने यह जागीर भी चंपतराय के हाथ में न रहने दी। चंपतराय को उनके मरते समय वही महेवा की जागीर के हिस्से की आय मिलती थी। जो आय चंपतराय के हिस्से में पड़ती थी वह ३५०) वार्षिक थी। चंपतराय के मरने पर यह इनके पुत्रों में बाँटी गई और छत्रसाल के हिस्से में तीन आने रोज की आमदनी पड़ी होगी। इतनी आमदनीवाले पुरुष का छत्रपति राजा हो जाना पृथ्वी पर आश्चर्यजनक बात है। महाराज छत्रसाल ने संसार को दिखला दिया कि मनुष्य के लिये कोई बात असंभव नहीं। महाराज

छत्रसाल को उनके कुटुंबियों ने मुगलों के विरुद्ध युद्ध न करने की सलाह दी। परंतु महाराज छत्रसाल को अपनी आत्मा पर विश्वास था और जो कार्य उन्होंने हाथ में लिया था वह पवित्र था। इस कार्य के लिये महाराज छत्रसाल ने जो संकल्प किया वह भी दृढ़ रहा और अंत में ईश्वर ने उन्हें विजय दी।

४—इस समय भारतवर्ष को यवनों के दुराचारी शासन से मुक्त करने के कार्य में जो वीर पुरुष सफल हुए उनमें महाराज छत्रसाल और महाराज शिवाजी अग्रगण्य हैं। दोनों का जीवन भी अधिकतर समान ही रहा। जिस प्रकार शिवाजी एक मराठे जागीरदार के पुत्र थे उसी प्रकार छत्रसाल भी एक बुंदेले जागीरदार के पुत्र थे। यवनों के दुराचार से प्रजा विचलित हो गई थी। दोनों ही वीरों ने प्रजा को इस दुराचार से मुक्त करने का प्रण बाल्यकाल में ही कर लिया था। दोनों वीर बालकपन में रामायण और महाभारत की कथाओं को बड़े चाव से पढ़ते थे। उन महाकाव्यों में योद्धाओं के पराक्रम का वर्णन सुनकर दोनों के ही हृदय में उत्साह भर आता था। दोनों वीरों ने अपने पराक्रम का परिचय बाल्यावस्था से ही दिया। शिवाजी ने मावले लोगों को एकत्र किया और छत्रसाल ने बुंदेलों को लेकर अपने पिता को छोटी उमर में ही सहायता दी। जिस प्रकार महाराज शिवाजी ने मुसलमानों की सत्ता का नाश कर दक्षिण में स्वतंत्र महाराष्ट्र राज्य की स्थापना की उसी प्रकार महाराज छत्रसाल ने बुंदेलखंड को यवनों के आधिपत्य से छुड़ाकर बुंदेलों का स्वतंत्र राज्य स्थापित किया। दोनों वीरों के हृदय में दया, उदारता, धैर्य और स्वधर्माभिमान था तथा दोनों वीरों ने अपने शरीर को देश, जाति और धर्म की वेदी पर अर्पण कर दिया।

५—दोनों वीरों को, ईश्वर की कृपा से, धर्मगुरु भी समान ही मिल गए थे। महाराज छत्रसाल के धर्मगुरु प्राणनाथजी महाराज थे।

ये जामनगर के खेमजी नामक एक धनी सेठ के लड़के थे और इनका पहला नाम मेहराज ठाकुर था। एक धनी सेठ के पुत्र होने पर भी ये सदा ईश्वर की आराधना में लगे रहते थे। पीछे से इन्होंने वैराग्य ले लिया। वैराग्य ले लेने के पश्चात् इनका नाम प्राणनाथ हुआ। प्राणनाथजी के गुरु का नाम देवचंद था। प्राणनाथजी सदा छत्रसाल की सहायता करते रहते और उनके पवित्र कार्य में उत्तेजना देते रहते थे। प्राणनाथजी आजकल बुंदेलखंड में जूदेव के नाम से प्रख्यात हैं। इनकी समाधि पन्ना के निकट बनी है। इसी प्रकार महाराज शिवाजी के गुरु रामदास समर्थ थे। इन्होंने भी शिवाजी को देश स्वतंत्र करने के पवित्र कार्य में सदा सहायता दी। महाराज छत्रसाल और बाबा प्राणनाथ का बुंदेलखंड में उसी प्रकार का आदर है जिस प्रकार कि देवताओं का होता है। इसी प्रकार महाराष्ट्र में शिवाजी और रामदासजी का आदर है[1]।

६—महाराज छत्रसाल का राज्य चंबल नदी तक था। कालपी, जालौन, कौंच और एरछ इसी राज्य में थे। झाँसी पहले ओड़छे के राज्य में थी परंतु जब बहादुरशाह ने छत्रसाल महाराज से संधि की तब झाँसी छत्रसाल महाराज के पास आ गई थी। दक्षिण में महाराज छत्रसाल का राज्य नर्मदा तट तक पहुँचा था। सिरोंज, गुना, धामौनी, गढ़ाकोटा, सागर, बाँसा, दमोह, मैहर—ये सब छत्रसाल महाराज के राज्य में थे। पूर्व में राज्य की सीमा टोंस नदी थी। कालिंजर और चित्रकूट ये सब महाराज छत्रसाल के राज्य में थे।

---

(१) महाराज छत्रसाल के विषय में निम्न-लिखित कहावतें प्रचलित हैं—

कृष्ण, मुहम्मद, देवचंद, प्राणनाथ, छत्रसाल।
इन पचन को जो भजे दु:ख हरे तत्काल॥

और

छत्रसाल महाबली। रहे सदा भली भली॥

उत्तरीय सीमा यमुना नदी थी। महाराज छत्रसाल का राज्य कीर्ति-वर्मा चंदेल के राज्य से बड़ा था। महाराज छत्रसाल प्रजा का पालन बड़े प्रेम से करते थे। प्रजा उनसे बहुत संतुष्ट थी। यवनों के संसर्ग के कारण बुंदेलखंड में भी पर्दा की प्रथा बढ़ रही थी, परंतु महाराज छत्रसाल ने इसे रोकने का प्रयत्न किया और स्त्रियों को बिना पर्दा के निकलने का हुक्म दिया और स्त्रियों के प्रति दुर्व्यवहार करनेवालों के लिये कठिन दंड की व्यवस्था की।

७—महाराज छत्रसाल के राज्य में प्रत्येक कार्य महाराज की ही अनुमति से होता था। सारे भारतवर्ष में इस समय शासक के कहने के ही अनुसार शासन होता था। मंत्रिमंडल को कोई विशेष अधिकार न थे। तात्त्विक दृष्टि से यही हाल बुंदेलखंड और महाराष्ट्र का भी था। परंतु छत्रसाल महाराज के समान उदार और प्रजापालन में तत्पर शासक इस संसार में थोड़े ही रहे होंगे। छोटे से छोटा मनुष्य भी महाराज के पास जाकर अपनी फर्याद सुना सकता था। यह कितना कठिन कार्य था, यह पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं।

८—राजदरबार मे मंत्रिमंडल रहता था। राजा अपने इच्छानुसार मंत्रिमंडल से सहायता लिया करते थे। इस मंत्रिमंडल में प्रत्येक जाति के दो प्रतिष्ठित पुरुष रहते थे। तहसीलों में भी जाति की सभाएँ थीं और इन जातियों की सभाओं को अपनी जाति के मनुष्यों को दंड देने के अधिकार थे। इन जातियों की सभाएँ बुंदेलखंड के कई स्थानों में अब भी वर्तमान हैं और इन सभाओं का निर्णय राजदरबार में भी माना जाता है।

९—महाराज छत्रसाल के समय में बुंदेलखंड में कई प्रसिद्ध कवि हो गए हैं जिन्होंने हिंदी के साहित्य को उत्तम कविताओं से विभूषित किया है। इन कवियों की भाषा बुंदेलखंडी ही थी, परंतु किसी

किसी कवि की भाषा में व्रजभाषा का मिश्रण है। कवि केशवदास महाराज छत्रसाल के समय के पहले के थे। इनका मान ओड़छे में था। इनकी बनाई रामचंद्रिका नामक पुस्तक छत्रसाल महाराज को बहुत प्रिय थी। केशवदास का जन्म विक्रम संवत् १६१२ में हुआ और उनका देहांत १६७४ में हुआ। केशवदास के बड़े भाई बलभद्र मिश्र भी बुंदेलखंड के कवियों में हैं। ये छत्रसाल महाराज के दरबार में कुछ दिन रहे हैं[1]।

१०—चिंतामणि कवि प्रसिद्ध कवि भूषण के बड़े भाई थे। इनका जन्म विक्रम संवत् १६६६ में हुआ था। ये बुंदेलखंड में कम रहे और बाहर अधिक रहे। नागपुर के भोंसला मकरंदशाह के यहाँ भी ये कवि रहे हैं।

११—कविराज भूषण कानपुर के समीप तिकवाँपुर नामक ग्राम में उत्पन्न हुए थे। इनका जन्म विक्रम संवत् १६७० में हुआ होगा। ये महाराज छत्रसाल के यहाँ और महाराज शिवाजी के दरबार में रहा करते थे। इनकी कविता में बुंदेलखंडी और व्रजभाषा का मिश्रण है, परंतु भाषा अधिकतर बुंदेलखंडी ही है। इनकी कविताओं में शिवाबावनी और छत्रसालदशक नामक ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। शिवाबावनी महाराज शिवाजी के यश के वर्णन में लिखी गई है और छत्रसालदशक में महाराज छत्रसाल के यश का वर्णन है। भूषण की कविताओं में वीररस की ही प्रधानता है[2]। भूषण की मृत्यु संवत् १७७२ में हुई।

---

(१) बलभद्र मिश्र ने छत्रसाल की प्रशंसा में निम्न-लिखित पद्य बनाया था—

नहिं तात न भ्रात न साथ कोऊ नहिं द्रव्यहु रंचक पास हती।
नहिं सेनहु साज समाज हती नहिं कौनऊ और सहाय हती॥
कर हिम्मत किस्मत आपनी सों लई धरती और बढ़ाई रती।
बलभद्र भने लख पाठक-वृंद हिए में गुनो छत्रसाल गती॥

(२) भूषण की कविताओं के उदाहरण दिए जा चुके हैं।

१२—मतिराम भूषण कवि के सगे भाई थे। इनका जन्म संवत् १६७४ का है और इनकी मृत्यु विक्रम संवत् १७७३ में हुई। ये बूँदी के महाराज भावसिंह के यहाँ रहा करते थे। इनकी कविताओं में शृंगार रस ही अधिक है। ये बुंदेलखंड में भी रहे हैं और महाराज शाहू के ऊपर भी इन्होंने कविताएँ की हैं। महाराज शाहू के ऊपर जो कविताएँ इन्होंने की हैं वे वीररस की हैं[1]। बूँदी के महाराज भावसिंह के ऊपर इनकी कई कविताएँ हैं। इनकी कविताओं की भाषा भी बुंदेलखंडी है।

१३—गोरेलाल पुरोहित (उपनाम लाल कवि) वीररस के ही कवि थे। इनका जन्म-काल विक्रम संवत् १७१४ के लगभग माना जाता है। ये महाराज छत्रसाल के दरबार में रहते थे और इनकी मृत्यु महाराज छत्रसाल के एक युद्ध में हुई। इन्होंने छत्रप्रकाश नामक पुस्तक दोहे चौपाइयों में लिखी है[2]। इनकी भाषा भी बुंदेलखंडी है।

१४—नेवाज कवि महाराज छत्रसाल के समय में हुए थे। ये जाति के ब्राह्मण थे। इनका जन्म अंतर्वेद के किसी स्थान में,

---

(१) शाहू के यश-वर्णन में मतिराम कवि का निम्न-लिखित कवित्त प्रसिद्ध है—

राखी हिंदुवानी औ हिंदुन को तिलक राखो,
स्मृति औ पुराण राखे वेद विधि सुनी मैं।
राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की,
धरा मे धरम राखो राखो गुन गुनी मैं॥
कहै मतिराम जीत हद मरहट्टन की,
देश देश कीरत बखानी पुन पुनी मैं।
साहु से सपूत सिवराज समसेर तेरी,
दिल्ली दल दाब के दिवाल राखी दुनी मे॥

(२) छत्रप्रकाश के पद्य लिखे जा चुके हैं।

संवत् १७३९ के लगभग, हुआ। ये रसिक कवि थे। इनके ग्रंथों में शकुंतला नामक ग्रंथ प्रसिद्ध है।

१५—महाराज छत्रसाल के दरबार में कुछ बाहर के कवि भी आए थे। कवियों का महाराज छत्रसाल के दरबार में बहुत आदर होता था, इसलिये अनेक कवि आया करते थे और पुरस्कृत तथा प्रसन्न होकर जाया करते थे। जो कवि इस दरबार में आए उनमें पुरुषोत्तम, पंचम और लालमणि के बनाए कवित्त महाराज छत्रसाल की प्रशंसा में मिलते हैं।

१६—महाराज छत्रसाल में समकालीन अनन्य नाम के एक प्रसिद्ध कवि हो गए हैं। अनन्य दतिया राज्य के अंतर्गत सेंहुड़ा के निवासी और जाति के कायस्थ थे। दतिया के राजा दलपतराय के पुत्र और सेहुँड़ा के जागीरदार पृथ्वीचंद के ये गुरु थे। इनका दूसरा नाम अक्षर अनन्य भी है। इनका जन्म संवत् १७१० के लगभग हुआ। महाराज छत्रसाल इनकी कविताओं को पसंद करते थे और एक बार इनको महाराज ने दरबार में भी बुलाया था। पर सुनते हैं कि अनन्य कवि न आए। अनन्य कवि की कविता में तत्त्वज्ञान और धर्मोपदेश भरा रहता था। दुर्गासप्तशती का हिंदी-अनुवाद सबसे पहले अनन्य कवि ने ही किया था। दतिया राज्य से अनन्य कवि को एक जागीर मिली थी। इस जागीर पर अब भी अनन्य कवि के वंशजों का अधिकार है। अनन्य कवि की पुस्तकों में ज्ञानपचासा, राजयोग और विज्ञानयोग प्रसिद्ध हैं[1]। इनसे और महाराज छत्रसाल से भी इसी विषय पर

---

(१) अनन्य कवि की कविताएँ उत्तम होने से उनके उदाहरण आगे दिए जाते हैं—

प्रश्नोत्तर[1] हुए थे।

राग न द्वेष न हर्ष न सोक न बंध न मोक्ष की आस रही है।
वैर न प्रीति न हार न जीत न गारि न गीत सुरीति गही है॥
रक्त विरक्त न मान कछू शिवशक्ति निरंतर जोति लही है।
पूरन ज्ञान अनन्य भने अवधूत अतीत की रीति यही है॥
मूरख के प्रतिमा परमेसुर बालक रीति गही सु लही है।
उत्तम जोति सुरूप विचार सु आतम ध्यान में बुद्धि दई है॥
एक चेतत्त्व की मांड़ सबै कह केवल ब्रह्म बसे सु वही है।
पूरन ज्ञान अनन्य भने सरवज्ञनि को शिवशक्ति मई है॥
कोउ कहैं बैकुंठ बसैं प्रभु कोउ कहैं निज धामहु लीचे।
कोउ कहैं ब्रह्मांड परे परब्रह्म सबै कहे सो अवधीचे॥
वस्तु प्रत्यक्ष अनन्य भने जिमि आपुहि गोप्य करे दृग मीचे।
व्योम समान अखंडित ईश्वर जैसोई ऊपर तैसोई नीचे॥
हरि में हरि सों सुर में सुर सों हर में हर सों सुखदायक है।
नर में नर सों तरु में तरु सों घर में घर सों घर घायक है॥
घट में घट सों है अनन्य भने घट में घट सों घट नायक है।
हममें हमसो तुममें तुम सो सब में सबसो सब लायक है॥
इक निर्गुन रूप निरूपत हैं इक सगुन रूप ही देखत हैं।
इक जोति सुरूप बखान करें इक सून्य सुरूपहिं लेखत हैं॥
इक मानत हैं अवतारन को करता विधि एक बिसेखत हैं।
सरवज्ञ सो धन्य अनन्य भने प्रभु में सबको सब देखत हैं॥
जनि वेद पुरानन में भरमो जनि संत असंतन सों उरझो।
जनि इंद्रिन के वश भूल रहो जनि राजस तामस में सुरझो॥
लहि आतम ब्रह्म प्रमोद रहो जनि जीव दसा गहि के उरझो।
करि तत्त्व विचार अनन्य भने क्रम ते इन कर्मन तें सुरझो॥
हरि में हर में सुर में नर में गिरि में तरु में घर मंडित है।
तन में मन में धन में जन में बन में घर में सुब्रह्मंडित है॥
हम में सब में सु अनन्य भने परिपूरन ब्रह्म अखंडित है।
सब अंगन में सरवज्ञ वहै सरवज्ञ कहै सोइ पंडित है॥

(१) अनन्य के प्रश्न—
धर्म की टेक तुम्हारे बँधी नृप दूसरि बात कहैं दुख पावत।
टेक न राखत हैं हम काहु की जैसे को तैसो प्रमाण बतावत॥

१७—महाराज छत्रसाल स्वयं कवि थे। इन्होंने कृष्णचरित्र

मानै कोउ (जु) भली या बुरी नहिं आसरो काहु को चित्त में ल्यावत।
टेक विवेक तें बीच बड़ो हमको किहि कारण राज बुलावत ॥ १ ॥
जो धरिए हठ टेक उपासन तौ चरचा मे (पुनि) चित्त न दीजे।
जो चरचा में राखिए चित्त तौ ज्ञान विषे हठ टेक न कीजे ॥
जो भरिए उर ज्ञान विचार तौ अक्षर सार क्रिया गुन लीजे।
अक्षर मे क्षर है क्षर है क्षर अक्षर अक्षरातीत कहीजे ॥ २ ॥
प्राणी सबै क्षर रूप कहावत अक्षर ब्रह्म को नाम प्रमानी।
निंद्रत स्वप्न सुषुप्ती जागृति महा तुरीय दशा ठहरानी ॥
क्यों तिहि में सुपनो ब्रह्म भासति छत्र नरेश विचक्षण ज्ञानी।
अक्षर है कि अनक्षर है हम को लिखि भेजवी एक जबानी ॥ ३ ॥
छत्र नरेश विचित्र महा अरु संगति धामी धड़े धड़े ज्ञानी।
आन अखंड स्वरूप की राखत भाषत पूरण ब्रह्म अमानी ॥
क्यों शिशुपाल की ज्योति गई इततें फिर कान्ह में आय समानी।
खंडित है कि अखंडित है हमकों लिखि भेजवी एक जबानी ॥ ४ ॥
नारि तें होत नहीं नर रूप नहीं नर तें पुन नारि बखानी।
जाति नहीं पलटै सुपनै मरेहू तें भूत चुरैल बखानी ॥
क्यों सखियाँ निज धाम की राजि भईं नर रूप सों जाति हिरानी।
वेद सही किधों वाद सही हमको लिखि भेजवी एक जबानी ॥ ५ ॥
जाति नहीं पलटै नर नारि की क्यों सखियाँ नर रूप बखानी।
जो नर रूप भयो तौ भयो पुरुषोत्तम सो ऋतु कैसे के मानी ॥
जो पुरुषोत्तम सों ऋतु होय तौ इतै कित नारिन के रस सानी।
यह द्विविधा में प्रमाण नहीं हमको लिख भेजवी एक जबानी ॥ ६ ॥

महाराज छत्रसाल के उत्तर—

दूर करहु द्विविधा दिल सों अरु ब्रह्म स्वरूप को रूप बखानो।
जागृति सुप्ति सुषुप्ति हु के तजि को तुरिया उनको पहिचानो ॥
तीनहू श्रेष्ठ कहे सब वेद सो पूर्व आपी हमहू ठहरानो।
कारण ज्यों भस्मासुर तारण कामिनि सो प्रभु आप दिखानो ॥ १ ॥
वाद भयो पुरुषोत्तम सों अरु नेह बढ़ावन कों उर आनी।
ब्रह्म प्रताप तें यों पलटै तनु ज्यों पलटै सब रंग में पानी ॥

नाम का एक काव्य ग्रंथ लिखा है। इनके लिखे कई राजनीति से भरे पत्र भी हैं जो कविता में लिखे गए हैं[1]।

जो नर नारि कहै हमको अजहूँ तिनकी मति जाति हिरानी।
भूत चुरैल अहैं सब झूठ महा हमसों सुन लीजिए एक जबानी॥ २॥
एक समय पतिनी पति सों हठ पूछी यही निज धाम की बानी।
कही नहीं करि देन कही भए सोरहु अंश कला के निधानी॥
इत तें शिशुपाल की ज्योति गई उत तें फिर कृष्ण में आनि समानी।
खंडित ऐसे अखंडित हैं हम सों सुनि लीजिए एक जबानी॥ ३॥
राखत हैं हम टेक उपासन बात यथारथ वेद बखानी।
पीवत हैं चरचा करि अमृत बात विलासन के रस सानी॥

(१) महाराज की कविता के समयानुकूल उदाहरण तो दिए जा चुके हैं तथापि यहाँ पर भी कुछ लिखना अनुचित न होगा।

तुम घनश्याम जन याचक मयूरगण तुम पयोद स्वाती हम चातक तुम्हारे हैं।
तुम हौ कृष्णचंद्र मेरे लोचन-चकोर तुम जग तारे हम छतारे कहि उचारे हैं॥
मीत मित्र जाके तुम चक्रवाक राखे कर प्रजवसुधा के गोप गोपी जीववारे हैं।
तुम गिरिधारी हम तुम्हारे व्रतधारी तुम दनुज प्रहारे हम यवन प्रहारे हैं॥
कहैं छत्रसाल मेरो छत्रपन राखो इन अग्नि प्रण राखो सर्वत्र प्रण राखो है।
जंग जुरे यवन जमातन सों राखौ ढाल इन पट्टिहारन सों राखौ बाँधि नाको है॥
विरद बिलंद गज गीध प्रह्लाद राखौ द्रुपदसुता को राखौ बाँधि के पताको है।
कौशपति राखौ रावौ शरण विभीषण को अमित अखंड जागे जुगन जुग साको है॥

माली के सम नृप छता सो संपति सुख लेय।
उत खाँदे रोपहिं थलहिं लघुहिं बड़ो करि देय॥
लघुहिं बड़ो कर देय लेय फूले फल पाके।
फूटे देय निकारि मिलै फूटे बहुधा के॥
नत उन्नत करि देहिं करहिं उन्नत कहँ खाली।
कंटक छुद्र निकासि और सब सींचहिं माली॥
अपनो मनभायो कियो गहि गोरी सुरतान।
सात बार छोड़ो नृपति कुमति करी चहुवान॥
कुमति करी चहुवान ताहि निंदहिं सब कोऊ।
असुर बैर इक बार धरि १ काढ़े दग दोऊ॥
दोऊ दीन को बैर आदि अंतहिं चलि आयो।
कहि नृप छता विचार कियो अपनो मनभायो॥

१८—महाराज छत्रसाल की राजधानी कुछ दिनों तक मऊ के निकट महेवा में रही, तत्पश्चात् पन्ना में हुई। छतरपुर नामक नगर महाराज छत्रसाल का बसाया हुआ है। यह नगर बाबा लालदास नाम के एक संत के आज्ञानुसार महाराज छत्रसाल ने बसाया था।

विधि करतव्यता की करामात जेती तेती सब व्रजराज जू के हाथ सुनियतु हैं।
हाथ व्रजराज जू को भक्ति के अधीन सुन्यौ भक्ति नित सत्य के अधीन गुनियतु हैं॥
धर्म के अधीन सत्य धर्म कर्म के अधीन कर्म वस छत्रसाल बयो लुनियतु है।
सुनत सुनावत में लोक कहनावत मे जैसो रचवार तैसो साँचो चुनियतु हैं॥
ग्राह ने गजब करि गज को ज्यों ग्रस्यौ आय छूटत छुड़ायौ नाहिं गयो हारि बल तें।
लोप भयो कोप को कलाप ओप चोप गयौ करिहैं पयान प्रान आशु याही पल में॥
कहैं छत्रसाल करी कर लै कमल धायौ कंजनैन कृष्ण किधौं कह्यो केलि जलतें।
करही के कमल तें कै कर के कमल तें कमल के नल तें कै कमल के दल तें॥
चाहो धनधाम भूमि भूषन भलाई भूरि सुजस सहूर सुत रैयत को लालियो।
तोड़ादार घोड़ादार बीरन सों प्रीति करि साहस सों जीत जंग खेत तें न चालियो॥
सालियो उदंडिन को दंडिन को दीजो दंड करिकै घमंड घाव दीन पै न घालियो।
विनती छत्रसाल करै होय जो नरेश देश रैहै न कलेस लेस मेरो कह्यो पालियो॥
सुजससो न भूषन विचारसो न मंत्री त्यों साहस सो शूर कहूँ ज्योतिषीन पौनसो।
संयमसी औषधी न विद्यासो अटूटधन नेहसो न बंधु औदयासो पुन्य कौनसो॥
कहैं छत्रसाल कहूँ सीलसो न जीतवान आलससो बैरी नाहिं मीठो कछु नौनसो।
सोकसी न चोट है न भक्ति ऐसी ओट कहूँ रामसो न जाप और तपहै न मौनसो॥
जाके वीर एकएक कालतें कराल हते जानेगहि काल आनि पाटीतें बँधायो है।
कुंभकर्न भ्रात जाकी धाकतें सकात लोक पूत इंद्रजीत इंद्रजीति कै कहायो है॥
कहैं छत्रसाल इंद, वरुन, कुबेर, भानु जोरि जोरि पानि आनि हुकुम मनायो है।
जौन पाप रावनके भौनामें न छौना रह्यो सौन पाप लोगनु खिलौना करिपायो है॥
राधाके सनेहहित गेह तजि आयो इतै और कहा कहौं गाय विपिन चरायो मैं।
जायो जौन जनक तौन तनिक न मान्यो मैं राधा के सनेह नैदलालहू कहायो मैं॥
राधाके सनेह मेहनायकको जीत्यो जाय कहैं कृष्ण छत्रसाल गिरि को उठायो मैं।
मोकों कहै लाखबार भाखि,भाखि साखि दैदै राधाविनुताहि नैकभूलिहू न भायो मैं॥

अध्याय २४

महाराज छत्रसाल के पश्चात् राज्य के विभाग

१—महाराज छत्रसाल का परलोक-वास विक्रम संवत् १७८८ में, जेठ बदी ३ बुधवार ता० १२ मई सन् १७३१ को, हुआ था। महाराज छत्रसाल के बहुत से पुत्र थे, परंतु महाराज के आदेशानुसार सब राज्य के अधिकारी न हुए[1]। महाराज छत्रसाल की मृत्यु के समय बाजीराव पेशवा भी पन्ना पहुँच गए थे। इनको महाराज छत्रसाल ने अपने राज्य का तीसरा भाग देने का वचन दिया था। शेष दो भाग हृदयशाह और जगतराज को मिले।

---

(१) महाराज छत्रसाल के पुत्रों के नाम ये हैं—(१) हृदयशाह (हिरदेसाह), (२) जगतराज, (३) पदमसिंह, (४) भारतीचंद, (५) हमीर, (६) माधोसिंह, (७) देवीसिंह, (८) खानजू, (९) भगवंतराय, (१०) मरजादसिंह, (११) तेजसिंह, (१२) शंभुसिंह, (१३) दुरजनसिंह, (१४) गोविंदसिंह, (१५) केशवराय, (१६) धीरजमल, (१७) सालमसिंह, (१८) अर्जुनसिंह, (१९) करनजू, (२०) चतुर्भुज, (२१) नोनेदिवान, (२२) कुँअर, (२३) अनूपसिंह, (२४) दलपतराय, (२५) किसनसिंह, (२६) मानसिंह, (२७) राजाराम, (२८) अनुरुद्धसिंह, (२९) शिवसिंह, (३०) खानजहान, (३१) नवलसिंह, (३२) अनंतसिंह, (३३) केसरीसिंह, (३४) वदेतसिंह, (३५) हिम्मतसिंह, (३६) मानशाह, (३७) पूरनमल, (३८) दरयावसिंह, (३९) गधर्वसिंह, (४०) श्यामसिंह, (४१) बरजोरसिंह, (४२) खूबसिंह, (४३) रूमसिंह, (४४) विशंभरसिंह, (४५) पहलवानसिंह, (४६) बलवंतसिंह, (४७) हनुमतसिंह, (४८) मुकुंदसिंह, (४९) शमशेर बहादुर, (५०) रानासिंह, (५१) उमरावसिंह, (५२) कमोदसिंह, (५३) दिनदूला, (५४) गाजीसिंह, (५५) मोहनसिंह, (५६) भीमसिंह, (५७) दलसिंह, (५८) देवसिंह, (५९) सावंतसिंह, (६०) अंगदजू, (६१) रायचंद, (६२) जुरावनसिंह, (६३) फूलसिंह, (६४) अचलसिंह, (६५) खेलसिंह, (६६) पर्वतसिंह, (६७) सहायसिंह और (६८) मिर्जा राजा।

हृदयशाह को पन्ना, मऊ, गढ़ाकोटा, कालिंजर, शाहगढ़ और इनके आसपास का इलाका मिला। हृदयशाह के राज्य की आमदनी उस समय ४२ लाख रुपए की थी। जगतराज को राज्य का दूसरा भाग मिला जिसकी वार्षिक आय उस समय ३६ लाख रुपए थी। जगतराज के हिस्से में जैतपुर, अजयगढ़, चरखारी, बिजावर, सरीला, भूरागढ़ और बाँदा आए। राज्य का तीसरा भाग बाजीराव पेशवा को मिला। पेशवा के हिस्से की वार्षिक आय उस समय ३३ लाख थी। पेशवा के हिस्से में काल्पी, हटा, हृदयनगर, जालौन, गुरसराय, झाँसी, सिरोंज, गुना, गढ़ाकोटा और सागर आए। इनके सिवाय छोटी छोटी जागीरें भी दी गई थीं।

(इंपीरियल गजेटियर मे तीनों हिस्से क्रमानुसार ३९, ३१ और ३२ लाख के बतलाए गए हैं।)

इस समय बाजीराव पेशवा और महाराज छत्रसाल के पुत्रों के बीच ये ठहराव हुए थे।

(१) दोनों भाई जगतराज और हृदयशाह, चंबल और यमुना के उस पार का प्रांत छोड़कर सब स्थानों में युद्ध के लिये बाजीराव के साथ जावेंगे और जो लूट में मिलेगा उसे बराबर बाँटेंगे।

(२) यदि बाजीराव दक्षिण के किसी युद्ध में लगे हों तो दोनों बुंदेले भाइयों को बुंदेलखंड भर की दो माह तक रक्षा करनी होगी।

(३) छत्रसाल महाराज ने बाजीराव को पुत्र के समान माना। इसलिये बाजीराव भी हृदयशाह और जगतराज को भाई के समान मानेंगे।

ओड़छे का राज्य छत्रसाल महाराज के अधिकार में न था। ओड़छे के राज्य को प्राचीन बुंदेलावंश के शासक से निकाल लेना छत्रसाल महाराज ने ठीक न समझा। ओड़छे के शासक कभी

तो छत्रसाल महाराज के मित्र रहे और कभी वे भी मुसलमानों से मिल जाते थे।

महाराज हृदयशाह महाराज छत्रसाल की राजधानी के नगर के शासक थे। इन्होंने महाराज छत्रसाल की सेज के निकट एक समाधि बनवाई। यहाँ पर एक पुजारी भी नियत किया और उसके खर्च के लिये सिंगरावन नाम का एक गाँव लगा दिया। यह गाँव अब छतरपुर राज्य में है। हृदयशाह गढ़ाकोटा को बहुत चाहते थे। जब महाराज छत्रसाल राज्य करते थे तब हृदयशाह गढ़ाकोटा के किले पर नियत थे। गढ़ाकोटा के निकट का ग्राम हृदयनगर महाराज हृदयशाह का ही बसाया हुआ है। इन्होंने रीवाँ के बघेल राजा अनिरुद्धसिंह के पुत्र अवधूतसिंह पर वि० सं० १७६८ में चढ़ाई की थी किंतु राजा बहुत छोटा था इससे अपने मामा के पास परतापगढ़ (अवध) भाग गया। अंत में बहादुरशाह से फरियाद की गई। उसने हृदयशाह को लिखा। इस पर हृदयशाह ने रीवाँ तो छोड़ दिया, पर बीरसिंहपुर ले ही लिया। यह आजकल पन्ना राज्य में है।

२—महाराज हृदयशाह का देहांत विक्रम संवत् १७९६ में हुआ। इनके ९ पुत्र थे। सबसे बड़े पुत्र का नाम सभासिंह था। सभासिंह ही हृदयशाह के पश्चात् राज्य के अधिकारी हुए। परंतु सभासिंह के छोटे भाई पृथ्वीराज, बाजीराव पेशवा के पास गए और उन्होंने राज्य का भाग लेने के लिये पेशवा से सहायता माँगी। पेशवा ने पृथ्वीराज की सहायता दी और सभासिंह ने विवश होकर शाहगढ़ का इलाका और गढ़ाकोटा पृथ्वीराज को दे दिया। पृथ्वीराज ने बाजीराव पेशवा को सहायता देने के बदले में चौथ देने का वचन दे दिया। इस प्रकार राजघरानों में अब लड़ाइयाँ होने लगीं और राजकुमार राज्य को अपनी संपत्ति समझकर

हिम्मतबहादुर ने अलीबहादुर को साथ लेकर वि० सं० १८४६ में बुंदेलखंड पर आक्रमण कर दिया और वह राजाओं को अपने अधीन कर सनदें देने लगा।

९—धौकलसिंह के मरने पर वि० सं० १८५५ में उनके पुत्र किशोरसिंह राजा हुए। इनके समय में पन्ना रियासत के कई जागीरदार स्वतंत्र राजा बन बैठे। राजा किशोरसिंह को जानवर पालने और शिकार का बड़ा शौक था। अँगरेजों की कंपनी के शासक लार्ड डलहौजी जब इनसे मिलने आए तब ये अपने साथ दो शेर लेकर उनसे मिलने गए थे। इनको देखकर लार्ड डलहौजी डरकर चले गए और इनसे न मिले। किशोरसिंह ने इंद्रदमन नामक तालाब बनवाया और चित्रकूट में नवलकिशोरजी की स्थापना की। इनको अँगरेज सरकार ने वि० सं० १८६४ और १८६८ में राज्य की अलग अलग दो सनदें दीं।

१०—किशोरसिंह के पश्चात् हरिवंशराय राजगद्दी पर बैठे। इनका राज्य-काल वि० सं० १८९७ से आरंभ होता है। हरिवंशराय ने राज्य बहुत बुद्धिमत्ता से किया। इनके समय में राज्य की आमदनी खूब बढ़ी। इनका राज्य ९ वर्ष तक रहा।

११—हरिवंशराय के कोई पुत्र न था। इस कारण इनके पश्चात् इनके छोटे भाई नृपतिसिंह राजगद्दी पर बैठे। इनका राज्यकाल वि० सं० १९०६ से आरंभ होता है। इनके समय में सिपाही-विद्रोह हुआ जिसका हाल आगे लिखा जायगा।

१२—छतरपुर पहले पन्ना राज्य के अधीन था। परंतु जब सरमेदसिंह और उनके भाई के झगड़े चल रहे थे उसी समय छतरपुर एक अलग स्वतंत्र राज्य बन गया। कुँवर सोनेसाह पँवार सरमेदसिंह के सेनापति थे। ये पवायाँ (ग्वालियर रियासत) के पुण्यपाल पँवार के वंशज हैं। कुँवर सोनेसाह के पिता का नाम

जैतसिंह था। सरमेदसिंह ने इन्हें चार लाख की जागीर दी थी जिसमें छतरपुर भी था। सोनेसाह वि० सं० १८४० में सरमेदसिंह के सेनापति हुए थे। इनके मरने पर इनके जेठे पुत्र प्रतापसिंहजू देव ने वि० सं० १८८३ में अपना राज्याभिषेक छतरपुर में कराया और वे स्वतंत्र राजा बन गए। प्रतापसिंह का देहांत वि० सं० १९११ में हुआ। इनके पश्चात् इनके दत्तक पुत्र जगतराज राजगद्दी पर बैठे। सन् सत्तावन का गदर इनके समय में ही हुआ।

१३—महाराज छत्रसाल के दूसरे पुत्र जगतराज को बाँदा, भूरागढ़, चरखारी, अजयगढ़, विजावर और सरीला के परगने मिले थे। इनके समय में मुहम्मदखाँ बंगश ने फिर से जैतपुर पर आक्रमण किया। दलेलखाँ नामक सूर सरदार बंगश की सेना के साथ था। जगतराज को मराठों ने सहायता दी और जगतराज ने दलेलखाँ को युद्ध में हरा दिया। वह युद्ध में मारा गया। दलेलखाँ की वीरता बुंदेलखंड में आज तक प्रसिद्ध है। उसकी हार के बाद बंगश भी हार मानकर लौट गया।

१४—जगतराज के १७ पुत्र थे। सबसे बड़े पुत्र का नाम दिवान सेनापति था[1]। इनसे महाराज जगतराज प्रसन्न न थे। इसलिये कीरतराज को जगतराज ने युवराज बनाया। परंतु जिस समय जगतराज की मृत्यु हुई उस समय इनके तीसरे पुत्र पहाड़सिंह ही इनके पास थे। जगतराज की मृत्यु मऊ में संवत् १८१५ में पूस बदी ७ गुरुवार ता० १४-१२-१८७२ को हुई। पहाड़सिंह ने स्वयं राजा बनना चाहा। इसलिये पहाड़सिंह जगतराज की मृत देह को पालकी में रखकर जैतपुर लाए और सब लोगों से यह कह दिया कि जगतराज बीमार हैं, मरे नहीं हैं। पहाड़सिंह ने ऐसा प्रबंध किया कि जगतराज की मृत देह के पास कोई न जाने पावे

(१) दलीपुर के ठाकुर दिवान सेनापति के वंश के हैं।

धीरे धीरे पहाड़सिंह ने सब राज-कर्मचारियों को अपनी ओर मिला लिया और जब देखा कि जैतपुर पर उनका पूरा अधिकार हो गया है तब जगतराज के मरने का हाल सबको सुनाया। कीरतसिंह की मृत्यु इसके पहले ही हो चुकी थी। कीरतसिंह के दो लड़के थे। उनके नाम गुमानसिंह और खुमानसिंह थे। इन्होंने जगतराज की मृत्यु का समाचार अजयगढ़ में पाया। इनके पिता कीरतसिंह को जगतराज ने युवराज बनाया था, इसलिये खुमानसिंह और गुमानसिंह ने राज्य पर दावा किया। इनके पास लालदिवान नाम का एक चतुर सेनापति था। लालदिवान को पहाड़सिंह ने हरा दिया। परंतु फिर भी खुमानसिंह और गुमानसिंह ने लड़ने का प्रयत्न न छोड़ा और वे दोनों सदा पहाड़सिंह को तंग करते रहे। बुंदेलों की वही विशाल शक्ति, जो पहले मुगलों के प्रबल राज्य को नाश करने में लगी थी, अब आपसी युद्धों में स्वयं उन्हीं के नाश के लिये खर्च होने लगी।

१५—विक्रम संवत् १८२२ में पहाड़सिंह महोबे में बीमार हो गए। इनकी बीमारी कठिन थी और बीमारी की ही दशा में पहाड़सिंह महोबे से कुलपहाड़ गए। उन्होंने अपने वंशजों के भावी युद्ध को बचाने के लिये गुमानसिंह और खुमानसिंह को समझा लेना उचित समझा। इस उद्देश्य से उन्होंने गुमानसिंह और खुमानसिंह को अपने पास बुला लिया। फिर इन्होंने एक लाख बासठ हजार की आमदनी की रियासत खुमानसिंह को और तेरह लाख पचास हजार की रियासत अपने पुत्र गजसिंह को दी। पहाड़सिंह के पुत्र गजसिंह को जैतपुर की रियासत और खुमानसिंह को चरखारी का राज्य मिला। गुमानसिंह को भी पहाड़सिंह ने सवा नौ लाख आय की रियासत दी। इस भाग में बाँदा और अजयगढ़ के परगने आए।

१६—जैतपुर के राजा जगतराज के तीसरे पुत्र का नाम वीरसिंह था। गुमानसिंह ने अपने काका वीरसिंह को अपने राज्य में बुला लिया और उन्हें मवई के पास ८० हजार की जागीर दी। परंतु वीरसिंहदेव ने और भी राज्य माँगा। गुमानसिंह ने अपने काका की प्रार्थना स्वीकार करके वि० सं० १८२६ में विजावर का परगना और भी जागीर में दिया। यहीं पर वीरसिंह ने अपनी एक अलग रियासत कायम कर ली। जब अलीबहादुर ने इस पर चढ़ाई की तब वीरसिंह ने इसका आधिपत्य न माना। इससे दोनों में युद्ध छिड़ गया। इस युद्ध में वीरसिंह चरखारी के पास मारा गया। पीछे से राजा हिम्मतबहादुर ने मध्यस्थ हो दोनों में सुलह करवा दी। वीरसिंह के पश्चात् वि० सं० १८५० में इनके पुत्र केसरीसिंह राजा हुए। इन्हें वि० सं० १८५९ में अलीबहादुर ने सनद दी। परंतु अँगरेजी राजसत्ता स्थापित होने के समय राजा केसरीसिंह और चरखारी के राजा विजयबहादुर तथा छतरपुर के राजा कुँवर सोनेशाह के बीच सरहदी झगड़े लगे हुए थे। इससे अँगरेज सरकार ने इन्हें झगड़ों के अंतिम निर्णय तक सनद न दी। इसके मरने पर इसका पुत्र रतनसिंह वि० सं० १८६७ में राजा हुआ। इस समय सरहदी झगड़ों का निपटारा हो चुका था। इसलिये सरकार (अँगरेज) ने इसे वि० सं० १८६८ (१८११) को सनद दी।

१७—रतनसिंह वि० सं० १८९० (१७-१२-१८३३) में मरे। उनके कोई संतान न थी। इनकी रानी ने खेतसिंह के लड़के लक्ष्मणसिंह को गोद लिया। यह वि० सं० १९०४ में मरा और इसका लड़का भानुप्रतापसिंह राजगद्दी पर बैठा।

रहे जिससे उत्तर की ओर से मुसलमानों का आक्रमण होना असंभव हो गया।

४—हरी विट्ठल डिंगणकर और कृष्णाजी अनंत तांबे ने कुछ दिन बुंदेलखंड के प्रांतों का शासन किया, परंतु फिर इनमें कुछ आपसी झगड़ा होने से सब प्रांत गोविंद बल्लाल खेर के अधिकार में आ गया। ये रत्नागिरी जिले के नेवरे नामक ग्राम के रहनेवाले कराड़े ब्राह्मण थे।

५—बाजीराव पेशवा के मरने के पश्चात् उनके पुत्र नाना साहब उर्फ बालाजी बाजीराव पेशवा हुए। इनके पेशवा होने के समय महाराज छत्रसाल के पुत्र हृदयशाह की मृत्यु हो गई थी और उनके दो पुत्र सभासिंह और पृथ्वीराज राज्य के लिये लड़ रहे थे। सभासिंह को पन्नावालों ने राज्य दे दिया। इस पर पृथ्वीराज को बहुत बुरा लगा। पृथ्वीराज ने मराठों से सहायता माँगी। मराठों की ओर से गोविंद पंत अपनी फौज लेकर पृथ्वीराज की सहायता करने आए। पृथ्वीराज और सभासिंह दोनों भाइयों में युद्ध हुआ और पन्ना के समीप सभासिंह को पृथ्वीराज और मराठों ने हरा दिया। हारने पर विवश हो सभासिंह ने शाहगढ़ और गढ़ाकोटा पृथ्वीराज को दे दिया तथा अपने राज्य की चौथ देने का भी वादा किया। पृथ्वीराज के अधिकार में जो प्रांत आया था उसकी चौथ भी पृथ्वीराज मराठों को देने लगे। सभासिंह ने पन्ने के हीरों का तीसरा भाग भी मराठों को देने का वचन दिया। इस युद्ध के पश्चात् सारे बुंदेलखंड से मराठों को चौथ मिलने लगी और बुंदेले अपने आपसी झगड़ों के कारण बिलकुल बलहीन हो गए।

६—जैतपुर के राजा जगतराज ने सभासिंह की सहायता की थी। इस कारण मराठों ने जगतसिंह से भी उसके प्रदेश का कुछ भाग माँगा। बुंदेलों में ऐक्य न होने से प्रबल मराठे जो कुछ

उनसे कहते थे उन्हें मानना पड़ता था। इसलिये जगतराज ने अपने राज्य में से महोबा, हमीरपुर और कालपी के परगने मराठों को दे दिए।

७—गोविंदराव पंत की सहायता से मराठों का अधिकार बुंदेलखंड में बढ़ता ही गया। यह सब गोविंदराव पंत के प्रयत्नों का ही फल था। इसलिये मराठा दरबार में गोविंदराव पंत का बड़ा मान होने लगा।

८—बुंदेलखंड मिल जाने से मराठों को बहुत सहायता मिली। उत्तर में दिल्ली की ओर और पश्चिम में राजपूताने की ओर आक्रमण करने की सब तैयारियाँ बुंदेलखंड में ही होने लगीं। बुंदेलखंड के सब बुंदेले राजा लोग मराठों को चौथ देते थे। ओड़छे के राजा ने भी मराठों की अधीनता स्वीकार कर ली थी। अब मराठों ने बड़ी भारी सेना तैयार कर ली थी। इस समय गोपालराव बर्वे, अन्नाजी माणकेश्वर, विट्ठल शिवदेव विंचूरकर, मल्हारराव होलकर, गंगाधर यशवंत और नारोशंकर ये मराठों के प्रसिद्ध सरदार थे।

९—गोविंदराव पंत ने सागर और उसके आसपास का प्रांत अपने लड़के बालाजी गोविंद के अधिकार में कर दिया। सागर में बालाजी की सहायता के लिये रामराव गोविंद, केशव शंकर कान्हेरे, भीकाजीराम करकरे, रामचंद्र गोविंद चांदोरकर इत्यादि कर्मचारी थे। सागर की देखरेख इनके सुपुर्द करके गोविंदराव पंत अपने छोटे लड़के गंगाधर गोविंद को साथ लेकर कालपी के समीप यमुना पार कर अंतर्वेद में एक बड़ी सेना के साथ पहुँचे। उस समय अंतर्वेद में रोहिल्ला लोगों का राज्य था। गोविंदराव पंत ने रोहलों को हराया और मानिकपुर तथा खुरजा अपने अधिकार में कर लिए। कोड़ा, जहानाबाद और इलाहाबाद पर भी मराठे अपना

अधिकार जमाना चाहते थे, परंतु यहाँ पर मुसलमानों ने मराठों को रोका। दिल्ली की एक बड़ी मुसलमान सेना ने यहाँ पर मराठों का सामना किया, परंतु मराठों ने उस सेना को हराकर भगा दिया। इस समय जो प्रांत मराठों के अधिकार में थे वे सब गोविंदराव पंत के प्रयत्न से ही आए थे। मराठों के अन्य प्रसिद्ध सरदार सेंधिया और होल्कर की इसमें कुछ भी सहायता न थी।

१०—दूसरे वर्ष गोविंदराव पंत ने सेंधिया और होल्कर से सहायता ली। सेंधिया और होल्कर से सहायता लेकर गोविंदराव पंत ने इटावा, फफूँद और शकूराबाद जीत लिए। इसमें सेंधिया और होल्कर की सहायता होने के कारण जीते हुए प्रदेश में से फफूँद सेंधिया को और शकूराबाद होल्कर को मिला। शेष भाग गोविंदराव पंत के अधिकार में रहा। इटावा पर गोविंदराव पंत की ओर से मोरोपंत (या मोरो विश्वनाथ डिंगणकर) शासक नियत हुए। मोरोपंत के सहायक कृष्णाजी रामलवाटे नियत हुए।

मोरोपंत बाजीराव साहब के पुराने मुत्सद्दी, स्वामिभक्त और रणशूर कर्मचारी थे। सागर की सेना के ये ही अधिपति थे। गोंड़ राजाओं को इन्होंने अपने अधिकार में रखा था और गोंड़ राजा के हाथी पर की बहुमूल्य रेशमी झूल ले ली थी। अब यह झूल इंदौर में रहनेवाले गवर्नर-जनरल के एजेंट की कोठी में है।

११—नाना साहब पेशवा गोविंदराव पंत को बहुत चाहते थे। एक समय जब नाना साहब ने कर्नाटक पर आक्रमण करने का निश्चय किया तब उन्होंने द्रव्य रूप में कुछ सहायता गोविंदराव पंत से माँगी। गोविंदराव पंत ने तुरंत ही छियानबे लाख रुपए नाना साहब को दिए। नाना साहब इस पर बहुत प्रसन्न हुए।

१२—गोविंदराव पंत और पृथ्वीसिंह से बड़ी मित्रता थी। इन्होंने अपने स्वार्थ के लिये गोविंदराव पंत को मित्र बनाया था।

पीछे से सभासिंह को हरा उससे राज्य का भाग ले लेने मे सफल हुए थे। महाराष्ट्र इतिहासकारों ने पृथ्वीसिंह की बड़ाई और सभासिंह की निंदा की है। परंतु पन्ना राज्य मे जहाँ सभासिंह का राज्य था वहाँ पर सभासिंह से लोग असंतुष्ट न थे। पृथ्वीराज ने मराठों को चौथ देने और उनके अधीन रहने का वादा किया। इसी लालच के वश में होकर मराठों ने छत्रसाल महाराज का उपकार भूलकर अपनी सेना की सहायता से सभासिह को हराकर सभासिह के राज्य का आधा भाग पृथ्वीराज को दिलाया। पृथ्वीराज भी कभी कभी पेशवा के दरबार मे जाया करते थे। वे एक समय तीन वर्ष तक लगातार पेशवा के दरबार मे रहे थे। वे बड़े वीर थे। ऐसे कई प्रसंग आए जब पृथ्वीराज ने पेशवा को अपने वल और वीरता का परिचय दिया। जब नाना साहब ने कर्नाटक पर चढ़ाई की थी तब पृथ्वीराज भी युद्ध मे गए थे और वहाँ पर बहुत वीरता से लड़े थे। वे ही महाराष्ट्र सेना के एक बड़े भाग के नायक थे और उन्होंने विजय प्राप्त करने में बहुत सहायता दी थी।

१३—गोविंदराव पंत मराठों के एक बड़े वीर, पराक्रमी और राजनीतिज्ञ सरदार गिने जाते थे। जब पूना के शासकों को कोई सहायता की आवश्यकता होती थी तब ये सहायता देते थे। झाँसी, काल्पी इत्यादि स्थानों मे बड़े बड़े धनी साहूकार थे, जिनके पास से गोविंदराव पंत रुपए लेकर पूना भेजा करते थे। इन साहूकारों मे रायराव, रत्नसिंह और विशंभरदास का नाम प्रसिद्ध है। सारे बुंदेलखंड मे गोविंदराव पंत का मान था। इस समय सारे भारतवर्ष में अराजकता सी फैल गई। दिल्ली के मुसलमान शासकों के बुरे प्रबंध के कारण उत्तर मे रोहिले, राजपूताने में राजपूत और भरतपुर में जाट स्वतंत्र होने का प्रयत्न कर रहे थे। इस समय सब आपस में एक दूसरे से लड़ रहे थे और सारे भारतवर्ष मे

मराठों के बराबर शक्तिशाली कोई दूसरा न था। बुंदेले लोग आपस की कलह के कारण हीन हो गए थे और सिक्खों का राज्य जम न पाया था। राजपूतों में भी ऐक्य न था। इसी कारण मराठों का डर सारे भारतवर्ष में बैठ गया। मराठों की इस वृद्धि का मूल कारण बुंदेलखंड का राज्य था। बुंदेलखंड मध्यभारत में होने के कारण मराठे यहाँ से जिस ओर जाना चाहते थे जा सकते थे। बुंदेले लोग आपस में लड़ते थे परंतु मराठों को जब सहायता की आवश्यकता पड़ती थी तब वे उन्हें बराबर सहायता देते थे। बुंदेलों की वीरता अतुलनीय थी। ये लोग जिस युद्ध में गए वहाँ बड़ी वीरता से लड़े। बुंदेलखंड मराठों को छत्रसाल महाराज ने दिया था परंतु अब ये महाराज छत्रसाल के वंशजों के ऊपर ही अधिकार किए बैठे थे। मराठों को इसका दोष देना ठीक नहीं। बुंदेलों की आपसी कलह ही इसका मूल कारण है।

१४—मराठों का राज्य बहुत विस्तीर्ण था। इसलिये भिन्न भिन्न स्थानों के लिये अलग सरदार नियत थे। बरार के लिये मराठों की ओर से राघोजी भोंसला और मालवे में रानाजी सेंधिया तथा मल्हारराव होलकर थे।

अध्याय २६

भारतवर्ष में झगड़े

१—औरंगजेब के मरने पर दिल्ली में जो झगड़े शुरू हुए उनका अंत तभी हुआ जब कि मुगल सत्ता का अंत हुआ। मुहम्मदशाह के समय में सैयद भाइयों की ही चला करती थी। सैयद भाइयों से निजामुल्मुल्क नाराज था, क्योंकि सैयदों ने इसे दक्षिण की सूबेदारी से निकाल दिया था। निजामुल्मुल्क ने एक बड़ी सेना

तैयार करके सैयद भाइयों से वि० सं० १७७७ में युद्ध किया और सैयद भाइयों को उस युद्ध में हराकर जबरदस्ती दक्षिण के सूबे पर अधिकार कर लिया। हुसैनअली ने चाहा कि फिर से निजामुल्मुल्क से युद्ध करें परंतु इसी समय मुहम्मदशाह ने उसे धोके से मरवा डाला क्योंकि मुहम्मदशाह से और सैयद भाइयों से भी तकरार हो गई थी। जब हुसैनअली मारा गया तब उसका भाई सैयद अब्दुल्ला भी बादशाह मुहम्मदशाह के विरुद्ध हो गया। उसने बादशाह मुहम्मदशाह को तख्त से उतारने का प्रयत्न किया परंतु मुहम्मदशाह ने उसे भी मरवा डाला। ऐसे समय में बाजीराव पेशवा ने मुसलमानों के प्रांतों पर आक्रमण किया। मुहम्मदशाह ने निजामुल्मुल्क से सहायता ली। परंतु बाजीराव पेशवा ने वि० सं० १७६४ में निजामुल्मुल्क और बादशाह दोनों को हरा दिया और निजामुल्मुल्क से मालवे का सूबा ले लिया।

२—विक्रम संवत् १७६५ में भारतवर्ष पर नादिरशाह का आक्रमण हुआ। नादिरशाह पहले एक बड़ा लुटेरा था परंतु फिर अपनी सेना की सहायता से वह फारस और अफगानिस्तान का बादशाह बन गया था। मध्य एशिया की स्थिति भी उस समय भारतवर्ष के समान ही थी। व्यवस्थित राज्य न होने के कारण शासन सेना के बल से ही होता था और जो मनुष्य बड़ी सेना अपने अधिकार में कर सकता था वही राजा बन जाता था। नादिरशाह ने फारस और अफगानिस्तान का राज्य अपने अधिकार में करने के पश्चात् पाँचवें महीने में—मार्च सन् १७३६ में—दिल्ली पर आक्रमण किया। दिल्ली की बादशाही फौज को नादिरशाह ने आसानी से हरा दिया और बादशाह के महल पर नादिरशाह का अधिकार हो गया। दूसरे दिन दिल्ली में यह खबर फैल गई कि नादिरशाह मर गया है और इस खबर के फैलते ही दिल्ली-निवासी

नादिरशाह की फौज को दिल्ली से भगाने की चेष्टा करने लगे। परंतु यह हाल देखते ही नादिरशाह ने अपनी फौज को लूट-मार का हुक्म दे दिया। दिल्ली-निवासी, उनकी स्त्रियाँ और बच्चे निर्दयता से मारे गए और उनका सब माल लूट लिया गया। बादशाही खजाना भी नादिरशाह ने लूट लिया। नादिरशाह को करोड़ों रुपए और बहुत से हीरे मिले। कोहेनूर नाम का हीरा भी वह ले गया। दिल्ली से वापिस जाते समय उसने दिल्ली का राज्य फिर से मुहम्मदशाह को दे दिया। नादिरशाह की ओर से पंजाब प्रांत का शासक अहमदशाह अबदाली नियत किया गया था। नादिरशाह के मरने पर यही अहमदशाह अबदाली वि० सं० १८०५ में स्वतंत्र बन गया। इसने भी दिल्ली पर आक्रमण किया परंतु पहली बार मुहम्मदशाह ने इसे हरा दिया।

३—दिल्ली के बादशाह की स्थिति दिन पर दिन कमजोर होती गई। दिल्ली की बादशाहत के सब सूबेदार स्वतंत्र हो गए। दिल्ली की बादशाहत दिल्ली में ही रह गई। आगरा और भरतपुर में जाट लोगों ने अधिकार कर लिया। पंजाब में सिक्ख लोगों का स्वतंत्र राज्य स्थापित होने लगा। मैसूर में यादव लोगों ने स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया। परंतु फिर यादवों के मंत्री हैदरअली ने राजा के मरने पर राज्य पर अधिकार कर लिया। उत्तर में रोहिले लोग भी स्वतंत्र हो गए। अवध का सूबेदार सादतअलीखाँ भी स्वतंत्र हो गया। बंगाल का नवाब अलीवर्दीखाँ भी स्वतंत्र हो गया।

४—यूरोप के कई देशों के सौदागरों ने भारतवर्ष में आकर मुगल बादशाहों से सनदें ले लेकर समुद्र के किनारे के कई नगरों में कारखाने खोले। यहाँ से वे लोग यूरोप को भारतवर्ष से जाने-वाली वस्तुओं का व्यापार भी करते थे। धीरे धीरे भारतवर्ष के

सब समुद्रीय व्यापार को इन लोगों ने अपने अधिकार में कर लिया। जो नगर समुद्र के किनारे इनके पास थे उन पर इन लोगों ने अपने किले भी बनवाए। मद्रास, बंबई और कलकत्ता इन नगरों पर अँगरेजों का अधिकार हो गया था। फरासीसी लोगों ने भी पोंडचेरी में अपना किला बनवा लिया था।

५—भारतवर्ष में मुसलमानों का राज्य कमजोर हो जाने पर मराठे ही सबसे प्रबल थे। बरार प्रांत के मराठे शासक राघोजी भोंसले ने बंगाल पर चढ़ाई की थी। इस चढ़ाई में भोंसले ने अलीवर्दीखाँ को हरा दिया और वि० सं० १८०८ में उसके प्रदेशों में से उड़ीसा ले लिया।

६—पहले आक्रमण के समय अहमदशाह अबदाली मुहम्मदशाह से हार गया था। मुहम्मदशाह विक्रम संवत् १८०५ में मर गया। इसके मरने पर अहमदशाह नाम का बादशाह हुआ। जिस समय अहमदशाह दिल्ली का बादशाह था उस समय अहमदशाह अबदाली ने दिल्ली पर दूसरी बार आक्रमण किया। यह आक्रमण विक्रम संवत् १८०८ में हुआ। अबदाली ने बादशाह को हरा दिया और बादशाह के पास जो पंजाब का भाग था उसे ले लिया। अहमदशाह बादशाह को वजीर गाजिउद्दीन ने तख्त से उतार दिया और बादशाह और उसकी मा को पकड़कर वि० सं० १८११ में अंधा कर दिया। फिर वजीर गाजिउद्दीन ने जहाँदारशाह के लड़के को आलमगीर (दूसरा) के नाम से दिल्ली का बादशाह बनाया।

७—विक्रम संवत् १८१३ से और भी झगड़े भारतवर्ष में शुरू हुए। सारे देश में राजाओं में लड़ाइयाँ होने लगी। अँगरेज लोगों ने अपनी सेना बढ़ाना आरंभ कर दिया। जब किसी राजा को सहायता की आवश्यकता होती थी तब अँगरेज लोग सहायता

देते थे और सहायता के बदले में उसके देश का कुछ भाग ले लेते थे। इसी प्रकार अँगरेजों ने अपना राज्य बढ़ाना आरंभ कर दिया। फरासीसी लोग भी इस तरह से अपनी शक्ति बढ़ा रहे थे। संवत् १८१३ में दक्षिण में तीन ही प्रबल राज्य थे। ये तीनों राज्य मराठों, अँगरेजों और फरासीसियों के थे। यूरोप में अँगरेजों और फरासीसियों में युद्ध छिड़ गया। यूरोप में युद्ध होने के कारण भारतवर्ष में भी इन दोनों में युद्ध होने लगा। इसी समय (विक्रम संवत् १८१३) में बंगाल का नवाब अलीवर्दीखाँ मर गया और उसका नाती सिराजुद्दौला बंगाल का नवाब हुआ। दिल्ली के वजीर गाजिउद्दीन ने अहमदशाह अबदाली पर चढ़ाई करके पंजाब अपने अधिकार में कर लिया। इसलिये अहमदशाह अबदाली ने दिल्ली पर फिर से चढ़ाई की। उसने बादशाह की सेना को हरा दिया। दिल्ली में खूब लूटमार हुई और निवासियों का निर्दयतापूर्वक वध किया गया। दिल्ली की दुर्दशा करने के पश्चात् अबदाली ने मथुरा को लूटा। यहाँ भी उसने निवासियों को निर्दयता से मारा।

८—इस समय ऐसे झगड़ों के कारण किसी राजा को भी चैन न था। सब राजाओं का ध्यान अपनी रक्षा की ओर लगा हुआ था। राज्य-व्यवस्था की ओर किसी का ध्यान न था। पूने में भी राज्य-व्यवस्था कुछ अच्छी न थी। बुंदेलखंड में मराठों की व्यवस्था कुछ ठीक थी, परंतु यहाँ भी एक नया राज्य स्थापित हो रहा था। झाँसी के समीप ही गोसाईं लोगों ने बहुत सी सेना एकत्र की थी और वे मराठों को हराकर एक स्वतंत्र राज्य स्थापित करना चाहते थे। गोसाईं लोगों का पहला राजा इंद्र गिरि था। इसने अपनी सेना लेकर संवत् १८०२ में मोठ परगने पर अपना अधिकार कर लिया। यहाँ पर गोसाईं लोगों ने एक किला

भी बनवाया। अपनी सेना बढ़ाकर वे लोग आसपास का देश अपने अधिकार में करने लगे। थोड़े ही दिनों में उन लोगों ने ११४ गाँव अपने अधिकार में कर लिए। उस समय झाँसी में मराठों की ओर से नारोशंकर नाम के एक सरदार नियत थे। नारोशंकर ने गोसाईं लोगों को दबाने का प्रयत्न किया। संवत् १८०७ में उन्होंने गोसाईं लोगों को एक युद्ध में हरा दिया। इंद्र गिरि को हारकर मोठ से भाग जाना पड़ा। मोठ से भागने पर इंद्र गिरि इलाहाबाद गया और इलाहाबाद से वह अवध के वजीर शुजाउद्दौला के पास आया। इंद्र गिरि बड़ा शूर-वीर पुरुष था। अवध के नवाब वजीर शुजाउद्दौला ने इंद्र गिरि से प्रसन्न होकर उसे अपने यहाँ नौकर रख लिया। नवाब शुजाउद्दौला इंद्र गिरि का बड़ा सम्मान करता था और वह अवध के मुख्य सैनिक सरदारों में से था। इंद्र गिरि की मृत्यु विक्रम संवत् १८०६ में हुई और उसके पश्चात् उसका चेला अनूप गिरि अवध में सेना का सरदार हो गया।

९—बुंदेलखंड में महाराज छत्रसाल के वंशज आपस में लड़ रहे थे। विक्रम संवत् १८१३ में हिंदूपत ने अपने भाई अमानसिंह को मरवाकर महाराज छत्रसाल के कुल को कलंकित किया। दो वर्ष के बाद ही जैतपुर के महाराज जगतराज की मृत्यु हुई। इनकी मृत्यु के बाद पहाड़सिंह, खुमानसिंह और गुमानसिंह के बीच में जो झगड़े हुए उनका उल्लेख हो चुका है। इन राज्यों के जागीरदार लोग भी राज्य-व्यवस्था न होने का लाभ उठाकर जहाँ-तहाँ स्वतंत्र बनने का प्रयत्न कर रहे थे।

१०—चारों ओर की गड़बड़ के कारण बुंदेलखंड के मराठों का लक्ष्य चारों ओर बँटा हुआ था। बुंदेलखंड का सब कार्य गोविंदराव पंत देखते थे। बुंदेलखंड महाराष्ट्र राज्य का उत्तरीय भाग होने से उत्तरीय भारतवर्ष के राजाओं की देखरेख भी गोविंदराव पंत

करते थे। जब दिल्ली के झगड़ों का हाल गोविंदराव पंत को मालूम हुआ तब उन्होंने उत्तर के जिलों की रक्षा करना बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य समझा। इसी उद्देश्य से वे सागर को छोड़कर काल्पी में रहने लगे। सागर में गोविंदराव पंत की ओर से उनके दामाद[1] विसाजी गोविंद चांदोरकर राजकार्य देखने लगे। गोविंदराव पंत के पुत्र गंगाधर गोविंद और बालाजी गोविंद भी अपने पिता के साथ काल्पी चले गए।

---

(१) वंशावली विसाजी गोविंद चांदोरकर सागर सुभेदार थंताजी पंत

चांदोरकर गोत्र भारद्वाज

गोविंद सं० १८२१ — विट्ठल सरदार पानीपत मोहीम पर थाए मा. शु. १–१६८१ सं० १८४० शाके — कृष्णाजी

(गोविंद सं० १८२१ के पुत्र) रामचंद्र सं० १७४० चिटणीस — विसाजी सन् १७५७ में सागर की व्यवस्था स्त्री भागीरथी बाई कन्या गोविंदपंत साहेब बुंदेले

(विट्ठल के पुत्र) सदाशिव — गणेश — त्र्यंबक

(त्र्यंबक) शिवराय

(विसाजी) दत्तक — सिद्धेश्वर — विनायकराव सुभेदार सागर

(दत्तक) गोविंद उर्फ बाबू साहेब दत्तक लिए

(विनायकराव) मोरेश्वर — गणेश — यमुना

(मोरेश्वर) कृष्णराव दत्तक — त्र्यंकटराव

(गणेश) रामचंद्र — लक्ष्मण
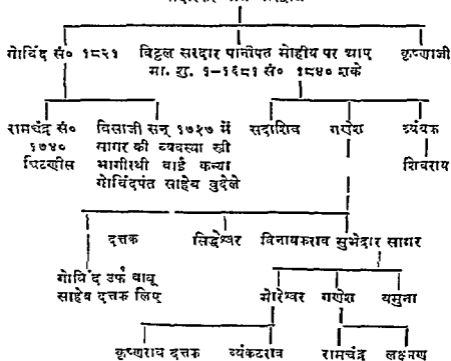
दिए थे रामचंद्र राव राजा झाँसी।

यह वंशावली सागर के सूबेदार घराने से मिली है।

११—अहमदशाह अबदाली गाजिउद्दीन को हराकर, दिल्ली और मथुरा लूटता हुआ, वापिस चला गया। पंजाब पर फिर से अहमदशाह अबदाली का अधिकार हो गया। अहमदशाह अबदाली के चले जाने पर गाजिउद्दीन ने बदला लेना चाहा। उस समय भारतवर्ष में मराठों का राज्य सबसे शक्तिशाली था, इसलिये उसने मराठों से सहायता माँगी।

१२—अहमदशाह अबदाली की बढ़ती हुई शक्ति मराठों को अच्छी न लगती थी। अहमदशाह अबदाली के दिल्ली लूट लेने से मराठों को बहुत बुरा लग रहा था। मराठे किसी प्रकार अहमदशाह अबदाली की शक्ति को कम करना चाहते थे, इससे दिल्ली के वजीर गाजिउद्दीन का संदेश पाते ही मराठों ने अबदाली से युद्ध करने का निश्चय कर लिया। अवध के नवाब और रोहिले लोग दिल्ली के बादशाह से प्रसन्न थे। दिल्ली में भी वजीर और सरदारों में अनबन थी। मराठों ने युद्ध की तैयारी बिना दिल्ली दरबार की सहायता के की।

१३—पूना से मराठों की, चार लाख सैनिकों की, सेना उत्तर की ओर रवाना हुई। इस सेना को मार्ग में मराठों के सरदार सहायता के लिये मिलते गए। सेना बुरहानपुर, हरदा और नरवर होती हुई गई। बुंदेलखंड की मराठों की सेना गोविंद पंत की अध्यक्षता में धंसबेद होती हुई गई। इस युद्ध में बुंदेलों ने मराठों को बहुत सहायता दी। बुंदेलों की सेना के सिवा बुंदेलखंड से बहुत सा द्रव्य भी मराठों की सहायता के लिये भेजा गया था[1]।

१४—जिस समय दिल्ली में मराठों की सेना पहुँची उस समय

---

(१) "बुंदेले यांणीं व बागलकोटकर यांणीं व बंगाले खंडकर यांणीं सवाई राय जयसिंह यांणीं, व चित्तोडकर यांणीं गुप्तरूपे खजीना पाठविला तो युंज पुरावरच होता" रघुनाथ यादवकृत पानिपत ची बखर पृष्ठ १५।

सेना के खर्च के लिये खजाना न पहुँच पाया था। फौज को खर्च की बड़ी जरूरत थी और बादशाह ने मराठों की कोई सहायता न की। इसलिये मराठों ने जबरदस्ती बादशाही खजाने पर अधिकार कर लिया। दिल्ली पर भी मराठों ने अपना अधिकार कर लिया और दिल्ली के प्रबंध के लिये नारोशंकर मराठों की ओर से नियत किए गए।

१५—अवध का नवाब शुजाउद्दौला और रोहिले पहले से ही मराठों के विरुद्ध थे। इन्होंने अहमदशाह अबदाली को सहायता दी। मराठों ने वि० सं० १८१६ में दिल्ली के आगे बढ़कर अबदाली के राज्य पर आक्रमण करना आरंभ किया। शाहगढ़ से बुंदेलों की एक बड़ी फौज इस समय मराठों की सहायता के लिये पहुँची[1]। अहमदशाह अबदाली से जो युद्ध हुआ उसमें गोविंद पंत ने विशेष वीरता दिखाई। एक स्थान पर गोविंद पंत ने अहमदशाह अबदाली की एक सेना को हरा दिया और उसका पीछा भी किया। अबदाली की सेना को जो रसद जाती थी उसका जाना भी गोविंद पंत ने बंद कर दिया। गोविंद पंत से अबदाली की सेना को बड़ा डर लगने लगा। इन्हें हराने का अबदाली ने बड़ा प्रयत्न किया और अबदाली की सेना ने अचानक गोविंद पंत को घेर लिया। गोविंद पंत की सेना हरा दी गई और गोविंद पंत ने भागने का प्रयत्न किया। परंतु गोविंद पंत वृद्ध थे और बहुत मोटे थे। ये अचानक भाग न सके। अबदाली की सेना ने इन्हें पकड़ लिया और इनका सिर काट लिया।

१६—गोविंद पंत की हार होते ही सारी मराठी सेना निरुत्साहित हो गई। शेष सेना को अबदाली की सेना ने पानीपत में हरा

---

(१) शाहगढ़ से पचास हजार मनुष्यों की सेना गई। दत्तात्रेय बलवंत पारसनीस-कृत मराठ्यां चे पराक्रम बुंदेलखंड, पृष्ठ १२४ देखिए।

दिया। युद्ध बहुत देर तक होता रहा और इस युद्ध में दोनों ओर के बहुत से सैनिक मारे गए। मराठों की जो हानि हुई उसका वर्णन करना कठिन है। मराठों का अधःपतन इसी हार के पश्चात् आरंभ हुआ। ऐसा अनुमान किया जाता है कि लगभग दो लाख सैनिक मराठों की सेना के मारे गए और मराठों के कई नामी सरदार भी इस युद्ध में काम आए। युद्ध संवत् १८१८ मे हुआ।

१७—इस युद्ध का हाल सुनते ही नाना साहब को इतना शोक हुआ कि उनकी मृत्यु उसी शोक के कारण हुई। गोविंद पंत की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र बालाजी गोविंद और गंगाधर गोविंद ने बुंदेलखंड का काम कुछ समय के लिये सँभाला। गोविंद पंत ने पानीपत के युद्ध के पहले बालाजी गोविंद को अंतर्वेद में नियत कर दिया था और जालौन और काल्पी गंगाधर गोविंद के अधिकार में कर दिए थे। विसाजी गोविंद चांदोरकर पहले से ही सागर के शासक नियत थे।

१८—जब मराठे पानीपत के युद्ध में हारे तब अंतर्वेद मराठों के राज्य से निकल गया और उस पर अवध के नवाब ने अधिकार कर लिया। अंतर्वेद से बालाजी गोविंद आ गए और सागर तथा जालौन का कार्य देखने लगे। बालाजी गोविंद ने गंगाधर गोविंद की सहायता से अंतर्वेद ले लेने का प्रयत्न किया परंतु सफल न हुए। बुंदेलखंड में गोसाईं लोगों ने फिर आक्रमण करना आरंभ कर दिया और मराठों को अपने बचे हुए राज्य की रक्षा करने की फिकर पड़ गई। यमुना के उत्तर का जो कुछ भाग मराठों के अधिकार में हो गया था उस पर फिर से रोहिलों ने अधिकार कर लिया। बुंदेलखंड के सब बुंदेले राजा मराठों को अभी तक चौथ देते आए थे परंतु पानीपत के युद्ध के पश्चात् उन्होंने भी चौथ देना बंद कर दिया। बुंदेलों और मराठों में जैसा प्रेम महाराज छत्रसाल के

समय में था वैसा अब न रहा। मराठों ने धन एकत्र करना ही अपना उद्देश्य समझा और मराठे लोग बुंदेले राजवंश के कुमारों के झगड़ों में सहायता दे उनसे राज्य लेकर अपना अधिकार बढ़ाते रहे। बुंदेले और मराठे दोनों ही आपसी झगड़ों के कारण बल-हीन हो गए और बुंदेलों के अद्वितीय गुण, रणचातुर्य और रण-विक्रम आपसी कलहों के कारण इन्हें कोई लाभ न पहुँचा सके।

अध्याय २७

गोसाईं लोगों के आक्रमण

१—जैतपुर के राजा पहाड़सिंह ने अपने वंशजों का भावी झगड़ा मिटाने के लिये अपने राज्य के तीन भाग कर दिए जिसमें एक गुमानसिंह को, दूसरा खुमानसिंह को और तीसरा गजसिंह को मिला। इसी प्रबंध के अनुसार गुमानसिंह का राज्य बाँदा और अजयगढ़ में, खुमानसिंह का चरखारी में और गजसिंह का जैतपुर में हुआ। इनके समकालीन पन्ना के राजा हिंदूपत थे।

२—अवध के नवाब शुजाउद्दौला के यहाँ अपने गुरु के मरने पर अनूप गिरि सैनिक सरदार हो गया था। अनूप गिरि बड़ा वीर सैनिक था, इसलिये नवाब ने इसे हिम्मतबहादुर की उपाधि दी थी। एक हजार सवार इसके अधिकार में रहते थे। जब बक्सर में संवत् १८२० में कंपनी की सरकार और अवध के नवाब के बीच में युद्ध हुआ तब हिम्मतबहादुर ने बड़ी वीरता दिखलाई थी। एक घाव अपनी जाँघ में खाकर हिम्मतबहादुर ने शुजाउद्दौला की जान बचाई थी। जब नवाब हारकर भागा तब भी हिम्मतबहादुर ने नवाब की बड़ी सहायता दी थी। इस पर नवाब ने प्रसन्न होकर हिम्मत-बहादुर को सिकंदरा और बिंदकी के परगने दिए थे।

३—बुंदेलखंड पर आक्रमण करने का विचार हिम्मतबहादुर का पहले से ही था। शुजाउद्दौला ने हिम्मतबहादुर को इस कार्य में पूरी सहायता दी और अपने सरदार करामतखाँ को हिम्मत-बहादुर के साथ कर दिया। इस सेना को साथ लेकर हिम्मत-बहादुर ने बाँदा पर आक्रमण किया। बाँदा में इस समय गुमानसिंह के यहाँ नोने अर्जुनसिंह नाम के एक बड़े वीर सैनिक थे। अपनी सेना तैयार करके नोने अर्जुनसिंह ने तेंदवारी नामक ग्राम के समीप हिम्मतबहादुर से युद्ध किया। हिम्मतबहादुर को अच्छी तरह हराके उसकी सेना को भगा दिया और फिर उस भागती हुई सेना का पीछा किया। हिम्मतबहादुर तथा करामतखाँ को यमुना तैर-कर अपनी जान बचानी पड़ी। इस युद्ध में राजा गुमानसिंह को हिंदूपत ने भी सहायता दी थी।

४—हिम्मतबहादुर की हार के पश्चात् वीर बुंदेले फिर अपनी आपसी कलह में लग गए। जिन कलहों से इनका सर्वनाश हो रहा था उन्हें मिटाने के लिये इन्होंने कभी प्रयत्न न किया। चर-खारी के राजा खुमानसिंह और उनके भाई गुमानसिंह में भी वि० सं० १८३८ में युद्ध हो गया। नोने अर्जुनसिंह की सहायता से खुमानसिंह मार डाले गए और गुमानसिंह की जीत रही। यह युद्ध पँहवारी नामक ग्राम के निकट हुआ।

५—हिम्मतबहादुर ने फिर नवाब से सहायता लेकर बुंदेल-खंड पर आक्रमण किया। बुंदेलखंड में पहले हिम्मतबहादुर ने दतिया पर चढ़ाई की। दतिया के राजा रामचंद्र को हराकर हिम्मत-बहादुर ने चौथ वसूल की और फिर मोठ, गुरसराय आदि परगनों पर अपना अधिकार कर लिया। ये परगने मराठों के अधि-कार में थे। मराठों ने यह देखते ही पूना दरबार से सहायता माँगी। पूना दरबार में भी इस समय बड़े बड़े झगड़े हो रहे

कि हिम्मतबहादुर अवध के राज्य की परवा न करके अपना स्वतंत्र राज्य जमाने के प्रयत्न में लगा है तब वह बहुत क्रोधित हुआ और उसने हिम्मतबहादुर के भाई उमराव गिर को कैद कर लिया। मराठों को यह झगड़ा मालूम हो गया था और उन्होंने ऐसे समय में हिम्मतबहादुर को हरा देने का अच्छा अवसर सोचा।

८—काल्पी के निकट गोसाइयों और मराठों में गहरी लड़ाई हुई। अनूप गिर उर्फ हिम्मतबहादुर हार गया और वह अवध की ओर भागा। उसके सब सैनिक सेंधिया की सेना में भरती हो गए। पीछे से अनूप गिर भी सेंधिया की सेना में भरती हो गया। मराठों ने गोसाई लोगों को संवत् १८३२ के लगभग हराया।

अध्याय २८

थे। पेशवा बनने के लिये राघोबा नामक एक सरदार ने अपने भतीजे नारायणराव को वि० सं० १८२६ में मरवा डाला था। मराठे सरदार राघोबा से असंतुष्ट थे और वे चाहते थे कि राघोबा पेशवा न बन पावे। नाना फड़नवीस नामक एक सरदार राघोबा के बहुत विरुद्ध थे। परंतु जब बुंदेलखंड से सहायता माँगी गई तब नाना फड़नवीस ने सहायता भेजी। नाना फड़नवीस बुंदेलखंड के सूबेदार बालाजी गोविंद से प्रसन्न थे। बालाजी गोविंद भी राघोबा के विरुद्ध थे। इसलिये बालाजी गोविंद और नाना फड़नवीस में मित्रता थी। नाना फड़नवीस के हुक्म के अनुसार सेंधिया और होल्कर ने भी बालाजी गोविंद की सहायता की। यह सेना साथ ले बालाजी गोविंद ने हिम्मतबहादुर का सामना किया।

६—हिम्मतबहादुर की ओर से गुरसराय के किले पर सिंगार गिर और प्राणसिंह नाम के दो सरदार नियत थे। इनके पास सेना भी बहुत थी। इनसे लड़ने के लिये मराठों की ओर से दिनकर राव अन्ना तैयार हुए। दिनकर राव अन्ना ने गोसाईं लोगों से युद्ध करना बड़ा कठिन कार्य समझ बालाजी गोविंद से और भी सहायता माँगी और झाँसी के सूबेदार रघुनाथराव हरी नेवलकर दिनकरराव अन्ना की सहायता के लिये भेजे गए। इन दोनों ने गोसाईं लोगों को हरा दिया और उन्हें हारकर किला छोड़कर चला जाना पड़ा। बालाजी गोविंद ने दिनकरराव से प्रसन्न होकर गुरसराय का सब प्रबंध उनके अधिकार में कर दिया।

७—मराठों के पास होल्कर और सेंधिया की सहायता भी पहुँची। इस सेना को लेकर रघुनाथराव हरी नेवलकर ने फिर गोसाईं लोगों पर आक्रमण किया। इस समय अवध के नवाब और हिम्मतबहादुर में अनबन हो गई थी। जब नवाब ने देखा

कि हिम्मतबहादुर अवध के राज्य की परवा न करके अपना स्वतंत्र राज्य जमाने के प्रयत्न में लगा है तब वह बहुत क्रोधित हुआ और उसने हिम्मतबहादुर के भाई उमराव गिर को कैद कर लिया। मराठों को यह झगड़ा मालूम हो गया था और उन्होंने ऐसे समय में हिम्मतबहादुर को हरा देने का अच्छा अवसर सोचा।

८—काल्पी के निकट गोसाइयों और मराठों में गहरी लड़ाई हुई। अनूप गिर उर्फ हिम्मतबहादुर हार गया और वह अवध की ओर भागा। उसके सब सैनिक सेंधिया की सेना मे भरती हो गए। पीछे से अनूप गिर भी सेंधिया की सेना में भरती हो गया। मराठों ने गोसाई लोगों को संवत् १८३२ के लगभग हराया।

अध्याय २८

अँगरेजों का आक्रमण

१—अँगरेजों और फरासीसियों का युद्ध संवत् १८२० में समाप्त हुआ और इस युद्ध में अँगरेजों की जीत हुई। अँगरेज लोग धीरे धीरे अपना राज्य बढ़ा रहे थे। मुगलों से सनदें लेकर अँगरेजो ने कारखाने खोले और इन कारखानों की रक्षा के बहाने वे लोग सेना रखने लगे और कारखानों के आसपास किले भी बनवाने लगे। जिस समय राजाओं में आपसी युद्ध हो रहे थे उस समय अँगरेजों ने अपनी सेना बढ़ाई और कमजोर राजाओं से देश लेना इन्होंने आरंभ कर दिया। इस प्रकार बढ़ते बढ़ते अँगरेज लोग भारतवर्ष के सबसे अधिक शक्तिमान् राज्य के अधिकारी हो गए[1]। बक्सर के युद्ध के पश्चात

(१) एक अँगरेजी लेखक ने अँगरेजों की वृद्धि का निम्नलिखित वर्णन किया है—

From factories to forts, from forts to fortifications, from fortifications to garrisons, from garrisons to

थे। पेशवा बनने के लिये राघोबा नामक एक सरदार ने अपने भतीजे नारायणराव को वि० सं० १८२९ में मरवा डाला था। मराठे सरदार राघोबा से असंतुष्ट थे और वे चाहते थे कि राघोबा पेशवा न बन पावे। नाना फड़नवीस नामक एक सरदार राघोबा के बहुत विरुद्ध थे। परंतु जब बुंदेलखंड से सहायता माँगी गई तब नाना फड़नवीस ने सहायता भेजी। नाना फड़नवीस बुंदेलखंड के सूबेदार बालाजी गोविंद से प्रसन्न थे। बालाजो गोविंद भी राघोबा के विरुद्ध थे। इसलिये बालाजो गोविंद और नाना फड़नवीस में मित्रता थी। नाना फड़नवीस के हुक्म के अनुसार सेंधिया और होल्कर ने भी बालाजी गोविंद की सहायता की। यह सेना साथ ले बालाजी गोविंद ने हिम्मतबहादुर का सामना किया।

६—हिम्मतबहादुर की ओर से गुरसराय के किले पर सिंगार गिर और प्राणसिंह नाम के दो सरदार नियत थे। इनके पास सेना भी बहुत थी। इनसे लड़ने के लिये मराठों की ओर से दिनकर राव अन्ना तैयार हुए। दिनकर राव अन्ना ने गोसाईं लोगों से युद्ध करना बड़ा कठिन कार्य समझ बालाजी गोविंद से और भी सहायता माँगी और झाँसी के सूबेदार रघुनाथराव हरी नेवलकर दिनकरराव अन्ना की सहायता के लिये भेजे गए। इन दोनों ने गोसाईं लोगों को हरा दिया और उन्हें हारकर किला छोड़कर चला जाना पड़ा। बालाजो गोविंद ने दिनकरराव से प्रसन्न होकर गुरसराय का सब प्रबंध उनके अधिकार में कर दिया।

७—मराठों के पास होल्कर और सेंधिया की सहायता भी पहुँची। इस सेना को लेकर रघुनाथराव हरी नेवलकर ने फिर गोसाईं लोगों पर आक्रमण किया। इस समय अवध के नवाब और हिम्मतबहादुर में अनबन हो गई थी। जब नवाब ने देखा

कि हिम्मतबहादुर अवध के राज्य की परवा न करके अपना स्वतंत्र राज्य जमाने के प्रयत्न में लगा है तब वह बहुत क्रोधित हुआ और उसने हिम्मतबहादुर के भाई उमराव गिर को कैद कर लिया। मराठों को यह झगड़ा मालूम हो गया था और उन्होंने ऐसे समय में हिम्मतबहादुर को हरा देने का अच्छा अवसर सोचा।

८—काल्पी के निकट गोसाइयों और मराठों में गहरी लड़ाई हुई। अनूप गिर उर्फ हिम्मतबहादुर हार गया और वह अवध की ओर भागा। उसके सब सैनिक सेंधिया की सेना में भरती हो गए। पीछे से अनूप गिर भी सेंधिया की सेना में भरती हो गया। मराठों ने गोसाई लोगों को संवत् १८३२ के लगभग हराया।

अध्याय २८

अँगरेजों का आक्रमण

१—अँगरेजों और फरासीसियों का युद्ध संवत् १८२० में समाप्त हुआ और इस युद्ध में अँगरेजों की जीत हुई। अँगरेज लोग धीरे धीरे अपना राज्य बढ़ा रहे थे। मुगलों से सनदें लेकर अँगरेजों ने कारखाने खोले और इन कारखानों की रक्षा के बहाने वे लोग सेना रखने लगे और कारखानों के आसपास किले भी बनवाने लगे। जिस समय राजाओं में आपसी युद्ध हो रहे थे उस समय अँगरेजों ने अपनी सेना बढ़ाई और कमजोर राजाओं से देश लेना इन्होंने आरंभ कर दिया। इस प्रकार बढ़ते बढ़ते अँगरेज लोग भारतवर्ष के सबसे अधिक शक्तिमान् राज्य के अधिकारी हो गए[1]। बक्सर के युद्ध के पश्चात

---

(१) एक अँगरेजी लेखक ने अँगरेजों की वृद्धि का निम्नलिखित वर्णन किया है—

From factories to forts, from forts to fortifications, from fortifications to garrisons, from garrisons to

थे। पेशवा बनने के लिये राघोबा नामक एक सरदार ने अपने भतीजे नारायणराव को वि० सं० १८२९ में मरवा डाला था। मराठे सरदार राघोबा से असंतुष्ट थे और वे चाहते थे कि राघोबा पेशवा न बन पावे। नाना फड़नवीस नामक एक सरदार राघोबा के बहुत विरुद्ध थे। परंतु जब बुंदेलखंड से सहायता माँगी गई तब नाना फड़नवीस ने सहायता भेजी। नाना फड़नवीस बुंदेलखंड के सूबेदार बालाजी गोविंद से प्रसन्न थे। बालाजी गोविंद भी राघोबा के विरुद्ध थे। इसलिये बालाजी गोविंद और नाना फड़नवीस में मित्रता थी। नाना फड़नवीस के हुक्म के अनुसार सेंधिया और होल्कर ने भी बालाजी गोविंद की सहायता की। यह सेना साथ ले बालाजी गोविंद ने हिम्मतबहादुर का सामना किया।

६—हिम्मतबहादुर की ओर से गुरसराय के किले पर सिंगार गिर और प्राणसिंह नाम के दो सरदार नियत थे। इनके पास सेना भी बहुत थी। इनसे लड़ने के लिये मराठों की ओर से दिनकर राव अन्ना तैयार हुए। दिनकर राव अन्ना ने गोसाईं लोगों से युद्ध करना बड़ा कठिन कार्य समझ बालाजी गोविंद से और भी सहायता माँगी और झाँसी के सूबेदार रघुनाथराव हरी नेवलकर दिनकरराव अन्ना की सहायता के लिये भेजे गए। इन दोनों ने गोसाईं लोगों को हरा दिया और उन्हें हारकर किला छोड़कर चला जाना पड़ा। बालाजी गोविंद ने दिनकरराव से प्रसन्न होकर गुरसराय का सब प्रबंध उनके अधिकार में कर दिया।

७—मराठों के पास होल्कर और सेंधिया की सहायता भी पहुँची। इस सेना को लेकर रघुनाथराव हरी नेवलकर ने फिर गोसाईं लोगों पर आक्रमण किया। इस समय अवध के नवाब और हिम्मतबहादुर में अनबन हो गई थी। जब नवाब ने देखा

कि हिम्मतबहादुर अवध के राज्य की परवा न करके अपना स्वतंत्र राज्य जमाने के प्रयत्न में लगा है तब वह बहुत क्रोधित हुआ और उसने हिम्मतबहादुर के भाई उमराव गिर को कैद कर लिया। मराठों को यह झगड़ा मालूम हो गया था और उन्होंने ऐसे समय में हिम्मतबहादुर को हरा देने का अच्छा अवसर सोचा।

८—काल्पी के निकट गोसाइयों और मराठों में गहरी लड़ाई हुई। अनूप गिर उर्फ हिम्मतबहादुर हार गया और वह अवध की ओर भागा। उसके सब सैनिक सेंधिया की सेना में भरती हो गए। पीछे से अनूप गिर भी सेंधिया की सेना में भरती हो गया। मराठों ने गोसाई लोगों को संवत् १८३२ के लगभग हराया।

अध्याय २८

अँगरेजों का आक्रमण

१—अँगरेजों और फरासीसियों का युद्ध संवत् १८२० में समाप्त हुआ और इस युद्ध में अँगरेजों की जीत हुई। अँगरेज लोग धीरे धीरे अपना राज्य बढ़ा रहे थे। मुगलों से सनदें लेकर अँगरेजों ने कारखाने खोले और इन कारखानों की रक्षा के बहाने वे लोग सेना रखने लगे और कारखानों के आसपास किले भी बनवाने लगे। जिस समय राजाओं में आपसी युद्ध हो रहे थे उस समय अँगरेजों ने अपनी सेना बढ़ाई और कमजोर राजाओं से देश लेना इन्होंने आरंभ कर दिया। इस प्रकार बढ़ते बढ़ते अँगरेज लोग भारतवर्ष के सबसे अधिक शक्तिमान् राज्य के अधिकारी हो गए[1]। बक्सर के युद्ध के पश्चात्

---

(१) एक अँगरेजी लेखक ने अँगरेजों की वृद्धि का निम्नलिखित वर्णन किया है—

From factories to forts, from forts to fortifications, from fortifications to garrisons, from garrisons to

अँगरेजों को बंगाल की आमदनी वसूल करने का अधिकार मिल गया। इस समय अँगरेजों की ओर से गवर्नर लार्ड क्लाइव था।

२—बाजीराव के पश्चात् उनका पुत्र बालाजी बाजीराव उर्फ नाना साहब पेशवा हुआ। नाना साहब के मरने पर पूना में फिर झगड़े शुरू हो गए। अधिकतर सरदारों की सम्मति से माधवराव पेशवा हुए पर थोड़े ही दिनों के बाद वि० सं० १८२९ में वे राजयक्ष्मा रोग से मर गए। इनके मरने पर इनके भाई नारायणराव पेशवा बनाए गए। नारायणराव पेशवा राघोबा की सहायता से मार डाले गए और राघोबा ने स्वयं पेशवा होने का दावा किया। महाराष्ट्र के सरदार चाहते थे कि राघोबा पेशवा न हो। इन सरदारों में मुख्य नाना फड़नवीस थे। जब राघोबा ने पेशवा बनना बहुत कठिन देखा तब इसने अँगरेजों से सहायता माँगी। अँगरेज लोगों को यह सुनकर बहुत हर्ष हुआ और उन्होंने राघोबा की सहायता के लिये अपनी सेना भेजी। इस सहायता के कारण महाराष्ट्र में बहुत परिवर्तन हुए परंतु इनका सबसे पहला धक्का बुंदेलखंड को लगा।

३—बुंदेलखंड की स्थिति इस समय बड़ी शोचनीय थी। बुंदेलखंड के दक्षिण में गोंड लोगों का राज्य था। गोंड राज्य धीरे धीरे छोटा होता जाता था और इस समय गोंड राजा और मराठों से भी झगड़े हो रहे थे। पेशवा ने महाराजशाह पर आक्रमण करके उसे हरा दिया और महाराजशाह युद्ध में मारा भी गया।

---

armies, and from armies to conquests, the gradations were natural and the result inevitable; where we could not find a danger, we were determined to find a quarrel—

Philip Francis, Speech on Indian affair. 1687 A.P.

महाराजशाह के पुत्र शिवराजशाह ने मराठों से सुलह कर ली और मराठों को चार लाख रुपए सालाना मिलने भी लगे। यह रकम चौथ के रूप में सागरवालों को दी जाती थी। भोंसले भी ललचाए और उन्होंने भी गोंड राज्य से चौथ माँगी। परंतु गोंड-राज्य चौथ न दे सकता था और नागपुरवालों से लड़ भी न सकता था। इसलिये राजा शिवराजशाह ने अपने राज्य के ६ गढ़ भोंसलों को दे दिए। शिवराजशाह के मरने पर उसका लड़का दुर्जनशाह संवत् १८०६ में गद्दी पर बैठा परंतु इससे प्रजा असंतुष्ट थी और इसके काका निजामशाह ने इसे मरवा डाला और वह राजा बन गया। निजामशाह ने शासन अच्छा किया और मराठों को चौथ देना बंद कर दिया। सागरवालों ने निजामशाह पर आक्रमण करके उसे हराया और उसके भतीजे नरहरशाह को राजा बनाया। नागपुरवालों ने निजामशाह के पुत्र सुमेरशाह का पक्ष लेकर नरहर-शाह को गद्दी से उतार दिया और सुमेरशाह को राजा बनाया। सागरवालों ने फिर गढ़ा पर चढ़ाई की, सुमेरशाह को कैद कर लिया और नरहरशाह को राजगद्दी दी। नरहरशाह राजा था, परंतु मराठे नरहरशाह के राज्य में बहुत हस्तक्षेप करते थे और गढ़ा में मराठों की एक सेना भी रहती थी। नरहरशाह यह पसंद न करता था और वह अपने मंत्री गंगा गिर की सहायता से मराठों से स्वतंत्र होने का प्रयत्न कर रहा था।

४—बुंदेलखंड के बुंदेले राजाओं में भी झगड़े हो रहे थे। गुमानसिंह और खुमानसिंह के युद्ध का हाल लिखा जा चुका है। पन्ना राज्य में भी इसी प्रकार के आपसी झगड़े हो रहे थे। राजा हिंदूपत की मृत्यु विक्रम संवत् १८३४ में हुई। इनके बड़े पुत्र सरमेदसिंह को राज्य न दिया गया परंतु छोटे पुत्र अनिरुद्धसिंह को राज्य मिला। पन्ना राज्य में इस समय दो दीवान थे। इन दोनों

मे राजा अनिरुद्धसिंह बेनी हजूरी का पक्ष लेते थे और दूसरे दीवान कायमजी चौबे की कुछ न चल पाती थी। इसलिये कायमजी चौबे भी सरमेदसिंह को उसकाने का प्रयत्न कर रहे थे। कई राजा लोग भी सरमेदसिंह की सहायता के लिये तैयार थे। सारा बुंदेलखंड इस पन्ना राज्य-संबंधी झगड़ों में लगा हुआ था। इसी समय अँगरेजों ने इस झगड़े से फायदा उठाया।

५—राघोबा को अँगरेजों ने सहायता देने के लिये सेना भेजने का निश्चय कर लिया। फौज कलकत्ते से भेजी जानेवाली थी। साधारणतः फौज कलकत्ते से बंबई को जलमार्ग से भेजी जाती थी। परंतु अँगरेजों को मध्यभारत का हाल मालूम था इसलिये उन्होंने अपनी सेना मध्यभारत में से भेजने का निश्चय किया। अवध के सूबेदार अँगरेजों के मित्र थे इसलिये अँगरेजों की सेना यहाँ तक आसानी से आ सकती थी। अँगरेज लोग किसी प्रकार काल्पी पर अपना अधिकार कर लेना चाहते थे और इसी लिये उन्होंने अपनी सेना मध्यभारत होती हुई भेजी थी। काल्पी एक बड़ा प्रधान नगर समझा जाता था। जिसके अधिकार में यह नगर आ जाता था उसे चारों ओर आक्रमण करना आसान हो जाता था। मुसलमानों ने जब बंगाल पर पहले आक्रमण किया था तब उन्होंने काल्पी पर अपना अधिकार सबसे पहले किया था। मराठों ने दिल्ली पर जब आक्रमण किया तब काल्पी का उनके अधिकार मे होना उन्हें बहुत सहायक हुआ था। अँगरेज लोग काल्पी को मध्यभारत की कुंजी समझते थे और चाहते थे कि किसी भी प्रकार उनका अधिकार काल्पी पर हो जाय। उन्हें काल्पी पर चढ़ाई करने का बहाना यही था कि वे राघोबा पेशवा की सहायता को जाना चाहते थे। बुंदेलखंड के मराठे राघोबा के विरुद्ध थे और उन्होंने अँगरेजों की गति रोकने का निश्चय कर लि

कौंच के प्रबंध की देख-रेख इस समय गंगाधर गोविंद करते थे।

६—कलकत्ते की सेना जो मध्यभारत की ओर रवाना हुई उसके नायक कर्नल वेलेस्ली थे। इन्होंने गंगाधर गोविंद से मध्य भारत होते हुए जाने की अनुमति माँगी पर गंगाधर गोविंद ने अनुमति न दी। कर्नल वेलेस्ली ने बुंदेलखंड में घुसने का निश्चय कर ही लिया था और उन्होंने संवत् १८३५ में काल्पी पर आक्रमण कर दिया। काल्पी के समीप मराठों से अँगरेजों ने युद्ध किया। अँगरेजों ने मराठों को हराकर काल्पी पर अधिकार कर लिया। इतने पर भी मराठों ने धैर्य न छोड़ा और उन्होंने अँगरेजों की सेना को काल्पी से आगे न बढ़ने दिया। चार मास तक अँगरेज लोग काल्पी में रुके आए और आगे न बढ़ सके। परंतु अँगरेज लोग भी वहीं पर अड़े रहे। उस समय अँगरेजों का गवर्नर वारेन् हेस्टिंग्ज बड़ा कूटनीतिज्ञ था। उसने नागपुर के भोंसले से एक गुप्त संधि कर ली थी जिसके अनुसार भोंसले ने अँगरेजों की सेना को न रोकने का वचन दिया था। भोपाल के नवाब को भी अँगरेजों ने मिला लिया था। इसलिये अँगरेजों को डर केवल यमुना से विंध्यगिरि तक का ही था, क्योंकि इस भाग पर ही गंगाधर गोविंद का अधिकार था। शेष भाग पर भोपाल के नवाब और भोंसले का अधिकार था और इन लोगों ने अँगरेजों की फौज को न रोकने का वचन दे दिया था। परंतु गंगाधर गोविंद के राज्य से निकलना ही अँगरेजों को असंभव मालूम होने लगा। इसलिये अँगरेजों ने दूसरी युक्ति सोची। वेलेस्ली के एक सहायक सेनापति गॉडर्ड ने कायमजी चौबे को मिलाया। कायमजी चौबे को आशा दी गई कि अँगरेज लोग तुम्हारी सहायता करेंगे। विश्वास में आकर कायमजी ने केन नदी के किनारे से बुंदेलखंड में से होते हुए जाने का मार्ग दे दिया। अँगरेज लोग इस मार्ग से निकल गए। यह सेना कर्नल

गॉडर्ड के साथ मालथैान, खिमलासा, भिलसा और हुशंगाबाद होती हुई दक्षिण में पहुँची। भोपाल के नवाब और भोंसले ने अँगरेजों की संधि के अनुसार अँगरेजी सेना को न रोका। गॉडर्ड सेंधिया को हराता हुआ महाराष्ट्र में पहुँचा और वहाँ मराठों से उसका युद्ध हुआ। इस युद्ध का अंत संवत् १८३९ में हुआ। अँगरेजों और मराठों से संधि हो गई और राघोबा पेशवा न बनाया गया, वरन नारायण राव का पुत्र माधव नारायण पेशवा बनाया गया। इस प्रकार नाना फड़नवीस की बात रह गई। नाना फड़नवीस पहले से ही माधव नारायण के सहायक थे।

७—बुंदेलखंड में से अँगरेजों के निकलने से मराठों की व्यवस्था शिथिल हो गई। परंतु मराठों ने अँगरेजों के चले जाने पर काल्पी पर फिर अधिकार कर लिया। अँगरेजों ने कायमजी चौबे को सहायता देने का वादा किया था। परंतु कायमजी चौबे और बेनी हजूरी में जो युद्ध हुआ उसमें अँगरेजों की कोई सहायता न थी।

८—कायमजी चौबे ने सरमेदसिंह का पक्ष लिया। बाँदा के राजा गुमानसिंह ने अपने प्रसिद्ध सेनापति नोने अर्जुनसिंह को सरमेदसिंह की सहायता को भेजा। इस युद्ध के लिये दोनों ओर से बड़ी तैयारियाँ हुईं। यह युद्ध इतना घोर हुआ कि इसे कई विद्वानों ने बुंदेलखंड का महाभारत कहा है। पन्ना राज्य की सेना का नायक बेनी हजूरी था। बेनी हजूरी और नोने अर्जुनसिंह का युद्ध गठेवरा के निकट संवत् १८४० में हुआ। इस युद्ध में कई वीर मारे गए। कहा जाता है कि इस युद्ध के कारण सारा बुंदेलखंड वीरों से खाली हो गया। नोने अर्जुनसिंह बड़ी वीरता से लड़े। उनके शरीर में १८ घाव लगे थे। अंत में नोने अर्जुनसिंह की विजय हुई। बेनी हजूरी युद्ध में मारा गया। पन्ना का राज्य सरमेदसिंह को मिला।

अध्याय २९

गोंड राज्य का पतन

१—जिस समय अँगरेजों और मराठों से युद्ध हो रहा था और अँगरेजों की फौज बुंदेलखंड होती हुई दक्षिण पहुँची उस समय बुंदेलखंड के मराठों ने अँगरेजों से काल्पी वापिस ले लेने का प्रयत्न किया। ज्योंही कर्नेल गॉडर्ड नर्मदा पार करके दक्षिण में गया त्योंही मराठों ने झाँसी और सागर की फौज इकट्ठी करके काल्पी पर चढ़ाई की और अँगरेजों के हाथ से काल्पी ले ली। जिस समय सागर की सेना काल्पी गई उस समय गोंड लोगों ने मराठों से बदला लेने का अच्छा अवसर सोचा। नरहरशाह और उनका मंत्री गंगा गिर ये दोनों मराठों से पहले से ही नाराज थे।

२—मराठों की ओर से सागर का प्रबंध विसाजी गोविंद कर रहे थे। इन्होंने एक बड़ी भारी सेना के साथ चढ़ाई कर गढ़ा मंडला का इलाका नरहरशाह से छीन लिया था। संवत् १८३८ में विसाजी गोविंद जबलपुर में ही थे। इस समय नरहरशाह गोंड ने सात हजार सैनिकों की सेना लेकर मराठों पर हमला किया। गंगा गिर ने विसाजी गोविंद को गढ़ा के निकट हरा दिया। हारकर विसाजी गोविंद जबलपुर की ओर भागे। अंत में गोंड लोगों ने इन्हें घेरकर मार डाला।

३—इस विजय से गोंड लोगों का मन खूब बढ़ गया। उन्होंने मराठों के किलों को लूटना आरंभ कर दिया। दमोह जिले का तेजगढ़ का किला गोंड लोगों ने अपने अधिकार में कर लिया। फिर वे लोग जबलपुर की ओर वापिस गए और मराठों की जो सेना जबलपुर में रह गई थी उसे उन्होंने वहाँ से मार भगाया।

४—गोंड लोगों से लड़ने के लिये मराठों ने अपने सरदार बापूजी नारायण को एक बड़ी सेना के साथ चौरागढ़ की ओर भेजा। गोंड लोगों ने भी अपनी सेना मराठों से लड़ने के लिये चौरागढ़ भेजी। मराठों ने गोंड लोगों की बड़ी सेना का सामना करना ठीक न समझा। वे चौरागढ़ को छोड़कर बलेह की ओर आ गए। जबलपुर से मराठों की जिस सेना को गोंड लोगों ने भगा दिया था उसे साथ लेकर विसाजी गोविंद के दीवान अंताजीराम रांडेकर दमोह पहुँचे और मराठों की एक दूसरी सेना केशव महादेव चांदोरकर नामक सरदार के साथ मराठों की सहायता के लिये पहुँच गई। फिर मराठों से और गोंड लोगों में तेजगढ़ के समीप युद्ध हुआ। यह युद्ध बहुत दिनों तक होता रहा और इसमें मराठों की जीत हुई। तेजगढ़ का किला मराठों के अधिकार में आ गया और गोंड राजा नरहरशाह अपनी सेना लेकर चौरागढ़ की ओर भाग गया।

५—जिस समय यह युद्ध हो रहा था उस समय बालाजी गोविंद काल्पी में थे। उन्होंने सागर में अपने पुत्र रघुनाथ राव उर्फ आबा साहब को नियत कर दिया। आबा साहब ने हटा, तेजगढ़ इत्यादि किलों पर उचित सेना रखकर सब राज्य-व्यवस्था देखी। फिर अपनी सब सेना लेकर ये गोंड लोगों से लड़ने जबलपुर की ओर चले। जबलपुर में इन्हें कोई युद्ध न करना पड़ा और ये अपनी सेना लेते हुए मंडला पहुँचे। मोरो विश्वनाथ नामक मराठे सरदार भी यहाँ सहायता के लिये आ पहुँचे। आबा साहब ने मंडला की गोंड सेना को भगाकर मंडला पर अधिकार कर लिया। फिर वे जबलपुर में आए और पाटन के निकट मोरो विश्वनाथ को जबलपुर का सूबेदार नियत किया। गोंड राजा नरहरशाह इस समय अपनी सेना लेकर चौरागढ़ के किले में था। आबा साहब अपनी सेना लेकर चौरागढ़ पहुँचे। तेजगढ़ से भी कुछ सेना यहाँ

सहायता के लिये आ पहुँची। चौरागढ़ पर गोंड लोगों की सेना बिलकुल हरा दी गई और राजा नरहरशाह औ दीवान गंगा गिर कैद कर लिए गए। इन दोनों को आबा साहब ने खुरई के किले में रखा। परंतु कुछ दिनों के बाद गंगा गिर हाथी के पैर से बँधवाकर मरवा डाला गया।

६—आबा साहब को गोंड लोगों के राज्य की लूट में बहुत सी बहुमूल्य वस्तुएँ मिली थीं। इनकी और मोरो पंत की वीरता से मराठों ने गोंड लोगों के राज्य पर फिर भी अपना अधिकार कर लिया।

७—मोरोपंत का देहांत संवत् १८५४ में हुआ। उस समय आबा साहब अपने पिता बालाजी के पास काल्पी में थे। मोरो पंत के पश्चात् उनके पुत्र विश्वासराव सागर के सूबे का कार्य देखने लगे। इस समय होल्कर और सेंधिया का पेशवा से झगड़ा हो गया। झगड़े का कारण यही था कि होल्कर और सेंधिया पेशवा से स्वतंत्र बनना चाहते थे। जब आबा साहब काल्पी में थे और मोरो पंत का देहांत हुआ तब होल्कर ने सागर को अपने अधिकार में कर लेने का अच्छा अवसर सोचा। होल्कर ने अपने मीरखाँ नामक सरदार को सागर पर आक्रमण करने के लिये भेजा। मीरखाँ ने आकर सागर को घेर लिया। सागर की सेना ने होल्कर की सेना से बड़ा घोर युद्ध किया। यह समाचार आबा साहब को काल्पी में मालूम हुआ। काल्पी से वे एक बड़ी सेना लेकर सागर की ओर आए। सागर के समीप आकर उन्हें मालूम हुआ कि होल्कर की सेना बहुत भारी है और उससे लड़ना बड़ा कठिन कार्य होगा। इसलिये उन्होंने नागपुर के भोंसला से सहायता माँगी। भोंसला ने सहायता दी और उस सेना की सहायता से होल्कर की सेना बिलकुल हरा दी गई।

के राजा सरमेदसिंह के जागीरदार थे। ये केरुआ नामक ग्राम में रहते थे परंतु पन्ना-नरेश ने प्रसन्न होकर इन्हें छत्रपुर की जागीर दी थी। सोनेशाह धीरे धीरे अपनी जागीर के स्वतंत्र राजा बन गए। वीरसिंह भी, जिन्हें गुमानसिंह ने बिजावर की जागीर दी थी, अब स्वतंत्र राजा बन गए। पृथ्वीराज को शाहगढ़ और गढ़ाकोटा का राज्य मराठों की सहायता से मिला था। मराठे पृथ्वीराज से चौथ लेते थे और सदा इन्हें दबाए रखते थे। पृथ्वीराज के तीन पुत्र थे। इनके नाम किसुनजू, नारायणजू और हरीसिंह थे। पृथ्वीसिंह के मरने पर किसुनजू राजा हुए, परंतु शीघ्र ही इनका देहांत हो गया। किसुनजू के पश्चात् उनके भाई हरीसिंह संवत् १८२९ में राजा हुए। हरीसिंह बड़े धार्मिक और ईश्वरभक्त थे। इनसे प्रजा संतुष्ट थी और इनका प्रबंध भी उत्तम था। इनका देहांत काशी में संवत् १८४२ में हुआ। इनके पश्चात् इनके पुत्र मर्दनसिंह राजगद्दी पर बैठे। मर्दनसिंह ने राज्य-प्रबंध में बहुत उन्नति की। ये महलों के बनवाने के बड़े शौकीन थे। गढ़ाकोटा के निकट इनके बनवाए कई मकान पाए जाते हैं। गढ़ाकोटा में जो 'रहस' अर्थात् चौपायों का बड़ा भारी मेला लगता है वह इनके समय से ही चला है।

२—मर्दनसिंह को मराठों का हस्तक्षेप पसंद न था। मराठे चौथ के सिवा जब चाहे तब अधिक द्रव्य माँगा करते थे। जब मराठों की शक्ति अँगरेजों के युद्ध के कारण क्षीण हो गई तब मर्दनसिंह ने मराठों को चौथ देना बंद कर दिया। सागर के आबा साहब ने मर्दनसिंह को फिर से अपने अधिकार में करने के लिये सेना भेजी। मर्दनसिंह के पास भी यथेष्ट सेना थी। इनके दीवान का नाम जालमसिंह था। जालमसिंह ने आबा साहब की सेना को गढ़ाकोटा के निकट हरा दिया और मराठों की सेना

को वापिस जाना पड़ा। आबा साहब ने फिर से अपनी सेना मर्दनसिंह से युद्ध करने के लिये भेजी। इस समय आबा साहब स्वयं युद्धक्षेत्र में पहुँच गए। मर्दनसिंह की सेना ने आबा साहब को इस बार भी हरा दिया। इस युद्ध के समय मर्दनसिंह को नागा लोगों ने सहायता दी थी।

३—मराठों को इस प्रकार शाहगढ़ और गढ़ाकोटा के राजा मर्दनसिंह ने हरा दिया और मर्दनसिंह का राज्य मराठों से स्वतंत्र हो गया। अन्य बुंदेले राजाओं ने भी मर्दनसिंह का अनुकरण किया और मराठों को चौथ देना बंद कर दिया। सारे बुंदेलखंड से मराठों की सत्ता उठने लगी। ऐसे संकट के समय बुंदेलखंड के मराठों ने पूना से सहायता माँगी। पूना से सहायता के लिये बड़ी भारी सेना भेजी गई। इस सेना का नायक अलीबहादुर था।

४—अलीबहादुर बाजीराव पेशवा के वंश का था। जिस समय बाजीराव पेशवा को महाराज छत्रसाल ने अपने राज्य का तृतीयांश दिया उस समय बाजीराव के साथ पन्ना दरबार की वेश्या की पुत्री मस्तानी पेशवा के साथ चली गई। बाजीराव पेशवा इसे बहुत चाहते थे और इसके गर्भ से बाजीराव पेशवा का एक पुत्र शमशेरबहादुर नाम का हुआ। शमशेरबहादुर ने पानीपत के युद्ध में सेनानायक का काम किया था और उसकी मृत्यु उसी युद्ध में हुई। शमशेरबहादुर के लड़के का नाम अलीबहादुर था। यही अलीबहादुर पूना से मराठों की सहायता के लिये बुंदेलखंड में भेजा गया।

५—पूना में नाना फड़नवीस के कहने के अनुसार राज्य-कार्य चलता था। ये सेंधिया को अपने अधिकार में कर लेना चाहते थे। सेंधिया की शक्ति इस समय बहुत बढ़ गई थी और उनकी बढ़ती शक्ति के कारण पेशवा को भी डर लगने लगा था। सेंधिया

का राज्य उत्तर हिंदुस्तान में फैला हुआ था और बादशाह शाह-आलम से भी सेंधिया को मित्रता थी। सेंधिया ने बादशाह शाह-आलम को सहायता देकर बादशाह के दुश्मन गुलाम कादिर को हरा दिया था। इससे बादशाह ने सेंधिया को कई उपाधियाँ भी दी थीं। नाना फड़नवीस अलीबहादुर पर बहुत विश्वास करते थे और सेंधिया की शक्ति को हीन करने का उद्देश्य अलीबहादुर को बतला दिया गया था। नाना फड़नवीस का यह उद्देश्य सबको न बतलाया गया था। प्रकट रूप से नाना फड़नवीस ने होल्कर और सेंधिया को मित्रता बताते हुए पत्र भी लिख दिए और उनमें सेंधिया और होल्कर को अलीबहादुर की सहायता करने का आदेश दिया।

६—अलीबहादुर संवत् १८४६ में बुंदेलखंड पहुँचा। अलीबहादुर ने पहले हिम्मतबहादुर (उर्फ अनूप गिर) को मिलाया। हिम्मतबहादुर को जब सेंधिया ने हरा दिया तब वह सेंधिया की सेना में नौकर हो गया। हिम्मतबहादुर को बुंदेलखंड का सब हाल मालूम था और अलीबहादुर किसी प्रकार हिम्मतबहादुर से मित्रता कर लेना चाहता था। हिम्मतबहादुर बड़ा लालची मनुष्य था। उसने अपना लाभ अलीबहादुर की मित्रता में समझा। उसने सेंधिया की नौकरी छोड़ दी और अली-बहादुर को सहायता देने का वचन दे दिया। अलीबहादुर ने हिम्मतबहादुर को देश का कुछ भाग देने का वचन दिया और हिम्मतबहादुर ने अलीबहादुर को बाँदा का नवाब बना देने की प्रतिज्ञा की।

७—अलीबहादुर के साथ पूना से बहुत सी सेना भेजी गई थी। कई मराठों के प्रसिद्ध सरदार अलीबहादुर के साथ आए थे। इस बड़ी सेना की सहायता के लिये हिम्मतबहादुर की बीस

हज़ार सैनिकों की सेना भी मिल गई। जब सेंधिया ने देखा कि हिम्मतबहादुर अलीबहादुर के पास चला गया तब उन्होंने अलीबहादुर को एक पत्र लिखा और हिम्मतबहादुर को वापिस माँगा, परंतु अलीबहादुर ने हिम्मतबहादुर को न दिया।

८—बाँदा में इस समय बखतसिंह का राज्य था। बखतसिंह संवत् १८३५ में गुमानसिंह के मरने पर राज-गद्दी पर बैठे थे। गुमानसिंह के कोई पुत्र न था इसलिये उन्होंने अपने संबंधी दुर्गासिंह के पुत्र बखतसिंह को गोद लिया था। जिस समय बखतसिंह राजगद्दी पर बैठे उस समय उनकी उमर बहुत कम थी। इनकी ओर से राज्य-कार्य्य इनके दीवान और सेनापति नोने अर्जुनसिंह देखते थे।

९—नोने अर्जुनसिंह गुमानसिंह के बड़े विश्वासी नौकर थे और इनकी योग्यता बुंदेलखंड भर में विख्यात थी। इनके पिता जैतपुर राज्य के जागीरदार थे और कुँवरपुर नामक ग्राम में रहते थे। यह गाँव अब सुंगरा कहलाता है। अर्जुनसिंह साधुओं की सेवा किया करते थे और एक साधु ने इन्हें वरदान भी दिया था। अर्जुनसिंह पहले चरखारी के राजा के यहाँ नौकर थे। परंतु चरखारी के राजा से इनकी अनबन हो गई इसलिये ये फिर बाँदा के राजा के यहाँ नौकर हो गये। इन्होंने हिम्मतबहादुर को हरा के यमुना के पार भगा दिया था। जब गुमानसिंह और चरखारी के राजा खुमानसिंह के बीच में युद्ध हुआ तब अर्जुनसिंह ने खुमानसिंह को हराया और युद्ध में खुमानसिंह की मृत्यु भी हुई। अर्जुनसिंह ने गठेवरा के बड़े युद्ध में भी विजय पाई थी।

१०—बखतसिंह छोटे थे इससे अर्जुनसिंह उन्हें लेकर अजयगढ़ में रहने लगे। चरखारी के राज्य से भी इस समय अनबन थी। अलीबहादुर और हिम्मतबहादुर ने अजयगढ़ पर आक्रमण

किया। नोने अर्जुनसिंह ने हिम्मतबहादुर से युद्ध किया। यह युद्ध अजयगढ़ और बनगाँव के बीच के मैदान में हुआ। इस युद्ध में अर्जुनसिंह मारे गये और हिम्मतबहादुर की जीत हुई। युद्ध के पश्चात् बाँदा पर अलीबहादुर का अधिकार हो गया*। यह युद्ध वि० सं० १८४६ वैशाख वदी १२ बुधवार (१८-४-१७६२) को हुआ था।

११—अर्जुनसिंह बुंदेलखंड के बड़े वीर पुरुष गिने जाते थे। परन्तु इनके पास अधिक सेना न होने से इनकी हार हुई। अलीबहादुर और हिम्मतबहादुर के पास असंख्य सेना और धन था। इस सेना से सामना करना एक वीर मनुष्य के लिये कठिन कार्य था। अर्जुनसिंह की वीरता अभी तक बुंदेलखंड में प्रसिद्ध है। अर्जुनसिंह देश और जाति के बड़े प्रेमी थे। इन्होंने हिम्मतबहादुर के समान विदेशियों की नौकरी कर अपने देश और जाति को हानि न पहुँचाई। अर्जुनसिंह सदा ही सच्चे स्वामिभक्त बने रहे। उन्होंने हिम्मतबहादुर के समान नमकहरामी नहीं की। हिम्मतबहादुर ने अपने स्वार्थ के लिये जिसका सहारा लेना उचित जान पड़ा, ले लिया। यदि हिम्मतबहादुर और अर्जुनसिंह से तुलना की जाय तो हिम्मतबहादुर से अर्जुनसिंह प्रत्येक दृष्टि से श्रेष्ठ जान पड़ते हैं†।

---

* इस युद्ध का वर्णन पद्माकर ने हिम्मतबहादुर-विरदावली में किया है। उसमें अर्जुनसिंह का हिम्मतबहादुर के हाथ से मारा जाना लिखा है। परंतु यह ठीक नहीं, क्योंकि अर्जुनसिंह अपने ही घराने के एक मनुष्य के भाले से मारे गए थे। यह मनुष्य चरखारी का था। चरखारी का राजा हिम्मतबहादुर का सहायक था।

† लाला भगवानदीन ने, इन दोनों के संबंध में, ये बातें लिखी हैं।

१—"अर्जुनसिंह क्षत्रिय था। और सच्चा क्षत्रिय था। हिम्मतबहादुर भिक्षा-वृत्तिधारी सनाढ्य ब्राह्मण का लड़का और पराया माल उड़ानेवाले गोसाईं का चेला था।

१२—अर्जुनसिंह की हार के पश्चात् अलीबहादुर और हिम्मतबहादुर का डर सारे बुंदेलखंड में हो गया। चरखारी का राजा हिम्मतबहादुर का सहायक था परंतु फिर जान पड़ता है कि चरखारी के राजा से भी अनबन हो गई। क्योंकि हिम्मतबहादुर ने फिर चरखारी पर भी चढ़ाई की थी। चरखारी के राजा की सहायता को बिजावर के वीरसिंह भी पहुँचे थे। इस युद्ध में वीरसिंह की मृत्यु चरखारी के पास हुई। इससे चरखारी और बिजावर के राजा अलीबहादुर के अधीन हो गए। वे इन राज्यों के राजा बने रहे, पर अलीबहादुर को चौथ देने लगे। इसी

२—अर्जुनसिंह ने स्वदेशवासी क्षत्रियों की क्षत्रिय की भाँति सेवा की। हिम्मतबहादुर ने ब्राह्मणवीर्य तथा गोसाईं धर्म का शिवभक्त होकर विदेशी और विधर्मी यवन की सेवा की।

३—अर्जुनसिंह ने कभी किसी से सहायता नहीं माँगी। वह सदैव निज भुजबल से लड़ता रहा और दूसरों की सहायता करता रहा। हिम्मतबहादुर हमेशा दूसरों की सहायता का प्रयासी रहा।

४—हिम्मतबहादुर अपना स्वार्थ विचार के लड़ाई करता था और अपना राज्य स्थापित करना चाहता था जो न हो सका। अर्जुनसिंह लड़ाई लड़कर जो गाँव या परगने जीतता था वह अपने नाबालिग़ मालिक के अर्पण करता था और यदि अर्जुनसिंह चाहता तो उस समय अपना निज का राज्य स्थापित कर लेता।

५—उतरती उम्र में हिम्मतबहादुर ने अपने आत्म-पतन में धब्बा लगा लिया था जो एक वीर पुरुष के लिये बड़ी निंदा की बात है। अर्जुनसिंह के विषय में ऐसी कोई बात सुनी नहीं जाती।

६—हिम्मतबहादुर ने एक प्रकार से देशद्रोह किया। अर्जुनसिंह इस दोष से बरी है। वरन् देशद्रोहियों से लड़ने के कारण हम उसे स्वदेश-भक्त कह सकते हैं।"

अर्जुनसिंह का ईजाद किया हुआ 'लग्गी' नाम का रणवाद्य आज तक बुंदेलखंड में प्रचलित है। (लाला भगवानदीन द्वारा संपादित हिम्मतबहादुर विरदावली देखिए।)

प्रकार अलीबहादुर ने छत्रपुर आदि राज्यों को हराया और वहाँ के राजाओं ने अलीबहादुर के अधीन रहना स्वीकार किया। पन्ना में बेनी हजूरी के पुत्र राजधर ने अलीबहादुर से युद्ध किया परंतु अलीबहादुर ने उसे भी हरा दिया और पन्ना के राजा को अधिकार में कर लिया।

१३—अर्जुनसिंह के मरने पर बखतसिंह भागे और बाँदा और अजयगढ़ पर अलीबहादुर का अधिकार हो गया। अलीबहादुर ने बाँदा के नवाब का विरुद धारण किया। बखतसिंह ने अपनी जीविका का कोई उपाय न देख अलीबहादुर के यहाँ नौकरी कर ली। अजयगढ़ का राज्य फिर अँगरेजों ने बखतसिंह को दिया।

१४—अलीबहादुर बाँदा में रहने लगा। उसने अपनी राजधानी वहीं बनाई। अलीबहादुर को पेशवा से सदा सहायता मिलती रही और अलीबहादुर पेशवा के अधीन रहा आया। इस तरह पेशवा का अधिकार फिर से बुंदेलखंड के राज्यों पर अलीबहादुर के द्वारा हो गया।

१५—अलीबहादुर के पास यशवंतराव नाम का एक बड़ा शूर सैनिक था। इसके साथ दस हजार मनुष्यों की सेना देकर अलीबहादुर ने इसे वि० सं० १८५३ में रीवाँ पर आक्रमण करने भेजा। उस समय रीवाँ में बघेल राजा अजीतसिंह राज्य करता था। इसने अपनी सेना कलिंदरसिंह कलचुरी के सेनापतित्व में भेजी। रीवाँ की सेना यशवंतराव की सेना से हार गई। अंत में राजा ने एक लाख रुपया नकद देकर अलीबहादुर से संधि कर ली। अलबत्ता वि० सं० १८६० में मराठों की चढ़ाई को रोकने के लिये अँगरेजी सेना मकुंदपुर में कुछ दिनों तक पड़ी रही। पर कुछ लोगों का ऐसा मत है कि वि० सं० १८५३ के युद्ध में अलीबहादुर को नीचा देखना पड़ा था इससे उसका दबदबा बुंदेलखंड से उठ गया। इससे

यहाँ के राजा लोग अलीबहादुर से स्वतंत्र होने का प्रयत्न करने लगे। यह हाल देखकर अलीबहादुर बहुत घबराया और पूना के पेशवा से सहायता माँगने के लिये उसने दूत भेजा। हिम्मतबहादुर ने अलीबहादुर को हिम्मत दी और उसने भी सेना तैयार करने का काम आरंभ कर दिया। कुछ दिनों के पश्चात् पूना से भी सहायता आ पहुँची। इस सेना की सहायता से अलीबहादुर ने पहले जैतपुर पर आक्रमण किया। जैतपुर में इस समय गजसिंह का राज्य था। गजसिंह ने भी अलीबहादुर से लड़ने की तैयारी कर ली थी। परंतु अलीबहादुर ने जैतपुर की सेना को हरा दिया और जैतपुर के राजा को निकालकर उस राज्य पर अधिकार कर लिया। अजयगढ़ में कुछ सेना ने अलीबहादुर से लड़ने का प्रयत्न किया परंतु इस सेना को भी अलीबहादुर ने अच्छी तरह से हरा दिया।

१६—बुंदेलखंड में अपना अधिकार जमाने के बाद अलीबहादुर ने रीवाँ पर यशवंतराव की मृत्यु का बदला लेने के लिये चढ़ाई की। रीवाँ के राजा को हिम्मतबहादुर ने हरा दिया। रीवाँ-नरेश ने अलीबहादुर को प्रति वर्ष बारह लाख रुपए, चौथ के रूप में, देने का वचन दिया।

अध्याय ३१

हिम्मतबहादुर की लड़ाइयाँ

१—अलीबहादुर ने रीवाँ-नरेश को हरा दिया परंतु कालिंजर के चौबे ने अलीबहादुर की अधीनता स्वीकार न की। कालिंजर का किला कायमजी चौबे के पुत्र रामकिसन के अधिकार में था।

यह चौबे वास्तव में जागीरदार था परंतु अब पन्ना राज्य से स्वतंत्र हो गया था और अलीबहादुर का आधिपत्य भी स्वीकार न करता था। अलीबहादुर को जहाँ जहाँ पर विजय हुई उसका मूल कारण हिम्मतबहादुर की वीरता ही थी। अब कालिंजर को वश में करने के लिये अलीबहादुर ने हिम्मतबहादुर से सलाह ली। कालिंजर का किला ऊँचे पहाड़ पर है और बहुत दृढ़ बना हुआ है। इसको लेने के लिये हिम्मतबहादुर ने बड़ी भारी तैयारी की। फिर किले पर आक्रमण किया परंतु किला दुर्भेद्य होने से वह किसी प्रकार हिम्मतबहादुर के अधिकार में न आ सका। हिम्मतबहादुर और अलीबहादुर दोनों ने प्रयत्न न छोड़ा और किले के लेने के लिये ये लोग लड़ते ही रहे। जब इन्हें मालूम हुआ कि किले के लेने में कई वर्ष लग जायँगे तब अलीबहादुर और हिम्मतबहादुर ने किले के समीप मैदान में रहने के लिये मकान भी बनवा लिए। यहाँ से हिम्मतबहादुर और अलीबहादुर दो वर्ष तक बराबर लड़ते रहे पर कालिंजर का किला इनके हाथ में न आया। इसी युद्ध के समय, विक्रम संवत् १८५९ में, अलीबहादुर की मृत्यु हो गई। उसके मरने पर भी हिम्मतबहादुर ने कालिंजर लेने का प्रयत्न न छोड़ा। हिम्मतबहादुर की ओर से सबसुखराम सेनापति थे।

२—अलीबहादुर के दो लड़के थे जिनके नाम शमशेरबहादुर और जुल्फिकारअली थे। इनमें से शमशेरबहादुर बड़ा था परंतु जब अलीबहादुर की मृत्यु हुई तब शमशेरबहादुर पूना में था। इसलिये अलीबहादुर के चाचा गनीबहादुर और हिम्मतबहादुर ने मिलकर जुल्फिकारअली को ही अलीबहादुर की जगह नवाब बना दिया। यह हाल शमशेरबहादुर को पूना में मालूम हुआ। समाचार पाते ही शमशेरबहादुर पेशवा से सहायता लेकर कालिंजर पहुँचा। पेशवा भी गनीबहादुर से नाराज था। गनीबहा-

दुर ने जुल्फिकारअली को नवाब बनाकर सब राज्य-कार्य अपने हाथ में कर लिया था। गनीबहादुर वास्तव में स्वतंत्र ही हो गया था। पेशवा से उसका कोई संबंध न रह गया था। इस कारण पेशवा ने शमशेरबहादुर को सहायता देना ठीक समझा। शमशेरबहादुर ने मराठों की सेना की सहायता से अलीबहादुर का राज्य अपने अधिकार में कर लिया और कालिंजर में जाकर गनीबहादुर को पकड़कर अजयगढ़ के किले में कैद कर दिया। इस किले में गनीबहादुर को शमशेरबहादुर ने जहर दिलवाकर मार डाला। हिम्मतबहादुर गनीबहादुर का सहायक था। जब उसने देखा कि गनीबहादुर मार डाला गया है तब उसने भी शमशेरबहादुर से सब संबंध तोड़ दिए। अभी जो कुछ युद्ध हुए थे उनमें हिम्मतबहादुर के कारण ही अलीबहादुर को विजय मिली थी। जब शमशेरबहादुर ने देखा कि हिम्मतबहादुर ने सहायता देना बंद कर दिया तब उसने भी कालिंजर के किले को लेने का प्रयत्न छोड़ दिया। वह बाँदा को वापिस आ गया।

३—हिम्मतबहादुर ने बाँदा के नवाब की सहायता देकर बुंदेलखंड का बहुत सा भाग बाँदा के नवाब के अधिकार में कर दिया था। हिम्मतबहादुर ने देखा कि नवाब से अनबन होने के कारण मुझे कोई लाभ न पहुँच सकेगा इसलिये उसने अँगरेजों से बातचीत आरंभ की। विक्रम संवत् १८५६ में मराठों और अँगरेजों के बीच बसीन नामक नगर में एक संधि हुई थी जिसके अनुसार बाजीराव पेशवा हुआ और उसने अँगरेजों का आधिपत्य स्वीकार किया। परंतु इस संधि से सब मराठे सरदार असंतुष्ट थे और थोड़े ही दिनों के बाद पेशवा ने फिर से अँगरेजों से स्वतंत्र होने का प्रयत्न किया। जिस समय हिम्मतबहादुर ने अँगरेजों से मेल करने की बातचीत की उस समय अँगरेज बड़े प्रसन्न

हुए क्योंकि उन्हें हिम्मतबहादुर की सहायता से मराठों को दबाने का मौका मिल गया। इस समय नागपुर के भोंसले और सेंधिया पूना के पेशवा से मिल गए थे और पेशवा को अँगरेजों के हाथ से बचाने का प्रयत्न कर रहे थे। ऐसे समय में अँगरेजों को हिम्मतबहादुर की सहायता बहुत लाभदायक प्रतीत हुई। हिम्मतबहादुर की वीरता सारे भारतवर्ष में प्रसिद्ध थी। बुंदेलखंड के प्रत्येक भाग का उसे पूरा ज्ञान था। अतः अँगरेज लोगों को वह बहुत सहायता पहुँचा सकता था।

४—हिम्मतबहादुर की सेना में कर्नल मिसेल वैक नामक एक सर्दार था। अँगरेजों की और हिम्मतबहादुर की बातचीत इसी की सहायता से हुई। हिम्मतबहादुर ने जो जो शर्तें अँगरेजों से कहीं, उन्होंने मान लीं। अँगरेजों ने हिम्मतबहादुर से राजा के समान बर्ताव करने की प्रतिज्ञा की। उन्होंने यह भी प्रतिज्ञा की कि वे हिम्मतबहादुर के भाई उमरावगिर को अवध के नवाब के बंधन से मुक्त करा देंगे। अँगरेजों ने अंतर्वेद में सिकंदरा और बिंदकी के परगने हिम्मतबहादुर को देने का वचन दिया। बुंदेलखंड में भी हिम्मतबहादुर को एक लाख की जागीर देने की प्रतिज्ञा अँगरेजों ने की। ये शर्तें कराके हिम्मतबहादुर ने अँगरेजों की सहायता की। अँगरेजों ने हिम्मतबहादुर से प्रसन्न होकर उसको महाराजा बहादुर की पदवी भी दी।

५—इस समय अँगरेजों का राज्य बंगाल और बिहार में जम गया था और बनारस तक पहुँच गया था। वरन् मद्रास के तट पर भी बहुत दूर तक फैला हुआ था। बंबई के निकट के कई नगर भी अँगरेजों के अधिकार में थे। इसके सिवा कई राजा लोग अँगरेजों के अधीन हो चुके थे। हिम्मतबहादुर और अँगरेजों की संधि का हाल सुनते ही शमशेरबहादुर ने

पेशवा से सहायता माँगी। इस समय सेंधिया, होलकर आदि सब मराठे सरदार अँगरेजों के विरुद्ध हो रहे थे। इस समय जालौन में गोविंदराव गंगाधर उर्फ नाना साहब सूबेदार थे। इन्होंने शमशेर-बहादुर की सहायता के लिये अपनी सेना भेजी।

६—हिम्मतबहादुर के पास भी बहुत बड़ी सेना थी। इस सेना का खर्च हिम्मतबहादुर को अँगरेजों से मिल रहा था। अँगरेजों का एक सेनापति कर्नल पोल भी अपनी सेना लिए हुए हिम्मतबहादुर के साथ था। यह सब सेना लेकर हिम्मतबहादुर बुंदेलखंड में घुसा। पहला युद्ध केन नदी के किनारे के "बरा" नामक ग्राम के पास हुआ। शमशेरबहादुर इस युद्ध में हार गया और उसे भागना पड़ा। शमशेरबहादुर फिर मौंरागढ़ पहुँचा परंतु यहाँ पर भी हिम्मतबहादुर ने उसे हराया। इसके पश्चात् कैथा नामक ग्राम में तीसरी लड़ाई हुई। यहाँ पर शमशेरबहा-दुर अच्छी तरह से हरा दिया गया। शमशेरबहादुर यहाँ से भागा और अँगरेजों ने उसका पीछा किया। शमशेरबहादुर ने अँगरेजों से युद्ध करने में कोई लाभ न देखकर संधि कर ली। यह संधि अँगरेजों की ओर से कैप्टेन बेली और शमशेरबहादुर के बीच में हुई। संधि के अनुसार शमशेरबहादुर का सब प्रदेश अँगरेजों को सौंप दिया गया और शमशेरबहादुर को चार लाख रुपयों की जागीर दी गई। यह संधि विक्रम संवत् १८६१ में हुई।

७—इस युद्ध में अँगरेजों के विजय का कारण हिम्मतबहादुर ही था। हिम्मतबहादुर बड़ा ही शूर सैनिक था परंतु अपने स्वार्थ के लिये उसने जो कुछ सामने देखा, बिना परिणाम सोचे कर डाला। अवध के नवाब की हार होने पर वह सेंधिया से मिल गया और सेंधिया के विरुद्ध होकर फिर वह अलीबहादुर से मिल गया। पश्चात् इसी अलीबहादुर के लड़के के विरुद्ध होकर वह

अँगरेजों से जा मिला। हिम्मतबहादुर को अँगरेजों से शर्तों के अनुसार अंतर्वेद के परगने और बुंदेलखंड में मौदहा, छीन, हमीरपुर और दोसा के परगने मिले। हिम्मतबहादुर इस समय बहुत वृद्ध हो गया था और थोड़े ही दिनों के बाद विक्रम संवत् १८६१ में उसकी मृत्यु हो गई। हिम्मतबहादुर के मरने पर उसका पुत्र निरंदगिर (या नरेंद्रगिर) हिम्मतबहादुर की जागीरों का अधिकारी हुआ। परंतु निरंदगिर की अवस्था बहुत कम थी, इस कारण हिम्मतबहादुर का भाई उमरावगिर उन सब जागीरों की देख-भाल करता था। यह उमरावगिर पहले अवध के नवाब के यहाँ कैद था परंतु अँगरेजों ने इसे छुड़वा दिया। विक्रम संवत् १८८७ में निरंदगिर मर गया और अँगरेजों ने उसकी जागीर जब्त कर ली। उस समय उमरावगिर के खर्च के लिये अँगरेजों की ओर १०००) रुपए मासिक मुकर्रर हुए और निरंदगिर के भाई कंचनगिर को २०००) रुपए मासिक मुकर्रर कर दिए गए। इनके मरने के पश्चात् इनके वंशजों को अँगरेजों की ओर से पेंशन दी गई।

८—अँगरेजों ने शमशेरबहादुर को चार लाख रुपयों की पेंशन देकर बाँदा को अपने अधिकार में कर लिया था। परंतु थोड़े ही दिनों के बाद उसी वर्ष अर्थात् विक्रम संवत् १८६१ में शमशेरबहादुर मर गया। शमशेरबहादुर के बाद उसके भाई जुल्फिकारअली और उसके लड़के अलीबहादुर को चार लाख की पेंशन मिली और ये सब लोग नवाब बाँदा कहलाते रहे। इनके वंशज अभी तक इंदौर में मौजूद हैं, जिन्हें आजकल, पेंशन के रूप में, सालाना १३ हजार रुपए मिलते हैं।

६—अलीबहादुर ने बुंदेलखंड के जिन राजाओं को अपने अधिकार में कर लिया था वे सब अब अँगरेजों के अधिकार में हो गए। ओड़छा, दतिया और समथर को छोड़कर लगभग

सब राजा अँगरेजों के अधीन हो गए। अँगरेजों ने इन राजाओं को अपने अपने राज्य का अधिकारी बना रहने दिया और उन्हें सनदें दीं। इन सनदों को पाने पर ये सब सदा अँगरेजों के भक्त बने रहे।

अध्याय ३२

अँगरेजों से संधियाँ

१—अलीबहादुर और पेशवा से संधि हो गई थी। इससे इसके मरने पर अलीबहादुर का जीता हुआ सारा प्रदेश पेशवा के अधिकार में आ गया। यह वि० सं० १८५६ में कालिंजर की चढ़ाई के समय मरा। इसके शमशेरबहादुर और जुल्फिकारअली ये दो लड़के थे। पर इसकी मृत्यु के समय शमशेरबहादुर पूना ही में था।

२—अँगरेजों और पेशवा से वि० सं० १८५९ (१-१-१८०२) में बसीन में संधि हुई थी पर इसके कुछ समय के उपरांत वि० सं० १८६० (सन् १८०३) में बसीन की शर्तों में कुछ फेरफार कर पूना में फिर से संधि हुई। इस संधि से अँगरेजों को अन्यान्य लाभों के सिवा एक विशेष लाभ यह हुआ कि इन्हें बुंदेलखंड में ३६,१६,००० की रियासत अनायास मिल गई। अब इन लोगों ने दौलतराव सेंधिया और बरार के भोंसलों पर चढ़ाई करने की घोषणा कर दी और वे गुप्त रूप से यशवंतराव होलकर पर भी चढ़ाई करने की तैयारी करने लगे।

३—हिम्मतबहादुर ने सेंधिया की नौकरी छोड़कर अलीबहादुर के यहाँ सेनापति की नौकरी कर ली थी। अलीबहादुर की मृत्यु के पश्चात् यद्यपि यह उसी के यहाँ था पर मन ही मन अपना स्वतंत्र

राज्य जमाने की चिंता मे लगा हुआ था। इसी समय अँगरेजों ने बुंदेलखंड के भीतर से सेना भेजने का प्रबंध किया। हिम्मतबहादुर तो यह चाहता ही था। इसने बात की बात में अलीबहादुर की नौकरी छोड़कर शाहपुर जाकर अँगरेजों से विक्रम संवत् १८६० (४-६-१८०३) में संधि कर ली। इस संधि से अँगरेजों ने इसे अपनी सहायता के लिये सेना रखने को २० लाख रुपए की जागीर देने का वचन दिया और कुछ इलाका भी इसकी जागीर मे छोड़ दिया। इससे इसका राज्य इलाहाबाद से कालपी तक हो गया।

४—इस संधि के समय शमशेरबहादुर भी पूना से आ गया था। इसने भी अँगरेजों से मिलकर रहना उचित समझा और वि० सं० १८६० (१२-१-१८०४) में संधि कर ली। अँगरेजों ने इसे चार लाख रुपए की जागीर दी और बाँदा रहने के लिये दिया। इस समय कालपी और जालौन गोविंद गंगाधर उर्फ नाना साहब के पास थे। अब होलकर पर चढ़ाई करने के समय अँगरेजों के आड़े आनेवाले सिर्फ होलकर के हितैषी राजा ही रह गए। इससे अँगरेजों ने पश्चिमी बुंदेलखंड के राजाओं से भी संधि कर अपना रास्ता साफ कर लेना उचित समझा। इस समय बुंदेलखंड में छोटी बड़ी कुल ४३ रियासतें और जागीरें थीं। इनमें से १२ (जालौन, झाँसी, जैतपुर, खुद्दी, चिरगाँव, पुरवा, चौबियाने की दो जागीरें, तरौहा, विजयराघोगढ़, शाहगढ़ और बानपुर) तो सरकारी राज्य में मिला ली गईं, शेष अधिकारियों में से ३ के साथ संधियाँ हुई हैं, बाकी लोगों को सनदें दी गई हैं।

५—अँगरेजों को पूना की संधि से बुंदेलखंड मिल ही गया था और अलीबहादुर की मृत्यु के पश्चात् इन्होंने हिम्मतबहादुर और शमशेरबहादुर से संधियाँ भी कर ली थीं। इस समय झाँसी में रघुनाथराव नेवालकर के छोटे भाई शिवराव भाऊ सूबेदार

थे। इनसे भी सं० १८६० विक्रमीय (१८-११-१८०३) में संधि हो गई।

६—झाँसी के सूबेदार शिवराव भाऊ ने अँगरेजों के साथ संधि कर ली थी। इस संधि के अनुसार ये अँगरेजों के मित्र हो गए थे। इसी समय कालपी के सूबेदार गोविंद गंगाधर और शिवराव भाऊ में अनबन हो गई। पर शिवराव भाऊ संधि के अनुसार अँगरेजों के मित्र थे। इससे गोविंद गंगाधर और अँगरेजों में भी अनबन सी हो गई और ये ही अकेले इनके विरुद्ध रह गए। इसलिये इन्होंने भी अँगरेजों के साथ वि० सं० १८६३ (२३-१०-१८०६) में संधि कर ली। इस संधि में अँगरेजों की ओर से ज़ान बेलो और गोविंद गंगाधर की ओर से भास्करराव अन्ना ने दस्तखत किए। इस संधि की शर्तें निम्नलिखित थीं—

(१) नाना साहब और ईस्ट इंडिया कंपनी की सरकार एक दूसरे से मित्रता का बर्ताव करे और एक दूसरे के दुश्मनों को कभी सहायता न दे।

(२) नाना साहब कालपी और रायपुर का इलाका हमेशा के लिये अँगरेजों को दें।

(३) यदि अँगरेजों का कोई अपराधी नाना साहब के राज्य में आवे तो नाना साहब उसे अँगरेजों के हवाले कर दें।

(४) बेतवा नदी के पूर्व का भाग और कौंच जिला नाना साहब के अधिकार में रहे और इस प्रदेश में से जो अँगरेजी फौज निकले उसकी सहायता नाना साहब करें।

(५) नाना साहब पर अँगरेजों का कोई दावा न रहे और कोई हक उपर्युक्त शर्तों के सिवा अँगरेज लोग नाना साहब से न माँगें।

(६) नाना साहब के विरुद्ध किसी भी शिकायत का फैसला अँगरेज न करें।

(७) पन्ना के हीरों का तीसरा भाग नाना साहब पूर्ववत् लेते रहें। उसमें अँगरेज कुछ हस्तक्षेप न करें। यदि हीरों की खान का कोई भाग अँगरेजों के अधिकार में आ जावे तो भी हीरों की आमदनी का तीसरा भाग नाना साहब को मिलता रहे।

(८) नाना साहब की जो निजी संपत्ति—अर्थात् बाग, मकान या हवेलियाँ—कालपी और बनारस में हो उस पर अँगरेज अधिकार न करें।

(६) नाना साहब के बुंदेलखंड के राज्य-प्रबंध में अँगरेज हस्तक्षेप न करें।

उपर्युक्त संधि के अनुसार जालौन नाना साहब के अधिकार में रहा।

७—अमृतराव रघुनाथराव पेशवा का लड़का था। जब बाजीराव बसीन से भाग गया तब होल्कर ने इसका भागना अनुचित समझकर अमृतराव को ही उत्तराधिकारी मान लिया। यह अँगरेजों को न भाया और इन्होंने पूना पर चढ़ाई कर दी। इससे होल्कर का उद्योग निष्फल हो गया। अंत मे अमृतराव ने अँगरेजों से संधि कर ली। इससे इसके और इसकी संतान के भरण-पोषण के लिये ७ लाख रुपए की पेंशन नियत कर दी गई। इसने तरौंहा (बाँदा जिले में) में रहना पसंद किया। इससे उसे ४६६७ रुपए की जागीर और भी दी गई। यह संवत् १८८१ ई० मरा और विनायकराव जागीर का अधिकारी हुआ। विनायकराव के मरने पर पेंशन बंद कर दी गई।

८—विनायकराव को जो पेंशन मिलती थी वह तो बंद हो ही गई थी। इधर इसने नारायणराव और माधवराव को गोद ले लिया था। पर इन्हें पेंशन न मिली। ये संवत् १६१४ को सिपाही विद्रोह में मिल गए। इससे इनकी खानदानी जागीर जब्त कर ली गई और दोनों कैद कर लिए गए। नारायणराव तो सन् १८६०

में हजारीबाग में मर गया पर माधवराव ने माफी माँग ली। इससे यह बरेली में रखकर पढ़ाया गया। यह संवत् १९२३ में राज्याधिकार करने के लायक हो गया था। इससे उसे तीस हजार रुपए वार्षिक पेंशन मिलने लगी।

ओड़छा

६—भारतीचंद के पश्चात् वि० सं० १८३३ में इनके भाई विक्रमाजीत राजा हुए। इस समय ओड़छा का राज्य नाममात्र को था। यदि अँगरेज लोग न आ गए होते तो इनका राज्य मराठों ने ले लिया होता। राज्य की ऐसी हीनावस्था हो गई थी कि राजा के पास सिर्फ ५० जवान, १ हाथी और २ घोड़े रह गए थे। तो भी राजा ने हिम्मत न हारी वरन् अपने योग्य मंत्री जंगबहादुर की सलाह से अपने राज्य का बहुत सा इलाका मराठों से ले लिया। इसने वि० सं० १८४० में अपनी राजधानी टीकमगढ़ बनाई और संवत् १८६९ (२३-१२-१८१२) विक्रमीय में अँगरेजों से संधि की। इस समय राजा ने बड़े गर्व से कहा था कि हमारे पूर्वज सदा स्वतंत्र बने रहे, कभी किसी की मातहती (अधीनता) स्वीकार नहीं की। इन्होंने वि० सं० १८७४ में अपने कुँवर धर्मपाल को गद्दी दे दी पर यह वि० सं० १८८१ में निस्संतान मरा। इससे फिर भी राजा विक्रमाजीत को राज्य की बागडोर अपने हाथ में लेनी पड़ी। पर होता वही है जो ईश्वर को मंजूर होता है। ये वृद्ध तो थे ही इधर पुत्रशोक से और भी जर्जर हो गए। इससे शीघ्र ही मर गए। इससे इनके भाई तेजसिंह राजा हुए। यह ७ वर्ष राज्य कर वि० सं० १८८८ में परलोकवासी हुआ।

१०—तेजसिंह की मृत्यु के पश्चात् इनका पुत्र सुजानसिंह राजा हुआ किंतु धर्मपाल की महिषी लँड़ई रानी ने आपत्ति की

और गोद लेने का दावा किया। इससे रियासत के दो भाग हो गए जिन्हें नया और पुराना राज्य कहने लगे। लँड़ई रानी का हिस्सा पुराना राज्य कहाता था। इस झगड़े के सबब ये राजा सुजानसिंह झाँसी चले गए और वहाँ दो वर्ष तक रहे। पीछे से ओड़छा आए पर इनके साथी पृथ्वीपुर में लड़ाई में मारे गए, जिससे ये फिर भी झाँसी चले गए। सरकार ने राजा तेजसिंह की मृत्यु के पश्चात् इनकी गद्दीनशीनी स्वीकार कर ली थी इससे ये ही गद्दी पर बने रहे और लँडई रानी का दावा खारिज कर दिया गया किंतु ये छोटे थे इससे लँडई रानी ही प्रबंधकर्त्री नियत की गई। इनके कोई संतान नहीं हुई। इससे इनकी मृत्यु के पश्चात् देवीसिंह ने दावा किया परंतु सरकार ने उसका दावा खारिज करके लँड़ई रानी को हमीरसिंह को * वि० सं० १६११ में गोद लेने की आज्ञा दे दी। इनके पिता मदनसिंह दिगौड़ा में रहते थे। स्वर्गवासी सुजानसिंह और हमीरसिंह इन दोनों का राज्य-प्रबंध अच्छा न था; किंतु रानी की बुद्धिमानी से राज्य को किसी प्रकार की क्षति न पहुँची। वि० सं० १६१४ के राज-विद्रोह के समय रानी ने अँगरेजों का पक्ष समर्थन किया। जब अँगरेज लोग ग्वालियर से भागकर वानपुर से टीकमगढ़ वापिस आए तब राजा ने अपने गुरु प्रेमनारायण की सम्मति से इनका अच्छा सत्कार किया और झाँसी तोड़ने के समय नत्थेखाँ वजीर ने स्वतः जाकर अँगरेजों की सहायता की। वि० सं० १६१६ में हमीरसिंह को भी गोद लेने की सनद मिली। महारानी लँड़ई रानी सं० १६२४ में मरीं।

---

* ये हरदौल की दसवीं पीढ़ी में थे। हरदौल, विजयसिंह, परताप-सिंह, भगवंतसिंह, रतनसिंह, खुमानसिंह, शत्रुजीतसिंह, रामसिंह, मदन-सिंह, हमीरसिंह।

दतिया

११—बसीन की संधि के पूर्व दतिया राज्य मराठों के अधीन था। यहाँ के राजा पारीछत मराठों के आश्रित थे किंतु वि० सं० १८५९ (१—१—१८०२) में बसीन नामक स्थान पर जो संधि हुई थी उसके अनुसार दतिया का राज्य अँगरेजों के अधिकार में हो गया। इससे यहाँ के राजा पारीछत ने वि० सं० १८६१ (१५—३—१८०४) में अँगरेजों के साथ संधि की। यह संधि कुंजनघाट पर हुई थी। इसमें सरकार की ओर से कप्तान बेली साहब ने दस्तखत किए थे।

१२—दतिया के राजा पारीछत ओड़छे के महाराजा वीरसिंह-देव के वंशज हैं। ये वि० सं० १८९६ में मरे किन्तु इन्होंने अपनी मृत्यु के पूर्व ही विजयबहादुर को गोद ले लिया था। इसकी सूचना भी उन्होंने अँगरेज सरकार को दे दी थी जिसकी मंजूरी भी आ गई थी। पीछे से बड़ौनी के दीवान मर्दनसिंह ने इस गोद का विरोध किया, लेकिन मंजूरी तो सरकार ने पहले ही दे दी थी। इससे दावा खारिज कर दिया गया। इसके बाद मर्दनसिंह ने कंपनी की सरकार से बड़ौनी जागीर की अलग सनद चाही परंतु यह भी न दी गई। राजा विजयबहादुर वि० सं० १९१४ में मरे। ये वि० सं० १८९६ में गद्दी पर बैठे थे।

समथर

१३—वि० सं० १७९० में, दतिया के राजा इंद्रजीत के समय, गद्दी के लिये झगड़ा हुआ था। उस समय नन्हेशाह गूजर ने इंद्रजीत की बहुत सहायता की थी। इसके उपलक्ष में इसके पुत्र मदनसिंह को समथर के किले की किलेदारी और राजधर की पदवी दी गई। पीछे से इसके पुत्र देवीसिंह को ५ गाँवों की

जागीर भी दी गई। इस समय मरहटों की चढ़ाइयाँ शुरू हो गई थीं। इससे समथर का किलेदार स्वतंत्र बन बैठा।

१४—अँगरेजी राजसत्ता स्थापित होने के समय राजा रनजीतसिंह ने अँगरेजों से संधि करना चाहा। इससे ६ शर्तों का एक इकरारनामा अँगरेजों को लिख दिया परंतु वि० सं० १६६९ तक कुछ भी न हुआ। अंत में वि० सं० १८७४ (२७-११-१८१७) में संधि हो गई।

१५—राजा रनजीतसिंह वि० सं० १८८४ (११-७-१८२७) में मरे। पर न तो इनके ही पुत्र था और न इनके दोनों भाई पहाड़सिंह और विजयसिंह के ही लड़के हुए थे। इससे रनजीतसिंह के मरने पर इनके चचेरे भाई हिंदूपत राजा हुए। पर पीछे से इनका भी दिमाग खराब हो गया था। इससे इनकी रानी ही राज्य-प्रबंध करती रही। इनके चतुरसिंह और अर्जुनसिंह नाम के दो लड़के हुए।

पन्ना

१६—पन्ना में इस समय राजा किशोरसिंह का राज्य था। बाँदा के नवाब की हार के पश्चात् पन्ना राज्य अँगरेजों के अधीन हो गया। इससे इन्होंने राजा किशोरसिंह को वि० सं० १८६४ (१४-५-१८०७) में पहली सनद दी। पर सनद मिलने के समय राजा किशोरसिंह स्वतः न जा सके। इन्होंने अपनी ओर से अपने मंत्री राजधर गंगासिंह को भेजा।

१७—वि० सं० १८६४ की सनद लेने के लिये महाराज किशोरसिंह की तरफ से उनका मंत्री राजधर गंगासिंह गया था। यह बड़ा ही चालाक और स्वार्थी था। इसने मौका मिलते ही कंपनी की सरकार को धोखा दे कर पवई और खटोला नाम के दोनों परगने

अपने नाम करा लिए और उनकी सनद भी ले ली। पीछे से इस बात की खबर महाराज को लगी। तब वे स्वत: गए और कंपनी की सरकार को दूसरा इकरारनामा लिखा। इससे उन्हें वि० सं० १८६८ (२२-३-१८११) में पूरे राज्य की दूसरी सनद मिली।

१८—राजा किशोरसिंह अँगरेजों के बड़े मित्र रहे। वे सदा उन्हें सहायता देते रहे। परंतु उनका प्रबंध अच्छा न था। इससे अँगरेजों ने राज्य-प्रबंध करने के लिये छतरपुर के राजा कुँवर प्रतापसिंह को ४ वर्ष के लिये नियत किया था। परंतु यह बीच ही में अलग कर दिया गया। किशोरसिंह वि० सं० १८९१ में मरे और उनके पुत्र हरवंशराय राजा हुए।

१९—हरवंशराय के कोई संतान न थी। ये संवत् १९०६ में परलोक को सिधारे। इससे इनके भाई नृपतिसिंह राज्य के अधिकारी हुए। परंतु पन्ना राज्य में सती की प्रथा अब तक बंद न हुई थी। यही कारण बतलाकर अँगरेजों ने राजा नृपतिसिंह का गद्दी पर बैठना मंजूर न किया। अंत में राजा ने बाध्य होकर अपने राज्य में भी सती होने की प्रथा बंद करने की घोषणा कर दी।

२०—संवत् १९१४ में राजा नृपतिसिंह ने अँगरेजों की बहुत सहायता की थी। इससे इन्हें गोद लेने की सनद दी गई और बहुमूल्य सिरोपाव (खिलअत) तथा २०००० हजार रुपए नगद दिए गए। किंतु इसी साल एक सरहदी झगड़े में इन्होंने सरकारी हुक्म की अवहेलना की जिससे इनका ध्यान इकरारनामे की ओर दिलाया गया। संवत् १९२४ में इन्हें फौजदारी के अख्तियार मिले और संवत् १९२६ में महेंद्र की पदवी दी गई। ये विक्रम-संवत् १९२७ में स्वर्ग को सिधारे।

अजयगढ़

२१—अलीबहादुर ने जब राजा बखतसिंह को हरा दिया और अजयगढ़ पर अधिकार कर लिया तब वे उसी के यहाँ नौकर

हो गए। वि० सं० १८६० में जब अँगरेजों ने बुंदेलखंड पर अपना अधिकार जमाया तब इन्होंने राजा बखतसिंह को ३०००) गौहरशाही रुपए प्रतिमास देना नियत कर दिया। पर पीछे से वि० सं० १८६४ (८-६-१८०७) में राजा बखतसिंह को अजयगढ़ रियासत का कुछ भाग दिया और उस पर राज्य करने की सनद भी दे दी किंतु जो गौहरशाही ३०००) रुपए राजा बखतसिंह को प्रतिमास मिलते थे वे बंद कर दिए गए।

२२—अजयगढ़ रियासत का जो भाग शेष था उसे लछमन दौआ किलेदार दबा बैठा। इससे अँगरेज सरकार ने इसे भी राजा माना। इसके पलटे में लछमन दौआ ने कंपनी की सरकार को ४०००) रुपए प्रतिवर्ष कर देने की प्रतिज्ञा की और दो वर्ष के बाद राजा बखतसिंह को अजयगढ़ का किला वापस कर देने का करार किया। यह बड़े ही उद्दंड स्वभाव का था। इससे अँगरेज लोग नाराज हो गए। फलतः इसे जो ३०००) रुपए मासिक पेंशन मिलती थी वह वि० सं० १८६६ (१३-२-१८०९) में बंद कर दी गई और इसका राज्य छीनकर राजा बखतसिंह को दे दिया गया। कर्नल मार्टिन ने इसे युद्ध में हराया था।

२३—बखतसिंह सं० १८९४ (२१-६-१८३७) में मरे। उनके बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र माधवसिंह गद्दी पर बैठे। ये भी वि० सं० १९०६ में परलोक सिधारे और इनके भाई महिपतिसिंह गद्दी पर बैठे। यद्यपि इन्हें गद्दी न देने का प्रश्न उठा पर इन्हीं के पक्ष में निर्णय हुआ। ये वि० सं० १९१० (२२-६-१८५३) में परलोक सिधारे। इससे इनका पुत्र विजयसिंह राजा हुआ किंतु यह केवल दो वर्ष राज्य कर वि० सं० १९१२ (२२-९-१८५५) में मर गया।

२४—इसके मरने पर इसकी मा ने रनजोरसिंह को गद्दी देनी चाही पर कंपनी की सरकार ने रनजोरसिंह को गद्दी देने के पूर्व

स्वर्गवासी राजा बखतसिंह के कुटुंब के किसी अन्य व्यक्ति का पता लगाकर गोद लेने की तजवीज की। इतने में विद्रोह हो गया और फरजंदअली नाम के एक विद्रोही ने महीपतिसिंह के पुत्र लोकपाल-सिंह को गद्दी पर बैठा दिया।

२५—राजा महीपतिसिंह की विधवा रानी सरकार के पक्ष में बनी रहीं। इससे अँगरेज़ों ने उसे रनजोरसिंह को ही गोद लेकर गद्दी पर बिठाने की इजाज़त दे दी। उस समय ये छोटे थे। अतः राज्य-प्रबंध रानी ही करती रही। यह विक्रम-संवत् १९२५ में पर-लोकवासिनी हुई।

चरखारी

२६—जैतपुर के राजा जगतराज ने अपने तीसरे कुमार कीरतसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाया था, पर यह राजा जगतराज की मृत्यु के पूर्व ही मर गया। इससे राजा जगतराज के मरने पर वि० सं० १८१४ में कीरतसिंह के पुत्र गुमानसिंह ने गद्दी लेनी चाही। पर इनके चचा पहाड़सिंह ने विरोध किया। अंत में गुमानसिंह और खुमानसिंह दोनों भाई चरखारी भाग आए और यहाँ के किले में रहने लगे। पीछे से विक्रम-संवत् १८२१ में पहाड़सिंह ने गुमानसिंह को बाँदा और खुमानसिंह को चरखारी दे दी। इस समय चरखारी की आमदनी ९ लाख रुपए थी। खुमान-सिंह वि० सं० १८३९ में मरा।

२७—राजा खुमानसिंह के मरने पर विक्रमाजीत उर्फ विजय-बहादुर राजा हुआ। इनसे और इनके चचेरे भाई बाँदा के राजा अर्जुनसिंह से हमेशा झगड़े होते रहे। अंत में अर्जुनसिंह ने इन्हें चरखारी से मार भगाया। जब अलीबहादुर ने हिम्मतबहादुर के साथ वि० सं० १८४६ में बुंदेलखंड पर चढ़ाई की तब ये उससे

मिल गए और चरखारी की चढ़ाई में उसके साथ गए। अंत में इन्होंने वि० सं० १८५५ में एक इकरारनामा अलीबहादुर को लिख दिया और इसने इन्हे चरखारी की सनद दे दी। इस समय इसकी आमदनी चार लाख रुपए थी।

२८—विक्रम संवत् १८६० में राजा विजयबहादुर ने कंपनी की सरकार से संधि कर ली। परंतु इस समय राजा विजयबहादुर और अजयगढ़ तथा छतरपुर राज्य के बीच सरहद्दी झगड़े मचे हुए थे। इसलिये कंपनी की सरकार ने वि० सं० १८६१ में एक चंद-रोजा सनद दी। परंतु इन सब झगड़ों का निपटारा होते ही वि० सं० १८६८ मे दूसरी सनद दे दी। यह वि० सं० १८८६ (नवंबर सन् १८२९) में मरा।

२९—इसके ईश्वरीसिंह, पूरनमल, गोविंददास, रनजीतसिंह इत्यादि ८ लड़के थे। पर राजा विक्रमाजीत (विजयबहादुर) के मरने पर रनजीतसिंह का लड़का रतनसिंह राजा हुआ। दीवान गोविंद-दास और रनजीतसिंह भी वि० सं० १८७९ में मर चुके थे। यद्यपि रतनसिंह को राजगद्दी मिल गई थी पर राज्यारोहण के समय कई झगड़े खड़े हुए। इससे रतनसिंह को इन सबके भरण-पोषण का प्रबंध करना पड़ा।

३०—विक्रम-संवत् १९१४ में यह प्रश्न उठा कि राजा रतनसिंह की मृत्यु के पश्चात् चरखारी की रियासत क्यों न जब्त कर ली जाय। परंतु सनदों और राज्यारोहण के झगड़ों की कारवाइयों से यह निश्चय हुआ कि राज्य वंशपरंपरागत दिया गया था। इससे जब्त न किया गया वरन् यह तजवीज हुई कि राजकुमार उत्तराधिकारी होगा।

जैतपुर

३१—जैतपुर की जागीर महाराज छत्रसाल के वंशज गजसिंह के पुत्र केसरीसिंह के पास थी। इन्हें अँगरेजों ने वि० सं०१८६९

मे सनद दी। इनके मरने पर इनके पुत्र पारीछत को राज्य दिया गया पर इसने पीछे से विद्रोह किया। इससे वि० सं० १८९९ में सनद जब्त कर दीवान खेतसिंह को जागीर दे दी गई। यह वि० सं० १९०६ में निस्संतान मरा। इससे कंपनी की सरकार ने जैतपुर राज्य अपने राज्य में मिला लिया।

बिजावर

३२—ऐसा कथानक है कि बिजावर ग्राम विजयसिंह नाम के एक गोंड़ सरदार ने बसाया था। यह गढ़ामंडला के राजा का नौकर था। उस समय इस इलाके पर गोंड़ों का ही राज्य था। इन लोगों से महाराज छत्रसाल ने जीता था। पीछे से यह जगतराज के हिस्से मे आया। वि० सं० १८२६ मे गुमानसिंह ने इसे अपने चचा वीरसिंहदेव को दे दिया। इस समय गुमानसिह अजयगढ़ के राजा थे। वीरसिंहदेव विक्रम-संवत् १८५० में अलीबहादुर के साथ चरखारी के पास युद्ध में मारे गए। तब हिम्मतबहादुर ने इसके लड़के केसरीसिंह का पक्ष लिया और वि० सं० १८५९ में उसे अलीबहादुर से सनद दिलवाई। वि० सं० १८६० में जब अँगरेजी राजसत्ता स्थापित होने लगी तब राजा केसरीसिंह और चरखारी तथा छतरपुर राज्य के बीच सरहदी झगड़े चल रहे थे। इससे केसरीसिंह को इन झगड़ों के निपटारे तक सनद न मिल सकी। यह विक्रम-संवत् १८६७ में मरा और इसका लड़का रतनसिंह गद्दी पर बैठा। इस समय झगड़ों का फैसला हो गया था। इसलिये वि० सं० १८६८ (२७-३-१८११) में इसे गद्दी दी गई। इसने अपने नाम का सिक्का चलवाया। यह २२ वर्ष राज्य करने के बाद सं० १८९० (१७-१२-१८३३) में निस्संतान मरा।

३३—इसके कोई लड़का तो था नहीं; इससे विधवा रानी ने खेतसिंह के लड़के लक्ष्मनसिंह को गोद लिया। यह वि० सं०

१९०४ में मरा और इसका लड़का भानुप्रतापसिंह राजा हुआ। इसने राजविद्रोह के समय सरकार को बहुत मदद दी थी। इससे इसे बहुमूल्य सिरोपाव और वंशपरंपरागत ११ तोपों की सलामी दी गई। पश्चात् वि० सं० १९१९ में गोद लेने की सनद भी मिली। इसे वि० सं० १९२३ में महाराजा की पदवी दी गई और यह वि० सं० १९२४ में फौजदारी के अपराधों के फैसले करने के अधिकारों से विभूषित किया गया है। इसका राज्य-प्रबंध प्रशंसनीय न रहा, तो भी सरकार ने महाराजा की पदवी, जो वि० सं० १९२३ में मिली थी, वि० सं० १९३४ में वंशपरंपरागत सवाई महाराजा की कर दी। इन सब कारणों से इसका खर्च अधिक बढ़ गया। इससे वि० सं० १९५४ में सरकार की ओर से प्रबंधक नियत कर दिया गया। भानुप्रतापसिंह के कोई लड़का न था। इससे इसने ओड़छा के महाराजा के पुत्र सामंतसिंह को वि० सं० १९५५ में गोद लिया। यह वि० सं० १९५६ में सवाई महाराजा भानुप्रतापसिंह के परलोकवासी होने पर गद्दी पर बैठा। इस समय लखनगवाँ के ठाकुरों ने विरोध किया था। परंतु यह सरकार की मंजूरी से गोद लिया गया था। इससे इन लोगों की कुछ न चली।

छतरपुर

३४—अठारहवीं शताब्दी के अन्त मे कुँवर सोनेशाह पँवार ने छतरपुर की रियासत कायम कर ली। पूर्व मे यह पन्ना के राजा किशोरसिंह के प्रपितामह महाराजा हिंदूपत के यहाँ नौकर था। हिंदूपत वि० सं० १८३४ में मरे और इनके पुत्र सरनेतसिंह को रियासत छोड़कर राजनगर में रहना पड़ा। इसके मरने पर हीरासिंह राजा हुआ पर यह बहुत ही छोटा था। इससे रियासत का प्रबंध कुँवर सोनेशाह करता रहा। पर यह बहुत ही चालाक था।

इससे इसने यह मौका हाथ से न जाने दिया और वि० सं० १८४२ में अपने लिये एक अलग जागीर कायम कर ली। बल्कि मराठों की चढ़ाई के समय इसने कुछ और भी इलाक़ा उसमें मिला लिया।

३५—इस समय इसका दबदबा सारे बुंदेलखंड में जमा हुआ था। इससे अँगरेजों ने भी कई राजनैतिक कारणों से इसे अपने हाथ में कर लेना उचित समझा और वि० सं० १८६३ (५-६-१८०६) में इसे सनद दे दी। इस समय इसके पास १५१ गाँव खालसा और १४३ गाँव नानकार, पदारस्त और सेवा चाकरी के थे। परंतु छतरपुर खास और चारों थाने, जिन पर अलीबहादुर के समय भी इसी का अधिकार था तथा मऊ और सालट इसने अलीबहादुर की मृत्यु के बाद दबा लिए थे, अँगरेजों ने ले लिए और उनके बदले में कुँवर सोनेशाह को १६०००) रुपए वार्षिक का खिराज, जो अलीबहादुर को दिया जाता था, सरकार ने छोड़ दिया।

३६—वि० सं० १८२२ में सरकारी सेना हटा लेने पर सोनेशाह को मऊ और उसके लड़के प्रतापसिंह को छतरपुर दे दिया गया। कुँवर सोनेशाह ने विक्रम-संवत् १८६६ में अपनी रियासत अपने पाँचों पुत्रों में बाँट दी परंतु छोटे लड़के ने समान भाग माँगा। इससे प्रतापसिंह का हिस्सा छोटा हो गया। इस बँटवारे से ये सब स्वतंत्र हो गए। परंतु इस तरह का बँटवारा सरकारी सिद्धांत के प्रतिकूल था। इससे अँगरेज सरकार ने यह बँटवारा नामंजूर कर दिया और सोनेशाह को यह सूचना दे दी गई कि तुम्हारी मृत्यु के पश्चात् यदि किसी क़िस्म की गड़बड़ हुई तो सरकार प्रतापसिंह का ही पक्ष लेगी। सोनेशाह वि० सं० १८७२ में मरे।

३७—सोनेशाह की मृत्यु के पश्चात् हिम्मतसिंह, पिरथीसिंह, हिंदूपत और बखतसिंह राजा प्रतापसिंह के अधीन कर दिए गए और इन्हें हीनहयाती जागीरें दी गईं। वि० सं० १८७३ (२८-

७-१८१६) में सबने मिलकर सरकार को एक इकरारनामा लिखा जिसकी सनद राजा प्रतापसिंह को संवत् १८७४ (११-१-१८१७) में मिली। इस समय पुराने बँटवारे में भी कुछ परिवर्तन किया गया। इस परिवर्तन से फढ़निया और देवराय का किला ताे राजा प्रतापसिंह को मिला और राजगढ़ तथा तिलोहा बखतसिंह ने पाए। परंतु पिरथीसिंह के पास एक भी अच्छा स्थान न था। इससे बखतसिंह ने राजगढ़ पिरथीसिंह को देकर उसके बदले में छः गाँव ले लिए।

३८—हिम्मतसिंह, पिरथीसिंह और हिंदूपत की मृत्यु के पश्चात् इनकी जागीरें छतरपुर राज्य में मिला दी गईं और बखतसिंह ने भी अपनी जागीर राजा प्रतापसिंह को देकर उससे २२५०) रुपए मासिक लेना मंजूर कर लिया। बखतसिंह की जागीर में बिलहरी के दीक्षित घराने की माफी के ३ गाँव भी थे। इन गाँवों को राजा प्रतापसिंह ने निकालना चाहा। परंतु यह माफी पन्ना के राजा हिंदूपत ने इस घराने को दी थी। इससे कंपनी की सरकार ने ऐसा करना मंजूर न किया। क्योंकि ऐसा करना सरकारी नीति के विरुद्ध था। यद्यपि माफीदार स्वतंत्र हैं परंतु उन्हें माफी संबंधी हर बात की मंजूरी रियासत से लेनी पड़ती है।

३९—राजा प्रतापसिंह को वि० सं० १८८४ (१८-१-१८२७) में राजाबहादुर की पदवी दी गई। इन्होंने वि० सं० १९०९ में जगतराज को गोद लेना चाहा। यह बखतसिंह का लड़का था। नियमानुसार इन्हें अपने ज्येष्ठ भ्राता पिरथीसिंह के लड़के कुंजलशाह को गोद लेना चाहिए था किंतु इन्होंने अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् अपने दोनों भाइयों को लेकर राजविद्रोह किया था, इससे इनके अधिकार जब्त कर लिए गए थे।

४०—जगतराज को गोद लेने के संबंध में टेहरी, चरखारी, बिजावर, पन्ना, अजयगढ़, दतिया और शाहगढ़ के राजाओं से भी

सम्मति ली गई थी। इन सब लोगों ने बुंदेलखंड की प्रचलित प्रथा के अनुसार जगतराज का गोद लिया जाना उचित बतलाया परंतु 'कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स' ने ऐसे प्रश्नों पर सम्मति लेना नामंजूर कर दिया। राजा प्रतापसिंह गोद-संबंधी प्रश्न का निपटारा होने के पूर्व ही वि० सं० १९११ (१९-५-१८५४) मे मर गए। कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स ने यहाँ के राजाओं की सम्मतियों की अवहेलना तो कर ही दी थी, अब उन्होंने यह निर्णय किया कि सोनेशाह को वि० स० १८०६ में हीनहयाती सनद दी गई थी और वि० सं० १८७४ की सनद में सिर्फ प्रतापसिंह के पुत्रों को ही गद्दी के हक थे पर प्रतापसिंह के कोई लड़का नहीं हुआ इससे गोद लेकर गद्दी देना अनुचित है। परंतु यह राजकुटुंब सदा से स्वामिभक्त रहा है और राजा प्रतापसिंह का राज्य-प्रबंध भी अच्छा था। अंत में कंपनी की सरकार ने इन सब बातों का विचारकर जगतराज का गोद लिया जाना मंजूर कर लिया। पर ये छोटे थे इससे राज्यप्रबंध राजा प्रतापसिंह की विधवा रानी करती रही। इन्हें वि० सं० १८११ (५-९-१८५४) मे दूसरी सनद दी गई।

पूर्व में राजा प्रतापसिंह की विधवा रानी ही रियासत का प्रबंध करती रही पर पीछे से वि० सं० १९२० में उनसे अधिकार ले लिए गए और सरकार की ओर से एक प्रबंधक नियत किया गया। राजा जगतराज को वि० सं० १९२८ में राज्याधिकार मिले। पर यह उसी साल मर गया। इससे राजा विश्वनाथसिंह को गद्दी दी गई पर ये उस समय सिर्फ १४ महीने के थे।

कालिंजर

४१—पन्ना के राजा सरमेदसिंह के समय मे कालिंजर मे रामकिसुन चौबे किलेदार थे। पीछे से ये यहाँ के स्वतंत्र राजा

बन बैठे। इस समय इन्होंने इसे दस वर्ष तक दृढ़तापूर्वक अपने अधिकार में रखा। इसी समय संवत् १८५६ में अलीबहादुर ने इस पर चढ़ाई की और वह यहीं मर गया।

४२—अँगरेजी राजसत्ता स्थापित होने के समय कालिंजर के किले में रामकिसुन चौबे के लड़के (बलदेव, दरियावसिंह, भरतजू, गोविंददास, गंगाधर, नवलकिशोर, सालिगराम और छत्रसाल) रहते थे। इनमें से बलदेव की मृत्यु हो गई थी और दरियावसिंह किलेदारी करते थे। इन्होंने भी अँगरेजों से संधि करना चाहा और बुंदेले राजाओं के समान ही हक माँगे। परंतु ऐसा होना संभव न था। अँगरेज लोग तरेवाट में भी शांति रखना चाहते थे। इससे चौबे कुटुंब की ओर से दरियावसिंह को सनद दी गई। इस समय इन्होंने और भी कुछ ग्रामों का दावा किया था। पर वे सब गाँव अजयगढ़ के किलेदार के पास थे, इससे न मिल सके।

. ४३—यद्यपि दरियावसिंह ने अँगरेजों से सुलह कर ली और उसे सनद भी मिल गई थी, पर वह गुप्त रूप से राजविद्रोहियों को सहारा दिया करता था। इससे अँगरेजों ने इसके पास से किला ले लेना ही उचित समझा। पर ये ऐसा करने पर राजी न थे इससे वि० सं० १८६८ (जनवरी सन् १८१२) में चढ़ाई कर दी गई पर कुछ लाभ न हुआ। पीछे से दरियावसिंह ने उतनी ही आमदनी का दूसरा इलाका ले लेने की शर्त पर आत्मसमर्पण कर दिया। इस समय चौबे कुटुंब में घरेलू झगड़े मचे हुए थे। इससे कुटुंब के प्रत्येक व्यक्ति को तथा चौबे कुटुंब के वकील राव गोपाललाल को भी अलग अलग सनदें देना उचित समझा गया।

४४—इस बँटवारे के समय गोविंददास और गंगाधर का स्वर्गवास हो गया था। इससे इनकी ओर से पोकरप्रसाद (पुष्कर-प्रसाद) और गयाप्रसाद उपस्थित हुए। ऐसे ही दो हिस्सों पर

छत्रसाल की मा और भरतजू की स्त्री इन दो विधवाओं का अधिकार था। इन दोनों ने अपने अपने हिस्से में पोकरप्रसाद और गया-प्रसाद के हिस्से क्रमानुसार मिला दिए पर पीछे से नवलकिशोर और भरतजू की विधवा में झगड़ा हो गया। इससे वि० सं० १८७४ में इन दोनों के हिस्से भी अलग अलग कर दिए गए और दोनों को सनदें भी अलग अलग दे दी गई।

भरतजू की विधवा वि० सं० १८९३ में मर गई। इससे इस वंश की प्रचलित प्रथा के अनुसार इसका हिस्सा और छत्रसाल की मा "ओरी" का हिस्सा भी दूसरे दूसरे हिस्सों में मिला दिए गए।

४५—पोकरप्रसाद का लड़का बिसेनप्रसाद (विष्णुप्रसाद) पुरवा जागीर का मालिक था। यह वि० सं० १९१२ में एक कत्ल के मामले में शामिल था। इससे इसकी जागीर जब्त कर ली गई।

४६—छत्रसाल के मरने पर जगरनाथ (जगन्नाथ) को जागीर मिली। यह वि० सं० १९०० में मर गया। इससे इसकी विधवा नन्हो दुलैया अधिकारिणी हुई। इसके कोई पुत्र न था। अतः इसने वंशगोपाल को गोद लेना चाहा। परंतु हिस्सेदारों ने यह एतराज किया कि यह रामकिसुन चौबे के वंश में से नहीं है। किंतु "हिंदू लॉ" और चौबे वंश की प्रथा के अनुसार अँगरेजों ने इसका गोद लेना उचित माना लेकिन हुक्म होने के पूर्व ही वंशगोपाल मर गया और नन्ही दुलैया भी वि० सं० १९२१ (जनवरी सन् १८६४) में मर गई। यद्यपि इसने अपने मरने के पूर्व ही वंशगोपाल के लड़के बिहारीलाल को गोद लेने की वसीयत की थी लेकिन ऐसा गोद लेना सनद की शर्तों के विरुद्ध था। इससे यह नामंजूर कर दिया गया और छत्रसाल का हिस्सा भी दूसरे दूसरे हिस्सों में मिला दिया गया। इस तरह रामकिसुन चौबे की जागीर के अब ९ हिस्से रह गए हैं। इनमें से चार (पालदेव, तरॉव, पहरा और भसौदा)

तो चौबे वंश में हैं और पाँचवाँ जागीर कामता-रजोला है। यह राव गोपाललाल वकील के वंश में है।

पालदेव

४७—पालदेव की जागीर चौबे दरियावसिंह को वि० सं० १८६९ में मिली थी। दरियावसिंह के मरने पर उसका पुत्र नाथूराम और इसके पीछे वि० सं० १८९७ में इसका लड़का राजाराम जागीर का मालिक हुआ। पर इसके कोई संतान नहीं हुई इससे इसके मरने पर इसके चचा शिवप्रसाद को ही जागीर दे दी गई।

यह वि० सं० १९२२ में मरा। इसके पीछे इसका लड़का मुकुंदसिंह मालिक हुआ। यह वि० सं० १९३१ में निस्संतान मरा। इससे इसका भाई अनिरुद्धसिंह गद्दी पर बैठा और इसके पश्चात् जगतराज को जागीर दी गई। इनके गोविंदप्रसाद और दरियावसिंह ये दो लड़के हुए थे किंतु गोविंदप्रसाद का स्वर्गवास हो गया है। जागीरदार को रावबहादुर का खिताब है। जागीर की आमदनी २६०००) रुपए हैं।

तराँव

४८—गयाप्रसाद के हिस्से में तराँव आया था। इसके मरने पर वि० सं० १८९७ में कामताप्रसाद ने जागीर पाई। यह गयाप्रसाद का लड़का था। यह भी वि० सं० १९१३ में परलोक को सिधारा। तब इसका लड़का रामचंद्र अधिकारी हुआ। रामचंद्र वि० सं० १९२९ में मरा। तब इसके लड़के चतुर्भुज को गद्दी मिली। यह वि० सं० १९५१ में परलोकवासी हुआ। इससे ब्रजगोपाल को जागीर दी गई।

भैसोंदा

४९—रामकिसुन चौबे के एक लड़के का नाम नवलकिशोर था। इसका हिस्सा इसके भाई तीरथप्रसाद को मिला था। तीरथप्रसाद

के मरने पर अचलजू ने जागीर पाई। यह नवलकिशोर का लड़का था। यद्यपि पं० छत्रसाल को, जो जागीरदार हैं, १६४२ में जागीर मिली थी पर उस समय ये छोटे थे, इससे इन्हें वि० सं० १६६० में जागीर का प्रबंध सौंपा गया था।

चौबेपुर-पहरा

५०—सालिगराम चौबे रामकिसुन चौबे जागीरदार के पुत्र थे। इन्हें वि० सं० १८६६ में जागीर दी गई थी। सालिगरामजी ने अपने जीते-जी अपनी जागीर अपने तीनों पुत्रों में बराबर बराबर बाँट देने का विचार किया था परंतु सरकार ने ऐसा करना मंजूर न किया। ये वि० सं० १६०० में मरे। इससे रामप्रसाद चौबे के ज्येष्ठ पुत्र को जागीर दी गई। इनकी मृत्यु होने पर इनका भतीजा मकसूदनप्रसाद तरावँ जागीर से गोद में लिया गया। इन्होंने सिपाही-विद्रोह के समय सरकार को अच्छी सहायता पहुँचाई थी इससे इन्हें रावबहादुर की पदवी दी गई। इनके भी पुत्र न हुआ। इससे वि० सं० १६२५ में राधाचरणजी गोद लिए गए। इस समय ये छोटे थे इससे ११ वर्ष के पश्चात् वि० सं० १६३६ में इन्हें जागीर के अधिकार दिए गए।

कामता-रजोला

५१—जिस समय पं० दरियावसिंह चौबे को कंपनी की सरकार ने जागीर की सनद दी उस समय राव गोपाललाल इस कुटुंब के वकील थे। इससे इन्हें भी वि० सं० १८६६ में जागीर दी गई। इनके मरने पर वि० सं० १६३० में राव भारतप्रसाद गोपाललाल के पुत्र जागीरदार हुए। आजकल राव रामप्रसाद जागीरदार हैं। इन्हें वि० सं० १६४६ में जागीर मिली थी। ये जाति के कायस्थ हैं। इनकी जागीर कामता-रजोला कहाती है। राव रामप्रसाद भारतप्रसाद के पुत्र हैं।

मैहर

५२—पन्ना के राजा हिंदूपत ने बेनी हजूरी को वि० सं० १८२७ में मैहर की जागीर दी थी पर ये राजा अनिरुद्धसिंह के समय स्वतंत्र हो गए। बेनी हजूरी के पितामह ठाकुर भीमसिंहजी राजा छत्रसाल के यहाँ नौकर थे। कहते हैं कि ठाकुर भीमसिंहजी के पूर्वज अलवर की ओर से आए थे। शुरू में ये ओड़छे में नौकर हुए। इससे यहाँ के राजा ने इन्हें कुछ जमीन दी थी। ये कछवाहे राजपूत हैं।

५३—बेनी हजूरी के मरने पर राजधर राजा हुआ। इससे और अलीबहादुर से युद्ध हुआ था। इस युद्ध में राजधर हार गया। अँगरेजी राजसत्ता स्थापित होने पर राजधर के भाई दुर्जनसिंह को वि० सं० १८६३ (१८-११-१८०६) में सनद मिली थी पर पीछे से इसमें कुछ परिवर्तन किया गया। इससे वि० सं० १८७१ (१८-३-१८१४) में दूसरी सनद दी गई।

५४—वि० सं० १८८३ में इसके मरने पर राज्य के दो हिस्से हो गए। मैहर तो विसुनसिंह के पास रहा और विजयराघवगढ़ इसके छोटे भाई प्रयागदास को मिला। परंतु प्रयागदास के लड़के सरजू-प्रसाद ने सिपाही-विद्रोह के समय राजविद्रोह किया। इससे वि० सं० १९१५ में विजयराघवगढ़ का राज्य सरकार ने जब्त कर लिया।

५५—वि० सं० १८८३ में मैहर में विसुनसिंह राजा थे। इनका प्रबंध अच्छा न था जिससे इन पर कर्ज हो गया। इससे वि० सं० १८९६ में यहाँ सरकारी प्रबंध रखा गया। ये वि० सं० १८९७ में मरे और इनका लड़का मोहनप्रसाद राजा हुआ। इसने सिर्फ दो वर्ष राज्य किया। इसके मरने पर वि० सं० १९०६ में रघुवीरसिंह राजा हुए पर ये छोटे थे। इससे इन्हें वि० सं० १९२२ में राज्याधिकार मिले। इनका प्रबंध अच्छा था। इससे इन्हें वि०

सं० १६२६ में खानदानी राजा की पदवी दी गई। इन्हें वि० सं० १६३४ में जो ६ तोपों की सलामी मिली थी वह एक वर्ष के बाद ही वि० सं० १६३५ में वंशपरंपरागत कर दी गई।

गौरिहार का हाल

५६—अजयगढ़ के राजा गुमानसिंह के समय पं० राजाराम तिवारी भूरागढ़ के किलेदार थे। इनके प्रपितामह पं० विद्यापति तिवारी मलपुरा में रहते थे। यह ग्राम चरखारी रियासत में है। राजारामजी पीछे से राजा गुमानसिंह से बिगड़ खड़े हुए और धीरे धीरे स्वतंत्र हो गए। अलीबहादुर ने इन पर भी चढ़ाई की पर लाभ न हुआ। इन्होंने बड़ी बहादुरी से उसका सामना किया। पीछे से ये लूट-मार करने लगे। इससे अशांति छा गई।

५७—अजयगढ़ के राजा और अँगरेजों से संधि हो गई थी। उसके अनुसार राजाराम तिवारी को दबाकर शांति रखना राजा का पहला काम था पर ऐसा करना उसकी शक्ति के बाहर था। इसलिये कंपनी की सरकार ने इन्हें पकड़ने के लिये ३००००) हजार रुपए का पारितोषिक मुकर्रर किया परंतु इस घोषणा के पूर्व ही इन्होंने बुंदेलखंड के राजा लोगों के समान जागीर मिलने की शर्त पर आत्मसमर्पण कर दिया। इससे इन्हें भी वि० सं० १८६४ में सनद दी गई। इन्होंने अपनी राजधानी गौरिहार नियत की।

५८—ये वि० सं० १६०३ (जनवरी सन् १८४६) में मरे और इनके एकमात्र बचे हुए पुत्र राजधर रुद्रसिंह को गद्दी दी गई। इन्होंने वि० सं० १६१४ में सिपाही-विद्रोह के समय बहुत अच्छा काम किया और कई अँगरेजों की जान बचाई। इससे इन्हें १००००) रुपए की खिलअत और रावबहादुर की पदवी दी गई और वि० सं० १६०६ में इन्हें भी अन्यान्य राजाओं के समान गोद लेने की सनद

मिली। इनके पश्चात् पं० श्यामलेप्रसादजी जागीरदार हुए। आज-कल पं० प्रतिपालसिंहजी जागीरदार हैं। पं० श्यामलेप्रसाद के पश्चात् आपको गद्दी दी गई है। आपका जन्म वि० सं० १९४३ में हुआ था और १९६१ मे गद्दी मिली थी। आपके दो पुत्र हैं। ज्येष्ठ कुमार का नाम अवधेंद्रप्रतापसिंह है और छोटे का देवेंद्रप्रतापसिंह।

बरौंधा या पाथर कछार का हाल

५९—कालिंजर से दस मील पर बरौंधा या पाथर कछार नाम की एक रियासत है। आजकल यह बघेलखंड के पोलिटिकल एजेंट के अधीन है। यहाँ के राजा राजवंशी राजपूत हैं। यह बहुत पुराना घराना है। पूर्व समय में यहाँ के राजा को हिरदेशाह (पन्ना के राजा) और अलीबहादुर ने सनदें दी थीं। जब अँगरेजों का राज्य हुआ तब इन लोगों ने भी तत्कालीन राजा मोहनसिंह को वि० सं० १८६४ में सनद दी। यह वि० सं० १८८४ (४-१-१८२७) में परलोक सिधारा। इसके कोई लड़का न था। इससे इन्होंने मरने के समय एक वसीयतनामा लिखा जिसमें अपनी सारी संपत्ति अपने भतीजे सर्वजीतसिंह को दे दी। यह वसीयत सरकार ने भी मान ली।

६०—सर्वजीतसिंह वि० सं० १९२४ में मरा। इसकी मृत्यु के पश्चात् इसके तीसरे लड़के रामदयालसिंह ने, अपने बड़े भाई धर्मपालसिंह के होते हुए भी, राजगद्दी पाने के लिये दावा किया पर यह नामंजूर हो गया। राजा छतरपालसिंह २५ वर्ष की अवस्था ही में वि० सं० १९३१ में परलोकवासी हुआ। तब इसके चचा रघुवरदयालसिंह को गद्दी दी गई। इन्हें वि० सं० १९३४ मे ९ तोपों की सलामी और १९३५ में राजाबहादुर की पदवी मिली। ये वि० सं० १९४२ में मरे। राजा रघुवरदयालसिंह के न तो कोई लड़का था और न इन्होंने किसी को गोद ही लिया था। इससे सरकार ने

ठाकुरप्रसादसिंह को उत्तराधिकारी चुना। यह वि० सं० १९४३ में गद्दी पर बैठा।

जस्सो का हाल

६१—महाराज छत्रसाल ने अपने लड़के हिरदेशाह को पन्ना और जगतराज को जैतपुर दिया था। जगतराज के हिस्से के ३ भाग करके पहाड़सिंह, गुमानसिंह और खुमानसिंह ने बाँट लिए। गुमानसिंह को अजयगढ़, खुमानसिंह को चरखारी और पहाड़सिंह को जैतपुर मिला था। इसमें कोटरा और जस्सो दोनों शामिल थे। ये दोनों गुमानसिंह और खुमानसिंह को पीछे से दे दिए गए। गुमानसिंह को कोटरा और खुमानसिंह को जस्सो मिला। महाराज छत्रसाल के चौथे पुत्र भारतीचंद अपने बड़े भाई के साथ में रहे। इससे इनकी जागीर बनघोरा और जस्सो भी हिरदेशाह के राज्य में मिली रही पर पीछे से इन्होंने इसके दो हिस्से कर दिए और अपने पुत्र दुर्जनसिंह और हरीसिंह को दे दिए। बनघोरा दुर्जनसिंह ने पाया और जस्सो हरीसिंह ने। पहले तो ये दोनों महाराज हिरदेशाह के अधीन बने रहे पर पीछे से स्वतंत्र हो गए। दुर्जनसिंह के पश्चात् मेदनीसिंह ने बनघोरा पाया पर इसके कोई पुत्र न था। इससे इसने अपना हिस्सा भी हरीसिंह के पुत्र चैतसिंह को दे दिया। इसकी मृत्यु के पश्चात् इसका अल्पवयस्क बालक मूरतसिंह राज्य का अधिकारी हुआ। इस समय चैतसिंह का एक नौकर गोपालसिंह मालिक बन बैठा।

६२—बुंदेलखंड की अन्यान्य रियासतों के समान अलीबहादुर ने जस्सो पर भी चढ़ाई की। इस समय यहाँ पर गोपालसिंह था पर यह पीछे से मूरतसिंह की भी देखरेख करने लगा था। मूरतसिंह कोटरा का भी मालिक था। पर कोटरा अजयगढ़वालों के

अधीन था। लेकिन मूरतसिंह ने इनका आधिपत्य न माना। वह लूट मार भी मचाने लगा। वि० सं० १८७० में भारत-सरकार ने भी बखतसिंह के ही पक्ष में फैसला किया और यह भी कहा कि खिराज के २५००) रुपए सीधे न भेजकर अँगरेजों की मारफत भेजा करो। परंतु मूरतसिंह ने किसी प्रकार अजयगढ़ के अधीन रहना मंजूर न किया।

६३—अंत को तहकीकात की गई। इसमें बुंदेलखंड के बड़े बड़े राजाओं ने मूरतसिंह का पक्ष लिया, जिससे यह सिद्ध हो गया कि जस्सो पर अजयगढ़ का नाममात्र को आधिपत्य था। इससे अँगरेज-सरकार ने इसे भी अन्यान्य राजाओं के समान वि० सं० १८७३ में सनद दी, पर यह वि० सं० १८७० में अजयगढ़ के राजा बखतसिंह को दे दिया गया था। इससे सरकार ने बखतसिंह को २५००) की वार्षिक छूट अपने खजाने से देना मंजूर किया।

६४—मूरतसिंह के दो लड़के थे। इनमें से ज्येष्ठ कुमार को लड़का नहीं था इससे द्वितीय पुत्र ईश्वरीसिंह को संपूर्ण जागीर मिल गई। पर इसे अपने चचेरे भाई रघुनाथसिंह और मूरतसिंह के भतीजे सतरजीतसिंह से बहुत कष्ट उठाना पड़ा। अंत में इसने इनकी जागीरें भी अपने राज्य में मिला लीं। इन लोगों ने वि० सं० १८८६ में दरखास्तें भी भेजीं, पर कुछ लाभ न हुआ। पीछे से इन्होंने लूट-मार करना शुरू कर दिया। लाचार रघुनाथसिंह को वि० सं० १६०२ में जागीर दी गई और सतरजीत को १०००) हजार रुपए सालाना नगद दिलाए गए। यह जागीर का प्रबंध नहीं कर सकता था। इसे पहले दौराहा जागीर में दिया गया था।

६५—ईश्वरीसिंह वि० सं० १६१७ में मर गया। इसके लड़के का नाम रामसिंह था। इसे वि० सं० १६१६ में गोद लेने की सनद दी गई। यह थोड़े दिनों के पश्चात् परलोक को सिधारा। इसके

मरने से मूरतसिंह के वंश का अंत हो गया। इससे अजयगढ़ के राजा ने फिर भी जस्सो की जागीर पर अपना अधिकार चाहा परंतु उसका यह दावा वि० सं० १८७३ की सनद के प्रतिकूल था। इससे सरकार ने मूरतसिंह के भतीजे सतरजीतसिंह (शत्रुजीतसिंह) के लड़के रनजीतसिंह का गोद लिया जाना उचित ठहराया; तदनुसार यह गोद लिया गया। दीवान सतरजीतसिंह तो पेंशन पाते ही थे। ये वि० सं० १९२६ में परलोक को सिधारे। इससे उनकी पेंशन उनके ज्येष्ठ कुमार गोपालसिंह को मिलने लगी।

६६—रनजीतसिंह के बाद वि० सं० १९४५ में जगतराजसिंह ने जागीर पाई पर ये बराबर प्रबंध न कर सके। इससे जागीर इनके पुत्र गिरवरसिंह को दे दी गई पर ये छोटे थे इससे सरकार की ओर से प्रबंध किया गया।

आलीपुरा का हाल

६७—वि० सं० १७६५ में महाराज छत्रसाल की सेना में गरीबदास नामक एक आदमी नौकर हुआ। यह जाति का राजपूत और कुल का पड़िहार था। इसने महाराज की सेना में अच्छा काम किया। इसके पौत्र अचलसिंह को पन्ना-नरेश हिंदूपत ने वि० सं० १८१४ में आलीपुरा की जागीर दी। पीछे से ये स्वतंत्र हो गये। अलीबहादुर की चढ़ाई के समय दीवान प्रतापसिंहजी जागीरदार थे। अँगरेजी राज-सत्ता स्थापित होने के समय कंपनी की सरकार ने इन्हें वि० सं० १८६५ में आलीपुरा जागीर की सनद दी। इनके पंचमसिंह, तिलोकसिंह, जवाहरसिंह और किशोरसिंह नाम के चार लड़के थे। पिता के मरने पर राव पंचमसिंह ने वि० सं० १८९२ में जागीर पाई। इन्होंने इसके चार भाग करके आपस में बाँट लिए परंतु कंपनी की सरकार ने रियासत के टुकड़े करना मंजूर नहीं किया।

६८—किशोरसिंह वि० सं० १९०३ में मरे। इनके ज्येष्ठ पुत्र जगतराज का ते पहले ही स्वर्गवास हो गया था। इससे इनके पौत्र बखतसिंह ने हिस्सा पाया। परंतु किसी कारण से आपस में झगड़ा उठ खड़ा हुआ और कंपनी की सरकार ने भी रियासत के टुकड़े करना मंजूर न किया था। इससे किशोरसिंह का हिस्सा असली जागीर में मिला लिया गया और बखतसिंह को ३०००) वार्षिक आमदनी की जमीन परवरिश के लिये दी गई।

६९—जवाहरसिंह वि० सं० १९०६ में मरे। इन्होंने बखत-सिंह के लड़के को गोद लिया था। बखतसिंह को किशोर-सिंह की जागीर के बदले सिर्फ ३०००) रुपए वार्षिक मिलते थे। इससे अब इन्होंने जवाहरसिंह की जागीर पर अधिकार करना चाहा। परंतु ये निकाल दिए गए और इन्हें ३०००) वार्षिक और भी इस जागीर के बदले मिलने लगे। वि० सं० १९०९ तक यह रकम इन्हें जमीन के रूप में मिलती रही। पर इसी साल जमीन वो निकाल ली गई और नकद रुपए मुकर्रर कर दिए गए। इसी समय तिलोकसिंह भी मर गए।

७०—तिलोकसिह के मरने पर उनका हिस्सा उनके दोनों लड़कों—अचलसिंह और मजबूतसिंह—में बाँट दिया गया। अब बखतसिंह ने फिर भी गड़बड़ मचाई। इस पर उन दोनों के हिस्से भी जागीर में मिला दिए गए और उनके भरण-पोषण का प्रबंध जागीर (रियासत) से किया गया।

७१—सिपाही-विद्रोह के समय बखतसिंह ने ६०००) रुपए लेना नामंजूर कर दिया और विद्रोहियों से जा मिला। यह वि० सं० १९२२ में पकड़ा गया था परंतु प्रमाणाभाव से सरकार ने उसे छोड़ दिया। वि० सं० १९२५ में ६०००), जो बखतसिह को मिलते थे, किशोरसिह के कुटुम्ब में बाँट दिए गए। तत्कालीन प्रथा के

अनुसार किशोरसिंह के लड़के जगतराज को २३००) और उसके दोनों भाइयों में से हरएक को १८५०) मिले। बखतसिंह जगतराज का ज्येष्ठ पुत्र था। इससे इसे प्रचलित प्रथा के अनुसार ८८०) और उसके दोनों भाइयों को ७१०) मिले। पर बखतसिंह राजी न हुआ। इसने दुबारा उपद्रव मचाना चाहा। इस अपराध के बदले वह ग्वालियर में नजरबंद रखा गया।

७२—स्वर्गवासी राव हिंदूपत राव प्रतापसिंह के प्रपौत्र थे। ये वि० सं० १८६० में गद्दी पर बैठे थे। वि० सं० १९२८ में इनका परलोकवास हुआ। इनके पिता का नाम राव दौलतसिंह और पितामह का राव पंचमसिंह था। राव हिंदूपत सिपाही-विद्रोह के समय राजभक्त बने रहे। इससे सरकार ने खुश होकर इन्हें ५०००) नकद पारितोषिक में दिए।

७३—राव हिंदूपत का स्वर्गवास होने पर छत्रधारीसिंह गोद लिए गए। इनको वि० सं० १९३४ में राव बहादुर की पदवी मिली। वि० सं० १९४४ में ये सी० एस० आई० की पदवी से विभूषित किए गए।

७४—वि० सं० १९६० में आपको राजा की पदवी दी गई है। राजा साहब को माल और दीवानी के सिवा फौजदारी के भी अधिकार हैं। पर बड़े बड़े अपराध—जिनमें आजन्म कारागार, फाँसी या देश-निकाले की सजा दी जाती है—पोलिटिकल एजेंट नौगाँव (छावनी) किया करते हैं। आपके ज्येष्ठ पुत्र का नाम हरपालसिंह है।

अठभैया जागीर का हाल

७५—दीवान रायसिंह महाराज वीरसिंहदेव के पुत्र हरदौल के प्रपौत्र थे। हरदौल को महाराज वीरसिंहदेव ने बड़गाँव जागीर में दिया था। बहुत दिनों तक यह जागीर इसी नाम से प्रसिद्ध रही। दीवान रायसिंह के ८ पुत्र थे। इन्होंने वि० सं० १८४० में

जागीर के भी ८ भाग करके हर एक को एक एक भाग दे दिया। इससे यह जागीर अठभैया जागीर कहलाने लगी। इसमें करीं, पसराई, टारौली, चिरगाँव, धुरवई, विजना, टोरी फतेपुर और वंका-पहाड़ी ये ८ जागीरें थीं।

७६—पोलिटिकल एजेंट नौगाँव (छावनी) ने अपनी वि० सं० १८७८ (सन् १०-१-१८२१) की रिपोर्ट में यह लिखा था कि करीं और पसराई की रियासतें लावारिस हो जाने से अन्यान्य रियासतों में मिल गई हैं पर एचिंसन ट्रीट्रीज और सनद नामक पुस्तक में दूसरे कागजों के आधार पर ऐसा लिखा है कि ये दोनों रियासतें झाँसी में मिला दी गई थीं। पीछे से ये सरकारी राज्य में शामिल कर ली गईं। ऐसे ही टारौली भी टेहरी (ओड़छा) में शामिल कर ली गई थी। पर अँगरेजी राज-सत्ता स्थापित हो जाने पर वि० सं० १८७८ में यह निर्णय हुआ कि टारौली जागीर तो सरकार की देख-रेख में रहे पर वार्षिक कर झाँसी को दिया जाय और सेवा-चाकरी तथा हाजरी ओड़छे में की जाय। पीछे से झाँसी की सरकार ने बराबर कर न पटने के कारण धुरवई, विजना, टोरी फतेपुर और वंका पहाड़ी में से कई गाँव निकाल लिए और टारौली भी लछमनसिंह के पश्चात् ओड़छे में मिल गई क्योंकि इनके कोई पुत्र न था। इससे टारौली का ३०००) वार्षिक कर ओड़छे से झाँसी को दिया जाने लगा। लछमनसिंह रायसिंह के पुत्र थे। जब वि० सं० १८८० मे उपर्युक्त चारों जागीरदारों को सनदें दी गई तब उनकी सनदों मे जागीरों के गाँव निकालने का हाल भी लिख दिया गया था।

चिरगाँव

७७—रावबहादुर बखतसिंह ने एक इकरारनामा कंपनी की सरकार को तारीख २७-११-१८२१ को इस शर्त का लिख दिया था

कि मैं और मेरे खानदान के लोग सदा सरकार अँगरेज के शुभचिंतक और आज्ञाकारी बने रहेंगे। इससे इन्हें ता० ११-४-१८२३ को १० ग्रामों की सनद दी गई थी पर इन्होंने सन् १८४१ में अँगरेज-सरकार से राजविद्रोह किया इससे जागीर छीन ली गई।

टेरी फतेपुर

७८—दीवान रायसिंह ने टेरी फतेपुर की जागीर अपने ज्येष्ठ कुमार दीवान हिंदूसिंह को दी थी। इसके मरने पर दीवान मेदनीमल को जागीर मिली। दीवान मेदनीमल दीवान हिंदूसिंह के पुत्र थे। इनके कोई पुत्र न था। इससे इन्होंने बिजना के जागीरदार दीवान सुरजनसिंह के छोटे पुत्र हरप्रसाद को गोद लेकर उसे अपना उत्तराधिकारी बनाया।

७९—दीवान हरप्रसाद को सरकार ने वि० सं० १८८० (११-४-१८२३) में इस जागीर की सनद दी। इसमें १४ गाँव थे। ये वि० सं० १९१५ में मरे। इनके भी कोई संतान न हुई थी। इससे इन्होंने अपनी मृत्यु के पूर्व ही बिजना की जागीर से कुँवर पृथ्वीसिंह को गोद ले लिया था और इस गोदनामे को अँगरेज सरकार ने भी स्वीकार कर लिया था। कुँवर पृथ्वीसिंह छोटे थे। इससे जागीर का प्रबंध हरप्रसाद की विधवा रानी करती रही। आज-कल राव अर्जुनसिंह जागीरदार हैं। इन्हें वि० सं० १९३७ में गद्दी मिली थी, पर अधिकार वि० सं० १९५४ में दिए गए।

धुरवई

८०—दीवान रायसिंह ने धुरवई की जागीर अपने चौथे पुत्र अमानसिंह (मानसिंह) को दी थी। इसके खेतसिंह, जयसिंह और जसवंतसिंह ये तीन लड़के थे। अँगरेजी राज्य स्थापित होने के समय सरकार ने दीवान बुधसिंह को वि० सं० १८८० (११-४-१८२३)

में सनद दी थी। ये जयसिंह के लड़के हैं। इसमें ८ गाँव थे जिनमें से ६ तो इस इलाके के और दो जतारा के थे। बुधसिंह के मरने पर नाहरसिंह को गद्दी मिली। नाहरसिंह वि० सं० १९०८ में मरे और रनजोरसिंह जागीरदार हुआ। रनजोरसिंह के ज्येष्ठ पुत्र का नाम कुँवर हमीरसिंह है।

बिजना

८१—बिजना की जागीर दीवान रायसिंह ने अपने पुत्र सामंतसिंह को वि० सं० १८४७ (१७९० ई०) में दी थी। दीवान सामंतसिंह के ३ बेटे थे—अजीतसिंह, जगतराज और प्रानसिंह। अजीतसिंह के पश्चात् दीवान सुरजनसिंह ने गद्दी पाई। ये सात भाई थे। सुरजनसिंह को कंपनी की सरकार ने वि० सं० १८८० (११-४-१८२३ ई०) में जागीर की सनद दी। इसमें ६ गाँव थे।

८२—सुरजनसिंह वि० सं० १८९६ में मरे और खाँडेराय इनके ज्येष्ठ पुत्र जागीरदार हुए। इनको दुर्जनसिंह भी कहते थे। ये दो भाई थे। खाँडेराय ने लगभग ११ वर्ष राज्य किया। ये वि० सं० १९०७ में मरे। इनके पश्चात् मुकुंदसिंह ने गद्दी पाई। इनके मर्दनसिंह, रतनसिंह और हीरासिंह तीन पुत्र और दो पौत्र (हीरासिंह के पुत्र) हिम्मतसिंह और लछमनसिंह नाम के हैं।

८३—दीवान अजीतसिंह के ७ बेटे थे। इनमें से बखतसिंह चिरगाँव और धुरमंगद टोरी फतेपुर की जागीर में गोद गए और कुँवर विजयबहादुर को उसके चचा प्रानसिंह ने गोद लिया था।

बंका-पहाड़ी

८४—पहाड़ी जागीर के संस्थापक दीवान उम्मेदसिंह हैं। ये दीवान रायसिंह के पुत्र थे। इन्हें ५ गाँव मिले थे। परंतु मरहठों की चढ़ाई के समय ४ गाँव निकल गए। कहा जाता है कि जागीर

पर झाँसी का खिराज बाकी रह गया था। इससे झाँसी के तत्कालीन सूबेदार ने ४ गाँव निकाल लिए। संभवतः यह हाल वि० सं० १८७८ का होगा।

८५—दीवान उम्मेदसिंह के पश्चात् दीवान बंका दुर्गसिंह ने जागीर पाई थी। इनके दीवान बंका छत्रपति और दीवान बहादुरसिंह ये दो लड़के थे। दीवान बंका दुर्गसिंह ने भी अपनी जागीर दोनों लड़कों को दे दी थी। दीवान छत्रपति के दीवान शत्रुजीतसिंह और बंका ईश्वरीसिंह ये दो लड़के थे। दीवान बंका ईश्वरीसिंह को सरकार ने वि० सं० १८८० (११-४-१८२३) में जागीर की सनद दी थी। दीवान बंका ईश्वरीसिंह के भी बंका विजयबहादुर, परतापसिंह और परवतसिंह ये तीन लड़के थे। दीवान बंका ईश्वरीसिंह वि० सं० १६०७ में मरे।

८६—दीवान बंका ईश्वरीसिंह के मरने पर दीवान बंका विजयबहादुर गद्दी पर बैठे। ये भी वि० सं० १६२८ में परलोक सिधारे और जागीर दीवान बंका प्यारेजू को दी गई। ये वि० सं० १६४७ में मरे। इनके बाद बंका मिहरबानसिंह गद्दी पर बैठे।

बेड़ी का हाल

८७—बेड़ी जागीर के संस्थापक (पानेवाले) अछर जू (अचल जू) पँवार ठाकुर थे। इनके पितामह दीवान पृथ्वीपतिसिंह कहैया के रहनेवाले थे। यह ग्राम ग्वालियर रियासत में है। इनके पुत्र का नाम महिमाराय था। दीवान अछरजू अठारहवीं शताब्दी के अंत में संडी (जिला जालौन) में आकर रहने लगे थे। इनका विवाह जैतपुर के राजा जगतराज की कन्या के साथ हुआ था। इस विवाह में राजा जगतराज ने इन्हें १२ लाख की जागीर दहेज में दी थी। इस जागीर में उमरी, ददरी और चिल्ली नाम के ग्राम भी

थे। दीवान अछरजू के उमरावसिंह, गंधर्वसिह, खुमानसिह और विजयसिह नाम के ४ बेटे थे। दीवान अछरजू के मरने पर खुमान-सिह ने जागीर पाई। जब तक बुंदेलो की सत्ता रही तब तक जागीर को किसी प्रकार की हानि न पहुँची। पर पीछे से जागीर का बहुत सा भाग निकल गया, यहाँ तक कि सिर्फ ददरी, उमरी और चिल्ली ग्राम ही रह गए। खुमानसिह के पश्चात् दीवान जुगलप्रसाद को जागीर मिली। अलीबहादुर की चढाई के समय जुगलप्रसाद के पास ३ गाँव थे। इससे नवाब अलीबहादुर ने इन्हीं तीनों गाँवों की सनद दी थी।

८८—अँगरेजी राज सत्ता स्थापित होने के समय जब अँगरेजों और गोविंदराव से संधि हुई तब अँगरेजों ने इस जागीर में से चिल्ली और ददरी निकाल लिए। अब सिर्फ उमरी ही रह गई। इससे वि० सं० १८६६ में इसी की सनद दी गई। जुगलप्रसाद वि० सं० १८७१ में मरे। इनके पुत्र न था इससे इनके चचेरे भाई रावजू के पुत्र फेरनसिह गोद लिए गए। रावजू गधर्वसिह के पुत्र और अछरजू के पौत्र थे। इस समय फेरनसिह के पिता रावजू जीवित थे और नियमानुकूल यही गद्दी पाते परंतु इन्होंने स्वत फेरनसिह को गोद लेने के लिये कहा था।

८९—फेरनसिह के मरने पर वि० सं० १९१४ में राव विश्वनाथसिंह को जागीर दी गई। परंतु ४ ही वर्ष के बाद वि० सं० १९१८ में विश्वनाथसिह भी मर गए। इनके मरने पर इनकी विधवा रानी ने अपने दूर के एक रिश्तेदार बलभद्रसिह को गोद लेना चाहा। परंतु सरकार ने जागीरदार के भतीजे विजयसिह को गोद लेने की सलाह दी और वही गोद लिया गया।

९०—राव विश्वनाथसिह ने विद्रोह के समय सरकार की बड़ी सहायता की थी। इससे सरकार ने गद्दीनशीनी का नजराना, जो

'हर रियासत से सरकार को दिया जाता है, बंद कर दिया। विजयसिंह की मृत्यु के पश्चात् रघुराजसिंह और उनकी मृत्यु के पश्चात् वि० सं० १९६१ में लोकेंद्रसिंह को गद्दी दी गई।

बीहट का हाल

९१—"एचिंसन के अहदनामे" नाम की पुस्तक में बीहट की जागीर के विषय में सिर्फ इतना ही लिखा है कि यह जागीर ओड़छा वंश की एक शाखा है परंतु श्यामलालजी ने उर्दू भाषा में जो बुंदेलखंड का इतिहास लिखा है उसमें इसके संस्थापक की वंशावली का विशेष वर्णन है। उन्होंने यहाँ के जागीरदार को अर्जुनपाल के पुत्र सोहनपाल का वंशज माना है और वंशावली इस प्रकार बतलाई है।

९२—अर्जुनपाल के सोहनपाल, दयापाल और वीर, ये तीन लड़के थे। सोहनपाल के इंद्रजीत और इसके परसराम हुए। परसराम के ३ पुत्र थे। इनमें से मझले पुत्र राव नारायणदास के भीमसेन और रूपशाह ये दो पुत्र हुए। रूपशाह के एक ही लड़का मानशाह हुआ पर इसके जामशाह, अचलसिंह और महाराजसिंह ये ३ पुत्र हुए। ऐसे ही जामशाह के भी नरिंद्रसिंह, सभासिंह और माखनजू ये तीन लड़के थे। सभासिंह के लड़के का नाम दीवान खुमानसिंह था। खुमानसिंह के दीवान सरदारसिंह, दीवान अपरबलसिंह, सकतसिंह और सबदलसिंह ये ४ लड़के थे।

९३—सोहनपाल को कोटरा जागीर में मिला था। इसका लड़का इंद्रजीत वि० सं० १५०७ में इटौरा में रहने लगा। इससे इसके वंशज इटौरिया कहलाए। इसी से बीहट के जागीरदार भी इटौरिया कहलाते हैं। परसराम के तीन लड़कों में से राव नारायणदास ने गुढ़ा जीता इससे ये गोढ़हा कहलाए।

९४—बीहट जागीर को कब, किसने और कैसे कायम किया—इसका तो पता लगता नहीं; पर ऐसा भी कहना अनुचित न होगा कि एक के बाद दूसरे जागीर की गद्दी पर बैठते गए, यहाँ तक कि नवाब अलीबहादुर की चढ़ाई के समय भी यह ज्यों की त्यों बनी रही।

९५—अँगरेजी राज-सत्ता स्थापित होने के समय बीहट में अपरबलसिंह और लोहरगवाँ में इनके चचेरे भाई दीवान धाधूसिंह के लड़के दीवान छतारेजू थे। पर जागीर के सातों गाँवों की सनद दीवान अपरबलसिंह को वि० सं० १८६४ (२२-६-१८०७ ई०) में मिली और दीवान छतारेजू ने, जो लोहरगवाँ में रहते थे, लोहरगवाँ की सनद पाई। दीवान अपरबलसिंह के मरने पर राव वेंकटराव गद्दी पर बैठा। यह वि० सं० १८८५ तक जीता रहा। इसके मरने पर राव कमोदसिंह वि० सं० १८८५ में जागीर का अधिकारी हुआ। यह वि० सं० १९०३ में परलोक को सिधारा। इसके मरने पर हिरदेशाह को गद्दी मिली पर यह ३ ही वर्ष के भीतर वि० सं० १९०६ में मर गया।

९६—हिरदेशाह के मरने पर कमोदसिंह के भाई गोविंददास को जागीर मिली। राव गोविंददास सं० १९२९ (९-४-१८७२) में मरा और राव महमसिंह को जागीर मिली।

गरौली का हाल

९७—गरौली की जागीर दीवान गोपालसिंह को वि० सं० १८६९ में अँगरेज-सरकार ने दी थी। दीवान गोपालसिंह दीवान भगवंतसिंह के पुत्र हैं। इनकी वंशावली इस प्रकार बतलाई जाती है कि राव उदयाजी के क्रमानुसार प्रेमचंद, मानशाह, इंद्रमन, शाहमन, पर्वतसिंह, अनिरुद्धसिंह, अजीतसिंह और भगवंतसिंह हुए।

६८—पूर्व में गोपालसिंह जस्से के जागीरदार दुर्जनसिंह व हरीसिंह के यहाँ नौकर था। दीवान दुर्जनसिंह महाराज छत्रसाल के पुत्र भारतीचंद के पुत्र हैं। गोपालसिंह ने अलीबहादुर की चढ़ाई के समय कोटरा इलाका अपने अधिकार में कर लिया था। नवाब ने इसे अपने अधीन करना चाहा पर न कर सका। यह जैसा शूर था वैसा ही निर्भीक भी था। यह अपने विरोधियों से लड़ने के लिये सदा तैयार रहता था।

६६—अँगरेजी राज-सत्ता स्थापित होने के समय भी इसने अँगरेजों का घोर विरोध किया। अनेक बार सेना भेजने पर भी ये इसे वश न कर सके। पर पीछे से अन्यान्य लोगों के समान माफी मिलने और जागीर पाने की शर्त पर गोपालसिंह ने भी आत्म-समर्पण कर दिया। इससे अँगरेज सरकार ने इसे वि० सं० १८६६ (१२-२-१८१२) में १८ गाँवों की सनद दे दी। पर पीछे से पन्ना के राजा किशोरसिंह ने इन गाँवों का दावा किया और जाहिर किया कि सेवा-चाकरी के बदले ये गोपालसिंह को दिए गए थे। परंतु वि० सं० १८७८ की तहकीकात से सेवा-चाकरी के बदले इन गाँवों का दिया जाना प्रमाणित न हुआ। इससे ये सब गाँव गोपालसिंह के पास ही बने रहे। यह वि० सं० १८८८ में मरा।

१००—गोपालसिंह के मरने पर उसके बेटे दीवान पारीछत ने जागीर पाई। परंतु राज-विद्रोह के समय अँगरेजों के प्रति इसका व्यवहार अच्छा न था। इससे इसे अपनी जागीर के बाबत संदेह होने लगा। इसलिये इसने अपने जीते-जी अपने पुत्र रनधीर ,को राज्य देने की सरकार से अनुमति चाही। परंतु स्वीकृति मिलने के पश्चात् दोनों में अनबन हो गई। तब पारीछत ने उसके भरण-पोषण के लिये एक गाँव दे दिया। रणधीर वि० सं० १६४० में मर गया। इसके मरने पर पुत्रशोक के कारण दीवान पारीछत ने रण-

धीर के पुत्र चंद्रभानसिंह को वि० सं० १९४१ (१०-१०-१८८४ ई०) में राजगद्दी दे दी। उस समय यह छोटा था। इससे सरकार ने जागीर का प्रबंध किया। इसे वि० सं० १९६१ में अधिकार दिए गए।

खनियाधन का हाल

१०१—खनियाधन एक छोटी सी रियासत है। पूर्व में यह इलाका भी ओड़छा रियासत में था। यहाँ के राजा उदोतसिंह ने इसे अपने लड़के अमरसिंह को वि० सं० १७८१ में दिया था। इसमें मोहनगढ़ और अहार भी शामिल था। पीछे से मरहठों की चढ़ाई के समय यह ओड़छे से अलग कर दी गई। पेशवा ने इसे वि० सं० १८०८ में सनद दी और यह झाँसी के अधीन कर दी गई।

१०२—संवत् १८७४ में जब बुंदेलखंड में अँगरेजी राज-सत्ता स्थापित हो गई तब यहाँ का राजा भी अधीन हो गया। परंतु वि० सं० १९११ में जब झाँसी में अँगरेजी राज्य स्थापित हो गया, तब यहाँ के राजा ने अँगरेजों से स्वतंत्र सनद चाही। इस समय खनियाधन में राजा पृथ्वीपाल का राज्य था। अमरसिंह से लेकर पृथ्वीपाल तक महाराजदेव और जवाहरसिंह इन दो राजाओं ने भी राज्य कर लिया था। पर महाराजदेव ने कितने वर्ष राज्य किया इसका ठीक पता नहीं लगता। जवाहरसिंह असाढ़ सुदी ३ वि० सं० १८९९ (११-७-१८४२) को मरा। राजा पृथ्वीपाल के सतरजीतसिंह, खुमानसिंह और गुमानसिंह, ये तीन लड़के थे। राजा पृथ्वीपाल अगहन सुदी १३ संवत् १९१९ में बसई नामक ग्राम में परलोक को सिधारा। इस समय राव खुमानसिंह को गद्दी मिलती पर अपने पिता की मृत्यु के सातवें दिन ये भी चल बसे। इससे राव गुमानसिंह को जागीर दी गई।

१०३—यहाँ के राजा ने अब तक अँगरेजी सरकार को किसी भी प्रकार का इकरारनामा नहीं लिखा था। इससे गोद लेने की सनद देने के पूर्व सरकार ने इससे इकरारनामा ताबेदारी लिखवा लेना उचित समझा। इससे राजा गुमानसिंह ने वि० सं० १९२० (१-८-१८६३) में इकरारनामा ताबेदारी का लिख दिया। अतः इसे गोद लेने की सनद दी गई। यह ७ वर्ष राज कर अगहन सुदी ९ वि० सं० १९२६ (१२-१२-१८६९) में परलोक को सिधारा। इसके मरने पर कुमार चतरसिंह ने गद्दी पाई। इस समय चतरसिंह केवल ७ वर्ष का छोटा सा बालक था। इससे प्रबंध इनकी मा करती रही। पर पीछे से एक प्रबंधक भी नियत कर दिया गया था। इन्हें संवत् १९३४ में राजा की पदवी दी गई है।

नैगवाँ रिवई का हाल

१०४—जैतपुर के पास किसी गाँव मे अनंतराम दौआ रहता था। उसके लछमनसिंह और दलसिंह नाम के दो लड़के थे। अनंतराम एक साधारण आदमी था। यह मवेशी आदि चराकर अपनी गुजर किया करता था। पर इसका लड़का लछमनसिंह एक होनहार बालक था। "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" की कहावत उसके लिये बहुत उपयुक्त होती है।

१०५—जिस समय जैतपुर के राजा किशोरसिंह ने नवाब अली-बहादुर के साथ कालिंजर पर चढ़ाई की उस समय किशोरसिंह के साथ लछमनसिंह भी गया था। वहाँ जाने पर इसका उत्साह बहुत बढ़ गया। अलीबहादुर की वि० सं० १८५९ में, कालिंजर मे, मृत्यु हो गई। तब किशोरसिंह जैतपुर चला आया। यहाँ आते ही लछमनसिंह ने लूट-मार शुरू कर दी।

१०६—उस समय राज्य-व्यवस्था ठीक नहीं थी। जिसकी लाठी उसकी भैंस की कहावत चरितार्थ हो रही थी। इतने में

अँगरेजी राजसत्ता स्थापित होने लगी। लछमनसिंह ने और लोगों की देखा-देखी यह मौका हाथ से न जाने दिया। यह अजयगढ़ के राजा बखत सिंह के साथ अँगरेजों से मिला। इन्होंने इसे वि० सं० १८६४ (१६-६-१८०७) में नैगवाँ आदि ५ गाँवों की सनद दी। यह वि० सं० १८६५ मे परलोक को सिधारा। आजकल इस जागीर को नैगवाँ रेबई कहते हैं।

१०७—लछमनसिंह के मरने पर इसके लड़के जगत्सिंह ने जागीर पाई। लछमनसिंह को हीनहयाती सनद दी गई थी। इससे उसके मरते ही जागीर छीन ली जाती परंतु उस समय ऐसा करना उचित न समझा गया और अधिकार उसके ज्येष्ठ पुत्र जगत्सिंह को दे दिए गए। पीछे से जागीर जब्त करने का प्रश्न उठा पर इस समय यही निश्चय हुआ कि जागीर जगत्सिंह के मरने पर जब्त कर ली जाय। इस बीच में जगत्सिंह ने यह दरखास्त दी कि मेरे मरने पर मेरी स्त्री सवाई लाड़ली दुलैया को जागीर दी जाय। इसकी मंजूरी भी भारत-सरकार से आ गई। पीछे से अन्यान्य राजाओं के समान इसको भी वि० सं० १९१९में गोद लेने की सनद मिल गई। यह संवत् १९२४ (ता० २८-६-१८६७) में परलोक को सिधारा।

१०८—वि० सं० १९०७ में यह तजवीज हुई थी कि जगत्सिंह के मरने पर जागीर जब्त कर ली जाय पर पीछे से उसे गोद लेने की सनद भी मिल गई और भारत-सरकार ने उसकी विधवा को जागीर का प्रबंध करने की मंजूरी भी दे दी थी। इससे जब्ती का फिर कोई प्रश्न न उठा। जागीरदार जगत्सिंह की विधवा स्त्री सवाई लाडली दुलैया ने कुँवर विश्वनाथसिंह को गोद लिया है। यह वि० सं० १९३८ में पैदा हुआ था।

कदौरह अर्थात् बावनी का हाल

१०९—कदौरह उर्फ बावनी की रियासत को स्थापित करनेवाला नवाब गाजीउद्दीन है। यह आसफजाह निजामुल्मुल्क का उत्तराधिकारी

(नाती) था। गाजीउद्दीन हैदराबाद का निजाम और दिल्ली के बादशाह का मंत्री भी था। इस रियासत के स्थापित होने का हाल इस प्रकार बतलाया जाता है कि जब गाजीउद्दीन अपने पिता से नाराज होकर दक्षिण की ओर जा रहा था उस समय पेशवा ने इसे यह जागीर दी थी। परंतु इतिहासों से ऐसा पता लगता है कि जब गाजीउद्दीन ने वि० सं० १८४१ में पेशवा से संधि की थी तब उसने कालपी के पास गाजीउद्दीन को ५२ गाँव की रियासत दी थी। पर पीछे से कालपी के सूबेदार ने इस रियासत में से ३ गाँव निकाल लिए थे। इससे नवाब नसीरुद्दौला के पास ४९ ही गाँव रह गए थे। इससे अँगरेजी अमलदारी स्थापित होने के समय नवाब नसीरुद्दौला जफरजंग को इन्हीं गाँवों की सनद दो गई थी। पीछे से नवाब ने तीनों गाँवों के मिलने के लिये एक दरखास्त दी; पर उस समय तक कालपी के नाना गोविंदराव का फैसला नहीं हुआ था, अतः फैसला होने तक कार्रवाई स्थगित रही पर पीछे से ये तीनों ग्राम सरकार ने नवाब को वापस कर दिए। यह संवत् १८७२ (११-५-१८१५) में, कालपी में, मरा।

११०—इसके पीछे इसका लड़का नाजिमुद्दौला नवाब अमीरुल्-मुल्क जफरजंग गद्दी पर बैठा और इसके बाद नसीरुल्मुल्क नवाब मुहम्मद हुसैनखाँ ने गद्दी पाई। यह २२ वर्ष राज्य कर वि० सं० १८९५ (१८-१०-१८३८) में परलोक को सिधारा।

१११—इसने वि० सं० १९१३ में मक्का जाने की इच्छा प्रकट की। इससे इसने अपने बेटे मेंहदीहुसेनखाँ को गद्दी दिलवा दी और भावी झगड़े मिटाने के लिये अपने कुटुंब के अन्य मनुष्यों को ९०००) रुपए प्रति वर्ष नक्द मुकर्रर कर दिए। इतने में बलवा शुरू हो गया इससे नवाब मक्का न जा सका। यह संवत् १९१६ में मरा। मेंहदीहुसेनखाँ मुहम्मदहुसेनखाँ के समय से ही राज्य-प्रबंध कर रहे

थे और ये ही ज्येष्ठ पुत्र थे। इससे इन्हीं को गद्दी मिली। पर मुहम्मद हुसेनखाँ के द्वितीय पुत्र अब्दुल्लाखाँ ने मेहदीहुसेन को नाजायज लड़का कहकर उसके विरुद्ध दरखास्त दी पर तहकीकात से उसका दावा झूठा निकला। इससे वही गद्दी पर कायम रहा।

११२—राजविद्रोह के समय मुहम्मदहुसेनखाँ और उसके लड़के मेहदीहुसेनखाँ ने कई अँगरेजों की जान बचाई थी। इससे मेहदीहुसेनखाँ को वि० सं० १९१९ में मुसलमानी धर्म-शास्त्र के अनुसार गोद लेने की सनद दी गई। यह वि० सं० १९५० में मरा।

इसके मरने पर इसके भतीजे रियाजुलहसनखाँ को गद्दी मिली पर यह छोटा था। इससे सं० १९५९ तक सरकारी प्रबंध रहा।

लुगासी का हाल

११३—लुगासी जागीर का प्राचीन इतिहास तो उपलब्ध नहीं है पर तवारीखों से ऐसा पता चलता है कि महाराज छत्रसाल के पौत्र और राजा हिरदेशाह के पुत्र सालिमसिंह (जालिमसिंह) गोद में आए थे। अलीबहादुर के समय इनके पुत्र दीवान धीरजसिंह के पास सिर्फ ७ ही ग्राम थे। इससे अँगरेजी राजसत्ता स्थापित होने के समय ये उसी के अधिकारी बने रहे और वि० सं० १८६५ (९-१२-१८०८) में इन्हें उन्हीं ७ गाँवों की सनद दी गई।

११४—दीवान धीरजसिंह वयोवृद्ध थे। इससे इन्होंने अपने जीवन-काल ही में अपने द्वितीय पुत्र सरदारसिंह को गद्दी देने की सरकार से अनुमति चाही क्योंकि इनके ज्येष्ठ पुत्र पदुमसिंह ने ४ वर्ष पूर्व वि० सं० १८६७ में इनसे विद्रोह किया था। जब अँगरेजी सेना ने इन पर चढ़ाई की थी तब इन्होंने आत्म-समर्पण किया था। इससे शांतिपूर्वक रहने और भविष्य में गद्दी का दावा न करने की शर्त पर भरण-पोषण के लिये इन्हें अलग जमीन दे दी गई थी।

पर दीवान धीरजसिंह वि० सं० १८७६ में परलोक को सिधारे और सरदारसिंह ने जागीर पाई।

११५—सिपाही-विद्रोह के समय सरदारसिंह राजभक्त बना रहा। इससे विद्रोहियों ने इसके कई गाँवों को उजाड़ डाला। विद्रोह शांत होने पर अँगरेज सरकार ने इसे वि० सं० १९१७ में रावबहादुर की पदवी और १००००) रुपए का खिलअत (सिरोपाव) दिया। इसके सिवाय २०००) रुपए सालाना आमदनी के ४ गाँव भी जागीर में दे दिए। विक्रम संवत् १९१७ (८-४-१८६०) में इसका स्वर्गवास हो गया।

११६—इसके ज्येष्ठ पुत्र सूरतसिंह का पहले ही स्वर्गवास हो गया था। इससे इसके पौत्र (सूरतसिंह के पुत्र) हीरासिंह को गद्दी दी गई। इसके पितामह सरदारसिंह को सरकार ने बगावत के समय शांति स्थापित करने के जो २०००) रुपए सालाना आमदनी के ४ गाँव जागीर में दिए थे उनमें से एक गाँव में नौगाँव छावनी के रिसाले के लिये घास रखवाई जाती थी। इससे इसने वहाँ गाड़ियों के आने-जाने के लिये सड़क बनवाने और उसे सदा साफ रखने के लिये एक इकरारनामा वि० सं० १९१९ (२५-१-१८६२) में लिख दिया था। यह वि० सं० १९२९ (अप्रैल सन् १८७२) में मरा।

इसके मरने पर खेतसिंह को गद्दी दी गई। यह सं० १९५९ में मरा और दीवान छत्रपतिसिंह जागीर के अधिपति हुए।

सरीला का हाल

११७—महाराज छत्रसाल के पुत्र जगतराज के लड़के पहाड़सिंह को जैतपुर का राज्य मिला था। इसके गजसिंह और अमानसिंह ये दो लड़के थे। गजसिंह को जैतपुर मिला। इसने अपने हिस्से में से अपने भाई अमानसिंह को सरीला जागीर में दे दिया था। अमानसिंह के खेतसिंह और तेजसिंह ये दो लड़के थे। अमानसिंह के मरने पर तेजसिंह ने जागीर पाई।

यह जागीर वि० सं० १८१२ के लगभग स्थापित हुई है। इसकी स्थापना करनेवाले तेजसिंह के पिता अमानसिंह ही हैं।

११८—नवाब अलीबहादुर ने तेजसिंह की कुल जागीर जब्त कर ली पर पीछे से राजा हिम्मतबहादुर के कहने पर उसे कुछ इलाका दे दिया। जिस समय बुंदेलखंड में अँगरेजी राजसत्ता स्थापित हो रही थी उस समय तेजसिंह के पास सरीला गाँव और उसकी गढ़ी तथा कुछ गाँव थे, जिनकी वार्षिक आमदनी ९०००) रुपए थी। इससे कंपनी की सरकार ने उसे १०००) रुपए माहवार और भी सरकारी खजाने से देना नियत कर दिया। पीछे से तेजसिंह ने अपनी जागीर वापस पाने के लिये कंपनी की सरकार से निवेदन किया इससे उसे २३६००) वार्षिक आमदनी की जागीर वि० सं० १८६४ (१७-१-१८०७) में अँगरेजी सरकार ने दी। इसमें सरीला सहित कुल ११ गाँव थे। पर इसे जो एक हजार रुपए माहवार सरकारी खजाने से मिलते थे वे बंद कर दिए गए और इसे सनद दे दी गई।

११९—तेजसिंह के मरने पर इसका लड़का अनिरुद्धसिंह जागीरदार हुआ। यह बहुत ही अच्छा प्रबंधक था। इसके प्रबंध से सारी प्रजा खुश रहती थी। यह मितव्ययी भी ऐसा था कि इसने अपने खजाने में कई लाख रुपए जमा कर लिए। अनिरुद्धसिंह के भाई का नाम बुद्धिसिंह और लड़कों के नाम दलीपसिंह, जवाहरसिंह और हिंदूपत थे। अनिरुद्धसिंह के मरने पर वि० सं० १८९९ (२३-३-१८४२) में हिंदूपत को जागीर मिली। इनके भाई जवाहरसिंह का वि० सं० १८९५ में ही स्वर्गवास हो गया था। हिंदूपत के भानुप्रताप नाम का एक ही लड़का था, पर यह हिंदूपत के सामने ही मर गया था।

१२०—हिंदूपत ने अपनी जेठी रानी को गोद लेने का अधिकार अपने मरने के समय दे दिया था। इससे इसने खलकसिंह को गोद लिया। यह महाराज जगत्‌राज के पुत्र केहरीसिंह के वंश में

से था। इसके अर्जुनसिंह, अर्जुनसिंह के जसवंतसिंह और इसके फतेसिंह हुए। फतेसिंह के लड़के का नाम बखतसिंह था। खलकसिंह बखतसिंह का पौत्र और समरसिंह का पुत्र था। गोद लेने के समय यह बहुत ही छोटा था, इससे राज-प्रबंध इसकी मा, हिंदूपत की जेठी रानी, करती रही। खलकसिंह के लड़के का नाम पहाड़सिंह है। यह संवत् १९५७ में गद्दी पर बैठा था।

जिगनी का हाल

१२१—महाराज छत्रसाल के एक पुत्र का नाम पदुमसिंह था। इन्हें कोई जागीर न मिली थी। इससे इनके मामा ने इन्हें अपने यहाँ बुलवा लिया। ये अपनी जागीर जिगनी में रहते थे। इनके कोई संतान न थी। इससे उनकी जागीर और संपत्ति के अधिकारी ये ही हो गए। पीछे से पदुमसिंह ने अपने बाहुबल से इसे और भी बढ़ा लिया। वि० सं० १७८७ में इन्होंने बदौरा और रायसिन भी जीतकर अपने राज्य में मिला लिए। परंतु इतने बड़े राज्य का प्रबंध वे न कर सके। इधर मराठों की चढ़ाइयाँ भी शुरू हो गई जिससे इनका राज्य बहुत घट गया। यहाँ तक कि इनके मरने पर इनके पुत्र लक्ष्मणसिंह के पास सिर्फ राठ और पड़वारी के परगने ही रह गए थे।

१२२—अँगरेजी राजसत्ता स्थापित होने के समय इनके पास वि० सं० १८६१ में १६ ग्राम थे। पर ये बड़े ही उद्दंड प्रकृति के थे। इससे दस गाँव छीन लिए गए, सिर्फ ६ ही बाकी रह गए। इससे वि० सं० १८६७ (१०-१२-१८१०) में इन्हें उन्हीं ६ मौजों की सनद मिली। ये वि० सं० १८८७ में मरे, पर इनके कोई पुत्र न था। इससे अँगरेज सरकार ने जागीर जब्त करने का विचार किया। पर इस समय रानी गर्भवती थी इससे जब्ती का विचार कुछ दिनों के लिये रोक दिया गया। पीछे से भोपालसिंह पैदा हुआ और इसी को जागीर दे दी गई पर राज्य-प्रबंध इसकी माता करती रही।

१२३—वि० सं० १८८७ में इससे और इसके भाई से, जो इसे सलाह दिया करता था, बिगाड़ हो गया। इससे सरकारी प्रबंधक नियत किया गया। भोपालसिंह के सयाने होने पर इसे वि० सं० १९०२ में अधिकार दिया गया। पर यह बहुत ही कमजोर दिमाग का था, इससे प्रबंध न कर सका और राज्य में उपद्रव होने लगे। फलतः बाध्य हो सरकार को फिर राज-प्रबंध सँभालना पड़ा। यह वि० सं० १९२७ में निस्संतान मरा। इससे पन्ना के राजा महाराज नृपतसिंह के पुत्र लक्ष्मणसिंह गोद लिए गए। पर इसके भी पुत्र न हुआ। इससे महाराजा चरखारी के पुत्र भानुप्रतापसिंहजी वि० सं० १९४९ में गोद लिए गए।

१२४—ऊपर जिन राज्यों का वर्णन हुआ है वे सब महाराज छत्रसाल के विशाल राज्य के छोटे छोटे टुकड़े हैं। जो राज्य किसी समय मुगल-सम्राट् का मान-मर्दन करने को तैयार रहता था वही आज गृह-कलह के कारण स्वतः पद-दलित हो गया। बुंदेले लोग महाराज छत्रसाल के आदर्शों को भूल गए और अपने भाइयों का खून बहाने में भी उन्होंने पाप न माना।

१२५—कोठी पर एक छोटी सी रियासत है। पूर्व में यह पन्ना के राजा के अधिकार में थी। ऐसा कहते हैं कि यहाँ के बघेल राजा ने भाड़ों को निकालकर अपना राज्य कायम किया था पर समय सदा एक सा नहीं रहता। महाराज छत्रसाल ने यहाँ के तत्कालीन राजा को परास्त कर उसे अपने अधीन कर लिया जिससे यह भी महाराज का करद राज्य हो गया। पर शेष बातों में स्वतंत्र ही सा था। नवाब अलीबहादुर के समय भी इसका अलग ही बंदोबस्त हुआ था पर यह पन्ना के अधीन माना जाता था। इसी से राजा किशोर की सनद में यह भी शामिल कर दिया गया था पर पीछे से इसकी सब ऊपरी बातों का विचारकर कंपनी की सरकार ने राय लाल दुनिया-

पतिसिंह को वि० सं० १८६७ (७-१२-१८१०) में अलग सनद दे दी और वि० सं० १९१६ में राव बहादुरसिंह को गोद लेने की सनद दी गई। सिपाही-विद्रोह के समय यहाँ के राजा राजभक्त बने रहे इससे वि० सं० १९३५ में उन्हें राजा बहादुर की पदवी दी गई। पूर्व में राव बहादुर ही की पदवी थी। आजकल राजा बहादुर अवधेंद्रसिंह जागीरदार हैं। ये वि० सं० १९५२ में गद्दी पर बैठे थे। जिस प्रकार कोठी में महाराज छत्रसाल के पूर्व स्वतंत्र राज्य था उसी प्रकार उचेहरा अर्थात् नागोद और सुहावल भी स्वतंत्र राज्य थे। पर महाराज छत्रसाल ने इनके राजाओं को भी परास्त कर अपने अधीन कर लिया था। इससे ये रियासतें भी राजा किशोरसिंह की सनद में शामिल हो गई थीं पर पीछे से कंपनी की सरकार ने उचेहरा की सनद लाल शिवराजसिंह को और सुहावल की रायलाल अमानसिंह को दे दी जिससे ये लोग भी पूर्ववत् स्वतंत्र हो गए।

१२६—सागर के मराठों को गढ़ाकोटावाले मर्दनसिंह पहले से ही तंग कर रहे थे। आबा साहब को मर्दनसिंह ने युद्ध में हरा दिया था परंतु फिर दिनकरराव अन्ना ने उसे शांत कर दिया। पीछे से नागपुर के भोंसला ने भी मर्दनसिंह को तंग किया परंतु उन्हें भी इसने हरा दिया। किंतु एक बार हारने के पश्चात् भोंसले ने फिर भी गढ़ाकोटे पर आक्रमण किया। इस समय नागपुर के भोंसले के पास सेना बहुत थी इसलिये मर्दनसिंह ने सेंधिया से सहायता माँगी। सेंधिया ने सहायता दी परंतु सहायता के बदले मर्दनसिंह से आधा राज्य लेने का वचन ले लिया। सेंधिया की सेना में जान बेपटिस्ट नाम के एक सेनापति थे। सेंधिया की सेना की सहायता से भोंसले की सेना हरा कर भगा दी गई। पहले ठहराव के अनुसार सेंधिया ने आधा राज्य माँगा। इस समय मर्दनसिंह का देहांत हो गया था और उनके पुत्र अर्जुनसिंह राजा हुए थे। अर्जुनसिंह ने अपने

राज्य के दो भाग कर दिए। उसमें से एक भाग सेंधिया को दिया गया। सेंधिया को गढ़ाकोटा, मालथोन और उनके आस-पास का इलाका मिला। शाहगढ़ और उसके आस-पास का इलाका अर्जुनसिंह के पास रहा। देवरी, नाहरमऊ और गौरझामर—गढ़ाकोटा के साथ—सेंधिया के पास गए।

१२७—सागर के सूबेदारों को सेंधिया का यह कार्य बहुत बुरा लगा। गढ़ाकोटा और शाहगढ़ पहले सागरवालों के अधीन थे। अब इनका सागर से कोई संबंध न रहा और ये सब सेंधिया के अधिकार में आ गए। सागर में मराठों की ओर से सब कार्य दिनकरराव अन्ना करते थे। देवरी मे सेंधिया और दिनकरराव अन्ना मिले। यहाँ पर सेंधिया ने दिनकरराव को कैद कर लिया। फिर सेंधिया ने सागर को लूटा। परंतु दिनकरराव ने फिर सेंधिया से सुलह कर ली। दिनकरराव को राज-कार्य में विनायकराव चांदोरकर बहुत सहायता देते थे। कुछ दिनों के पश्चात् दिनकरराव अन्ना जालौन चले गए और सागर का सब प्रबंध विनायकराव चांदोरकर के अधिकार में रहा।

१२८—पहले यह ठहराव हो चुका था कि नाना साहब का पुत्र आबा साहब की विधवा की गोद मे दिया जायगा। परंतु नाना साहब का पहला पुत्र अल्पायुषी होकर मर गया और दूसरा पुत्र आबा साहब की विधवा की गोद में न दिया गया क्योंकि नाना साहब ने उसे गोद में देना ठीक न समझा। इसलिये सागरवाले जालौनवालों से नाराज हो गए। सागर और जालौन से कोई संबंध न रहा। आबा साहब की विधवा का नाम रुक्माबाई था और विनायकराव चांदोरकर रुक्माबाई की ओर से सूबेदार थे। इस समय सागर में पिंडारे लोगों ने धूम मचाई पर विनायकराव ने उन्हें दबा दिया।

---

(८) विविध विषय

(१) नागर ब्राह्मण और बंगाल के कायस्थ

मार्च और अप्रैल १९३२ के इंडियन ऐंटिक्वेरी में अध्यापक भांडारकर का एक सुंदर लेख उपर्युक्त शीर्षक का है। आपने बहुत से ताम्र और शिलालेखों के आधार पर यह बताया है कि बंगाल के कायस्थों की आधुनिक पदवियाँ—जैसे चंद्र, दत्त, दास, देव, घोष, मित्र, नंदिन, बर्मन इत्यादि—सन् ४४२ ई० के लगभग भी प्रचलित थीं। तब तक कायस्थ जाति बनी नहीं थी पर कुछ राजकर्मचारी उस समय कायस्थ कहाते थे जैसे प्रथम कायस्थ, ज्येष्ठ कायस्थ इत्यादि। कायस्थ जाति नवीं शताब्दि के लगभग बनी मालूम पड़ती है। यही पदवियाँ ७०० वर्ष पूर्व नागर ब्राह्मणों में आमुष्यायन के रूप में थीं। इनके इस प्रकार नागरों में प्रचलित होने का पता ई० सन् की छठीं शताब्दि तक मिलता है। शिलालेखों के अध्ययन से यह पाया गया है कि कायस्थों की आधुनिक पदवियाँ एक समय बंगाल के निदान कुछ ब्राह्मण धारण करते थे। ई० सन् ५०० के लगभग ऐसे ब्राह्मण बंगाल के अंतिम पूर्व भाग में बसे हुए पाए जाते हैं। इससे यह प्रश्न उठता है कि क्या ये बंगाल के ब्राह्मण भी नागर ब्राह्मण थे। नागर ब्राह्मणों के कुलदेवता हाटकेश्वर हैं। जिला सिलहट के पंचखंड ग्राम में हाटकेश्वर महादेव अब भी हैं और यह मंदिर सन् ८३० ई० के पूर्व से चला आता है। सन् ८३०—८६५ ई० के बीच में इसका जीर्णोद्धार हुआ था। पुराने काल के एक ईशान नागर व्यक्ति का भी उल्लेख मिलता है। वात्स्यायन के कामसूत्र में भी बंगाल के नागर ब्राह्मणों का जिक्र है। इस प्रकार बहुत प्रमाणों

से यह सिद्ध किया गया है कि छठी शताब्दि में नागर ब्राह्मण बंगाल और उड़ीसा में बस गए थे और आधुनिक बंगाली कायस्थ उन्हीं के वंशज हैं।

नागर ब्राह्मण आदि में नगरकोट (काँगड़ा-पंजाब) से आए थे। यह स्थान सवा लाख या सपादलक्ष पहाड़ों में है। इसलिये इन्हें कहीं कहीं सपादलक्ष ब्राह्मण भी कहा है। इनके बसने के कारण आनंदपुर का नाम बड़नगर हो गया।

याज्ञवल्क्य स्मृति (१—३३६) और विष्णुस्मृति (७—३) में कायस्थ शब्द अधिकारी या मुलाजिम के अर्थ में आया है*। याज्ञवल्क्य स्मृति का समय चौथी शताब्दि का है। प्रायः ब्राह्मण ही इन कायस्थ पदों पर नियुक्त होते थे।

नागर केवल ब्राह्मण ही नहीं होते। नागर बनिए भी होते हैं और सभी नागर ब्राह्मण बड़नगर के नहीं होते। प्रश्नौरे नागर ब्राह्मण अपने को अहिच्छत्रज्ञातीय बताते हैं। बुलंदशहर के गुर्जरों मे और स्यालकोट के जाटों मे भी नागर होते हैं। काठियावाड़ में नगैर राजपूत होते हैं। नागर जाति मुगल सेना में भी भरती होती थी। इस प्रकार एक नागर समाज था जिसमें से कई जातियाँ निकली हैं। उसका असल स्थान नगरकोट (काँगड़ा) में था और उसके पूर्व, मानसरोवर के निकट हाटक प्रदेश था। हाटक शब्द का अर्थ सोना है। इस प्रदेश के निकट ही टोक-जालंग (Tok-Jalang) स्थान है जहाँ सोना निकलता है। यहाँ से चलकर इन लोगों की एक शाखा दक्षिण में नगरकोट में आई और एक पश्चिम की ओर काश्मीर में गई। दक्षिणवाली शाखा के मित्र और दत्त लोग ई० पू० २०० से २०० ई० स० में पंचाल,

---

* प्रथम शताब्दि ई० सन् के कथा-सरित्सागर (७—८) में भी "संधिविग्रह अधिकारी कायस्थ" आया है।—लेखक।

कोशल, मथुरा में फैले। इनके पीछे नाग, गुप्त, वर्मन लोग उत्तरीय भारत के कई भागों में फैले। फिर वर्धन, पाल, सेन आए जो पूर्व बंगाल तक पहुँचे। फिर मैत्रक (पुरानी पदवी मित्र) गुजरात और काठियावाड़ में पहुँचे। कुर्ग तक नागरों के फैलने का पता चलता है। नागर लोग इस देश के निवासी प्रजा हैं न कि विदेशी बर्बर लोगों की संतान जैसा कि पूर्व में समझा जाता था।

(२) चंद्रगुप्त द्वितीय और उसका पूर्वाधिकारी*

इतिहासज्ञों का अभी तक यह मत है कि समुद्रगुप्त के पश्चात् उसका छोटा पुत्र चंद्रगुप्त विक्रमादित्य ही गद्दी पर बैठा। पर बाण के हर्ष-चरित से यह वाक्य मिलता है—

अरिपुरे च परकलत्रकामुकं कामिनीवेशगुप्तश्चंद्रगुप्तः शकपतिं असादयत्। अर्थात् शत्रु के नगर में दूसरे की स्त्री की कामना करने-वाले शकपति को स्त्री के वेश में छिपे हुए चंद्रगुप्त ने मार डाला।

इसके सिवा राजशेखर अपनी काव्य-मीमांसा में कथोत्थमुक्तक के उदाहरण में यह श्लोक देता है—

दत्वा रुद्धगतिः खसाधिपतये देवीं ध्रुवस्वामिनीं।
यस्मात् खंडितसाहसो निववृते श्रीशर्मगुप्तो-नृपः॥
तस्मिन्नेव हिमालये गुरुगुहाकोणक्वणत्किन्नरे।
गीयंते तव कार्त्तिकेयनगरस्त्रीणां गणैः कीर्तयः॥

अर्थात् जिस हिमालय से श्रीशर्मगुप्तनृप शत्रु खसाधिपति से घिरकर अपनी रानी ध्रुवदेवी को उसे दे, हतसाहस हो, लौट आया उसी हिमालय में × × × स्त्रीगण आपकी कीर्ति गाती हैं।

राजा भोज के शृंगारप्रकाश में "देवीचंद्रगुप्तम्" नाम के एक लुप्त नाटक से अवतरण दिए हैं। उसमें भी यह वाक्य पाया जाता है—

---

* J. B. O. R. S. में श्रीयुत के० पी० जायसवाल के लेख के आधार पर।

स्त्रीवेषनिह्नुतः चंद्रगुप्तः शत्रोः स्कंधावारं अलिपुरं शकपतिवधायागमत्। अर्थात् स्त्री-वेष में छिपा चंद्रगुप्त शत्रु के स्कंधावार अलिपुर में शकपति के मारने को गया। टीकाकार शंकर ऊपर उद्धृत बाण के लेख पर अपनी टीका में लिखता है कि शकपति ने चंद्रगुप्त के भाई की स्त्री ध्रुवदेवी को माँगा। चंद्रगुप्त ने ध्रुवदेवी का रूप धारणकर तथा और लोगों को स्त्री-वेष में अपने साथ ले जाकर एकांत में शकाधिपति को मार डाला।

इन वाक्यों पर प्रोफेसर आल्टेकर (काशी-विश्वविद्यालय) की खोज से हाल में विशेष प्रकाश पड़ा है। श्रीयुत के० पी० जायसवाल का कहना है कि ऊपर लिखे राजशेखर के उदाहरण में "खसाधिपतये" की जगह "सखाधिपतये" और "श्रीशर्मगुप्त" की जगह "श्रीरामगुप्त" होना चाहिए और नकल करनेवालों के प्रमाद से यह भूल हो गई है। शक से प्राकृत में "सख" और उसका उलटा "खस" हो गया और रामगुप्त को लेखकों ने शमगुप्त और मात्रा पूरी करने के लिये शर्मगुप्त लिख दिया*। इस रामगुप्त के चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के पूर्वाधिकारी होने के विषय में अब कई दिशाओं से समर्थन मिलता है; जैसे—

(१) बाण (लगभग ६२० ई० सन्)
(२) अमोघवर्ष (सन् ८७३ ई०)
(३) राजशेखर (लगभग ९०० ई० सन्)
(४) भोज (१०१८ से ६० ई० सन्)
(५) अबुल-हसन-अली (सन् १०२६ ई०)

---

* पुराणों के अनुसार एक छोटी खस जाति मगध के निकट हिमालय में रहती थी। परंतु श्रीमान् जायसवाल का अर्थ मूल बड़ी खस जाति से है और उनकी कल्पना में कदाचित् उसका केंद्र तुर्किस्तान के काशगर के आस-पास रहा है।

(६) टीकाकार शंकर (१७१३ ई०)

ऐसा जान पड़ता है कि टीकाकार शंकर के समक्ष "देवीचंद्रगुप्तम्" नाटक उपस्थित था। इस नाटक का लेखक विशाखदत्त था जिसने मुद्राराक्षस भी लिखा है।

अमोघवर्ष के संजन ताम्रपत्र में लिखा है कि गुप्त राजा ने अपने भाई का राज्य और स्त्री दोनों को लिया। यह गुप्त राजा चंद्रगुप्त द्वितीय के सिवाय और कोई नहीं हो सकता। राजशेखर ने किसी स्वतंत्र प्रसिद्ध आधार पर लिखा है।

अबुल-हसन-अली ने किसी हिंदू ग्रंथ के अरबी भाषांतर का ही फारसी भाषांतर दिया है। यह मूल अरबी ग्रंथ ८०० सन् ई० के लगभग का होगा जब अरबवालों ने सिंध को जीता था। उसने इस कथा का नाम "रव्वाल और बर्कमारिस का इतिहास" रखा है। बर्कमारिस "विक्रमादित्य" का अपभ्रंश है। फारसी की लिपि में जबर जेर न लिखने से और "दाल" वा "रे" अक्षर, "ते" वा "से" अक्षरों के आपस में समान होने से, ऐसा अपभ्रंश पढ़ा जाना सरल बात है। रव्वाल किसी प्रकार राम के प्राकृत नाम से बना हुआ है। इस अरबी लेखक ने इस कथा को इस प्रकार लिखा है।

रासल कफंद (Kadphises) का नाती और अयंद (Wema) का बेटा राज्य-च्युत हो गया था। उसके लड़के या वंशज ने रव्वाल को राजा बनाया। रव्वाल अपने भाई और सरदारों सहित हिमालय के एक सुदृढ़ दुर्ग में जा छिपा पर शत्रु ने वहाँ जा घेरा डाल दिया। रव्वाल ने और कोई उपाय न देख संधि का प्रयत्न किया। शत्रु ने रव्वाल की नई रानी अपने लिये और सब सरदारों की एक एक लड़की अपने सरदारों के लिये माँगी। राजा बड़ा दुखी हुआ, पर और कोई उपाय न देख अपने अंधे मंत्री सफर की सलाह मान, अपनी रानी दे देने पर उद्यत हुआ। पर ठीक उसी अवसर पर

बर्कमारिस वहाँ पहुँचा और नम्रतापूर्वक बोला कि यदि मुझे कुछ हाल बताया जावे तो कदाचित् कुछ सलाह मैं भी दे सकूँ। मेरे अल्प वय का विचार न कीजिए। सब हाल सुन लेने पर उसने कहा, "राजा के प्राण बचाने को मुझे अपने प्राण की आहुति कर देनी चाहिए। मुझे स्त्री-वेष पहना दिया जावे और सब सरदार अपने अपने लड़कों को स्त्री-वेष पहना देवें और मेरे साथ शत्रु के पास भेज देवें। प्रत्येक को एक एक छुरा और एक एक तुरही छिपाकर अपने साथ ले जानी चाहिए। शत्रु राजा से मैं कहूँगा कि मैं रानी हूँ। राजा मुझे अपने पास रखेगा और स्त्री-वेषवाले लड़कों को अपने अपने सरदारों के पास भेजेगा। हम लोग एकांत में उन लोगों से भेंट होने पर उन लोगों का पेट चीर डालेंगे और तुरही बजावेंगे। तब आप लोग शत्रु पर धावा डाल उन्हें मार डालेंगे। निदान ऐसा ही हुआ और रव्वाल की शक्ति बढ़ी।

एक लेख मे शिखरस्वामिन् चंद्रगुप्त द्वितीय का मंत्री और कुमार अमात्य पाया जाता है। अबुल-हसन-अली का लिखना है कि बर्कमारिस ने सफर को क्षमा कर दिया और अपना मंत्री पद न त्यागने दिया। सफर ने एक ग्रंथ राजनीति पर लिखा और ऐसा मालूम पड़ता है कि उसने अंत में चिता में प्रवेश कर प्राण दिए। वह ग्रंथ कदाचित् 'कामंदकीय नीति' था।

ऐसा जान पड़ता है कि बाण का लेख तत्कालीन ऐतिहासिक सामग्री वा जनश्रुति के आधार पर रहा होगा। समुद्रगुप्त ने तो चंद्रगुप्त को अपना उत्तराधिकारी नियत किया था। पर मंत्रियों की प्रेरणा से बड़ा बेटा रामगुप्त गद्दी पर बैठा, ऐसा मालूम होता है। पर रामगुप्त बलहीन, निस्तेज और अपराक्रमी राजा था, जैसा कि विशाखदत्त और राजशेखर ने लिखा है। रामगुप्त का अंत किस प्रकार हुआ, यह अभी निश्चित रूप से नहीं जाना गया है। पर चंद्रगुप्त भ्रातृभक्त था और

पिता की आज्ञा होने पर भी उसने स्वार्थ त्यागकर अपने भाई को राजा होने दिया और उसकी सेवा करता रहा। उसे एक लेख में राजर्षि लिखा है, इसी लिये अभी ऐसा नहीं माना जा सकता कि चंद्रगुप्त ने उसका अंत किया। पर रामगुप्त की अकाल-मृत्यु हुई, ऐसा मालूम होता है।

ध्रुवदेवी रामगुप्त की रानी थी परंतु रामगुप्त के उसे शकाधिपति को दे देने के लिये उद्यत होने के कारण वह उससे बहुत क्रुद्ध और ग्लानियुक्त हो गई होगी। विशाखदत्त लिखता है कि वह लज्जा, रोष, दुःख, वैराग्य और भय से दुखी थी। अमोघवर्ष लिखता है कि चंद्रगुप्त ने रामगुप्त को मारकर उसके राज्य और रानी दोनों को लिया। पर वह सुनी बात लिखता है। चंद्रगुप्त के परम वैष्णव भ्रातृभक्त राजर्षि होने के कारण इस बात को मानने के लिये और प्रमाण होना चाहिए पर यह निश्चय है कि ध्रुवदेवी का पुनर्लग्न चंद्रगुप्त के साथ हुआ।

श्रीयुत के० पी० जायसवाल इस दुर्घटना का समय ३७५-८० ई० सन् अनुमान करते हैं। उसका स्थान उनके मतानुसार जालंधर जिले के अलीवाल के निकट होना चाहिए।

मिहरौली दिल्ली से दक्षिण की ओर ९ मील पर है। कुतुबमिहरौली में जो लोहस्तंभ खड़ा है वह असल में पहाड़ों में विष्णुपाद में था। इससे अनुमान होता है कि वह हरद्वार के निकट या उससे उत्तर में कहीं रहा होगा। वह स्थान अनंगपाल के राज्य के भीतर रहा होगा क्योंकि वही उसे दिल्ली में स्थापित करनेवाला था। इससे भी हरद्वार के पहाड़ों का बोध होता है। इस स्तंभ को चंद्रगुप्त द्वितीय ने स्थापित किया था पर उस पर का लेख उसके उत्तराधिकारी ने लिखा था। इसमें जिस चंद्र का वर्णन है वह यही चंद्रगुप्त है। मुद्राराक्षस भी विशाखदत्त का है। उसका अंतिम श्लोक यह है—

वाराहीमात्मयोनेस्तनुमवनविधावास्थितस्यानुरूपां
यस्य प्राग्दन्तकोटिं प्रलयपरिगता शिश्रिये भूतधात्री ।
म्लेच्छैरुद्विज्यमाना भुजयुगमधुना संश्रिता राजमूर्तेः
स श्रीमद्बन्धुभृत्यश्चिरमवतु महीं पार्थिवश्चंद्रगुप्तः ॥

अवनविधौ की जगह अतनुबलो और सश्रिता की जगह पीवर पाठांतर है। इस श्लोक के संस्कृत और हिंदी टीकाकारों को उसका गुप्त अर्थ न मालूम रहने के कारण उन्होंने टीका में भूल की है। इस श्लोक में श्लेष है। एक अर्थ चंद्रगुप्त के इतिहास से और दूसरा विष्णु के वाराह अवतार से संबंध रखता है। प्रथम अर्थ इस प्रकार होगा—

पार्थिव चंद्रगुप्त जो अपने भाई का भक्त था, पृथ्वी का राज्य दीर्घ काल तक करे; जिस राजमूर्ति की दोनों भुजाओं पर इस समय म्लेच्छों से उद्वेग को प्राप्त हुई (ध्रुवदेवी अथवा पृथ्वी) संश्रित (स्थित) है और जिस पुरुष राजा ने वाराही (शक्ति) का अनुरूप (आवश्यक और योग्य) शरीर-रक्षा के लिये धारण किया था और जिसने अपनी दंतकोटि (कटार) से डूबती भूतधात्री (पृथ्वी या रानी ध्रुवदेवी) की रक्षा की।

(३) मोहेंजोदरो लिपि

पाठकों को विदित है कि सिंधु नदी की तरैटी में मोहेंजोदरो और हरप्पा में पाँच हजार वर्ष की पुरानी एक सभ्यता का आविष्कार हुआ है। उसमें बहुत सी, हस्ताक्षर करने की, मिट्टी की मुहरें भी मिली हैं पर उनके अक्षर पढ़े नहीं जाते, न उनकी भाषा का कुछ ज्ञान हो सकता है। इसलिये निश्चयपूर्वक अभी यह नहीं कहा जा सकता कि यह सभ्यता आर्य है या अनार्य। विशेष लक्षण उसके अनार्य होने के दीख पड़ते हैं। अभी यह सभ्यता आर्यों के पूर्व की जान

पड़ती है। हिंदू-विश्वविद्यालय के अध्यापक डाक्टर प्राणनाथ, डी० एस्-सी०, पी-एच० डी० कुछ दिन हुआ छुट्टी पर विलायत गए थे। वहाँ आपने इन लेखों को पढ़ने का सराहनीय कठिन प्रयत्न किया है। इस विषय के आपके लेख कई पत्रिकाओं में छपे हैं। आपके पाठ के विषय में जब और विद्वानों की भी सम्मति होगी तभी निश्चयपूर्वक कहा जा सकेगा कि आप का पाठ ठीक है। पर पाठकगण जानना चाहेंगे कि उन मुहरों में क्या लिखा है; इसलिये हम उस लेख का कुछ सार यहाँ देते हैं।

आप ब्राह्मी और सिंधु लिपि में बहुत कुछ समानता पाते हैं। आपके अनुसार ब्राह्मी लिपि का एशिया माइनर या फिनीशियन लोगों से कोई संबंध नहीं है। ब्राह्मी के कोई कोई अक्षर अभी से ६००० वर्ष पूर्व की लिपि से बहुत कुछ समानता रखते हैं। पारस खाड़ी के वायव्य में नीचे की टाइग्रिस के उत्तर में इलाम (Elymais and Susiana) देश था और दक्षिण में सुमेर (Sumer = Babylonia) देश था। क्रीट (Crete) टापू में भी ५००० वर्ष पूर्व एक बड़ी भारी सभ्यता थी। डाक्टर साहब के मतानुसार ब्राह्मी के कोई कोई अक्षर पुरानी इलाम लिपि से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं और सिंधु तरैटी के कुछ अक्षर भी पुरानी इलाम लिपि से निकले हैं। क्रीट के अक्षरों की उत्पत्ति भी इसी इलाम लिपि से है। डाक्टर साहब ने इस प्रकार सिंधु मुहरों को पढ़ा तो कुछ नाम ऐसे निकले जो सुमेर (बेबिलन) देश की धर्म कथाओं के प्रसिद्ध देवता थे और कुछ पौराणिक और तांत्रिक देवता थे। सिधु लेखों को पढ़ने के लिये आपको कुछ पुराने इलाम और क्रीट लेख भी पढ़ने पड़े और उनका परिणाम बड़ा आश्चर्यजनक निकला। उदाहरणार्थ कुछ पुराने इलाम लेख इस प्रकार पढ़े गए—

भू विष्णु शेपम् ईश

भू-भुआ: स्व: वर्लम्

भू-भुव-वर्रम्

भू-वर्रहं म् (ब्रह्म ?)

निनीश-निनिनिनीश-नितीश निनिनिनि

कुछ क्रोट के पुराने लेख

गुरु-गैारी

सिरी

श्री

विष्णु

सोम ईष ईशाण

शशि

निन नैन

लीलेश

शिन शनि सिनी (शिन वैदिक देवता है जैसे शिनाय स्वाहा यजु० अ० ८)

सिंधु मुहरों के लेखों को पढ़ने का फल

नंबर	सिंधु मुहर का लेख-पाठ	किस देवता का नाम जान पड़ता है	सुमेर धर्म में देवता का नाम	हिंदू-साहित्य में कौन नाम मिलता है	किस जगह
१२३	गु-निन-सिन	निन-सिन	निन-सिन	निसनि	
२२६	सिनी-ईसर	सिनी	सिन	सिनीवाली	अथर्ववेद में
३	ईसल-नगेस	नगेस		नगेश	
८०	सिस्नह-सुरेसर	सिस्न		शिश्न	ऋग्वेद में शिश्नदेवाः
४६५	गु-निन-ईसर	निना	निना	नैना	
२१७	गु-ससी	ससी		शशि	
२४३ } २४६ }	सिन्ना	सिन्ना	सिन	शिन	"शिनाय स्वाहा" यजु० अ० ८
२०१	गु-सिवः	शिव		शिव	
४११	ई-ना	ईना	ई	ईना	
२०२	मगही	मग	ग	माघी	
३८३	रिसी	रिसी		ऋषि	
७८	गु-इसर-इला-ईसर	इला	एल	इल, इला	

गु उपसर्ग का प्रयोग आदरार्थ जान पड़ता है; जैसे श्री का संस्कृत में।

इस प्रकार कोई ८० लेख पढ़े गए हैं। पाठकों को विदित है कि एशिया माइनर के बोगोज के किसी ग्राम में सन् ईस्वी पूर्व १००० के शिलालेख में मित्र, वरुण और अश्विन् का नाम आया है। पर इलाम में गायत्री का अंश मिले और क्रीट में सन् ई० से ३००० वर्ष पूर्व आर्य देवताओं के नाम मिलें, यह और भी आश्चर्य की बात होगी। उससे आर्य-जाति के इतिहास में बहुत बड़ा परिवर्तन होगा।

मनुस्मृति में कुछ "पुराण" सिक्कों का वर्णन है। मनुस्मृति का समय लगभग २०० सन् ई० पूर्व का है। मगध के राजाओं ने अपने नाम की मुद्रा चलाई थी। उस काल के पूर्व मुद्राओं पर कुछ चिह्न भिन्न भिन्न ठप्पों द्वारा अलग अलग बना दिए जाते थे। इनको पुराण या धरण और Punch-marked मुद्रा कहते हैं। ये बहुतायत से पाए गए हैं। इनमें मुद्रित संकेतों का अर्थ अभी तक पूरा पूरा नहीं समझा गया था।

इन शोधक का मत है कि ये सिक्के भिन्न भिन्न काल के हैं और इनमें से कोई कोई बहुत पुराने हैं जिनमें कोई इलाम लिपि में और कोई सिंधु लिपि में हैं।

आपने इनमें की कुछ मुद्राओं को इस प्रकार पढ़ा है—

निराम-रघु-दुशुलुद

ध्रण ॥ ह्लि (रि १)

ॐ रुद्रलु

नी श्रीराम जानिकी

विदुलु

इसमें संदेह नहीं कि जब सारे पुराण या Punch-marked मुद्राओं को अच्छी तरह पढ़ा जायगा तब भारत के इतिहास पर बहुत अधिक प्रकाश पड़ेगा।

(४) ४००० वर्ष का पुराना शिलालेख,

बिहार और उड़ीसा प्रांत में संबलपुर जिला है। इस संबलपुर नगर से ३०-३५ मील की दूरी पर, विक्रमखोल ग्राम के निकट जंगल में, पंडित लोचनप्रसाद पांडेय जी ने एक पुराना शिलालेख ढूँढ़ निकाला है। यह लेख ३२ फुट लंबा और ७ फुट चौड़ा है।

लोग इसे ब्राह्मी अक्षरों का समझते थे। परंतु श्रीमान् के० पी० जायसवाल का मत है कि यह लेख मोहेंजोदरो की लिपि और ब्राह्मी लिपि के बीच का है। पुरातत्त्ववेत्ताओं का मत था कि ब्राह्मी लिपि फीनिशियन लोगों की लिपि से निकली है। इस शिलालेख से सिद्ध हो जायगा कि यह मत सही नहीं है। श्री जायसवालजी ने इस लेख का अवलोकन किया है और उसका पूर्ण विवरण वे अपनी त्रैमासिक पत्रिका में छापेंगे। उनके मत में यह लेख २००० वर्ष ई० पू० से कम पुराना नहीं हो सकता।

(लीडर से)

(५) यौन या भौन

जून १९३२ के बिहार उड़ीसा रिसर्च सोसायटी के जरनल में श्रीमान् के० पी० जायसवाल सिद्ध करते हैं कि पुराणों के यौनाः (कहीं भौनाः) से कुशान उपाधि जौव (Jauva) का अर्थ है।

पंजाब के खुर (Khura) ग्राम में एक शिलालेख मिला था जो अब लाहौर म्यूजियम में रखा हुआ है। इसकी लिपि चौथी शताब्दी के अंत की है, इससे पीछे की नहीं। इसमें राजा का नाम इस प्रकार लिखा है—

(प्रथम पंक्ति) • राजा [ति] राज-महाराज-तोरमाण-शाहीजौ
(दसवीं पंक्ति) महाराज-तोरमाण-शाह-जौवनः

यह तोरमाण एरन शिलालेख के हूण तोरमाण से भिन्न है। राजातिराज और शाही ये उपाधियाँ कुशान राजाओं की कुल-उपाधियाँ हैं। "जौव" भी कुशान उपाधि है और कप (Kapa) शिलालेख और सिक्कों में पाई जाती है। हूण उपाधि-प्रणाली बिलकुल भिन्न है।

अलबेरूनी लिखता है कि इस कुल को काबुल के शाही कहते थे और यह विदेशी था। इसका अंतिम राजा लग (या लक) तूरमाण था। इसी कुल में वह कनिक का उल्लेख करता है— "इस कुल का एक राजा कनिक था जिसने पुरुपावर (पेशावर) का विहार बनवाया था।" वास्तव में यह विहार कनिष्क का बनवाया हुआ था। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि कनिष्कवंश को काबुल के शाही राजा कहते थे। ये विदेशी थे। अफगानिस्तान इनका मूल केंद्र सदैव रहा है। इनका अंतिम राजा तोरमाण था और सबसे अधिक प्रसिद्ध राजा कनिष्क 'कनिष्कचैत्य' (जो हाल में खोदा गया है) का बनानेवाला था। चौथी शताब्दी में कुशान बेक्ट्रिया, काबुल और पंजाब में राज्य करते थे। देवीचंद्रगुप्त में लिखा शक राजा यही तोरमाण या उसका उत्तराधिकारी रहा होगा। तोरमाण का आचरण बहुत मंद था। खुर शिलालेख कुशानों के अंतिम राज्य का चिह्न है।

(६) गिलगिट में प्राप्त बौद्ध ग्रंथ

नागरीप्रचारिणी पत्रिका भाग १२ अंक ४ पृ० १९९ में गिलगिट प्रांत में पुराने बौद्ध ग्रंथों के आविष्कार की सूचना दी गई थी। अक्टूबर १९३१ ई० में कलकत्ता-विश्वविद्यालय ने प्रशंसनीय उद्योग के साथ काश्मीर-दरबार से प्रार्थना की कि इन ग्रंथों के अवलोकन करने के लिये उसे अवसर दिया जाय। दरबार की आज्ञा मिलने पर विश्व-विद्यालय के अध्यापक और बौद्धधर्म के मर्मज्ञ डाक्टर

नलिनाच दत्त एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट०, श्रीनगर उसे अव-लोकनार्थ भेजे गए। दुर्भाग्य से आपको केवल ५ ग्रंथ देखने को मिले। बाकी ग्रंथ गिलगिट से आए नहीं थे और उस समय बर्फ के कारण वहाँ जाना संभव नहीं था।

ग्रंथ प्रायः बुरी दशा में हैं। दो अपूर्ण भी हैं। ये पाँचवीं छठी शताब्दी की गुप्त लिपि में भोजपत्र पर लिखे हैं। लेखन-शैली यशोधर्मन के शिलालेख के समान है। प्रथम ग्रंथ का नाम है अजितसेन-व्याकरण-निर्देश-नाम-महायान-सूत्र। इसमें ४१ पत्र हैं। इसे आर्य स्थिरबुद्धि ने धर्मभाणक नरेंद्रदत्त की सहायता से लिखा था। इस ग्रंथ से उस समय की भाषा का, बौद्ध-साहित्य के व्याकरण-अंग का, तत्कालीन बौद्ध धर्म का और अर्हत नंदिमित्र का ज्ञान होता है। इसमें बौद्ध भिक्षुओं को दान देने का बहुत बड़ा माहात्म्य, और न देने का बहुत बड़ा पाप, बताया है। इस ग्रंथ से प्रकट होता है कि व्याकरण-सूत्रों से बौद्ध भक्तों के भविष्य में बुद्ध पद प्राप्त होने का हाल ज्ञात होता था। इस ग्रंथ में लिखा है कि भगवान् बुद्ध का नाम लेने से ही या सुन लेने से ही स्वर्ग और बोधिसत्त्व पद मिल जायगा।

इस ग्रंथ से जान पड़ता है कि जब भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में थे तब उन्होंने महाश्रावक नंदिमित्र को आदेश दिया था कि तुम पूर्व की ओर जाकर मगध-देशवासी सिंहपुर के राजा अजितसेन और उसके पुत्र को धर्म का उपदेश करो। नंदिमित्र ने ऐसा ही किया। उस उपदेश के पाते ही लड़का अर्हत पद को प्राप्त हो गया।

(७) प्राप्ति स्वीकार

Annual Bibbiography of Indian Archœology, 1930.

हमारे पास समालोचनार्थ और परिवर्तन में आई है। इसके अवैतनिक संपादकों में भारतवर्ष के प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता हैं। प्रारंभ

में पाँच लेख हैं। (१) नागार्जुन कोंडा की खुदाई का विवरण, (२) निजाम राज्य में पुरानी इमारतों का संरक्षण, (३) पुडुकोटा राज्य के कुछ पुराने चित्र, इत्यादि। इसके सिवा भारतवर्ष के पुरातत्त्व के विषय में जहाँ कहीं जो कुछ लिखा गया है उसकी विवरणयुक्त, संपूर्ण, सूची दी हुई है। इस कारण यह पुस्तक बड़े उपयोग की है। इसमें ६ प्लेट भी हैं। इसके पढ़ने से एक दृष्टि में इस विषय की सारी उन्नति दीख पड़ती है।

पंड्या बैजनाथ

(८) द्विवेदी-अभिनंदन ग्रंथ

(श्रीमानों तथा साहित्यिकों से प्रार्थना)

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने आधुनिक हिंदी-साहित्य के लिये जो कुछ किया है, वह लोक-विश्रुत है। वे एक व्यक्ति नहीं, एक संस्था हैं। उनके द्वारा आधुनिक हिंदी की गद्य-पद्य शैली का यथोचित निर्माण एवं निर्धारण हुआ है। हिंदी के इस शैली-निर्माण पर द्विवेदीजी महाराज की अमिट छाप है।

आगामी वैशाख शुक्ल ४ को वे सत्तरवें वर्ष में पदार्पण करेंगे। हिंदी-संसार का यह कर्तव्य है कि उस अवसर पर ऐसे सम्माननीय आचार्य का समुचित समादर करे। अतएव काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने निश्चय किया है कि उस समय एक विराट् उत्सव एवं समारोह करके उन्हें एक अभिनंदन-ग्रंथ अर्पित किया जाय। यह ग्रंथ कला एवं साहित्य का अद्वितीय निदर्शन होगा। इसमें भारत के श्रेष्ठ चित्रकारों के उत्तमोत्तम चित्र रहेंगे; एव इसके साहित्यिक अंश में हिंदी के सभी प्रमुख तथा यशस्वी साहित्यिकों की रचनाएँ तो रहेंगी ही—देश तथा विदेश की अन्यान्य भाषाओं के प्रमुख विद्वानों के लेखादि प्राप्त करने का प्रबंध भी किया जा रहा है कि यह सुयोग

भारत तथा संसार की उन्नत भाषाओं का हिंदी के साथ साहित्यिक संबंध-स्थापना का निमित्त बन जाय। यह सर्वांग-सुंदर ग्रंथ लगभग ६१० पृष्ठ का होगा। इसके चित्रों की संख्या पचास के ऊपर होगी, जिनमें अधिकांश रंगीन होंगे।

सभा की हार्दिक कामना है कि उसकी इस योजना में अभूतपूर्व सफलता हो; किंतु यह सफलता देश के श्रीमानों की कृपा-दृष्टि पर ही अवलंबित है; क्योंकि इसके लिये ५०००) के व्यय का अनुमान किया गया है, पर सभा में यह व्यय-भार उठाने का सामर्थ्य नहीं है, अतः गुणज्ञ तथा विद्या-प्रेमी श्रीमानों से प्रार्थना है कि इस कार्य के लिये यथोचित सहायता प्रदान करके इस योजना को सुसंपन्न कराने के यशोभागी हों। सभा आशा करती है कि देश के उदार दाता इस आयोजन की सिद्धि में अग्रसर होकर सभा को चिर-आभारी करेंगे।

अभिनंदन ग्रंथ को सर्वांगपूर्ण बनाने के लिये साहित्यिकों का पूर्ण सहयोग भी वांछित है। हम उनसे साग्रह अनुरोध करते हैं कि वे यह सहयोग प्रदान करके सभा को कृतज्ञ करें। हमें पूर्ण आशा है कि आचार्य के प्रति श्रद्धा-भक्ति-भावना से प्रेरित होकर हिंदी के सभी कोविद तथा साहित्यिक अपनी उत्कृष्ट रचना हमारे पास भेजने की कृपा करेंगे। इस संबंध में उनसे निवेदन है कि—

१—उनकी रचना उनके इच्छानुसार गद्य या पद्य के किसी भी अंग में हो।

२—वह उनकी रुचि के अनुकूल किसी भी विषय की हो। सभा चाहती है कि ग्रंथ विभिन्न विषयों से पूर्ण करके आचार्य द्विवेदीजी को समर्पित किया जाय। हाँ, इन विषयों का संबंध वर्तमान धार्मिक, सामाजिक अथवा राजनीतिक प्रश्न से न हो।

३—रचना यथासंभव बड़ी न हो।

अभिनंदन-ग्रंथ को सभा जिस रंग-ढंग से निकालना चाहती है, उसके लिये यह आवश्यक है कि वह अविलंब प्रेस में दे दिया जाय। इस बात पर ध्यान देते हुए लेखक-समुदाय शीघ्र ही अपनी कृति हमारे पास भेजने का अनुग्रह करे।

कृष्णदास
प्रधान मंत्री,
नागरी-प्रचारिणी सभा,
काशी

---

(६) संगीत-शास्त्र की बाईस श्रुतियाँ*

[लेखक—श्री मंगेश राव रामकृष्ण तैलंग, बंबई]

कुछ समय से भारतीय संगीत-शास्त्र की चर्चा भारतवर्ष में अधिक चल रही है। इस विषय में बहुत उत्साह प्रकट हुआ है, बहुत वाद-विवाद प्रदर्शित हुआ है, बहुत अन्वेषण-कार्य का अनुष्ठान हुआ है और अँगरेजी, मराठी, गुजराती, हिंदी तथा संस्कृत तक में अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं।

इनमें से कुछ पुस्तकों में प्राचीन भारतीय संगीत की २२ श्रुतियों को आधुनिक काल के सप्तक (Octave) से मिलाने का प्रयत्न किया गया है, परंतु किसी पुस्तक में भी निम्न-लिखित जटिल समस्याओं पर संतोषप्रद प्रकाश नहीं डाला गया है—

(१) भरत मुनि-कृत शुद्ध ठाट (Natural scale) क्या था?

(२) एक सप्तक के लिये केवल २२ श्रुतियाँ ही क्यों नियत की गई हैं?

(३) ऋषभ तथा धैवत के संगठन में ४-४ के स्थान में केवल ३-३ श्रुतियाँ क्यों मानी गई हैं?

(४) प्रचलित संगीत में कोमल ऋषभ तथा कोमल धैवत में कितनी श्रुतियाँ हैं, और 'भरत'-प्रणाली के कौन से स्वर उनसे मिलते हैं?

उपर्युक्त प्रश्न संगीत-कला के मार्मिक विद्यार्थी के चित्त को आकर्षित किए बिना नहीं रह सकते। मैंने उनका मनोनिवेश-पूर्वक अनुसंधान

---

*यह निबंध 'रॉयल एशियाटिक सोसायटी' की बंबई शाखा के सम्मुख, ता० २२-४-१९२१ को, पढ़ा गया था। इसके लेखक संस्कृत के कई ग्रंथों के टीकाकार तथा सिद्धहस्त बीनकार भी हैं।

अभिनंदन-ग्रंथ को सभा जिस रंग-ढंग से निकालना चाहती है, उसके लिये यह आवश्यक है कि वह अविलंब प्रेस में दे दिया जाय। इस बात पर ध्यान देते हुए लेखक-समुदाय शीघ्र ही अपनी कृति हमारे पास भेजने का अनुग्रह करे।

कृष्णदास
प्रधान मंत्री,
नागरी-प्रचारिणी सभा,
काशी

---

(६) संगीत-शास्त्र की बाईस श्रुतियाँ*

[लेखक—श्री मंगेश राव रामकृष्ण तैलंग, बंबई]

कुछ समय से भारतीय संगीत-शास्त्र की चर्चा भारतवर्ष में अधिक चल रही है। इस विषय मे बहुत उत्साह प्रकट हुआ है, बहुत वाद-विवाद प्रदर्शित हुआ है, बहुत अन्वेषण-कार्य का अनुष्ठान हुआ है और अँग्रेजी, मराठी, गुजराती, हिंदी तथा संस्कृत तक मे अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं।

इनमें से कुछ पुस्तकों मे प्राचीन भारतीय संगीत की २२ श्रुतियों को आधुनिक काल के सप्तक (Octave) से मिलाने का प्रयत्न किया गया है, परंतु किसी पुस्तक मे भी निम्न-लिखित जटिल समस्याओं पर संतोषप्रद प्रकाश नहीं डाला गया है—

(१) भरत मुनि-कृत शुद्ध ठाट (Natural scale) क्या था?

(२) एक सप्तक के लिये केवल २२ श्रुतियाँ ही क्यों नियत की गई हैं?

(३) ऋषभ तथा धैवत के संगठन में ४-४ के स्थान में केवल ३-३ श्रुतियाँ क्यों मानी गई हैं?

(४) प्रचलित संगीत में कोमल ऋषभ तथा कोमल धैवत में कितनी श्रुतियाँ हैं, और 'भरत'-प्रणाली के कौन से स्वर उनसे मिलते हैं?

उपर्युक्त प्रश्न संगीत-कला के मार्मिक विद्यार्थी के चित्त को आकर्षित किए विना नहीं रह सकते। मैंने उनका मनोनिवेश-पूर्वक अनुसंधान

---

* यह निबंध 'रायल एशियाटिक सोसायटी' की बंबई शाखा के सम्मुख, ता० २२-४-१९२१ को, पढ़ा गया था। इसके लेखक संस्कृत के कई ग्रंथों के टीकाकार तथा सिद्धहस्त बीनकार भी हैं।

अभिनंदन-ग्रंथ को सभा जिस रंग-ढंग से निकालना चाहती है, उसके लिये यह आवश्यक है कि वह अविलंब प्रेस में दे दिया जाय। इस बात पर ध्यान देते हुए लेखक-समुदाय शीघ्र ही अपनी कृति हमारे पास भेजने का अनुग्रह करे।

कृष्णदास
प्रधान मंत्री,
नागरी-प्रचारिणी सभा,
काशी

---

(६) संगीत-शास्त्र की बाईस श्रुतियाँ*

[लेखक—श्री मंगेश राव रामकृष्ण तैलंग, बंबई]

कुछ समय से भारतीय संगीत-शास्त्र की चर्चा भारतवर्ष में अधिक चल रही है। इस विषय में बहुत उत्साह प्रकट हुआ है, बहुत वाद-विवाद प्रदर्शित हुआ है, बहुत अन्वेषण-कार्य का अनुष्ठान हुआ है और अँग्रेजी, मराठी, गुजराती, हिंदी तथा संस्कृत तक में अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं।

इनमें से कुछ पुस्तकों में प्राचीन भारतीय संगीत की २२ श्रुतियों को आधुनिक काल के सप्तक (Octave) से मिलाने का प्रयत्न किया गया है, परंतु किसी पुस्तक में भी निम्न-लिखित जटिल समस्याओं पर संतोषप्रद प्रकाश नहीं डाला गया है—

(१) भरत मुनि-कृत शुद्ध ठाट (Natural scale) क्या था?

(२) एक सप्तक के लिये केवल २२ श्रुतियाँ ही क्यों नियत की गई हैं?

(३) ऋषभ तथा धैवत के संगठन में ४-४ के स्थान में केवल ३-३ श्रुतियाँ क्यों मानी गई हैं?

(४) प्रचलित संगीत में कोमल ऋषभ तथा कोमल धैवत में कितनी श्रुतियाँ हैं, और 'भरत'-प्रणाली के कौन से स्वर उनसे मिलते हैं?

उपर्युक्त प्रश्न संगीत-कला के मार्मिक विद्यार्थी के चित्त को आकर्षित किए बिना नहीं रह सकते। मैंने उनका मनोनिवेश-पूर्वक अनुसंधान

---

* यह निबंध 'रायल एशियाटिक सोसायटी' की बंबई शाखा के सम्मुख, ता० २२-४-१६२१ को, पढ़ा गया था। इसके लेखक संस्कृत के कई ग्रंथों के टीकाकार तथा सिद्धहस्त बीनकार भी हैं।

सन् १८८२ में मैं बंबई आया और हाईकोर्ट में प्रेशकार का पद प्राप्त कर वहीं रहने लगा। यहाँ पर मुझे जो अवकाश मिलता था उसे मैं सितार तथा बीन बजाने के अभ्यास में लगाता था; साथ ही प्राचीन भारतीय संगीत-शास्त्र की पद्धति मनोगत करने के लिये मैंने अहोवल भट्ट कृत 'संगीत-पारिजात' का अध्ययन आरंभ कर दिया।

इस ग्रंथ का खूब ध्यानपूर्वक मनन करने पर भी ग्रंथकार द्वारा स्वीकृत शुद्ध ठाट की युक्ति मेरी समझ में नहीं आई। कुछ समय पीछे मेरा ध्यान इसी पुस्तक में दिए गए वीणा के स्वर-स्थापन-कर्त्ता नियमों की ओर गया। इन नियमों के अनुसार मैंने सितार पर उनका प्रयोग किया। तब मुझको विदित हुआ कि अहोवल पंडित के अनुसार शुद्ध ठाट आधुनिक काफी राग के ठाट से मिलता है। परंतु साथ ही मुझे यह भी लक्षित हुआ कि ग्रंथकार द्वारा वर्णित पूर्व ऋषभ, कोमल ऋषभ तथा पूर्व धैवत, कोमल धैवत वीणा के प्रचलित कोमल ऋषभ तथा कोमल धैवत से नहीं मिलते। तथापि मुझे इतनी सफलता अवश्य प्राप्त हुई कि मैंने अहोवल भट्ट के शुद्ध ठाट का सामंजस्य प्रचलित काफी राग के ठाट से ढूँढ़ निकाला। इस आविष्कार की सूचना मैंने सन् १८८३ में संगीत में उत्साह रखनेवाले कई मित्रों को दी।

सन् १८८६ में बंबई हाईकोर्ट के वकील तथा पूना के आनंदाश्रम के संस्थापक स्वर्गीय महादेव चिमणाजी आपटे ने 'संगीत-रत्नाकर' के संपादन का भार मुझे सौंपा। यह संपादन-कार्य सन् १८९७ में पूर्ण हुआ और 'संगीत-रत्नाकर' आनंदाश्रम-ग्रंथमाला में प्रकाशित हुआ।

इसके अनंतर भरत मुनि के 'नाट्यशास्त्र' के २८वें अध्याय के उस भाग का, जिसमें श्रुतियों तथा स्वरों का वर्णन है, मैंने मनन आरंभ किया। यहाँ भी मुझे यही विदित हुआ कि भरत के 'नाट्यशास्त्र',

किया है। भरत मुनि के 'नाट्य-शास्त्र', मतंग की 'बृहद्देशी' तथा शार्ङ्गदेव के 'संगीत-रत्नाकर' आदि ग्रंथों के श्रुति तथा स्वर-विषयक विभागों पर सूक्ष्म तथा पूर्ण विचार के अनंतर मैं कुछ विशेष परिणामों पर पहुँचा हूँ। ये परिणाम ऐसे हैं जो इन प्रश्नों के संबंध में उत्पन्न होनेवाले समस्त संदेहों को निर्मूल कर देंगे। उन्हें मैं आज आपके सम्मुख उपस्थित करता हूँ।

भारतीय संगीत-कला से जो मेरा संबंध है उस पर, और इन उपर्युक्त जटिल प्रश्नों के अनुसंधानकारक कारणों पर, थोड़ा सा प्रकाश डालना यहाँ अप्रासंगिक न होगा।

ईसवी सन् १८७७ में मेरा विचार सितार-बजाने की कला को सीखने का हुआ और मैंने तत्काल परिश्रम आरंभ कर दिया। तीन वर्ष पीछे मैं अपने पूज्य भ्राता स्वर्गीय श्री पुरुषोत्तमराव तैलंग के पास रहने के लिये बड़ौदा गया। सौभाग्य से मेरे भाई साहब प्रचलित भारतीय सगीत-पद्धति से भली भाँति परिचित थे। वहाँ पर उन्हीं के अनुग्रह से मुझे भारतीय संगीत-कला के धुरंधर विद्वानों तथा पारगामी मर्मज्ञों के दर्शन और श्रवण का अमूल्य अवसर प्राप्त हुआ। इनमें दिल्ली के विख्यात सितारिए गोस्वामी श्रीपन्नालालजी और प्रसिद्ध बीनकार मियाँ अलीहुसैन खाँ थे, तथा गायकों में अमरोहे के मियाँ खादिमहुसैन खाँ, फैजमुहम्मद खाँ, प्रोफेसर मौलाबख्श आदि थे।

इन पारगामी संगीत-कलाधरों के सहवास से रहकर उच्च कोटि के गान तथा वाद्य के श्रवण का अलभ्य अवसर मुझे प्राप्त हुआ।

सितार बजाने में मुझे गोस्वामी पन्नालालजी के सौजन्य से सहायता मिली, प्रचलित संगीत-शास्त्र की बारीकियों में गति प्रो० मौलाबख्श की कृपा से हुई; रागों के अलाप या जोड़ के कल्पना-तत्त्व मियाँ खादिमहुसेन से प्राप्त हुए और बीन के विलंपट का अंदाज मियाँ अलीहुसैन के अनुग्रह से सुलभ हुआ।

सन् १८८२ में मैं बंबई आया और हाईकोर्ट में प्रेशकार का पद प्राप्त कर वहीं रहने लगा। यहाँ पर मुझे जो अवकाश मिलता था उसे मैं सितार तथा वीन बजाने के अभ्यास में लगाता था; साथ ही प्राचीन भारतीय संगीत-शास्त्र की पद्धति मनोगत करने के लिये मैंने अहोवल भट्ट कृत 'संगीत-पारिजात' का अध्ययन आरंभ कर दिया।

इस ग्रंथ का खूब ध्यानपूर्वक मनन करने पर भी ग्रंथकार द्वारा स्वीकृत शुद्ध ठाट की युक्ति मेरी समझ में नहीं आई। कुछ समय पीछे मेरा ध्यान इसी पुस्तक में दिए गए वीणा के स्वर-स्थापन-कर्त्ता नियमों की ओर गया। इन नियमों के अनुसार मैंने सितार पर उनका प्रयोग किया। तब मुझको विदित हुआ कि अहोबल पंडित के अनुसार शुद्ध ठाट आधुनिक काफी राग के ठाट से मिलता है। परंतु साथ ही मुझे यह भी लक्षित हुआ कि ग्रंथकार द्वारा वर्णित पूर्व ऋषभ, कोमल ऋषभ तथा पूर्व धैवत, कोमल धैवत वीणा के प्रचलित कोमल ऋषभ तथा कोमल धैवत से नहीं मिलते। तथापि मुझे इतनी सफलता अवश्य प्राप्त हुई कि मैंने अहोबल भट्ट के शुद्ध ठाट का सामंजस्य प्रचलित काफी राग के ठाट से ढूँढ़ निकाला। इस आविष्कार की सूचना मैंने सन् १८८३ में संगीत में उत्साह रखने-वाले कई मित्रों को दी।

सन् १८८६ में बंबई हाईकोर्ट के वकील तथा पूना के आनंदाश्रम के संस्थापक स्वर्गीय महादेव चिमणाजी आपटे ने 'संगीत-रत्नाकर' के संपादन का भार मुझे सौंपा। यह संपादन-कार्य सन् १८९७ में पूर्ण हुआ और 'संगीत-रत्नाकर' आनंदाश्रम-ग्रंथमाला में प्रकाशित हुआ।

इसके अनंतर भरत मुनि के 'नाट्यशास्त्र' के २८वें अध्याय के उस भाग का, जिसमें श्रुतियों तथा स्वरों का वर्णन है, मैंने मनन आरंभ किया। यहाँ भी मुझे यही विदित हुआ कि भरत के 'नाट्यशास्त्र'

में तथा 'संगीत-रत्नाकर' में शुद्ध ठाट के निर्माता स्वरों में जितनी संख्या श्रुतियों की है ठीक उतनी ही 'संगीत-पारिजात' में है। अतएव मैंने यह परिणाम निकाला कि पूर्वोक्त दोनों ग्रंथों में भी जिस शुद्ध ठाट का प्रतिपादन किया गया है वह भी काफी राग का ठाट है। इसके अनंतर मैंने 'रागविबोध', 'संगीत-दर्पण' तथा संस्कृत के अन्य संगीत-विषयक ग्रंथों का अध्ययन किया। इन ग्रंथों में भी श्रुतियों के संबंध में वैसे ही नियम निर्धारित पाए गए जैसे कि 'संगीत-रत्नाकर' में हैं। परंतु इनमें से किसी ग्रंथ में भी मुझे इन बातों का प्रमाण न मिला कि श्रुतियों की संख्या २२ ही क्यों नियत की गई और शुद्ध ऋषभ तथा शुद्ध धैवत को ३-३ ही श्रुतियाँ क्यों दी गईं, तथा कोमल ऋषभ तथा कोमल धैवत, जो आधुनिक भारतीय संगीतकारों द्वारा स्वीकृत हैं, भरत मुनि की किन श्रुतियों पर स्थित हैं, इत्यादि।

भरत मुनि तथा अन्य ग्रंथकारों के प्राचीन ग्रंथ शास्त्रीय परिभाषा में संक्षिप्त परिमाण से लिखे गए हैं। साधारण संस्कृतज्ञ जन उनको उचित प्रकार से समझने में अशक्त हैं। मेरे प्रथम उद्योग में ऐसा ही हुआ और उक्त ग्रंथ की सहायता से श्रुति संबंधी प्रश्न हल न हो सका। तब मैंने कुछ समय के लिये इस विषय का अध्ययन स्थगित कर दिया और न्याय, मीमांसा, वेदांत आदि संस्कृत-ग्रंथों का अनुशीलन आरंभ किया। इसी समय संगीत के विख्यात उस्ताद मियाँ अल्लाहदिया खाँ बंबई में निवास करने आए और स्वदेश की प्रचलित संगीत-प्रणाली के राग आदि के संबंध में उनसे अमूल्य ज्ञान प्राप्त करने में मैंने अपना समय लगाया।

सन् १९०२ में श्री गणपतराव गोपालराव बर्वे ने श्रुतियों, स्वरों तथा प्रचलित ठाट पर स्व-रचित 'नाद-लहरी' नामक पुस्तक का मसौदा दिखाया। उस पुस्तक में उन्होंने निम्न-लिखित श्लोक में

वर्णित २२ श्रुतियों से प्रचलित विलावल ठाट को मिलाने का प्रयत्न किया था—

चतुश्चतुश्चैव ... षड्जमध्यमपञ्चमाः ।
द्वे द्वे निषादगान्धारौ त्रिस्त्रिर्ऋषभधैवतौ ॥

मैंने उनके सम्मुख सिद्ध कर दिखाया कि इस श्लोक में जो श्रुतियों का ठाट वर्णित है वह विलावल का ठाट नहीं, किंतु काफी राग का है। इस पर उन्होंने अपनी पुस्तक में आवश्यक परिवर्त्तन किया और मुझसे मिलने की घटना का तथा भूल सुधार का वर्णन पुस्तक के साथ प्रकाशित कर दिया (देखिए 'नाद-लहरी', पृष्ठ ११९—१२१)।

कुछ वर्ष पीछे, अर्थात् १९१३ में, मैं पेंशन लेकर अपनी जन्म-भूमि कारवार में रहने लगा। यहाँ मैं अपने समय को न्याय, मीमांसा, वेदांत आदि के अनुशीलन में तथा वीन बजाने में लगाया करता था, और कई वर्ष तक श्रुतियों के विषय पर मैंने जरा भी ध्यान न दिया।

सन् १९२९ में मैं दक्षिण भारत की यात्रा को निकला और कोचीन, त्रावनकोर आदि प्रदेशों में अनेक पुण्य तीर्थों का दर्शन करते हुए तंजोर तक पहुँचा। इस यात्रा में कतिपय स्थानों में इस खंड के कई विख्यात तंत्रकारों तथा गायकों से समागम हुआ। यहाँ पर मुझे यह विचार उत्पन्न हुआ कि इन गुणियों से भरत मुनि के शुद्ध ठाट तथा श्रुति आदि के संबंध में कुछ सूचना प्राप्त करूँ। परंतु मेरा प्रयत्न व्यर्थ रहा, क्योंकि इनकी संगीत-पद्धति भरत मुनि की पद्धति से बिल्कुल भिन्न है।

वहाँ से मैं तिरुवादि गया, जहाँ शैलताताचार्य्य नामक एक विद्वान् शास्त्री से परिचय हुआ। उन्होंने मुझसे कहा कि वे 'भामहालंकार' नामक एक प्राचीन ग्रंथ की टीका लिख रहे हैं। उन्होंने संगीत-विषयक दो दुर्बोध श्लोक मुझे दिखाए, जो उस ग्रंथ के चौथे

अध्याय के ३३ वें तथा ३४ वें थे। इन दोनों श्लोकों का अर्थ स्पष्ट करने में उन्होंने मुझसे सहायता माँगी। मैंने उनको विश्वास दिलाया कि कारवार पहुँचकर अपने संगीत-ग्रंथों के अवलोकन से उनका अर्थ निकालने का प्रयत्न करूँगा।

जनवरी १६३० में मैं कारवार वापस आ गया और उन दोनों दुर्बोध श्लोकों का अर्थ निश्चित करने में प्राणपण से यत्नशील हुआ। वे श्लोक ये हैं—

कला संकलना प्रज्ञा शिल्पान्यस्याश्च गोचरः।
विपर्यस्तं तथैवाहुस्तद्विरोधकरं यथा ॥ ३२ ॥
ऋषभात्पंचमात्तस्मात् सषड्जं धैवतं स्मृतम्।
अयं हि मध्यमग्रामो मध्यमोत्पीडितर्षभः ॥३३॥
इति साधारितं मोहादन्यथैवावगच्छति।
अन्यास्वपि कलास्वेवमभिधेया विरोधिता ॥३४॥

ऊपर्युक्त प्रथम श्लोक मे ग्रंथकार (भामह) ने "विपर्यस्त" नामक काव्य-दोष के लक्षण दिखाए हैं। पिछले दोनों श्लोकों में संगीत-शास्त्र के स्वरसाधारण तथा मध्यमग्राम नामक लक्षणों के अशुद्ध वर्णन के, जो अज्ञ पुरुषों द्वारा गढ़ लिए जाते हैं, उदाहरण दिए हैं।

इस संबंध में भरत मुनि के 'नाट्यशास्त्र' के तथा 'बृहद्देशी' के अंतर्गत श्रुति तथा ग्राम संबंधी भागों का मैंने ध्यानपूर्वक अनुसंधान किया। बहुत परिश्रम के उपरांत मैं इन दुर्ज्ञेय श्लोकों का अर्थ निकालने में समर्थ हुआ और उसे शैलताताचार्यजी के पास भेज दिया।

यह विचारणीय है कि भरत मुनि के 'नाट्यशास्त्र' के तथा 'बृहद्देशी' के जिन भागों की सहायता से मैं ताताचार्यजी के दुर्ज्ञेय श्लोकों का अर्थ लगा सका था उन भागों ने मेरे सम्मुख संगीत-विषयक विज्ञान का आशातीत भांडार खोल दिया और उन समस्याओं की पूर्त्ति मे मेरी सहायता की, जिनका ऊपर प्रवेशिका में

वर्णन हो चुका है, और भरत मुनि की श्रुति-विषयक कल्पना में मुझे नवीन गति प्राप्त हुई। अतएव मैं उन भागों को अर्थ सहित देता हूँ—

"*अथ द्वौ ग्रामौ षड्जो मध्यमश्चेति। तत्राश्रिता द्वाविंशतिः श्रुतयः। यथा—*

'तिस्रो द्वे च चतस्रश्च चतस्रस्तिस्र एव च।
द्वे चतस्रश्च षड्जाख्ये ग्रामे श्रुतिनिदर्शनम्॥'

मध्यमग्रामे तु श्रुत्यपकृष्टः पंचमः कार्यः। पंचमस्य श्रुत्युत्कर्षापकर्षाभ्यां यदंतरं मार्दवादायतत्वाद्वा तावत्प्रमाणश्रुतिः।

निदर्शनं च सम्भिव्याख्यास्यामः। यथा द्वे वीणे तुल्यप्रमाणतंत्र्युपपादनदंडमूर्च्छने षड्जग्रामाश्रिते कार्ये। तयोरन्यतरीं मध्यमग्रामिकीं कुर्यात्। पंचमस्यापकर्षे श्रुतिं तामेव पंचमस्य श्रुत्युत्कर्षवशात् षड्जग्रामिकीं कुर्यात्। एवं श्रुतिरपकृष्टा भवति। पुनरपि तद्वदेवापकर्षात् गांधारनिषादावपि इतरस्यां धैवतर्षभौ प्रविशतः। श्रुत्यधिकत्वात्। पुनस्तद्वदेवापकर्षाद्धैवतर्षभावितरस्यां षड्जपंचमौ प्रविशतः। श्रुत्यधिकत्वात्। तद्वत्पुनरपकृष्टायां तस्यां पंचममध्यमषड्जा इतरस्यां मध्यमनिषादगांधारवंतः प्रवेक्ष्यन्ति, चतुःश्रुत्यधिकत्वात्। एवमनेन श्रुतिदर्शनविधानेन द्वैग्रामिक्यो द्वाविंशतिः श्रुतयः प्रत्यवगन्तव्याः।"

भरत-नाट्यशास्त्रे, पृ० ३१८, पं० २२ (काशी मुद्रित पु०)

"षड्ज और मध्यम दो ग्राम हैं। इनमें प्रत्येक के आश्रित बाईस श्रुतियाँ हैं। जैसे—

ऋषभ की तीन, गांधार की दो, मध्यम की चार, पंचम की चार, धैवत की तीन, निषाद की दो और षड्ज की चार। इस प्रकार षड्ज नामक ग्राम में २२ श्रुतियाँ दिखाई गई हैं।

परंतु मध्यम ग्राम में पंचम की एक श्रुति कम करनी चाहिए। पंचम की श्रुतियों को बढ़ाने तथा घटाने में जो अंतर है, अथवा मृदु

जाति की नई और पुरानी अवस्थाओं मे जो भेद है, अथवा आयत जाति की नई और पुरानी अवस्थाओं मे जो भिन्नता है वही श्रुति का प्रमाण है।"

उदाहरण सहित इनकी व्याख्या करते हैं—

तार, डॉड़, सा-रें आदिक मे समान आकारवाली तथा षड्ज ग्राम-युक्त दो वीणाएँ बनवाइए। इनमें से एक को मध्यम ग्राम-युक्त किया जाय (अर्थात् मध्यम को मुख्य-स्वर [key-note] नियत करें)। अब इस (मध्यम ग्राम-युक्त) वीणा के पंचम की एक श्रुति घटाकर षड्ज ग्राम के पंचम में जोड़ दें। इस प्रकार इस मध्यम-ग्रामवाली वीणा मे एक श्रुति कम हो जाती है। फिर, यदि इसी प्रकार पंचम की एक और श्रुति घटा दें, तो षड्ज ग्रामवाली वीणा के गांधार और निषाद, मध्यम-ग्रामवाली वीणा के ऋषभ और धैवत हो जाते हैं। कारण यह है कि इस एक और श्रुति के जुड़ने से षड्ज ग्राम मे वास्तव में दो श्रुतियाँ बढ़ जाती हैं। फिर, इसी प्रकार पंचम की एक और श्रुति घटा दें, तो षड्ज-ग्रामवाली वीणा के ऋषभ तथा धैवत मध्यम ग्रामवाली वीणा के षड्ज तथा पंचम हो जाते हैं। इस प्रकार षड्ज ग्राम में तीन श्रुतियाँ बढ़ जाती हैं। इसी प्रकार फिर मध्यम ग्रामवाली वीणा के पंचम की एक और श्रुति घटा दें तो षड्ज ग्रामवाली वीणा के पंचम, मध्यम तथा षड्ज, मध्यम ग्रामवाली वीणा के क्रमश. मध्यम, गांधार तथा निषाद हो जाते हैं, क्योंकि षड्ज ग्राम में चार श्रुतियाँ बढ़ जाती हैं। इस प्रकार इस श्रुतिदर्शक विधि द्वारा दोनों ग्रामों की बाईस बाईस श्रुतियाँ समझनी चाहिएँ।

ये २२ श्रुतियाँ किस प्रकार इस विधि से प्राप्त होती हैं उसका पूर्ण विवरण 'बृहद्देशी' के आगे दिए हुए अवतरण से स्पष्ट हो जायगा—

"ननु श्रुतेः किं मानम्। उच्यते—पंचमस्तावद् ग्रामद्वयस्थो लोके प्रसिद्धः। तस्योत्कर्षापकर्षणाभ्यां मार्दवादायतत्वाद्वा यदंतरं तत्प्रमाणश्रुतिः।"

—मतंग 'बृहद्देशी', पृ० ५, पं० १८।

(सं० र० सिंहभूपाल टीका, पृ० ४३, पं० ६)

"चलवीणायाः प्रथमोत्कर्षे श्रुतिलाभो नास्ति। द्वितीये चतुःश्रुतिलाभः। तृतीये षट्श्रुतिलाभः। चतुर्थे द्वादशश्रुतिलाभः। एवं द्वाविंशतिभेदभिन्नाः श्रुतयो दर्शिताः।"

—मतंग 'बृहद्देशी', पृ० ६, पं० १२।

अर्थ—"शंका—श्रुति का क्या प्रमाण है? उत्तर—दोनों ग्रामों में स्थित पंचम लोक-प्रसिद्ध है ही। इस पंचम के घटाने-बढ़ाने का, अथवा मृदु जाति तथा आयत जाति का जो अंतर है वही श्रुति का प्रमाण है।"

उपर्युक्त अवतरण में मतंग ने भरत के मत को विशद किया है और यह दिखाने के लिये कि दोनों ग्रामों में पंचम एक सा रहता है, पंचम शब्द को एकवचन में प्रयुक्त किया है। उसने यह भी कहा है कि संगीत-कला-विशारदों पर पंचम का रूप भली भाँति प्रकट है, जिसका आशय यही है कि दोनों ग्रामों के पंचम तनिक भी विभिन्न नहीं होते।

"यदि चल-वीणा, अर्थात् षड्ज ग्रामवाली वीणा, में एक श्रुति बढ़ा दी जाय तो इस वीणा के स्वरों को ध्रुव-वीणा, अर्थात् मध्यम ग्रामवाली वीणा, के स्वरों से समागम का लाभ नहीं होता। दूसरे, यदि चल-वीणा में दो श्रुतियाँ बढ़ा दी जायँ तो गांधार तथा निषाद प्रत्येक स्वर को दो दो श्रुतियाँ प्राप्त होती हैं। इस प्रकार ४ श्रुतियों का लाभ होता है। (इसमें स्वरों का इच्छित संगम प्राप्त होता है।) तीसरे, यदि षड्ज ग्रामवाली वीणा में तीन श्रुतियाँ

और बढ़ा दी जायँ तो दोनों वीणाओं के स्वरों में फिर संगम होता है और छः श्रुतियों का लाभ होता है—अर्थात् (षड्ज ग्राम वीणा में) तीन ऋषभ की और तीन धैवत की। चौथे, यदि षड्ज ग्राम-वाली वीणा में चार श्रुतियाँ और बढ़ा दी जायँ तो १२ श्रुतियाँ प्राप्त होती हैं—अर्थात् ४ पंचम की, ४ मध्यम की तथा ४ षड्ज की। इस प्रकार भेदों से भिन्न बाईस (४+६+१२=२२) श्रुतियाँ दिखाई गई हैं।" *

उपर्युक्त अवतरणों का अर्थ सहसा मेरी बुद्धि में नहीं आया। इनका गूढ़ तत्त्व समझने के लिये बड़ी सावधानी से इनका विवेचन करना पड़ा। उस समय अनेक प्रकार की शंकाएँ तथा अड़चनें उत्पन्न हो गईं, परंतु मैंने हिम्मत न हारी और अंत में संतोषप्रद अर्थ प्राप्त कर लिया। उसी व्याख्या को आप महानुभावों के सम्मुख उपस्थित करने का आज मुझे हर्ष है।

षड्ज ग्राम में भरत मुनि ने पंचम की चार तथा शुद्ध धैवत की तीन श्रुतियाँ नियत की हैं। आश्चर्य की बात है कि उन्होंने यह कथन किया है कि मध्यम ग्राम में पंचम की तीन तथा धैवत की चार श्रुतियाँ समझनी चाहिएँ, यद्यपि इन स्वरों के वेग (उच्चता = Pitch) तथा स्थान में कोई परिवर्त्तन नहीं होने पाता। इस संबंध में मेरी समझ में यह न आया कि किस प्रकार पंचम ने एक श्रुति खो दी, और धैवत ने पा ली। कुछ समय बीतने पर निम्न-लिखित समस्या-पूर्त्ति मेरे ध्यान में आई। जिस क्षण पंचम में से एक श्रुति घट जाती है, उसकी चारों श्रुतियाँ—क्षिति, रक्ता, संदीपनी तथा आलापिनी, जो मध्यम के पीछे लगी हुई हैं—एक एक श्रुति उतर जाती हैं, और मध्यम की समीपवर्त्तिनी क्षिति नामक

* इस अर्थ को सुस्पष्ट करने के लिये भरत के संगीत से लेकर दोनों वीणाओं के स्वर और श्रुति सहित नक्शे मैंने तैयार करके परिशिष्ट में दिए हैं।

श्रुति का स्थान रिक्त हो जाता है; और चूँकि क्षिति रक्ता के स्थान को ले लेती है, रक्ता तथा संदीपनी क्रमशः संदीपनी तथा आलापिनी के स्थान को प्राप्त करती हैं।

चूँकि (पंचम की) आलापिनी नामक श्रुति धैवत प्रांत में पहुँचकर उसमें १ श्रुति बढ़ा देती है, मैंने अनुमान किया कि उस (धैवत) में पहले से ही एक श्रुति का स्थान खाली होगा, यद्यपि उसका नाम कुछ न रखा गया हो। इससे मैंने यह परिणाम निकाला कि १ श्रुति के घटने से पंचम ३ श्रुतियों का स्वर हो गया, जब कि १ श्रुति के बढ़ने से धैवत ४ श्रुतियों का स्वर बन गया।

परंतु मेरे मन में एक नया प्रश्न उत्पन्न हुआ कि मध्यम ग्राम में पंचम की १ श्रुति को घटाने का क्या प्रयोजन है। इस प्रश्न का उत्तर मैंने निम्न-लिखित विधि से पाया। इस उत्तर का आधारभूत वह नियम है जो संगीत के आचार्यों ने अपने अनुभव से नियत किया है; अर्थात् वे दो स्वर जिनका परस्पर अंतर एक श्रुति मात्र है विवादी होते हैं। यह नियम नीचे लिखे श्लोक से प्रकट होता है—

"एक श्रुत्यंतरितौ विवादिनौ वैरिणौ मिथो भवतः।"

—'रागविबोध' पृ० २७, पं० १९।

इस नियम का आशय यह है कि एक श्रुति का अंतर रखनेवाले स्वर परस्पर विवादी, विरोधी होते हैं, और मिलकर नहीं बोलते। इसलिये दोनों में से एक स्वर छोड़ दिया जाता है। परंतु षड्ज तथा पंचम प्रधान स्वर हैं, इसलिये उनमें से कोई भी किसी पूर्ण ठाट में से वर्जनीय नहीं हो सकता। इनके समीपवर्ती ऋषभ या धैवत की प्रथम श्रुति विवादी होने के कारण छोड़ दी जाती है। इस नियम के अनुसार मध्यम ग्राम में, (मध्यम प्रधान स्वर है,) पंचम की प्रथम श्रुति मध्यम की समीपवर्त्तिनी होने के कारण तथा विवादिनी होने से छोड़ दी जाती है। इस प्रकार मध्यम ग्राम का पंचम स्वर

चार श्रुतियों का स्वामी होते हुए भी तीन श्रुतियों का रह जाता है। उपर्युक्त प्रश्न का यही उत्तर है।

इसी नियम के अनुसार भरत मुनि के सदृश संगीत के प्राचीन आचार्यों ने षड्ज ग्राम में भी ऋषभ तथा धैवत की प्रथम श्रुतियों को कोई नाम-विशेष प्रदान नहीं किया, और उन्हें श्रुतिमंडल से वर्जित कर दिया। इस प्रकार ४—४ के स्थान में ३—३ श्रुतियाँ ऋषभ तथा धैवत को प्राप्त हुईं। मैं इस सिद्धांत पर पहुँचा।

अपने इस सिद्धांत के समर्थन के लिये मैं प्राचीन संगीत-ग्रंथों में प्रमाण की खोज करने लगा, परंतु भरत तथा मतंग के ग्रंथों में कोई ऐसा लेख दृष्टिगोचर न हुआ जो ऋषभ तथा धैवत में से एक एक श्रुति के घटाने को सिद्ध करता। तथापि ये दोनों ग्रंथकार मेरे सिद्धांत का समर्थन करते हैं, इस अनुमान के कई कारण वर्तमान हैं। ये कारण विस्तारपूर्वक नीचे दिए जाते हैं—

प्रथम कारण

भरत मुनि अपने 'नाट्य-शास्त्र' में कहते हैं कि जिन दो स्वरों का परस्पर अंतर नौ या तेरह श्रुतियों का हो उनको परस्पर संवादी अथवा एक दूसरे के ध्वनि-माधुर्य को बढ़ानेवाला समझना चाहिए। दंतिल तथा मतंग के सदृश पिछले ग्रंथकार भी दो संवादी स्वरों के परस्पर अंतर में श्रुतियों की इतनी ही संख्या मानते हैं। इस मत के संबंध में निम्नलिखित अवतरण उनके ग्रंथों से दिए जाते हैं—

"ययोश्च नवकत्रयोदश श्रुत्यंतरे तावन्योन्यम्।
संवादिनौ यथा षड्जमध्यमौ षड्जपंचमौ॥"

—भरत, नाट्यशास्त्र पृ० ३१७, पं० २७।

"नवकत्रयोदशांतराः संवादिनः।"

—मतंग, बृहद्देशी, पृ० १६, पं० ६।

भरत मुनि मध्यम तथा पंचम को षड्ज के संवादी स्वर मानते हैं। तात्पर्य यह है कि षड्ज तथा मध्यम के अंतर में नौ श्रुतियाँ हैं, और तेरह श्रुतियों का अंतर षड्ज तथा पंचम के बीच में है। अब यदि ऋषभ की तीन श्रुतियाँ मान लें तो षड्ज तथा मध्यम का अंतर आठ श्रुतियों का होता है और षड्ज तथा पंचम का अंतर बारह श्रुतियों का। इसका यह अर्थ हुआ कि प्रत्येक रूप में दोनों स्वर संवादी नहीं हो सकते, परंतु यह बात भरत के नियम के विरुद्ध है। अतएव ऋषभ में वास्तव में चार श्रुतियाँ होंगी, तीन नहीं। इसी प्रकार यदि धैवत की हम तीन ही श्रुतियाँ मान लें तो ऋषभ तथा धैवत का अंतर बारह ही श्रुतियों का रह जाता है। अतएव ये दोनों स्वर संवादी नहीं कहे जा सकते, परंतु नियम के अनुसार इनको संवादी ही समझना चाहिए। ये संवादी तभी हो सकते हैं जब कि, जैसा कि मैंने ऊपर कहा है, ऋषभ तथा धैवत में से निकाली हुई एक एक श्रुति भी जोड़ ली जावे, क्योंकि तब क्रमशः नौ तथा तेरह श्रुतियाँ हो जाती हैं, जो कि भरत के मतानुसार संवादी स्वरों का अंतर हैं। मेरी समझ में भरत मुनि ने संवादी स्वरों के संबंध में अपने उक्त नियम को उन दोनों विवादी श्रुतियों के अस्तित्व का पूरा ध्यान रखते हुए बनाया होगा, यद्यपि उनका कोई नामकरण नहीं किया गया। संवादी स्वर संबंधी इस नियम का भारतीय संगीत में कहीं अपवाद नहीं मिलता और भरत के स्वर-सप्तक में निर्दिष्ट २२ श्रुतियों के अतिरिक्त इन दोनों (अनामिका) श्रुतियों के अस्तित्व को स्वीकार करना न्याय-संगत है।

द्वितीय कारण

भरत, दंतिल तथा मतंग से कई शताब्दियों के उपरांत तेरहवीं शताब्दी में शार्ङ्गदेव ने अपने 'संगीत-रत्नाकर' नामक ग्रंथ की

रचना की। इस ग्रंथ में शार्ङ्गदेव ने भरत मुनि के इस मत को, कि संवादी स्वरों में ९ तथा १३ श्रुतियों का अंतर होना चाहिए, छोड़कर यह कहा है कि किन्हीं दो संवादी स्वरों में ८ या १२ श्रुतियों ही के अंतर की आवश्यकता है। यह नियम नीचे लिखे अवतरण में मिलता है—

"श्रुतयो द्वादशाष्टौ वा ययोरंतरगोचरः।
मिथः संवादिनौ तौरतो निगावन्यविवादिनौ ॥"

—'संगीत-रत्नाकर', पृ० ४३, पं० ३३।

परंतु संवादी स्वरों के संबंध में भरत मुनि के मत को त्यागने का उसने कोई कारण नहीं बताया है। 'संगीत-रत्नाकर' के टीकाकारों, कल्लिनाथ तथा सिंहभूपाल, ने इस विरोध का परिहार यह कहकर किया है कि भरत ने जो नौ तथा तेरह श्रुतियाँ नियत की हैं उनमें वे श्रुतियाँ भी सम्मिलित हैं जिनमें संवादी स्वर उत्पन्न होता है। इन टीकाओं के निम्न-लिखित अवतरण इस कथन को सिद्ध करते हैं—

"त्रयोदशनवांतरमिति मतंगोक्तस्यापि द्वयोरेकस्वराधारश्रुत्या संवादिलक्षणस्यापि द्वादशाष्टांतरमेवेत्यर्थः।"

—'संगीत-रत्नाकर' कल्लिनाथी टीका पृ० ४४।

"ननु मतंगेन त्रयोदश नव श्रुत्यंतरत्वेन संवादित्वमुक्तम्, तथाहि 'संवादिकस्तु पुनः समश्रुतिकत्वे सति त्रयोदशनवांतरत्वे चान्योन्यं बोद्धव्यम्' इति। दंतिलेनाप्युक्तम्—'मिथः संवादिनौ ज्ञेयौ त्रयोदशनवांतरौ' इति। तत्कथमुच्यते श्रुतयो द्वादशाष्टौ वा ययोरंतरगोचर' इति। उच्यते। ययोः श्रुत्योः स्वरौ अवस्थितौ ते श्रुती विहाय मध्यस्थाः श्रुतयो द्वादशाष्टौ वा यदि भवंति तदा तयोः संवादित्वमित्यनेनाभिप्रायेणैवोक्तम्।" मतंगादिभिस्तु यो यस्य संवादी

तस्यावस्थानश्रुतिमपि मध्ये गणयित्वा त्रयोदश नवांतरावित्युक्तमिति न कश्चिद्विसंवादः।" इति।

—'संगीत-रत्नाकर' सिंहभूपाली टीका, पृ०५३, पं० २।

परंतु 'संगीत-रत्नाकर' में दिए हुए आठ तथा बारह श्रुतियों के प्रमाण से अथवा टीकाकार सिंहभूपाल की व्याख्या द्वारा शुद्ध तीव्र ऋषभ तथा पंचम का संवादित्व सिद्ध नहीं होता; क्योंकि इन दोनों स्वरों के बीच में नौ से न्यूनाधिक श्रुतियाँ हो ही नहीं सकतीं। भरत के मतानुसार, जैसा कि ऊपर सिद्ध किया गया है, ये स्वर संवादी हो सकते हैं। अतएव २२ श्रुतियों के अतिरिक्त हमको दो और श्रुतियों का अस्तित्व स्वीकार करना पड़ेगा, जिनमें से एक षड्ज के विरुद्ध है और दूसरी पंचम के।

तृतीय कारण

इस विषय में मतंगाचार्य्य की 'बृहद्देशी' में एक महत्त्वपूर्ण वक्तव्य दिया गया है—

"उभयतो द्वाविंशतिः, एवं ग्रामद्वयेऽप्युपयोगिन्यः श्रुतयः इति दर्शिताः।"

—मतंग, 'बृहद्देशी', पृ० १०, पं० ५।

इस अवतरण में मतंगाचार्य्य का कथन यह है कि उसने बाईस श्रुतियाँ बताई हैं, और ये ही **उपयोगी** हैं। इस कथन से यही ध्वनि निकलती है कि बाईस 'उपयोगी' श्रुतियों के साथ ही दो 'निरुपयोगी' श्रुतियाँ भी उसके मत से होनी चाहिएँ, यद्यपि अपने सप्तक में उसने उनका कोई उल्लेख नहीं किया है, क्योंकि यदि ऐसा न होता तो 'उपयोगी' विशेषण को किसी भी श्रुति के लिये प्रयोग करने की आवश्यकता न थी। सुतरां यह स्पष्ट है कि सप्तक में 'उपयोगी' के साथ 'निरुपयोगी' श्रुतियाँ भी होती हैं, और सप्तक में षड्ज तथा पंचम की अनुगामिनी एक एक श्रुति विवादी होने के

कारण 'निरुपयोगी' है। अतएव विवादी श्रुतियाँ दो हैं और, चूँकि ये दोनों 'निरुपयोगी' हैं, साधारण गणना में ऋषभ तथा धैवत में से ये छोड़ दी जाती हैं।

चतुर्थ कारण

जैसा कि ऊपर कहा गया है, भरत मुनि ने ऋषभ तथा धैवत प्रत्येक के लिये तीन तीन श्रुतियाँ नियत की हैं। इस नियम के आधार पर अर्वाचीन संगीत-ग्रंथकारों ने षड्ज तथा ऋषभ के अन्तर को तीन सम भागों में विभक्त किया है और तीन ऋषभ स्वीकार किए हैं। इस व्यवस्था के अनुसार वर्तमान संगीत का कोमल ऋषभ इन तीनों ऋषभों में से किसी से नहीं मिलता। इसी प्रकार की अड़चन कोमल धैवत के संबंध में भी उत्पन्न होती है, परंतु, जैसा मैंने ऊपर कहा है, यदि हम ऋषभ तथा धैवत प्रत्येक के लिये एक एक आधा मौन श्रुति का अस्तित्व स्वीकार कर लें, तो ये दोनों स्वर चार चार श्रुतियोंवाले हो जाते हैं और कोमल ऋषभ तथा कोमल धैवत इन स्वरों के दूसरे उपभेद से मिल जाते हैं। पुनः, प्राचीन भारतीय संगीत के शुद्ध ऋषभ तथा शुद्ध धैवत, जो (वर्तमान) तीव्र ऋषभ तथा तीव्र धैवत से मिलते हैं, चौथे उपभेदों से मिल जाते हैं। अतएव, कोमल ऋषभ तथा कोमल धैवत की उत्पत्ति उपर्युक्त दोनों निरुपयोगी श्रुतियों का अस्तित्व स्वीकार किए बिना संतोषजनक रीति से समझी नहीं जा सकती। इसलिये इन दोनों विवादी श्रुतियों का अस्तित्व अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा।

पंचम कारण

यदि निषाद तथा षड्ज के, गांधार तथा मध्यम के अथवा मध्यम तथा पंचम के अंतरों में चार चार श्रुतियाँ मान ली जायँ तो इसी प्रमाणानुसार षड्ज तथा ऋषभ के और पंचम तथा धैवत के अंतरों में भी चार चार श्रुतियों का मानना स्वाभाविक है। ऐसा मानने

का एक और प्रबल कारण यह है कि यदि इन पिछले दोनों अंतरों मे चार के स्थान मे तीन ही तीन श्रुतियाँ मान ली जायँ तो इन अंतरोंवाली एक श्रुति का परिमाण सप्तक के अन्य अंतरोंवाली प्रत्येक श्रुति के परिमाण की अपेक्षा अधिक दीर्घ हो जाता है। ऐसा होने से इस अनुभवसिद्ध नियम को, कि जितना ऊँचा स्वर होता है उतना ही छोटा श्रुति का परिमाण होता है, बाधा पहुँचती है। इससे यह स्पष्ट है कि षड्ज तथा ऋषभ के अंतर मे और पंचम तथा धैवत के अंतर में चार ही चार श्रुतियाँ होनी उचित हैं, और ये चार श्रुतियाँ एक विवादी, या निरुपयोगी, श्रुति के उन तीन श्रुतियों में जोड़ने से सिद्ध होती हैं जिनको भरत मुनि ने नियत किया है।

उपर्युक्त कारणों से यह स्पष्ट है कि भरत मुनि तथा अन्य प्राचीन ग्रंथकारों ने वास्तव में चौबीस श्रुतियों को अपने अपने स्वर-सप्तक मे स्वीकार कर लिया था और इनमें से जो बाईस श्रुतियाँ उपयोगी थीं उनका नामकरण कर दिया गया, परंतु शेष दो निरुपयोगी श्रुतियों को बेनाम ही रहने दिया। ये दोनों विवादी श्रुतियाँ अपने अपने स्थान पर स्थित रहीं और जब संवादी स्वरों के निश्चय करने की आवश्यकता हुई तब इनको भी गिनती मे लेना पड़ा।

श्रुति आदि के संबंध मे वैज्ञानिक रीति से जो जाँच मैंने यहाँ तक की है उसका प्रचलित संगीत-पद्धति से कोई संपर्क नहीं है, क्योंकि भरत आदि की प्राचीन पद्धति के समान इस प्रचलित पद्धति के आधार-भूत वे श्रुति, जाति, ग्राम, राग आदि नहीं हैं। इस प्रचलित पद्धति का सहारा वे देशी राग-रागनियाँ हैं जिनकी रचना समय समय पर पिछले रागियों ने की है।

उत्तरीय भारतवर्ष के विख्यात वाद्यकारों तथा गायकों में परंपरागत यह विस्तृत विश्वास चला आता है कि संगीत-शास्त्र के चौदह मत हैं और प्रचलित पद्धति उन्हीं में से एक है, जिसका आधार-

भूत हनुमान् का मत है। इस विश्वास का समर्थन प्रसिद्ध गायनाचार्य्य तानरस खाँ, खादिमहुसैनखाँ तथा अन्य गुणियों ने किया है। संगीत के प्राचीन लेखकों में हनुमान् भी हुए हैं। इसका प्रमाण अनेक ग्रंथों में मिलता है। 'संगीत-रत्नाकर' में तथा उस पर कल्लिनाथ-कृत भाष्य में, 'संगीत-पारिजात', 'संगीत-दर्पण', 'राग-विबोध' आदि ग्रंथों में हनुमान् या आंजनेय नामक ग्रंथकार का उल्लेख है और उनकी रचित पुस्तक से दो एक अवतरण भी दिए गए हैं। निम्नलिखित अवतरणों में हनुमान् का नामोल्लेख स्पष्ट किया गया है—

"आंजनेयो मातृगुप्तो रावणो नंदिकेश्वरः।"

—सं० र०, पृ० ६, पं० १।

"कर्ता संगीतशास्त्रस्य हनूमांश्च महाकपिः।"

—सं० पा०, पृ० १, पं० १७।

"ग्रामश्रुतिस्वरादेरनियम उक्तो हनूमताद्येन।
देशीरागे 'येषां श्रुति-स्वरादि' पद्येन॥"

—रागविबोध, पृ० २६, पं० ५।

निम्नलिखित अवतरण हनुमान् कृत ग्रंथों से उद्धृत किए गए हैं—

तथा चाह आंजनेयः—

येषां श्रुतिस्वरग्रामजात्यादिनियमो न हि।
नानादेशगतच्छाया देशीरागास्तु ते स्मृताः॥

—सं० र० कल्लिनाथ टीका, पृ० २१८, पं० ८।

अत्र आंजनेयः—

"नादाब्धेस्तु परं पारं न जानाति सरस्वती।
अद्यापि मज्जनभयात्तुंबं वहति वक्षसि॥"

—सं० द०, पृ० १४, पं० ३।

अंतिम से पूर्ववाले अवतरण में, जो भाष्यकार कल्लिनाथ ने दिया है, हनुमान् जी कहते हैं कि श्रुति, ग्राम, जाति आदि नियमों का देशी रागों से कोई संबंध नहीं है। पर देशी रागों के जो लक्षण हनुमान् जी ने बताए हैं वे प्रचलित संगीत पर घटते हैं, अतएव यह प्रचलित संगीत देशी रागों में से ही एक है। वर्तमान संगीताचार्यों के परंपरागत विश्वास पर भी इसका आधार होना संभव है।

प्रचलित पद्धति के प्रत्येक सप्तक में १२ स्वर होते हैं जिनमें षड्ज तथा पंचम अचल माने जाते हैं और ऋषभ, गांधार, मध्यम, धैवत तथा निषाद इन पाँचों स्वरों में प्रत्येक के कोमल तथा तीव्र दो दो भेद हैं, परंतु अति कोमल तथा तीव्रतर इत्यादि कोई अवांतर भेद मान्य नहीं हैं। इस कारण इस पद्धति का अनुसरण सरल हो गया और भरत मुनि की श्रुतियोंवाली व्यवस्था पीछे पड़ गई।

वर्तमान युग में श्रेष्ठ गायक-वृंद अपने परंपरागत रागों को तो गाते ही हैं, साथ ही ध्रुपद, धम्मार तथा खयाल आदि (नवीन) रचनाओं को भी गाते हैं। परंतु यदि इनकी कल्पना की खोज प्राचीन ग्रंथों में की जाय तो परिश्रम व्यर्थ ही जायगा। इसी कारण वर्तमान संगीत के सीखनेवाले को प्राचीन ग्रंथ किसी प्रकार की सहायता नहा दे सकते। भाषा के समान गायन-कला भी समयानुसार परिवर्त्तनशीला होती है। जब जब किसी भाषा में परिवर्त्तन होते हैं तदनुसार परिवर्त्तन उस भाषा के व्याकरण में भी करने पड़ते हैं। ठीक इसी प्रकार गायन-कला में परिवर्त्तन उपस्थित होने पर तत्संबंधो संगीत-शास्त्र में भी फेर-फार करना आवश्यक हो जाता है। इसी सिद्धांत को लक्ष्य करके शार्ङ्गदेव ने अपने 'संगीत-रत्नाकर' में लिखा है—

भूत हनुमान् का मत है। इस विश्वास का समर्थन प्रसिद्ध गायनाचार्य तानरस खाँ, खादिमहुसैनखाँ तथा अन्य गुणियों ने किया है। संगीत के प्राचीन लेखकों में हनुमान् भी हुए हैं। इसका प्रमाण अनेक ग्रंथों में मिलता है। 'संगीत-रत्नाकर' में तथा उस पर कल्लिनाथ-कृत भाष्य में, 'संगीत-पारिजात', 'संगीत-दर्पण', 'राग-विबोध' आदि ग्रंथों में हनुमान् या आंजनेय नामक ग्रंथकार का उल्लेख है और उनकी रचित पुस्तक से दो एक अवतरण भी दिए गए हैं। निम्नलिखित अवतरणों में हनुमान् का नामोल्लेख-स्पष्ट किया गया है—

"आंजनेयो मातृगुप्तो रावणो नंदिकेश्वरः।"

—सं० र०, पृ० ६, पं० १।

"कर्ता संगीतशास्त्रस्य हनूमांश्च महाकपिः।"

—सं० पा०, पृ० १, पं० १७।

"ग्रामश्रुतिस्वरादेरनियम उक्तो हनूसताद्येन।
देशीरागे 'येषां श्रुति-स्वरादि' पद्येन॥"

—रागविबोध, पृ० २६, पं० ५।

निम्नलिखित अवतरण हनुमान् कृत ग्रंथों से उद्धृत किए गए हैं—

तथा चाह आंजनेयः—

येषां श्रुतिस्वरग्रामजात्यादिनियमो न हि।
नानादेशगतच्छाया देशीरागास्तु ते स्मृताः॥

—सं० र० कल्लिनाथ टीका, पृ० २१८, पं० ८।

अत्र आंजनेयः—

"नादाब्धेस्तु परं पारं न जानाति सरस्वती।
अद्यापि मज्जनभयात्तुंबं वहति वक्षसि॥"

—सं० द०, पृ० १४, पं० ३।

अंतिम से पूर्ववाले अवतरण में, जो भाष्यकार कल्लिनाथ ने दिया है, हनुमान् जी कहते हैं कि श्रुति, ग्राम, जाति आदि नियमों का देशी रागों से कोई संबंध नहीं है। पर देशी रागों के जो लक्षण हनुमान् जी ने बताए हैं वे प्रचलित संगीत पर घटते हैं, अतएव यह प्रचलित संगीत देशी रागों में से ही एक है। वर्तमान संगीताचार्यों के परंपरागत विश्वास पर भी इसका आधार होना संभव है।

प्रचलित पद्धति के प्रत्येक सप्तक में १२ स्वर होते हैं जिनमें षड्ज तथा पंचम अचल माने जाते हैं और ऋषभ, गांधार, मध्यम, धैवत तथा निषाद इन पाँचों स्वरों में प्रत्येक के कोमल तथा तीव्र दो दो भेद हैं, परंतु अति कोमल तथा तीव्रतर इत्यादि कोई अवांतर भेद मान्य नहीं हैं। इस कारण इस पद्धति का अनुसरण सरल हो गया और भरत मुनि की श्रुतियोंवाली व्यवस्था पीछे पड़ गई।

वर्तमान युग में श्रेष्ठ गायक-वृंद अपने परंपरागत रागों को तो गाते ही हैं, साथ ही ध्रुपद, धम्मार तथा खयाल आदि (नवीन) रचनाओं को भी गाते हैं। परंतु यदि इनकी कल्पना की खोज प्राचीन ग्रंथों मे की जाय तो परिश्रम व्यर्थ ही जायगा। इसी कारण वर्तमान संगीत के सीखनेवाले को प्राचीन ग्रंथ किसी प्रकार की सहायता नहा दे सकते। भाषा के समान गायन-कला भी समयानुसार परिवर्त्तनशीला होती है। जब जब किसी भाषा में परिवर्त्तन होते हैं तदनुसार परिवर्त्तन उस भाषा के व्याकरण में भी करने पड़ते हैं। ठीक इसी प्रकार गायन-कला में परिवर्त्तन उपस्थित होने पर तत्संबंधी संगीत-शास्त्र में भी फेर-फार करना आवश्यक हो जाता है। इसी सिद्धांत को लक्ष्य करके शार्ङ्गदेव ने अपने 'संगीत-रत्नाकर' में लिखा है—

"यद्वा लक्ष्यप्रधानानि शास्त्राण्येतानि मन्वते।
तस्माल्लक्ष्यविरुद्धं यत्तच्छास्त्रं नेयमन्यथा॥"

—स० र०, पृ० ५१६, पं० ७।

तात्पर्य यह है कि संगीताचार्यों का यह लक्ष्य रहा है कि शास्त्र में प्रत्यक्ष संगीत का पद प्रधान रहता है। अतएव शास्त्र के प्रत्येक अंग के नियमों को नवीन भावार्थ से देखना चाहिए, और प्रचलित गायन-पद्धति के अनुसार ही उसकी शास्त्रीय परिकल्पना (नियमावली) को रखना चाहिए।

गत चार सौ वर्षों में प्रचलित संगीत-पद्धति के सगठन तथा उत्कृष्टता का श्रेय स्वामी हरिदास डागोर, तानसेन, बैजू बावरा, सदारंग, अदारंग प्रभृति अनेक प्रतिभाशाली गायनाचार्यों को रहा है और गुरु-शिष्य-परंपरा द्वारा तथा पीढ़ी दर पीढ़ी चलकर वह अद्यावधि प्रवाहित है। मेरी तुच्छ बुद्धि में तो यही आता है कि वर्तमान युग के संगीताचार्यों का कर्त्तव्य है कि शार्ङ्गदेव के कथनानुसार संगीत की प्रचलित प्रणाली के अनुकूल ही उसकी नियमावली बना दें।

प्रचलित संगीत की प्रकृति के मेरे इस थोड़े से दिग्दर्शन से यह स्पष्ट है कि श्रुति संबंधी व्यवस्था के उपयोग का समय बीत गया। फिर भी, जो सज्जन भरत मुनि के सदृश संगीताचार्यों के प्राचीन ग्रंथों के अनुसंधान में दत्तचित्त हैं उनके लिये श्रुतियों की उत्पत्ति की व्याख्या, जो ऊपर की गई है, उपयोगी सिद्ध होगी।

उपर्युक्त विवेचना में उन सब प्रश्नों का, जो आरंभ में उपस्थित हुए थे, उत्तर दे दिया गया है, तथापि ये उत्तर मनन योग्य होने के कारण इनका यहाँ सारांश देना मैं उचित समझता हूँ—

(१) अपने शुद्ध ठाट में भरत मुनि ने प्रत्येक स्वर के लिये श्रुतियों की जो संख्या नियत की है वह काफी राग के प्रचलित ठाट की

श्रुतियों से पूर्णतया मिलती है। अतएव भरत का शुद्ध ठाट काफी राग का प्रचलित ठाट ही है।

(२) भरत मुनि ने प्रथम तो एक सप्तक में २४ ही श्रुतियाँ स्वीकार की हैं जिनमें षड्ज की ४, ऋषभ की ४, गांधार की २, मध्यम की ४, पंचम की ४, धैवत की ४ तथा निषाद की २ हैं; परंतु षड्ज से निचली ऋषभ की प्रथम श्रुति तथा पंचम से निचली धैवत की प्रथम श्रुति, इन दोनों के विवादी होने के कारण उसने इनका नामकरण नहीं किया, और चूँकि शेष २२ श्रुतियाँ उपयोगी थीं, अतः उनको विविध नामों से अलंकृत करके महत्त्व दिया गया। परंतु इन दोनों विवादी निरुपयोगी श्रुतियों का कोई विशेष उल्लेख अपने ग्रंथ में न करने के कारण ये गौण रहीं, और २२ उपयोगी श्रुतियाँ ही प्रसिद्ध तथा मान्यता को प्राप्त हुईं।

(३) वास्तव में ऋषभ तथा धैवत प्रत्येक की ४—४ श्रुतियाँ थीं, परंतु दोनों की १—१ प्रथमा श्रुति निरुपयोगी होने के कारण वे गणना से वंचित रहीं, और यह प्रत्येक स्वर ३—३ श्रुतियोंवाला ही रहा। परंतु भरत के मतानुसार ९ या १३ श्रुतियों का अंतर दो संवादी स्वरों में होने के कारण इन दोनों निरुपयोगी श्रुतियों को भी गणना में लेना अत्यावश्यक है।

(४) तीव्र ऋषभ तथा तीव्र धैवत की प्रथमा विवादी श्रुति एक तथा गीतोपयोगी तीन संवादी श्रुतियाँ मिलकर प्रत्येक स्वर की ४—४ श्रुतियाँ होती हैं; और प्रचलित संगीत पद्धति के कोमल ऋषभ तथा कोमल धैवत इन स्वरों की द्वितीया श्रुति से मिलते हैं, अर्थात् भरत के मतानुसार यदि ४ के स्थान में ३ ही श्रुतियाँ मानी जायँ तो प्रत्येक स्वर की पहली संवादी श्रुति कोमल ऋषभ तथा कोमल धैवत से मिलती है।

प्राचीन संगीत की श्रुतियों की इस प्रकार व्याख्या करने का मैंने यत्न किया है।

संगीत-शास्त्र तथा वाद्यकला के हार्दिक अनुशीलन में श्रुतियों की समस्या-पूर्त्ति की लगन मुझे कई वर्षों तक रही। सन् १८८३ में भी मैं इससे अधिक आविष्कृति करने में सफल नहीं हो सका था कि भारतीय संगीत का शुद्ध ठाट प्रचलित काफी राग के ठाट से मिलता है। परंतु उसके अनंतर की, विशेषतः सन् १९३० में होनेवाली, घटनाओं ने मेरे चित्त पर इस विषय में प्रबल प्रभाव डाला और अंत में मेरे अकिंचन उद्योग को सफल किया। अपने उद्योग में सफल होने पर मुझे जितना संतोष है उससे अधिक आनंद मुझे अपने अन्वेषण का परिणाम गुणग्राहक महानुभावों के सम्मुख उपस्थित करने में मिलता है, क्योंकि परमा संतुष्टि इसी में है कि मनुष्य अपने भाइयों की जो कुछ बन पड़े सेवा कर सके।

पहला परिशिष्ट

[संकेत—दी = दीप्ता, आ = आयता, म = मध्या, क = करुणा]

षड्ज ग्राम (चल वीणा)				मध्य ग्राम (ध्रुव वीणा)			
१	तीव्रा	दी०		१	तीव्रा	दी०	
२	कुमुद्वती	आ०		२	कुमुद्वती	आ०	
३	मंदा	मृ०	स	३	मंदा	मृ०	स
४	छंदोवती	म०		४	छंदोवती	म०	
०				०			
५	दयावती	क०		५	दयावती	क०	

	षड्ज ग्राम (चल वीणा)					मध्य ग्राम (ध्रुव वीणा)			
	६	रंजनी	दी०			६	रंजनी	दी०	
	७	रतिका	मृ०	रि		७	रतिका	मृ०	रि
	८	रौद्री	दी०			८	रौद्री	दी०	
	९	क्रोधा	आ०	ग		९	क्रोधा	आ०	ग
	१०	वज्रिका	दी०			१०	वज्रिका	दी०	
	११	प्रसारिणी	आ०			११	प्रसारिणी	आ०	
	१२	प्रीति	मृ०			१२	प्रीति	मृ०	
	१३	मार्जनी	म०	म		१३	मार्जनी	म०	म
चतुःश्रुति पंचम	१४	क्षिति	मृ०		त्रिश्रुति पंचम	०			
	१५	रक्ता	म०			१४	क्षिति	मृ०	
	१६	सदीपनी	आ०			१५	रक्ता	म०	
	१७	आलापिनी	क०	प		१६	सदीपनी	आ०	प
	०					१७	आलापिनी	क०	
	१८	मदंती	क०			१८	मदती	क०	
	१९	रोहिणी	आ०			१९	रोहिणी	आ०	
	२०	रम्या	म०			२०	रम्या	म०	ध
	२१	उग्रा	दी०	ध		२१	उग्रा	दी०	
	२२	क्षोभिणी	म०	नि		२२	क्षोभिणी	म०	नि

संगीत-शास्त्र तथा वाद्यकला के हार्दिक अनुशीलन में श्रुतियों की समस्या-पूर्त्ति की लगन मुझे कई वर्षों तक रही। सन् १८८३ में भी मैं इससे अधिक आविष्कृति करने में सफल नहीं हो सका था कि भारतीय संगीत का शुद्ध ठाट प्रचलित काफी राग के ठाट से मिलता है। परंतु उसके अनंतर की, विशेषतः सन् १६३० में होनेवाली, घटनाओं ने मेरे चित्त पर इस विषय में प्रबल प्रभाव डाला और अंत में मेरे अकिंचन उद्योग को सफल किया। अपने उद्योग में सफल होने पर मुझे जितना संतोष है उससे अधिक आनंद मुझे अपने अन्वेषण का परिणाम गुणग्राहक महानुभावों के सम्मुख उपस्थित करने में मिलता है, क्योंकि परमा संतुष्टि इसी में है कि मनुष्य अपने भाइयों की जो कुछ बन पड़े सेवा कर सके।

पहला परिशिष्ट

[संकेत—दी = दीप्ता, आ = आयता, म = मध्या, क = करुणा]

षड्ज ग्राम (चल वीणा)					मध्य ग्राम (ध्रुव वीणा)			
१	तीव्रा	दी०			१	तीव्रा	दी०	
२	कुमुद्वती	आ०			२	कुमुद्वती	आ०	
३	मंदा	मृ०	स		३	मंदा	मृ०	स
४	छंदोवती	म०			४	छंदोवती	म०	
०					०			
५	दयावती	क०			५	दयावती	क०	

षड्ज ग्राम

(चल वीणा)

	६	रंजनी	दी०	
	७	रतिका	मृ०	रि
	८	रौद्री	दी०	
	९	क्रोधा	आ०	ग
	१०	वज्रिका	दी०	
	११	प्रसारिणी	आ०	
	१२	प्रीति	मृ०	
	१३	मार्जनी	म०	म
चतुःश्रुति पंचम	१४	क्षिति	मृ०	
	१५	रक्ता	म०	
	१६	संदीपनी	आ०	
	१७	आलापिनी	क०	प
	०			
	१८	मदंती	क०	
	१९	रोहिणी	आ०	
	२०	रम्या	म०	
	२१	उग्रा	दी०	ध
	२२	क्षोभिणी	म०	नि

मध्य ग्राम

(ध्रुव वीणा)

	६	रंजनी	दी०	
	७	रतिका	मृ०	रि
	८	रौद्री	दी०	
	९	क्रोधा	आ०	ग
	१०	वज्रिका	दी०	
	११	प्रसारिणी	आ०	
	१२	प्रीति	मृ०	
	१३	मार्जनी	म०	म
त्रिश्रुति पंचम	०			
	१४	क्षिति	मृ०	
	१५	रक्ता	म०	
	१६	संदीपनी	आ०	प
	१७	आलापिनी	क०	
	१८	मदंती	क०	
	१९	रोहिणी	आ०	
	२०	रम्या	म०	ध
	२१	उग्रा	दी०	
	२२	क्षोभिणी	म०	नि

दूसरा-परिशिष्ट

(चल वीणा तथा ध्रुव वीणा की २२ श्रुतियों को समझने का कोष्ठक)

	ध्रुव वीणा से १ श्रुति कम करने से स्वर को स्वर नहीं मिलता		२ श्रुतियाँ कम करने से ग तथा रि स्वरों को दो श्रुतियाँ मिलीं, नि तथा ध स्वरों को २ श्रुतियाँ मिलीं इस प्रमाण से ४ श्रुतियाँ मिलीं।		३ श्रुतियाँ कम करने से रि तथा स स्वरों को ३ श्रुतियाँ और ध तथा प स्वरों को ३ श्रुतियाँ मिलीं, इस प्रमाण से ६ श्रुतियाँ मिलीं।		४ श्रुतियाँ कम करने से म तथा ग को ४ श्रुतियाँ मिलीं, प तथा म को ४ श्रुतियाँ मिलीं और स तथा नी को ४ श्रुतियाँ मिलीं, इस प्रमाण से १२ श्रुतियाँ मिलीं।	
	चल वीणा	ध्रुव वीणा	चल वीणा	ध्रुव वीणा	चल वीणा	ध्रुव वीणा	चल वीणा	ध्रुव वीणा
४	स		स		स		स	
५		स						
६				स				
७	रि		रि		३ रि	स	रि	
८		रि						स
९	ग		२ ग	रि	ग		ग	
१०		ग				रि		
११				ग				रि
१२						ग		
१३	म		म		प		४ म	ग
१४		म						
१५				म				
१६						म		
१७	प		प		प		४ प	म
१८		प						
१९				प				

	चल वीणा	ध्रुव वीणा	चल वीणा	ध्रुव वीणा	चल वीणा	ध्रुव वीणा	चल वीणा	ध्रुव वीणा
२०	. ध	.	. ध	.	३. ध	.	. ध	.
२१	.	. ध	.	.	.	.	.	. प
२२	. नि	.	२. नि	. ध	. नि	.	. नि	..
१	.	. नि	.	.	.	. ध	.	.
२	.	.	.	. नि	.	.	.	. ध
३	.	.	.	.	.	. नि	.	.
४	. स	.	. स	.	. स	.	४. स	. नि
		. स		.		.		.
				. स		.		.
						. स		.
								. स

इस प्रकार ४, ६ और १२ मिलकर २२ श्रुतियाँ होती है।

(१०) हम्मीर-महाकाव्य

(पत्रिका भाग १२, पृष्ठ ३०६ के आगे)

[लेखक—श्री जगनलाल गुप्त, बुलंदशहर]

हम्मीर-चरित

(सर्ग ४ के श्लोक ४३ से सर्ग १३ के श्लोक २२५ तक)

जन्म—हम्मीरदेव की माता का नाम हीरादेवी था। कहते हैं कि जब वह अपनी माता के गर्भ में थे तो माता को घार बार मुसलमानों के रक्त में स्नान करने की इच्छा होती थी। जैत्रसिंह ने अपनी प्रिया महिषी की इस दौहृद-इच्छा को भी पूर्ण किया था। यथासमय हम्मीरदेव का जन्म हुआ जिससे प्रसूतागार प्रकाशित हो गया, सब दिशाएँ खिल गई एवं वायु सुख से बहने लगा। निर्मल आकाश में उस दिन सूर्य का प्रकाश भी अत्यधिक था। निस्संदेह इस शिशु के जन्म के साथ साथ पिता के हर्ष में अत्यंत वृद्धि हुई। उसने स्वर्ण की वर्षा करके माँगनेवालों की इच्छाएँ पूर्ण कीं[1]

सर्ग ४—

(१) भुंजाना भूभुजा सार्कं सा कंदर्परसं भृशम्।
शुभं गर्भं दधाति स्म विस्मयैरपदं सताम्॥ १४० ॥
स्वकराम्भोजकीनाशदासीकृतशकासृजा।
गर्भानुभावतो राजपत्नी सिस्नासति स्म सा॥ १४१ ॥
मदपुंलमनः प्रेयः पूरितोद्दामदौहृदा।
समये सुषुवे सूनुं सा श्रीरिव सुमायुधम्॥ १४२ ॥
अभ्युद्यतसहस्रार्कमिवासीत्सूतिकागृहम्॥ १४४ ॥

यह बालक दिन दिन, शुक्लपक्ष के चंद्रमा की तरह, बढ़ने लगा। समय आने पर पिता ने योग्य गुरुओं को शिक्षा के लिये नियत कर दिया; फलतः कुमार केवल कुछ ही दिनों में सब प्रकार के शस्त्र और शास्त्रों का अभ्यास करके उनके रहस्यों को जान गया।

युवा होने पर सात सुंदर कन्याओं के साथ जैत्रसिंह ने हम्मीर का विवाह किया। राजा जैत्रसिंह हम्मीरदेव तथा शेष दो कुमारों को अपने साथ राजकाज में लगाकर उन्हें राजनीति का अभ्यास कराते थे। जब जैत्रसिंह ने इनको राज-भार सँभालने के योग्य हुआ देखा तो शुभ मुहूर्त्त में—संवत् १३३९ वि० की पौष शुक्ला पौर्णिमा, रविवार, मेष लग्न में (सूर्योदय से १६ घड़ी ३० पल से २० घड़ी तक) तदनुसार ११ रमजान सन् ६८१ हिजरी या १६ दिसंबर सन् १२८२ ईस्वी को—यथाविधि युवराज हम्मीरदेव का राज्याभिषेक किया तथा स्वयं चंबल नदी के तट पर श्री-आश्रम-पत्तन में वानप्रस्थ-आश्रम धारण कर आत्म-चिंतन में दिन बिताने लगे[1]। इस अवसर पर जैत्रसिंह ने राजकुमार को एक अति सुंदर राजनीतिक उपदेश दिया जिसे कवि

दिशः प्रसादमासेदुः सुखसेव्यो ववौ मरुत्।
नभो निर्मलतां भेजे दिनकृद्द्युतितमाम्॥ १४५॥
तज्जनौ स्वर्णधाराभिरवर्षद्भूपतिस्तथा।
मूलतोऽपि यथा शुष्यदर्थिशेरवचासकः॥ १४७॥

सर्ग ८—

(१) हम्मीरदेवाय वितीर्य राज्यं मदाग्रिसेवानिरतो भवेति।
स्वप्ने निशान्ते शयितं निशान्ते मामाह विष्णुः करवै किमार्य॥२४॥
निरुत्तरीकृत्य ततो हठेनानिच्छन्तमप्येनमतुच्छचित्तम्।
हम्मीरदेवं नृपतिर्वलक्ष्मीममीमनच्छातुमिलाविलासी॥ २५॥
ततश्च संवत्सरवह्निवह्निभूहायने माघवलक्षपक्षे।
पौष्यां तिथौ हेलिदिने सपुष्ये दैवज्ञनिर्दिष्टबलेऽलिलग्ने॥ २६॥
पुरा पुरोधास्तदनु क्षितीन्दुर्भूपास्ततोऽन्ये सचिवास्ततश्च।
ततो महेभ्यास्तदनु प्रजाश्च तस्याभिषेकं स्वयमन्वभूवुः॥ २७॥

ने ३२ श्लोकों में अंकित किया है (सर्ग ८, श्लोक ७३-१०५)। नीति के दो चार वाक्य उद्धृत करने का प्रलोभन न रोक सकने के लिये हम पाठकों से क्षमा चाहते हैं।

जैत्रसिंह का राजनीतिक उपदेश[1]

राजा को उचित है कि अत्यंत महान् साम्राज्य को पाकर भी विनय का त्याग न करे, क्योंकि अविनीत मनुष्य राजा बृहद्भानु की तरह कुल समेत नष्ट हो जाते हैं ॥७४॥

जो मनुष्य शक्ति-संपन्न होकर भी अपनी शक्ति का प्रकाश नहीं करते उनका सदा ही अपमान होता रहता है; क्या गोबर की अग्नि को सब कोई इसी लिये उपेक्षापूर्वक नहीं लाँघ जाते कि वह राख में छिपी रहती है ॥ ७६ ॥

शक्तिमान् राजा को उचित है कि सदैव पराक्रमशील बने; क्या तिर्यग्योनियों में भी केवल पराक्रम से ही सिंह 'मृगेंद्र' नहीं बना हुआ है? ॥ ८१ ॥

किंतु, बिना नीति के प्रयोग की हुई शक्ति भी सफल नहीं होती; क्या सिंह भी बिना दाँव-घात (छल) किए हाथी को मार सकता है? ॥ ८२ ॥

दत्वेति शिक्षां शुभवद्दसण्यां गेहे च देहे च निरीहचित्तः।
जैत्रप्रभुः स्वात्महितं चिकीर्षन् श्रीआश्रमं पत्तनमन्वचालीत् ॥१०६॥
मज्जच्छचीदग्युगलाकुचेलविष्वग्गलत्कज्जलमेचकाम्बु।
चर्मण्वती यत्र सरिद्वहंती पुण्यश्रियो वेणिरिवाविभाति ॥ १०८ ॥

(१) साम्राज्यमासाद्य महत्तमेपु स्म विस्मरो मा विनयं नरेश।
पुमान् बृहद्भानुरिवाविनीतः कुलस्य सर्वस्य विनाशहेतुः ॥७४॥
शक्तोऽपि देह्यप्रकटीकृतात्मशक्तिः पराभूतिपदं सदैव।
कारीषवह्निर्यद वत्स कस्य कस्याशु न स्यादतिलंघनीयः ॥ ७६ ॥
शक्तिं समासाद्य सदोद्यतेन कार्या मतिर्विक्रम एव पुंसा।
तिर्यक्षु भूरिष्वपि पश्य सिंहः पराक्रमादेव न किं मृगेन्द्रः ॥ ८१ ॥
नये धियं सम्यगनासयित्वा युक्तः प्रयुक्तो न पराक्रमोऽपि।
छलावलम्बेन विनैव तावत् सिंहोऽपि हन्तुं प्रविशेदिभं किम् ॥८२॥

जहाँ केवल बुद्धि से काम हो सकता है वहाँ बल का तनिक भी प्रयोग न करे; देखो कामदेव ने महादेव पर केवल पुष्प-प्रहार करके ही, अपनी क्या दशा कर ली थी ? ॥ ८३ ॥

चोर-उचक्कों को इसी लिये पकड़ना उचित है कि ऐसा करने से प्रजा के ऐश्वर्य में वृद्धि होगी एवं उसे सुख प्राप्त होगा जिससे राज-कोष में भी उन्नति होगी। माली भी तो उद्यान में तभी फूल चुनने का अवसर पा सकता है जब वह लताओं को झाड़-झंखाड़ से बचाता है। ॥ ८७ ॥

जिसने कभी राज्य स्थापित ही न किया हो वह प्रजा के सुख-दुःख के भाव क्या समझ सकता है ? किंतु जिसने ग्राम और नगर बसाए हैं, राज्य स्थापित किए हैं वही प्रजा के सुख-दुःख की बात समझ सकता है। सच है, वंध्या गर्भ-धारण या प्रसव की पीड़ा क्या जाने ! ॥ ८८ ॥

प्रजोत्पीड़न और अपने कुलवालों से विरोध, जो राजा इन दो चक्की के पाटों के बीच में आ गया वह अवश्य पिसकर अन्न की तरह चूर्ण हो गया। वह उस अन्न की तरह न तो फिर उग सकता है और न जीवित रह सकता है। ऐसा राजा कदापि नहीं उभर सकता ॥ ९१ ॥

बुद्ध्यैव सिद्धिर्यदि तत्र पुष्पैरपि प्रहर्त्तव्यविधिर्विधेयः ।
पश्य प्रसूनैरपि युध्यमानः स्मरो हरात्कां गतिमाससाद ॥ ८३ ॥
यथा न पीडा भवति प्रजानां ग्राह्यस्तथा धीधन तस्करोऽपि ।
किं नाम पुष्पाणि चिनोति पुष्पलावी लतानां जनयन्विबाधाम् ॥८७॥
निवासिता येन स एव वेत्ति प्रायः प्रजानां सुखदुःखभावम् ।
वंध्या विजानाति किमङ्ग गर्भप्रपोषणं वा वहनक्लमं वा ॥ ८८ ॥
प्रजासु पीडा स्वकुले विरोधः पषद्द्वयं पेषणयंत्रमस्मिन् ।
चूर्णीकृतं धान्यमिव प्ररोढुं पुनर्न राज्यं समुपैति शक्तिम् ॥ ९१ ॥

जो राजकर्मचारी स्वामी को धोखा देकर अपना पेट भरें उनकी उपेक्षा करना उचित नहीं है। क्या चतुर किसान अपने खेत की फसल को बचाने के लिये पौदों की खुराक से अपने आपको पुष्ट करनेवाले तृण आदि को स्वयं ही निराकर नहीं फेंक देता ? ॥ ९२ ॥

राजा माता की नाईं प्रजा की भलाई करनेवाला होता है किंतु राजकर्मचारी-वर्ग (Beaurocracy) सौतेली माँ की तरह प्रजा के साथ वर्ताव करता है; इसलिये उस प्रजा की भलाई और रक्षा किस प्रकार संभव हो सकती है जो बिलकुल राजकर्मचारी-वर्ग के सुपुर्द कर दी गई हो ? ॥ ९३ ॥

अपने से अधिक कुलीन व्यक्ति को राज-सेवा में कदापि न रखे क्योंकि वह तो जड़ ही जड़ में बढ़कर राज्य-प्रासाद के मूल को खोखला करके नष्ट कर देता है। वह राजा को भी अपने पीछे डाल देता है ॥ ९४ ॥

शत्रु से पराजित होने पर यदि बुद्धिमान् पुरुष फिर अपना अभ्युदय चाहे तो उसे स्वदेश नहीं छोड़ना चाहिए क्योंकि स्वदेश में रहने की दशा में ही उसे उन्नति करने का अवसर मिलना संभव है। सूर्य द्वारा हीन-प्रभ किए जाने पर भी चंद्रमा आकाश को नहीं छोड़ता। तभी तो उसे फिर आकाश में पूर्ण रूप से प्रकाशित होने का अवसर मिलता है ॥ ९५ ॥

मातेव राजा हितकृत् प्रजानां मातुः सपत्नीव नियोगिवर्गः ।
तस्यार्पितानां च करे तदस्याः क्व वृद्धिरासां क्व च जीवितव्यम् ॥९३॥
स्वतः कुलीनोप्यधिको विधेयो राज्ञानुजीवी न कदाचिदेव ।
यतो जडात्मा वटवत्प्रवृद्धः स राज्यसौधस्य विनाशहेतुः ॥ ९४ ॥
प्राज्ञः सपत्नैः परिभूयमानोऽप्युदीपिपन् न त्यजति स्वदेशम् ।
दिवाकराघ्लुसकरोप्यनुयन् नभः शशांकः पुनरभ्युदेति ॥ ९५ ॥

जो जिसमें अनुरक्त या विरक्त होता है, उसके विषय में उसकी विवेचना-बुद्धि नहीं रहती। इसलिए बुद्धिमान् मनुष्य को ऐसे व्यक्ति की सलाह के अनुसार उसके संबंध में कार्य करना उचित नहीं है ॥ ९८ ॥

बहुत से विद्वान् मनुष्यों की भिन्न भिन्न मंत्रणाएँ भी अच्छी नहीं होतीं। जिस प्रकार अनेक दाइयों के बहुत से हाथों के कारण गर्भ और प्रसूता दोनों का जीवन संकटमय बन जाता है, उसी प्रकार अनेक मंत्रियों के हाथ में पड़कर कार्य नष्ट हो जाता है ॥ ९९ ॥

जिसे पहले किसी अपराध में दंड दिया जा चुका हो, उसे फिर कभी प्रधान पद न दे, क्योंकि ऐसे मनुष्य हृदय में गुप्त द्वेष रखकर छलपूर्वक द्रोह करते हैं ॥ १०१ ॥

दंडित मनुष्य युगांतर में भी अपने हृदय से विरोध को नहीं भुलाता। आज भी तो राहु और केतु सूर्य और चंद्रमा को, पुराना वैर याद करके, ग्रसते हैं ! ॥ १०२ ॥

जैत्रसिंह की मृत्यु

इस प्रकार पुत्र को उपदेश देकर राजा जैत्रसिंह वन को चले गए। दैवयोग से वहाँ उसे लूता ने काट खाया जिससे राजा का

यो यत्र रक्तो यदि वा विरक्तो भावे विवेको नहि तस्य तत्र।
अतो न तन्मंत्रविधौ विधेया शिक्षा तदीया सुविचक्षणेन ॥ ९८ ॥
मंत्रान्बहूनामपि धीसखानां श्रेयस्तरान्नैव वदन्ति संतः।
गर्भस्य मातुश्च कुतः शिवाय करा बहूनां बत सूतिकानाम् ॥ ९९ ॥
विराद्धपूर्वः पुरुषः प्रधानपदे कदाचिन्न पुनर्विधेयः।
तादृक्छलं प्राप्य तथाविधा हि द्रुह्यन्ति नूनं धृतगुप्तवैराः ॥ १०१ ॥
पुमान् विराद्धो विजहाति नैव धीमन् युगान्तेऽपि विरोधभावम्।
अद्यापि पश्यार्यमणं विधुं वा तुदन्निवर्तेत विधुंतुदो न ॥ १०२ ॥

देहांत हो गया। हम्मीर के पितृ-शोक के साथ साथ आठवाँ सर्ग समाप्त होता है।[1]

हम्मीरदेव की दिग्विजय

हम्मीरदेव ने षड्गुण और तीन शक्तियों से अपने आपको पूर्णतया युक्त देखकर दिग्विजय के लिये यात्रा की और सबसे पहले अर्जुनदेव की राजधानी भीमरसपुर पर आक्रमण किया। राजा अर्जुनदेव ने अधीनता स्वीकार की और उससे कर लेकर वह धारा नगरी पर चढ़ा। यहाँ का राजा परमार भोज था जो प्रसिद्ध भोज की नाईं विद्या-प्रेमी और विद्वानों का सत्कार करनेवाला था। उसे परास्त करके हम्मीरदेव ने अवंति पर चढ़ाई की जहाँ शिप्रा नदी बहती है। यहाँ उसकी सेना ने कुछ समय के लिये आराम किया। यहीं राजा ने महाकाल की पूजा की। विशाला अर्थात् उज्जयिनी में उसका इतना प्रभावशाली जुलूस निकला कि उसने विक्रमादित्य को भी भुला दिया। यहाँ से चित्रकूट (चित्तौड़) पर आक्रमण करता हुआ वह मेदपाट अर्थात् मेवाड़ पर जा पहुँचा। फिर वह आबू पहाड़ (अर्बुद गिरि) पर गया। वह यद्यपि स्वयं जैन नहीं था, तो भी यहाँ उसने भी ऋषभदेव के दर्शन किए तथा श्री वस्तुपाल के कीर्तन में सहयोग दिया और कुछ समय तक वशिष्ठाश्रम में रहकर मंदाकिनी में स्नान किया एवं श्री अचलेश्वर की पूजा की। अर्बुदेश्वर एक प्रसिद्ध योद्धा था किंतु उसे भी हम्मीर के अधीन होना

---

(१) हम्मीर-महाकाव्य के अनुसार हम्मीरदेव का शासन-काल संवत् १३३९ से आरंभ होता है, किंतु प्रबंध-चतुर्विंशति में संवत् १३४२ से उसका राज्य करना लिखा है। इसका अर्थ केवल यही जान पड़ता है कि जैत्रसिंह के वानप्रस्थ का समय ३ वर्ष होगा और प्रबंध-चतुर्विंशति के लेखक ने इस काल को भी जैत्रसिंह के शासन में मिलाकर हम्मीरदेव को ३ वर्ष तक युवराज स्वीकार किया है।

पड़ा। यहाँ से चलकर उसने क्रम से वर्धनपुर, चंगा और पुष्कर जीते। पुष्कर में उसने वराह भगवान् की पूजा की।

इसी प्रकार शाकंभरी, महाराष्ट्र, खंडिल्ल, चंपा और ककराल (काँकरौली) के अधिपतियों को परास्त करके हम्मीर अपनी राजधानी को वापिस आया। इस अवसर पर उसके धर्मसिंह आदि अमात्यों ने उसका स्वागत करने के लिये नगर को खूब सजाया और बड़े उत्साह के साथ राजा ने नगर में प्रवेश किया।

एक बार राजा ने अपने पुरोहित विश्वरूप से कोटियज्ञ के फल का माहात्म्य सुनकर उसके करने की तैयारी की। दूर दूर से विद्वान् ब्राह्मणों ने आकर उस यज्ञ को सफलतापूर्वक कराया एवं राजा ने बड़ी बड़ी दक्षिणाएँ देकर उनका सम्मान किया।[1] अंत में राजा ने एक मास का मुनिव्रत धारण किया[1]।

हम्मीर की दिग्विजय; सर्ग ६—

(१) अथास्य पड्गुणास्तिस्रः शक्तीर्भूपस्य बिभ्रतः।
दिग्जययानपायाय स्पृहयालु मनोऽभवत्॥ १॥
परः सहस्रैर्गन्धर्वैः परो लक्षैश्च पत्तिभिः।
क्रमात्क्रामन्धरां धीरो प्रापद्भीमरसं पुरम्॥ १५॥
तत्र श्रिताभ्यमित्रत्वं गर्जदर्जुनभूपतिम्।
कुट्टयित्वासिदंडेन स्वनिदेशवशं व्यधात्॥ १६॥
ततो मण्डलकृद्दुर्गात् करमादाय सत्वरम्।
ययौ धारां धरासारां वारांराशिर्महौजसाम्॥ १७॥
परमारान्वयप्रौढो भोजो भोज इवापरः।
तत्राम्भोजमिवानेन राज्ञा म्लानिमनीयत॥ १८॥
ततोऽतिबलभारेण कासारितमहीतलः।
व्यधादवन्तीं दन्तीन्द्रमदाक्रान्तकाननाम्॥ १९॥
शिप्रां विप्राञ्जलित्यक्तैः सिक्त्वमां पयःकणैः।
दृष्ट्वा तस्याऽभवन् सैन्याः सज्जा मज्जनहेतवे॥ २०॥

दिल्ली के सुलतान की चढ़ाई

इधर दिल्ली में अल्लावदीन (अलाउद्दीन खिलजी) राज्य कर रहा था। हम्मीर के मुनिव्रत धारण करने का समाचार सुनकर उसने

....
तत्रानर्च महाकालं कालं दुष्कर्मवैरिणाम् ॥ २४॥
प्रविश्य मध्ये मेध्यश्रीविशालां तां निभालयन् ।
नैकशो विक्रमादित्यं सस्मार स्मेरविक्रमः ॥ २५ ॥
विनिवृत्तस्ततो विश्वां विश्वां स्वैरवर्तिनीम् ।
सृजन् शौर्यवतां धुर्यश्चित्रकूटमकुट्टयत् ॥ २६ ॥
ततः स्फुटं नटन्मेदपाटपाटनपाटवे ।
प्राप्यार्बुदाद्रिं सान्द्रश्रीस्तत्रावासान्व्यवेशयत् ॥ २७ ॥
वसतौ विमलास्मायं विमलस्याऽर्षभमभुम् ।
ननाम नोत्तमानां हि चित्ते स्वपरकल्पना ॥ ३४ ॥
तत्र श्रीवस्तुपालस्य कीर्तनं कलिकर्त्तनम् ।
दृष्ट्वासौ विस्मितो नैकवेलं मौलिमकम्पयत् ॥ ३५ ॥
मन्दाकिन्यां विधायोच्चैः स्नपनं शमनं रुजाम् ।
अपूजयज्जगत्पूज्यमथासावचलेश्वरम् ॥ ३७ ॥
ततोवतीर्य वर्यश्रीर्निर्धनं वर्धनं पुरम् ।
चंगामपि गलद्रंगां चक्रे चक्रिविक्रमः ॥ ४० ॥
अजयोपपदं मेरुं मध्ये कृत्य स कृत्यवित् ।
पुष्करं तीर्थमासाद्य दुष्करं पुण्यमर्जयत् ॥ ४१ ॥
आनर्च भूपस्तत्रादिवराहाख्याधरं हरिम् ।
चित्रं दशावतारोपि न यो दाहारमतां गतः ॥ ४२ ॥
ततः शाकम्भरीद्वारि वारस्त्रीवारलोचनैः ।
अभूत्प्रिपीतलावण्यसर्वस्वो वसुधेश्वरः ॥ ४४ ॥
मरुराष्ट्रं महाराष्ट्रं खड्डिल्लं खण्डितप्रभम् ।
चंपां च विस्फुरत्कम्पां भूपस्तदनु तेनिवान् ॥ ४६ ॥
ककरालं करालश्रि कृत्वाथास्यात्र तस्थुषः ।
श्रीमांस्त्रिभुवनादीन्द्रो मिलद्दत्तमदोपदः ॥ ४७ ॥

अपने भाई उलगखाँ से कहा—"रणस्तंभपुर का राजा जैत्रसिंह पहले डर के कारण राजकर भेजा करता था, वह अपने को हमारे अधीन समझता था; किंतु उसका लड़का हम्मीर तो राजकर भेजना अलग रहा, हमारी बात भी नहीं पूछता। सामान्यत: तो उस पर विजय पाना कठिन है, किंतु आजकल उसे सरलता से ही परास्त किया जा सकता है क्योंकि वह इस समय व्रत धारण किए हुए है। इसलिये तुरंत वहाँ जाओ और उसके राज्य को नष्ट-भ्रष्ट कर दो[१]।

घत्तस्प्वपि दिक्ष्वेवं स्वाज्ञां राज्ञां स मौलिषु।
मौलिलीलायितां बिभ्रन् स्वपुरोपान्तमासदत् ॥ ७८ ॥

यथा—

कोटियज्ञफलं राज्ञा पृष्टोऽन्येद्यु: पुरोहितः।
विश्वरूपाख्ययाख्यातो व्याचख्याविति तं पटुः ॥ ७६ ॥
जित्वा भुजबलेनोर्वीं कोटियज्ञं यथोदितम्।
निर्मिमाणो नृपः प्रीतिपात्रं स्यात् त्रिदिवश्रियाम् ॥ ७७ ॥
इति स्मृतिसुधांभोधिच्छटाच्छोटपटुच्छविम्।
निशम्य तद्गिरं भूपस्तं क्रतुं कर्त्तुमैहत ॥ ७८ ॥
रत्नराशिप्रदं केचित् केचित्पुष्कलनिष्कदम्।
गजदं वाजिदं केचित् श्रीहम्मीरं तदास्तुवन् ॥ ६६ ॥
ततः पुरोहितेनाभियुक्तो युक्तं पुरोहितम्।
आददे नृपतिः प्रीतो मासमेकं मुनिव्रतम् ॥ ६६ ॥

(१) इतश्च शत्रुहृद्भल्ल्यां दिल्ल्यां शकमतल्लिका।
बभूवाल्लावदीनाख्यो ख्याख्यः शौर्यवतां धुरि ॥ १०० ॥
ज्ञातभूपस्वरूपेण तदा तेन स्वसोदरः।
उल्लूखानाख्यया ख्यातो जगदे जगदेकजित् ॥ १०१ ॥
रणस्तम्भपुराधीशो जैत्रसिंहोऽभवत्पुरा।
प्रददौ स सदा दण्डं मम चण्डौजसो भयात् ॥ १०२ ॥
हम्मीरनामा तत्सूनुरधुनाऽखर्वगर्ववान्।
दण्डं दूरत एवास्तु न वाक्यमपि यच्छति ॥ १०३ ॥

सुल्तान की आज्ञा से उलगखाँ ८०००० सेना लेकर रणस्तंभपुर को चला। वर्णशा (बनास) नदी पर पहुँचने पर उलगखाँ को पता लगा कि आगे बढ़ने के लिये रास्ता नहीं है, अतः वह वहीं रुककर कुछ दिनों तक ग्राम आदि जलाता रहा। यह सब वृत्तांत ज्ञात करके व्रतस्थ राजा स्वयं तो युद्ध-स्थल में नहीं आया, किंतु उसने अपने सेनापति-भीमसिंह और धर्मसिंह को सेना देकर भेज दिया।

भीमसिंह और धर्मसिंह ने पहुँचकर शत्रु की सेना को मार-पीटकर छिन्न-भिन्न कर दिया और उसका बहुत सा सामान छीन लिया। भीमसिंह—स्वयं सेना के पीछे रहकर और धर्मसिंह को सेना के बड़े भाग के साथ, लूट के माल समेत, आगे रखकर—विजय-वैजयंती उड़ाता रणस्तंभपुर को लौटता हुआ अद्रिघट्टिका में पहुँचा।

इधर उलगखाँ अपनी सेना के साथ छिपकर राजपूत सेना के पीछे लगा आ रहा था और उसने अपनी शेष सेना की छोटी छोटी टुकड़ियाँ बनाकर उन्हें संकेत दे दिया था कि जहाँ कहीं वे अपने बाजे का शब्द सुनें वहीं अपनी जीत समझकर सब टूट पड़ें। अद्रिघट्टिका में ज्यों ही भीमसिंह ने प्रवेश किया त्यों ही उलगखाँ ने, अपनी सेना को संकेत देकर, भीमसिंह पर आक्रमण कर दिया। इस समय धर्मसिंह सेना के प्रधान भाग के साथ बहुत आगे निकल चुका था। भीमसिंह इस विषम युद्ध में लड़ता हुआ मारा गया और पराजित यवन पुनः विजयी बनकर दिल्ली को लौट गया।[1]

स महौजस्तया शक्यो जेतुं नाभूदियच्चिरम्।
यतेस्त्वियदीत्तयेदानीं लीलयैव विजीयते ॥ १०४ ॥
तद्गत्वास्यारणस्तम्भतलं देशं विनाशय।
हते देशे स सैस्यात्तु सासहिः कति वासरान् ॥ १०५ ॥
(१) इत्यवाप्य प्रभोराज्ञामुल्लूखानोत्यमर्षणः।
मतस्येंटायुतीमानाम्यचारस्फारविक्रमः ॥ १०६ ॥

हम्मीरदेव ने, व्रत पूर्ण होने पर, धर्मसिंह को ही भीमसिंह का घातक समझा तथा उससे कहा—"क्या तू अंधा था जो शक सेनापति तुझे दिखाई न दिया ? निस्सन्देह यह तेरी मर्दानगी नहीं है कि इस प्रकार आगे भाग आया।" इतना कहकर राजा ने उसे अंधा कर दिया एवं देश-निर्वासन की दंडाज्ञा दी। किंतु राजा के भाई भोज ने स्वयं बीच में पड़कर राजा को शांत किया और धर्मसिंह को क्षमा

क्षुभयन् बलभारेण फटाटोपं स वासुकेः ।
प्रवेष्टुमघमोम्य तर्वर्धनाशातटे स्थितः ॥ १०८ ॥
ज्वालयन्नुद्वसान् ग्रामान् आर्द्रबलाश्च चारयन् ।
आसन्नाधादशान् घस्रान् सुखेनैवोत्स्यवाहयत् ॥ १०९ ॥
विशुद्धयात्तव्रतत्वेन जोषं तस्थुषि भूपतौ ।
भीमसिंहोथ सेनानीर्धर्मसिंहधियोद्धुरः ॥ ११० ॥
तत्कालसमरोत्तालवीरवाराकुलं बलम् ।
सहादाय महावीर्यश्चचालारिबलं प्रति ॥ १११ ॥
दुर्गं भंक्त्वा शतानीकं भीमसिंहो न्यवर्त्तत ।
अनुव्रतस्थे प्रच्छन्नमुल्लूखानोऽप्यमर्षणः ॥ १४३ ॥
बाहुजा लुंठितानेकस्वर्णकोटीरकंकटाः ।
जितकाशितया भीमं पश्चात्त्यक्त्वाऽगमन्पुरः ॥ १४४ ॥
अद्रिघट्टान् विशन् भीमसिंहोपि परया मुदा ।
आच्छिद्य स्वीकृतान्युच्चैः शकवाद्यान्ययीवदन् ॥ १४५ ॥
यत्र यत्र स्वकातोद्यनिर्घोषः प्रसरत्परम् ।
तत्र तत्र जयं मत्वा गन्तव्यं निखिलैरपि ॥ १४६ ॥
इति संकेतनाक्रान्ता मन्वाना जयमात्मनः ।
तदाभाव्यर्थभावेन मिमिलुर्यवना जवात् ॥ १४७ ॥
मिलितं स्वबलं वीक्ष्य शको योद्धुमढौकत ।
वबले भीमसिंहोपि तादृशाः किमु कातराः ॥ १४८ ॥
तत्र कृत्वा महायुद्धं शकान् हत्वा परः शतान् ।
काण्डखण्डितसर्वांगो भीमसिंहो व्यपद्यत ॥ १४९ ॥

करा दिया।[1] धर्मसिंह का पद उससे छिन गया और भोजदेव उसके स्थान पर नियत किया गया। इससे पूर्व भोजदेव खड्ग-ग्राही था।[1]

इस प्रकार अपमान सहकर धर्मसिह अपने घर बैठ गया, किंतु उसके हृदय में यह काँटा खटकता रहा। उसने धारादेवी को नृत्य-कला की शिक्षा देकर राजा के दर्बार में भेजना आरंभ किया और उसके द्वारा वह वहाँ के सब समाचार ज्ञात करता रहा। एक दिन धारादेवी को चिंतित जानकर उसने उसकी चिंता का कारण पूछा। धारादेवी ने कहा—"आज राजा ने गीत-नृत्य आदि ध्यान से नहीं सुना। क्योंकि राजा का हृदय घोडों के वेध रोग से अधिक सख्या में मर जाने के कारण चिंतित था।"

धर्मसिह ने धारादेवी के द्वारा राजा को सूचना दी कि यदि उसका पूर्वपद उसे फिर दे दिया जाय तो मरे हुए घोडों से दूनी सख्या में वह और घोडे राजा को भेंट कर सकता है।

राजा लोभग्रस्त हो गया। उसने पूर्व-वैर और अपने पिता की राजनीति की शिक्षा को भुलाकर धर्मसिह को उसका पूर्वपद दे दिया।

जितकाशी शकेन्द्रोऽपि शिबिरं प्राप्य सत्वरम्।
घाट्टजेभ्य पुनर्बिभ्यत् चचले स्वपुरं प्रति ॥ १५० ॥

(१) अथ पूर्णव्रतो धर्मसिंह मत्याद्विघट्टकान्।
हित्वाऽज्ञात नृपो भीमसिंह मत्वा तमाह्वयत् ॥ १५१ ॥
स्फुरिते त्वदृशौ नूनं यत्नादर्शि शको वशी।
स्वयं पश्चाद्यदस्यासीत्तत् पुंस्त्वमपि त्वयि ॥ १५२ ॥
साक्रोशमित्युपालभ्याभिसभ्यं भूपतिर्मुहुः।
मुष्कयुग्मच्छिदा पूर्वं तद्दृशौ निरचीकसत् ॥ १५३ ॥
षण्ढोऽविंदुरवत्तस्य राज्ञोऽभूदनुगो जयी।
भोजदेवाभिध खड्गग्राहीत्यपरनामभाक् ॥ १५४ ॥
धर्मसिंहपद तस्मै तुष्टोऽथ प्रददे नृप।
तं च निर्वासयन् देशादमुनैव न्यपिप्यत ॥ १५५ ॥

प्रतिहिंसा के भावों से उत्तप्त हृदयवाले धर्मसिंह ने धन-दान से राजा को अंधा करके अब प्रजा को पीड़ित करके लूटना आरंभ किया। प्रजा पर किए गए उसके सब प्रकार के अत्याचारों के प्रति राजा अनजान बन गया। उसने भी शीघ्र ही राजकोष को भरकर हम्मीरदेव के हृदय पर एकाधिपत्य प्राप्त कर लिया।

अब उसने भोजदेव से भी जवाब तलब करने आरंभ कर दिए। भोजदेव ने जब राजा से इस अनुचित व्यवहार के विषय में शिकायत की तब उसने भोज को बड़ा असंतोषप्रद उत्तर दिया। राजा ने कहा—"जिस धर्मसिंह ने मुझमें अपनी राजभक्ति इस पिछले अवसर पर भी स्थिर रखी उसका शासन अब नष्ट नहीं किया जा सकता। फिर तुम मेरे अनुजीवी हो, अतः जिसका आदर मैं करूँ उसका तुम भी आदर करो। क्या शंकर के नांदी की पूजा शंकर की पूजा करने के कारण ही मनुष्य नहीं करते!" राजा के इन वाक्यों और उसकी भाव-भंगी से भोजदेव ने वस्तुस्थिति को जान लिया। धर्मसिंह की प्रेरणा से उसका सर्वस्व छीन लिया गया तो भी वह विरक्त भाव से राजा की सेवा में रहने लगा। शीघ्र ही एक घटना और हुई। हम्मीरदेव बैजनाथ की यात्रा को गए थे। वहाँ भोजदेव भी उनके साथ था। राजा ने अन्योक्ति द्वारा एक कौए को संकेत करके कहा—"अनेक प्राणी संसार में क्षुद्र गिने जाते हैं किंतु कौए से नीच कोई नहीं होता जो चतुर, किंतु क्रोधी उलूक द्वारा अनेक चोटें खाने पर अपने संपूर्ण पंख खोकर भी पुराने वृक्ष को नहीं छोड़ता।"

भोजदेव इसे न सह सका। वह क्रोध में भरकर घर आया और अपने भाई पीथसिंह को सब वृत्तांत सुनाकर बोला—"राजा दूसरों के कहने में आकर बहक गए हैं। अब उनका मन बिगड़ चला है। हम यद्यपि सेवा करके ही संतुष्ट रहना चाहते हैं किंतु

राजा अब हमें तृण समान भी नहीं समझते। अतः आओ, कुछ समय के लिये यात्रा के बहाने से कहीं बाहर कालक्षेप कर आवें।"

दोनों भाई इस पर एकमत होकर हम्मीर के पास गए और निवेदन किया कि यदि आज्ञा हो तो काशी की यात्रा करने को चले जायँ। राजा ने इस अवसर पर भी बड़ा कड़ा उत्तर दिया। उसने कहा, "जाइए, बल्कि काशी से भी और आगे जाइए। निश्चय रखिए कि आपके बिना भी राजधानी की शोभा वैसी ही बनी रहेगी।"

दोनों भाई, इसके पश्चात् राजा से असंतुष्ट होकर, काशी को चले आए। राजा ने भोज के स्थान पर रतिपाल को दंडनायक नियत कर दिया[1]।

---

(१) अथापमानात्सोम्ब्येत्य गुप्तवैरः स्वमन्दिरम्।
अधीतीभरते धारां देवीं नृत्यमशिचयत्॥ १५६॥
तां च प्रेष्यानिशं नृत्यैर्द्रष्टुलांस्पार्थिवपर्षदि।
वेश्मस्थोऽपि विदामास स सर्वां नृपतिस्थितिम्॥ १५७॥
चिंताचितांगी सान्येद्युरागता नृपपर्षदः।
पृष्टान्येन जगौ चिन्ताकारणं हृद्विदारणम्॥ १५८॥
ताताद्य वेधरोगेण मृताऽश्वश्रयाद्विभोः।
प्रीत्यै न गीतनृत्यादि चिंता तेनेयमुल्बणा॥ १५९॥
श्रुत्वेत्यसाविमामाह चिंता मास्स कृथा वृथा।
तं प्रासावसरं किन्तु पार्थिवं प्रार्थयेरिति॥ १६०॥
आसादयते विभो धर्मसिंहश्चेत् स्वपदं पुनः।
मृतेभ्यो द्विगुणानश्वान्तदसावानयेत्पुनः॥ १६१॥
ओमिति प्रतिपद्यैषा गता राज्ञे तदूचिषी।
सोमात्सोप्यन्धमाहूयाध्यकार्पीत्स्वपदे पुनः॥ १६२॥
प्रचिकीर्षुस्तथामर्षादंधो वैरप्रतिक्रियाम्।
चक्रे तद्राज्यमुच्छेत्तुं स उपायान्दुरायतान्॥ १६६॥
लोभदृष्टिं नृपं कृत्वा द्रविणादानवर्त्मना।
स प्रजाः पीडयामास चंडदंडप्रपातनैः॥ १६७॥

भाई से इस प्रकार तिरस्कृत होकर भोजदेव अपने भाई पीथम और कुटुंबियों समेत रणस्तंभपुर से चलकर सिरोही (शिरोह) में आ

गृह्णन्स्वधनेभ्योऽश्वान् धनवद्भ्यो धनानि च ।
क्रूरकर्मा स लोकानां क्षयकाल इवाभवत् ॥ १६८ ॥
द्रव्यैः सम्पूरयन्कोशं राज्ञोऽभूत् भृशवल्लभः ।
वेश्यानां च नृपाणां च द्रव्यदो हि सदा प्रियः ॥ १६९ ॥
अथ स्वपदभोक्तृत्वात् बद्धवैरश्चिरं हृदि ।
स मुक्ताद्द्रव्ययाचायशुद्धिं भोजमयाचत ॥ १७१ ॥
मुर्द्धोऽधस्फूर्तिमालोक्य भोजदेवोथ सत्वरम् ।
गत्वा व्यजिज्ञपत् भूपं मौलिमौलीयिताञ्जलिः ॥ १७२ ॥
देवस्य यदि मे प्राणैः कार्यं गृह्णातु तर्हि तान् ।
न सहे परमंधस्य वाक्यतोदकदर्थनाम् ॥ १७३ ॥
निजगाद नृपो यस्य मयि भक्तिरनश्वरी ।
न लुप्यतेऽत्र केनापि धर्मसिंहस्य शासनम् ॥ १७४ ॥
स्वामीव स्वामिनां मान्यः सेवनीयोऽनुजीविभिः ।
सुस्थिरस्थाणुसत्कारात् अनड्वान् किम पूज्यते ॥ १७५ ॥
अन्येद्युर्नृपतिर्वैजनाथयात्रामुपागतः ।
दृष्ट्वा पृष्ठस्थितं भोजमन्योक्त्येदमभाषत ॥ १७६ ॥
संख्येवात्र पदे पदेपि बहवः क्षुद्रा निकामं खगा
नो कुत्रापि समोऽस्ति गर्ह्य इतरः काकाद्दुराचारपरम् ।
क्रोधाविष्टपटिष्टघूकनिकरास्यप्रोत्थकोटिक्षतै-
स्त्रुट्यत्पक्षचयोपि यस्तरुतटं नापत्रपः प्रोज्झति ॥ १८० ॥
अनयाऽन्योक्तिकौमुद्या भोजोऽम्भोजमिवास्तरक् ।
वेश्मागत्य रहः पीथसिंहं सोदरमब्रवीत् ॥ १८१ ॥
देवोद्यकल्प उत्पश्य वचनैर्दुर्मनायितः ।
सेवा हेवाकिनोप्यस्मात् तृणान्यपि मन्यते ॥ १८२ ॥
यात्राव्याजेन तद्यामो दिनानि कतिचिद्बहिः ।
कालक्षेपोऽशुभे श्रेयान् नीतिविद्भिर्जगे यतः ॥ १८४ ॥
संमंत्र्य सोदरेणैवं भूपं गत्वा व्यजिज्ञपत् ।
काश्यां व्रजामि यात्रायै यद्यादिशति भूपतिः ॥ १८५ ॥

रहा, किंतु उसका हृदय अशांत बना रहा। अंत में उसने अला-उद्दीन से मिलकर हम्मीरदेव से बदला लेना निश्चित किया। वह पीथम को कुटुंब की रक्षा का भार देकर स्वयं योगिनीपुर (पुरानी दिल्ली जहाँ अलाउद्दीन रहता था) गया और खिलजी सुल्तान से मिला। अलाउद्दीन ने उसका खूब सत्कार किया, उसे खिलअत दी और महिमाशाह का जगरा नाम का नगर उसे जागीर में दिया।[1]

भोजदेव दिल्ली में अलाउद्दीन की सेवा में रहने लगा। धीरे धीरे परस्पर विश्वास बढ़ा और अलाउद्दीन को उसकी मित्रता तथा भक्ति का दृढ़ निश्चय हो गया। एक दिन उसने भोज से पूछा कि लड़ाई में हम्मीर किस तरह जीता जा सकता है।

भोज ने अभीष्ट अवसर जानकर इस तरह कहना आरंभ किया—"हम्मीर को सामान्य युद्ध में जीतना असंभव है। उसने कुंतल, मध्य-देश (बुंदेलखंड आदि), अंग और कांची प्रांतों तक अपना आतंक

जगाद भूपतिर्यासि परतः परतो न किम्।
विना भवन्तमप्येवं पुरं संशोभते पुरा ॥ १८६ ॥
इत्याकुष्टोपि कौलिन्यात्क्षमामेव क्षमापतौ।
बिभ्राणः प्रचचालैषोऽनुकार्शी सपरिच्छदः ॥ १८७ ॥
तस्मिन् गते क्षितिपतिः प्रसरत्प्रमोद-
हृद्दंडनायकपदे रतिपालवीरम्।
युक्त्याभिषिच्य जगदेकहितस्त्रिवर्ग-
संसर्गतोतिसरसान् दिवसाननैषीत् ॥ १८८ ॥

सर्ग १०—

(१) धरणीरमणापमाननादथ भोजः सशिरोहमागतः।
परिभाव्य मुहुः स्वदुर्दशामभिमानेन हृदीत्यचिंतयत् ॥ १ ॥
परिपृच्छ्य ततः सहोदरं पिथमं सन्मतिवासमन्दिरम्।
अगमल्लघुयोगिनीपुरं यवनानां समगच्छदीश्वरम् ॥ ८ ॥
तत्समागमनहर्षचरात्माऽल्लावदीननृपतिः स ततोऽस्मै।
वस्त्रनिर्षेपणपूर्वमयच्छन्मुद्गलेशनगरीं जगरां ताम् ॥ १० ॥

स्थापित कर रखा है। उसके ६ गुण और ३ शक्ति स्थिर तथा विकसित हैं। वह सदा सशस्त्र तैयार रहता है। उसके भाई वीरम जैसे रण-पंडित कितने ही योद्धा उसकी सेवा में रहते हैं। आपके भाई को परास्त करके उत्तर के मुगल लोग, बिना आपका भय माने, उसकी सेवा में रहते हैं। उसके देश की जनता उसकी भक्त और सदाचारवाली है। उसके दुर्ग अजेय तथा श्वेत हाथियों से रक्षित हैं। उसके वीर और लड़ाके सैनिक रण में विजय की परस्पर स्पर्धा रखते हैं। अंग, कलिंग, काश्मीर, बंग, गुर्जर आदि देश उससे भय-भीत रहते हैं। संसार में कोई शूर, कोई बुद्धिमान्, कोई कार्य-कुशल, कोई जानकार चतुर तथा कोई दानी बनकर जय प्राप्त करता है; किंतु हम्मीर में ये सब गुण एकत्र हैं। तो भी जिस प्रकार दीप-शिखा के लिये वायु, कमल-पंक्ति के लिये बादल, सूर्य के लिये संध्या, यति के लिये कमलनयनी, शरीर के लिये रोग तथा अनेक गुणों से युक्त व्यक्ति के लिये लोभ नाश का कारण होता है उसी प्रकार उसके नाश का भी कारण-स्वरूप एक अंधा व्यक्ति वहाँ उपस्थित है। इस-लिये यदि उधर चढ़ाई करने का विचार है तो शीघ्र ही प्रस्थान करना चाहिए कि जिससे प्रजा इस फसल का अन्न संग्रह न कर सके और, उस अंधे के अत्याचार से पहले से ही पीड़ित होने के कारण, इस नवीन आपत्ति से घबड़ाकर राजा की द्रोही बन जाय।

अलाउद्दीन ने भोजदेव की सम्मति पसंद करके एक लाख सेना के साथ (उलगखाँ) उल्लूखाँ को फिर भेजा[1]।

---

(१) तत्र चित्रहचिर्भाजि स भोजः सोदरं स्वमदरं परिमुच्य।
स्राग् स्वयं पुनरुपेत्य च दिल्लीं सेवतेस्म शकनायकमेव ॥ ११ ॥
आत्मनीनमधिगत्य तमुच्चैरन्यदेति यवनेन्दुरपृच्छत्।
म्रूहि भोज कथमेप हमीरो जीयते युधि मया द्रुतमेव ॥ १४ ॥
सत्यमेव यदि पृच्छसि कार्यंतर्हि नो मम गिरीश्वर कोपः।
इत्युदीर्य गिरमाहितभारामाततान गतभीरथ भोजः ॥ १५ ॥

उलगखाँ के हिंदू राज्य में पहुँचते पहुँचते दूतों से हम्मीर को भी यह समाचार ज्ञात हो गया। राजा ने अपनी मंत्रि-परिषद् में वीरम

शैथिल्यं कुन्तलेषु प्रसभमुपनयन् पीडयन्मध्यदेशम्
स्थानभ्रष्टां च काञ्चीं विदधदुपचयन् काममंगेषु लीलाम्।
यो भूमेश्चंचलाक्ष्याः पतिरिव तनुते भाग्यसौभाग्यलक्ष्मीम्
सः श्रीहम्मीरवीरः समरभुवि कथं जीयते लीलयैव ॥ १६ ॥
यस्मिन् शश्वन्निवासा ध्रुतय इव गुणा ह्यायने पट् क्षितीन्द्रौ
श्रित्वा तिस्रोऽपि तस्थुः पुरुषमिव गुणा यं परं शक्तयोऽपि।
अंगैः स्फीता यथोक्तैः प्रथयति पटुतां यस्य विधेव सेना
सः श्रीहम्मीरवीरः.................................॥ १८ ॥
अश्रांतस्राविदानोच्छलितपरिमलाकृष्टगुञ्जद्द्विरेफ-
श्रेणी द्विट्कुंभिकुंभस्थलदलनकलाकेलिकंडूलहस्तः।
सोदर्यो यस्य वीरव्रजमुकुटमणिर्वीरमो विश्वजेता
सः श्रीहम्मीरवीरः............................ ॥ २० ॥
त्वद्भ्रातुर्लुंठितार्थाऽर्थनिविडमतेर्मानमुन्मूलयंतो
निःशंकं मेनिरे त्वां स्फुटसुभटतया ये तृणायापि नैव।
औदीच्यास्तेपि सेवां विदधति महिमासाहिमुख्या यदीयां
सः श्रीहम्मीरवीरः........................... ॥ २१ ॥
देशो यस्यानुवर्त्य कृतसुकृतजनाचारचारुप्रदेशो
दुर्गं दुर्ग्राह्यमेवाहितधरणिभुजां श्रेणिभिश्चेतसापि।
अन्योन्यस्पर्धिवीर्यार्जितशुचियशसोऽप्याहवे वीरवाराः
सः श्रीहम्मीरवीर............................ ॥ २२ ॥
अंगो नांगानि धत्ते कलयति न तुलां कुत्रचित्क्वापि कलिंगाः
काश्मीरः स्मेरमास्यं न वहति तनुते शौर्यसंगं न वंगः।
गर्जि नो गुर्जरेन्द्रः प्रथयति पृथुधीर्यस्य कौक्षेयकाग्रे
सः श्रीहम्मीरवीरः.................................॥ २३ ॥
शूरः कश्चन कश्चनापि मतिमान्दाक्षिण्यवान्कश्चन
प्राज्ञः कश्चन कश्चनापि सुकृती दाता पुनः कश्चन।
इत्येकैकगुणप्ररूढमहिमा जागर्ति भूयान् जनः
सर्वैः श्रेष्ठगुणैरधिष्ठिततनुर्हम्मीरवीरः परम् ॥ २५ ॥

आदि आठ मंत्रियों से सम्मति लेकर युद्ध के लिये यह प्रबंध किया कि शत्रु पर आठ दिशाओं से उसके आठ सेनापति एक साथ आक्रमण करें—पूर्व की ओर से वीरम, पश्चिम से महिमाशाह, दक्षिण से जाजदेव, उत्तर से गर्भरूक, आग्नेय से रतिपाल, वायव्य से तिचर मुगल, ईशान से रणमल्ल तथा नैऋ त दिशा से श्रीवैचर। अतः सेना को आठ भागों में बाँट दिया गया। इधर कुछ सैनिकों ने शत्रु की अपनी रक्षा के लिये खोदी हुई खाई भर दी; कुछ ने सबातों में आग लगा दी और कुछ ने डेरों के रस्से काट डाले।

राजपूतों ने उक्त निश्चय के अनुसार घोर युद्ध किया और उलगखाँ की सेना भाग निकली। दैवयोग से उलगखाँ भी जीवित भाग गया। उसकी सेना को राजपूतों ने लूट लिया। इस अवसर पर रतिपाल ने शत्रु-सैनिकों की स्त्रियाँ भी कैद कर लीं और अपनी विजय को प्रकाशित करने के लिये इन स्त्रियों के द्वारा ग्राम ग्राम में मठा बिकवाया। हम्मीर ने अपने सभी सैनिकों का उचित सम्मान किया तथा रतिपाल के चरणों में सोने की भारी जंजीर डालकर उसे 'मत्तगज'की पदवी दी[1]।

दीपस्येव समीरणः सरसिजश्रेणेरिवाम्भोधरः
सूर्यस्येव दिनात्ययो यतिवरस्येवैणदृक्संगमः।
देहस्येव गदोदयो गुणगणस्येवातिलोभाश्रयः
तद्राज्यस्य विनाशहेतुरधुनैकोधः परं दीव्यति ॥ २८ ॥
तदमु जिगीषसि यदीश सर्वथा त्वरया तदा प्रवितर प्रयाणकम्।
यदमुष्य भीवृदधुना न वोल्लसत् सुमनप्ररोहहरितीकृतावनिः॥२९॥
ननु तेषु मंक्ष्वपि कथावशेषतां गमितेषु भूप भवदीयसैनिकैः।
जहति प्रजा अमुमिता निराशतां गतनेत्रचण्डतरदण्डनाखुरा ॥३०॥
आचम्येत्थं तस्य वाचं शकानामीशोऽप्युल्लूखानमाहूय सद्यः।
दत्वा लक्षं सादिनः सादितारीन् देशं येनाधीचलच्चाहमानम् ॥३१॥
(१) उल्लूखानः पूरवरसोथ वार्धवृत्तिं शत्रून्प्रापयन् वैतसीं स्राक्।
घम्रोत्तंसान्मन्यमानस्तृणांशान् हिन्दूवाटं प्राप तीव्रप्रतापः ॥३२॥

किंतु इस विजयोल्लास में मुगल सरदार सम्मिलित नहीं हुए। उन्होंने इसका कारण यह बताया कि जब तक कृतघ्न भोजदेव जगरा में मौज उड़ा रहा है तब तक हम अपना जीवन व्यर्थ समझते हैं। क्योंकि वह आपका बंधु है, इसी लिये ते हमने उसे अब तक क्षमा किया है। अन्यथा, महाराज, यदि आप आज्ञा दें ते हम तुरंत उसके नगर को उजाड़कर उसे पकड़ लावें। उसी ने ते दिल्ली जाकर यह चढ़ाई कराई है। हम्मीरदेव ने उन्हें आज्ञा दे दी और उन्होंने तुरंत जगरा पर चढ़ाई कर दी। शीघ्र ही वे जगरा पुरी को नष्ट करके भोज के भाई पीथम को क़ैद करके ले आए[1]। उधर

चरैरथोक्तारिसमागमोऽसौ हम्मीरदेवः क्षितिपालमौलिः।
न्यपातयत्पर्षदि हर्षहेलामयेषु वीरेषु दृशं सभावाम्॥ ३३॥
राज्ञश्चेष्टासौष्ठवं तद्विभाव्य हृष्यच्चित्ता वीरमाद्या अथाष्टौ।
वीराः स्मेरास्याम्बुजाम्लेच्छभूभृत् सेनामेनामन्वधावंत वेगात्॥३४॥
श्रीवीरमेन्द्रो दिशि माघवत्यां दिशि प्रतीच्यां महिमाख्यसाहिः।
श्रीजाजदेवो दिशि दक्षिणस्यां दिश्युत्तरस्यामपि गर्भरूकः॥ ३८॥
आग्नेयभागे रतिपालवीरः समीरभागे तिचरः शकेशः।
ईशानभागे रणमल्लमल्लः श्रीवैचरो नैऋतनामभागे॥३९॥
इत्थं यथाशक्तिकृतप्रतिज्ञा वीरा रणोत्साहलसच्छरीराः।
हम्मीर हम्मीर इति ब्रुवाणाः शकाधिपीये शिविरे निपेतुः॥ ४०॥
द्रुतमेव केपि परिखामपूपुरन् अदहन्परे दलिकदुर्गमुच्छ्रितम्।
न्यविशंत चांतरितरेतिगतः पटवासरज्जुनिचयान्परेऽलुनन्॥ ४१॥
स्फूर्जद्वीर्यैर्बाहुजैरेवदैन्यं दृष्ट्वा सैन्यं सर्वथामात्मनीनम्।
काण्डैर्दण्डैस्ताड्यमानोऽपि जीवन्नुल्लूखानो नेशिवान् भाग्ययोगात्॥४७
तत्रैवनेत्रा यवनाधिपानां चक्रवास्यमर्षाद्रतिपालवीरः।
व्यचिक्रयत् ख्यातिकृते क्षितीन्दोस्तक्रं प्रतिग्राममसूभिरेषः॥ ६१॥
अथ क्षितीशो रतिपालशौर्यं श्रुतीभमाकर्ण्य लसत्प्रमोदः।
मत्तो ममायं गज इत्यमुष्य पादेऽक्षिपत्काञ्चनशृंखलानि॥ ६३॥

(१) अस्मासु जीवत्सु यदीह भोजदेवः कृतघ्नो जगरां भुनक्ति।
वीरव्रतं तर्हि विलीनमेव संबीभवन् मा क्षतरो नरेश॥ ६५॥

उलगखाँ जब परास्त होकर दिल्ली पहुँचा तब अलाउद्दीन ने उसका तिरस्कार किया। किंतु उसने कहा कि सौभाग्य से मुझे आपके दर्शन करने का यह अवसर मिल गया, इसलिये मैं चला आया, तथा युद्ध करने मैं फिर जा रहा हूँ। इसी अवसर पर भोज भी दर्बार में आया। उस समय क्रोध और शोक से उसकी बुरी दशा थी। वह अलाउद्दीन से प्राप्त खिलअत को ही भूमि पर बिछाकर लोटने लगा। अलाउद्दीन ने इसका कारण पूछा तो उसने कहा—"मेरे जीवन को अब धिकार है! भाई को महिमाशाह पकड़कर ले गया और जगरा को उजाड़ गया। अब सब पृथिवी पर केवल हम्मीर का अधिकार है इसलिये मैं कहाँ रह सकता हूँ? तभी तो उस पर वस्त्र बिछाकर मैं लोटता हूँ!"

अलाउद्दीन का क्रोध इससे और भी बढ़ गया। उसने भोजदेव के अपमान का बदला लेने की प्रतिज्ञा की और उसे सांत्वना दी तथा चाहमान कुल का नाश करने का निश्चय करके भोजदेव को विदा किया[1]।

सहामहे यच्च दिनांस्तमेतावतोऽत्र हेतुस्तव बंधुतैव।
स्वद्देशमन्वानयतोऽधुनाऽरिपलं विभो का घत बंधुताऽस्य ॥ ६६ ॥
तथाज्ञार्थे गंतुमेते नरेश प्रादिश्यन्तां तेऽत्रिति प्रोक्तवत्सु।
भद्रा भद्रेण स्वरध्वं स्वरध्वं स्फीतप्रीतिस्तान्नृपो व्याजहार ॥ ६७ ॥
जयश्रियो मोहनमंत्रयत्तमादेशमासाद्य नृपस्यतेऽथ।
भंक्त्वा पुरीं तां विनियम्य भोजबंधुं समागुः सकुटुम्बमेव ॥ ६८ ॥
(१) इतश्च तस्मात्समराद्विनष्टः खानः स उल्लूपपदः कथंचित्।
समेत्य दिल्लीं निजगाद राज्ञे तचाहमानप्रकृतं समस्तम् ॥ ६९ ॥
पलायितः कातरवद्भवान् किं ततः क्षितीशे गदतीति सोवक्।
पलायनं चेन्नृप नाकरिष्यं कौतस्तुतस्त्वर्हि तवामिलिष्यम् ॥ ७० ॥
निःशेषमिति तदुक्त्वा विरराम स यावदेव शकबन्धुः।
मन्यूत्पीडप्रदितः समेत्य तावत्स भोजदेवोऽपि ॥ ७१ ॥

अलाउद्दीन ने युद्ध की बहुत बड़ी तैयारी की। अंग, तिलंग, मगध, मैसूर, कलिंग, बंग, भट, मेवाड़, पंजाब, बंगाल, थमीय, भिल्ल, नेपाल, डाहाल, हिमालय आदि स्थानों से उसके सहायक मित्र और सैनिक असंख्य हाथी-घोड़ों और रथों के साथ हम्मीर से लड़ने के लिये इकट्ठे हुए। अलाउद्दीन ने उस सेना का बहुत सा भाग उलगखाँ और नुसरतखाँ (उल्लू और निसुरत्त) नाम के अपने दो सरदारों के अधीन आगे भेजा और आप स्वयं थोड़ी सी सेना लेकर पीछे रुका रहा[1]।

नुसरतखाँ और उलगखाँ (उल्लूखाँ) जब अद्रिघट्ट पर पहुँचे तब उलगखाँ को अपनी पूर्व दशा का स्मरण हो गया, इसलिये उसने अपने भाई नुसरतखाँ से कहा कि यह स्थान विषम है, अतः इसमें

विस्तार्यसिचयमग्रे गतः सरस्तत्तदद्भुतमतीनाम्।
कटुकं विरटन् तदुपरि सुतरां विलुलोठ भूतचांत इव ॥ ७२ ॥
किमरे किमरे जात' पृष्टः शकभूभुजा जगादैपः।
....॥ ७३ ॥
लुठितोसि किमिह सिचयोपरीति पृष्टोमुना पुनः सोवक्।
जानासि किं न निखिलामिलां जितां चाहमानेन ॥ ७७ ॥
अलाउद्दीन का क्रोध और उसकी प्रतिज्ञा का काव्यमय वर्णन
—श्लोक ७८ से ८७ तक।

(१) सर्ग ११—
अंगास्तिलंगो मगधो मसूरः कलिंगवंगौ भटमेदपाटौ।
पंचाल बंगाल थमीम भिल्ल नेपाल डाहाल हिमाद्रिमध्याः ॥ १ ॥
इत्यादयोऽन्योन्यमहंयुताभिः समेखितप्रौढपताकिनीकाः।
शकाधिराजा निखिला अपीमां पुरीमयायुर्यवनेश्वरस्य ॥ २ ॥
ततोऽनुजौ स्फारभुजौ शकानामधीश उल्लूनिसुरत्तखानौ।
इदं महावीर्यं वितीर्य सैन्यं, अचीचलत् जेतुममुं हमीरम् ॥ ७ ॥
शकेश्वरोचापि समस्तिपश्चात् सृजन्निति चन्द्रकुलेषु भीतिम्।
शरीरमात्रः स्वयमत्र चास्थात् अहो शकानां नृपनीतिविस्वम् ॥ ८

प्रवेश करते समय लड़ने-भिड़ने के स्थान पर संधि का बहाना करना चाहिए। नुसरतखाँ ने भी इस कुटिल नीति को पसंद किया और मोल्हण को तुरंत दूत बनाकर हम्मीर के पास भेजा। साथ ही दिल्ली की सेना उस घाटी में से आगे भी बढ़ती रही। उधर राजपूत भी यह समझकर उनकी उपेक्षा करते रहे कि इस बार उन्हें अपने मध्य में ही आ जाने देना अच्छा है। दोनों खाँ सुखपूर्वक घाटी पार करके भीतर जा पहुँचे एवं मुंडीवाली सड़क के दरवाजे पर, श्री मंडप दुर्ग में और जैत्रसागर के तट पर, ठहर गए।

मोल्हण ने दर्बार में जाकर अलाउद्दीन का संदेश इस प्रकार कहा—"जिस सर्वविजयी अलाउद्दीन ने अपने शत्रुवर्ग को जीतकर निर्भय होकर स्वराज्य स्थापित किया है एवं जिसकी सेना को अब और कुछ काम शेष न रहने के कारण व्यर्थ वार्षिक वेतन लेने में लज्जा प्रतीत होती है, जिसके अधिकार में अनेक अजेय दुर्ग, उत्तम युद्ध-सामग्री और रणोत्कट योद्धा हैं जिनका सामना आकाशचुंबी पर्वत भी नहीं कर सकते, जिसने श्री देवाद्रि (देवगढ़) जैसे विशाल और दुर्जेय दुर्ग बात की बात में ले लिए, जो त्रिपुरसुंदरी और महादेव के मंदिरों को नष्ट कर-उन्हें भी लज्जित कर चुका है, और जिसकी आज्ञा पालन करने में ब्रह्मा भी संकोच नहीं कर सकता उसी अलाउद्दीन के दो भाई उलगखाँ और नुसरतखाँ तेरे देश पर आक्रमण करके मेरे द्वारा संदेश देते हैं कि ओ हम्मीर! यदि तुझे राज्य भोगने की इच्छा है तो एक लाख स्वर्ण-मुद्राएँ, चार बड़े बड़े हाथी, तीन सौ अत्युत्तम घोड़े और अपनी कन्या देकर हमारी आज्ञा शिरोधार्य कर! और यदि इतना करना न चाहे तो उन चार मुगलों को, जो हमारी आज्ञा भंग करके तेरे यहाँ रहते हैं, हमारे अधिकार में देकर ही अपने राज्य की रक्षा कर।"

हम्मीरदेव ने अत्यंत क्रोध से दाँत पीसकर इस प्रकार दूत को उत्तर दिया—"यदि दूत के नाते ये बातें न कही गई होतीं तो आज

तेरी जीभ काट ली गई होती! हाथी के दाँतों की तरह, साँप की मणि की नाईं, सिंह के अयालों के सदृश श्री चाहमान की संपत्ति चौहान-वंशियों के जीते-जी कौन लेने की इच्छा कर सकता है? प्रत्येक स्वर्ण-मुद्रा, हाथी और घोड़े के बदले में क्यों वह तलवार का एक एक घाव सहेगा? यदि तुम्हारे स्वामी यहाँ आवेंगे तो अवश्य सुअर का मांस चखेंगे। कोई मूढ़ भी अपने शत्रु तक को शरण में आ जाने पर उसकी रक्षा करने से पीछे न हटेगा, अतः इन चार मुगलों को वापिस माँगनेवाले ये दोनों भाई क्या सर्वश्रेष्ठ मूर्ख नहीं हैं? इसलिये, अपने स्वामी से जाकर कह दो कि प्राण रहते तो मैं तुम्हारी माँग का १००वाँ भाग भी पूरा नहीं कर सकता, जो तुम्हारी इच्छा हो करो[1]।"

---

(१) लब्ध्वा सहायं निसुरत्तखानं ज्वलन् क्रुधोल्लूपपदः स खानः।
इयेष मूलादपि वैरिवंशान् दग्धुं बृहद्भानुरिवाहिकांतम् ॥ १८ ॥
ततोऽद्रिघट्टान् प्रसमीक्ष्य पूर्वानुभूतभीसंस्मरणाद्भयालुः।
आहूय खानो निसुरत्तखानं सहोदरं सुन्दरमित्युवाच ॥ १९ ॥
भ्रातः प्रवेशे विषमा गिरीन्द्रा भटास्त्वदीयाः प्रकटौजसश्च।
तदद्रिघट्टान् विशतो बलस्य भवन्नपायः खलु नो हिताय ॥ २० ॥
तद्बाहुजान् संधिमिषेण विप्रतार्याद्रिघट्टेषु सुखं विशामः।
उपायसाध्ये खलु कार्यबन्धे न विक्रमं नीतिविदः स्तुवंति ॥२१॥
मते मतेऽत्रानुमतेऽमुनापि श्रीमोल्हणं प्रागविधिनानुशास्य।
दिदेश संधानकृते हमीरराज्ञः समीपे कितव. प्रयातु ॥ २२ ॥
स्वयं च सन्नह्य बलान्यमुष्मिन्नेवं छलेनाविशदंतरद्रिं।
मध्ये प्रविष्टः सुखसाध्य एवास्माकं भर्टरिरथमुपेक्षितश्च ॥ २३ ॥
मुक्त्वा प्रतोल्यामनुजस्य शस्य श्रीमण्डपे दुर्गवरे निजं च।
ससरच जैत्रं परितः परेषामतिच्छिपरसैन्यमपास्तदैन्यः ॥ २४ ॥
स मोल्हणः प्राप्य कथञ्चिदन्तस्ततः प्रवेशो नृपशासनेन।
दृष्ट्वा रणस्तम्भपुरं तदुच्चैर्बभूव चित्रार्पितनेत्रपद्मः ॥ २५ ॥

दूत के चले जाने के पीछे राजपूत सेना दुर्ग की रक्षा में लगी। अनेक युद्धों में विजय प्राप्त कर चुकनेवाले योद्धा रक्षा-स्थानों पर नियत कर दिए गए, किले की दीवारों और बुर्जों की मरम्मत की गई।

रयक्त्वान्यकार्यं रथवीरवर्यं विलोक्यमानो वदतीति किं किम्।
प्रणम्य भूपं दरनम्रमौलिः प्रचक्रमे व्यक्तमिदं प्रवक्तुम्॥ ५३॥
स्वतेजसैवारिगणं विजित्याकुतोभयं संसृजतः स्वराज्यम्।
वृथैव वर्मासनमाददाना ललज्जिरे यस्य भटा निकामम्॥ ५४॥
दुर्गाणि दुर्ग्राह्यतराणि शाणोल्लीढानि शस्त्राणि भटा रणोत्काः।
अभ्रंलिहाग्रा गिरयो यदग्रे न वास्तवीं दृप्तिमियुः कदाचित्॥ ५५॥
दुर्गाणि दुर्ग्राह्यतराणि यः श्रीदेवादिमुख्यान्यपि मंक्षु भंक्त्वा।
अपीन्द्रमुद्दरदन्तुराक्षी चकार कारायमितारिचक्रः॥ ५६॥
दुर्गाणि दुर्ग्राह्यतराण्यरीणां भजन्ननेकान्यपि लीलयैव।
आजन्मभग्नत्रिपुरैकदुर्गे दुर्गापतौ योत्र घृणां बिभर्ति॥ ५७॥
यद्यन्मनस्यप्यमुना नरेन्द्र! निधीयते तत्तदहो तदाऽदम्।
संपादयन् सोपि विधिर्विशंके न शासनं यस्य विहंतुमीष्टे॥ ५८॥
अल्लावदीनस्य नृपस्य तस्यानुजौ किलोल्लूनिसुरत्तखानौ।
देशं तवाक्रम्य तदाज्ञयैव स्वामाहतुः स्मेति मदाननेन॥ ५९॥
हम्मीर! राज्यं यदि भोक्तुमीहा तत्स्वर्णलक्षं चतुरो गजेन्द्रान्।
अम्बोरसानां त्रिशतीं सुतां च दत्वा किरीटीकुरु नो निदेशम्॥ ६०॥
इदं विमुक्तं यदि वा परन्तु तदास्मदाज्ञाप्रविलोपिनो ये।
स्राग्मुद्गलांस्तांश्चतुरोऽपि दत्वा क्रोडीकृतां क्रीडय राज्यलक्ष्मीम्॥६१॥
वशिष्ठयुक्त्या यदि नाभविष्यद्राजर्मिवानत्र भवान् कथंचित्।
तदा स्वयेणादि ययैवमर्वाक् जिह्वां भृशं तां निरकासयिष्यम्॥६४॥
दंतौ द्विपस्येव मणिं भुजंगस्येवैयशभ्रोरिव केशरालीम्।
श्रोत्राइमानस्य धनं बलेन न जीवतः कश्चन लातुमीष्टे॥ ६५॥
स्वर्णं गजा दंतितुरंगमानां पदे प्रदेया यदि खड्गघाताः।
भयप्रभू सूकरमांसमेव सद्यः स्वदेतां यदि जातु यातः॥ ६६॥
द्विपामपि स्वाप्छरणागतानां रक्षासु मंदोपि नियद्धकण्ठः।
सद्मुद्गलासौ ननु याचमानौ म किंस्वदीशौ जडधीवतंसौ॥ ६७॥

स्थान स्थान पर तेल और राल के गर्म कड़ाहे इसलिये तैयार रखे गए कि शत्रु-सेना के आने पर उनकी वर्षा कर उसका स्वागत किया जाय। भैरवमंच, इंद्रजाल तथा शत्रु को मूढ़ बनाने के लिये और भी कई प्रकार के युद्ध-यंत्र लगाए गए।

उधर दूतों के पहुँचने पर नुसरतखाँ और उलगखाँ ने भी दुर्ग पर चढ़ाई की। तीन मास तक दुर्ग को घेरकर दोनों भाइयों ने दीवारें तोड़ने के अनेक प्रयत्न किए, उधर राजपूत ऊपर से पत्थर, गोले, तीर, गर्म तेल, राल आदि फेंककर शत्रुसेना को नष्ट करते रहे। एक दिन युद्धस्थल में मुसलमानी फौज के यंत्र से निकले हुए गोले का टुकड़ा नुसरतखाँ के जाकर लगा और वह मर गया[1]।

अपने भाई की मृत्यु देखकर उलगखाँ पीछे को हट गया। उसने उसके शव को दिल्ली भेजकर अलाउद्दीन को वास्तविक स्थिति की सूचना दी तथा उसे सहायता के लिये बुलाया। अलाउद्दीन भी शीघ्र रणस्थल में आकर उपस्थित हो गया[2]।

शतांशमप्येकविशोपकस्य न प्राग्मोचेपि ददे बलेन।
यद्रोचते नाम भवत्प्रभुभ्यां तत्तूर्णमेवाचरतां यथेच्छम् ॥ ९८ ॥

(१) श्लोक ७० से ९९ तक—नुसरतखाँ की मृत्यु।

प्रवर्तमाने समरेन्यदीथापस्फाल गोलः शकगोलकेन।
प्रभ्रश्यता तच्छकलेन मूर्ध्नि हतो व्यनेशन्निसुरत्तखानः ॥ १०० ॥
अथ गतं सहसापि परासुतामनुमवेक्ष्य परिस्खवदीक्षणः।
अविदितः परदेवनासवनं भृशमसौ शकपोऽतत मध्यमः ॥ १०१ ॥

(२) प्रक्षिप्यैनं तदनु सहसा मध्यमोऽसौ शकाना-
मीशः स्वर्णस्फुटजटनतामंजुमञ्जूषिकांतः।
ढिल्यां धृत्वा कथमपि धृतिं प्राहिणोत्प्राभृतं वा
क्षोणीभर्तुः स्वसकलकथाज्ञापनापत्रपूर्वम् ॥ १०२ ॥

अलाउद्दीन के आने पर हम्मीर की सेना ने निरंतर दो दिन तक घोर युद्ध किया। इसमें ८५ हजार मुसलमान मारे गए। इसके पीछे कुछ समय के लिये युद्ध बंद किया गया[1]।

सामयिक संधि-काल में अलाउद्दीन की सेना किले की दीवारों के निकट इतने अंतर से पड़ी रही थी कि वहाँ से यह देखा जा सकता था कि किले में क्या हो रहा है। एक दिन हम्मीरदेव दर्बार में बैठा था। धारादेवी नृत्यकला का प्रदर्शन कर रही थी। उसने कई बार मयूरबंध नाम का नृत्य किया। हर दफा उसकी पीठ अलाउद्दीन की ओर रहती थी। अलाउद्दीन ने इस प्रकार देवी के पीठ दिखाने में अपना अपमान समझा और क्रोध से कहा—"इस नाचनेवाली को कौन एक बाण में मार सकता है?" एक राजपूत कैदी उड्डानसिंह ने ऐसा कर दिखाने की प्रतिज्ञा की। कैदी छोड़ दिया गया और धारादेवी उसके बाण का शिकार बन गई। महिमाशाह ने क्रोध से धनुष-बाण उठाकर अलाउद्दीन को मार डालना चाहा, किंतु हम्मीर ने यह कहकर रोक दिया—"यदि तुमने अलाउद्दीन को मार दिया तो मैं किससे युद्ध करूँगा?" इस पर महिमाशाह ने उड्डानसिंह को एक ही बाण से मार डाला। अलाउद्दीन ने यह देखकर उक्त स्थान को निरापद

एतद्वीक्ष्याप्तशोकः श्रुतरिपुजनिताशेषतत्तद्धिकारः
कृत्वा तस्यौर्ध्वदेहिकं निखिलमपि यथा युक्तिकोपप्रकंपः।
वेगादागादमुत्र स्वयमथयवनैकावनोल्लावदीनो
वीरंमन्या सहंते रिपुजनजनितं क्वापि किंवा निकारम् ॥१०३॥

सर्ग १२—

(१) एतस्मिन्समरे वीरा यवनानां महौजसः।
पञ्चाशीतिसहस्राणि यमावासमयासिषुः ॥ ८८ ॥

नहीं समझा तथा वहाँ से पूर्व की ओर अपना शिविर बदल दिया[1]।

सर्ग १३—

(१) अन्यदाथ क्षमानाथः स्फारशृंगारभासुरः।
अलंचकार शृंगारचंवरीं चतुराशयः॥ १॥
वीरमोऽभान्नृपात्तत्र दक्षिणे चारुलक्षणः।
हासैर्हासं सृजन् गोष्ठीं रतिपालो रतिं दधौ॥ ११॥
परीतो महिमासाहिखिभिरप्यनुजन्मभिः।
व्यक्ततामभजत्तत्र परमात्मा गुणैरिव॥ १२॥
मार्दंगिका मृदंगानि वीणामपि च वैणिकाः।
अपि वैणविका वेणुं यथातालमवीवदन्॥ १३॥
रणद्घेणुझणत्कारानुकारिमसरत्स्वराः।
गायना वीरहम्मीरकीर्तिस्फूर्तिमगासिषुः॥ १४॥
प्रविश्य तत्र सभ्यानां मनसीव प्रमोदिनी।
प्रवृत्ता नर्तितुं धारा देवी सोऽस्य नर्तकी॥ १७॥
ताण्डवं निर्मिमाणेति सा तालत्रुटनक्षणे।
अधस्थाय शकेन्द्राय पश्चाद्भागमदीदृशत्॥ २७॥
शकेशस्तेन दूनात्मा सभाध्यक्षमदो वदत्।
धनुर्धरः स कोऽप्यस्ति वेध्यमेनां तनोति यः॥ २८॥
अवदत्सोदरो राजन् गुप्तौ क्षिप्तोऽस्ति यः पुरा।
उड्डानसिंहस्तं हित्वा नान्येनात्र प्रभूयते॥ २९॥
सद्यः शकेशोऽथानाय्य भंक्त्वा निगडसंचयम्।
द्विधापि स्नेहदानेन तं सज्जाङ्गमचीकरत्॥ ३०॥
मूर्च्छामतुच्छामृच्छन्ती बाणघातेन तेन सा।
उपत्यकायां न्यपतद्दिवो विद्युदिव च्युता॥ ३३॥
तन्मर्म महिमासाहि बिभ्रत् हृदि परे दिवि।
शकेशं वेद्धृतां नीत्वा हम्मीरमिदमब्रवीत्॥ ३४॥
यथादिशति भूनाथो मामिदानीं तदा रिपुम्।
शरसात्तरसा कुर्वे धारामिव धनञ्जयः॥ ३५॥

यवन-सेना के स्थान-परिवर्तन करने पर राजपूतों ने देखा कि शत्रु ने किले की खाई पर पुल बना लिया है और दीवारों-तक एक सुरंग भी तैयार कर ली है। हम्मीरदेव ने उस पुल को गोलों की मार से नष्ट कर दिया और सुरंग में तप्त तैल तथा लाख छोड़ दी जिससे सुरंग में छिपे सैनिक जलकर दुर्दशापूर्वक मर गए। तत्पश्चात् इस सुरंग को उन्हीं सैनिकों के शवों से भरकर बंद कर दिया[1]।

अब वर्षा आरंभ हो गई थी, अतः अलाउद्दीन की सेना को बहुत कष्ट होने लगा। उसके हाथी, घोड़े, आदि दुबले हो गए। अंत में उसने संधि-संबंधी नियम तय करने के मिस से हम्मीर के पास सूचना भेजकर रतिपाल को बुलवाया। रतिपाल के इस विशेष सत्कार से रणमल्ल कुछ क्रुद्ध हुआ।

हम्मीर के इच्छानुसार रतिपाल जब अलाउद्दीन के पास पहुँचा तब अलाउद्दीन ने स्वयं उठकर उसका सत्कार किया, उसे अपने आसन पर बराबर बिठाया एवं अनेक प्रकार की कृपाएँ दिखाकर उसका सम्मान करके कहा—"मैंने अब तक अनेक दुर्ग विजय किए हैं और मुझे इस

नृपोऽवसिद्दतेऽथामा रंस्येद्ध-केन संगरे।
हित्वा तं महिमासाहे जह्युझनं धनुर्धरम् ॥ ३६ ॥
शकेशवेध्येनासाद्या देशं दूनमनास्ततः।
हत्वा तं महिमसाहिर्धिंगिरिस्थोऽस्कद्रुः करात् ॥ ३७ ॥
चकितस्तद्विनाशेन सद्यः सोऽपि शकेश्वरः।
त्यक्त्वा सरः पुरोभागं तत्पृष्ठे शिविरं न्यधात् ॥ ३८ ॥

(१) विज्ञाय चाहमानास्तत्परिखां वह्निगोलकैः।
अदहन् जतुतैलं च सुरंगायां प्रचिक्षिपुः ॥ ४२ ॥
शकाधीशः शकैरेतां सुरंगां यैरपीतनत्।
अपूपुरन् द्राग्दोऽमन्वस्तेषामेव कलेवरैः ॥ ४७ ॥

दुर्ग तथा राज्य की इच्छा भी नहीं है प्रत्युत तुम्हीं इसे ले लेना। किंतु यदि मैं इसे विना लिए लौट जाऊँ तो संसार में मेरी सब कीर्ति लुप्त हो जायगी।" रतिपाल पर अलाउद्दीन का जादू चल गया। उसने उसके प्रस्ताव को स्वीकृत किया। अलाउद्दीन ने उसे अंतःपुर में ले जाकर भोजन कराया एवं उसने उसकी सबसे छोटी बहन के साथ मदिरा-पान किया[1]।

---

(१) इत्यालोचयाम्बुमुक्कालं साक्षात्कालमिवागतम्।
यथाकथञ्चित्संधानमचिकीर्षच्छकाधिपः ॥ ६८ ॥
आजुहाव ततो दूतं रतिपालं शकाधिपः।
शकेशः किं किमाहेति हम्मीरोप्यत्वमन्यत ॥ ६९ ॥
रतिपाले गते जाते संधाने चलिते शके।
वृथा नो दोष्मतेरयाप रणमल्लस्तदा रणम् ॥ ७० ॥
आयाते रतिपालेऽथ स मायावी शकेश्वरः।
उपावीविशदेतं स्वासनेऽभ्युत्थानपूर्वकम् ॥ ७१ ॥
अरंजयच्च कूटेन मानैर्दानैरनेकधा।
कूटोपजीविनः किं वा कूटे मुह्यन्ति कुत्रचित् ॥ ७२ ॥
अपवार्य सभास्तारान् भ्रातृमात्रद्वितीयकः।
रतिपालं जगादैव विस्तार्याग्रे सिचोंचलः ॥ ७३ ॥
अल्लावदीन इत्यारयः सोहं शककुलाधिपः।
दुर्गाण्यनेकशो येन दुर्ग्राह्याण्यपि जिग्यिरे ॥ ७४ ॥
इदानीमस्त्वसात्कृत्वा यदि दुर्गं व्रजाम्यदः।
ज्वलदग्न्युप्तवल्लीव तन्मे कीर्तिः कियच्चिरम् ॥ ७५ ॥
स्वसात्कर्तुं यत्नैनैतत्सहस्राक्षोऽपि न क्षमः।
परं भाग्यात् त्वमायासीः सिद्धमस्मत्समीहितम् ॥ ७६ ॥
तद्यतस्व तथा तूर्णं यथा त्वां सत्यसंगरः।
एतद्राज्यं तवैवास्तु जयेच्छुः केवलं त्वहम् ॥ ७७ ॥
रतिपालमनोदुर्गं बलाद्गृह्णं स्तदा कलिः।
शकुन्यभूच्छकेशस्य रणस्तम्भं जिघृक्षतः ॥ ८० ॥
अन्तरन्तःपुरं नीत्वा शकेशस्तमभोजयत्।
अपीप्यत्तद्भगिन्या च प्रतीत्यै मदिरामपि ॥ ८१ ॥

लौटकर रतिपाल ने हम्मीर से जो कुछ कहा वह प्रकृत घटना के सर्वथा विरुद्ध था। "हे देव! अत्यंत घमंडी अलाउद्दीन ने कहा है कि यदि मैंने हम्मीर की लड़की न ली तो मेरा नाम अलाउद्दीन नहीं। यह ठीक है कि मेरे बहुत से वीर योद्धा मारे जा चुके हैं, किंतु क्या शतपदी की दो-चार टाँगें टूट जाने से वह लँगड़ा हो जाता है? क्या व्यय करने से कोष रिक्त हो सकता है? क्या बादलों द्वारा जल खींचने से समुद्र सूख सकता है? अत: जो कुछ भी आपको करना है वह शीघ्र कीजिए। हाँ, एक बात और है। जान पड़ता है कि रणमल्ल किसी कारण से असंतुष्ट है, इसी लिये वह रण में यथेष्ट पराक्रम नहीं दिखा रहा है। इसलिये आज संध्या को ही स्वयं पाँच छः व्यक्तियों के साथ जाकर मना लीजिए, फिर अलाउद्दीन का साहस अधिक नहीं है।" रतिपाल इतना निवेदन करके चला गया।

रतिपाल की इस धूर्तता को उसके तत्कालीन लक्षणों से वीरम ने ताड़ लिया। उसके मुख से मदिरा की गंध आ रही थी। शरीर से विलासिता प्रकट हो रही थी और वाणी में प्रकंप था। अत: उसने हम्मीरदेव का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। उसने हम्मीर-देव से स्पष्ट कहा कि रतिपाल ने मद्यपान किया है, वेश्या-रमण किया है, गोमांस खाया है और धर्म का नाश किया है। मद्यपान करने से यह स्पष्ट कुल, शील, मति, लज्जा, आत्माभिमान, प्रभुभक्ति, सत्य, पवित्रता आदि गुण नष्ट हो जाते हैं। यह स्पष्ट विश्वासघात कर रहा है। आप फिर यह भी विचारकर देखिए कि शत्रु के शिविर में रात्रि में यह बिना विश्वासघात किए रह कैसे सकता था? इसलिये मेरी सम्मति तो यही है कि इस दुष्ट को तुरंत मार डालना चाहिए[१]।

---

(१) प्रतिश्रुत्य शकेशोक्तं ततः सर्वं स दुर्मतिः।
विरोधोद्बोधिनीर्वाचो गत्वा राज्ञे न्यरूपयत्॥ ८२॥

हम्मीरदेव ने राजनैतिक कारणों से इस कथन पर उस समय विशेष ध्यान देना उचित न समझा। इधर रतिपाल ने और भी कई प्रकार की धूर्तताएँ कीं। उसने महल में निराधार जनरव फैला दिया कि अलाउद्दीन तो संधि के लिये देवलदेवी को ही माँगता

देवाहंकारलंकेशो निजगाद शकेश्वरः।
हम्मीरः किमयं मूढः पुत्रीं मे न प्रयच्छति ॥ ८३ ॥
यद्वा मादादसौ किं स्वलज्जावद्दीनोऽस्मि नो तदा।
पुत्रीमयच्छतोऽमुष्य माददे यदि वल्लभाः ॥ ८४ ॥
किं जातं यद्यगुर्वीरा भूयांसोऽपि परासुतां।
किं द्वित्रिपदभंगेऽपि खजूरो याति खञ्जताम् ॥ ८५ ॥
किं जातं नीयते कोशो यदि निःकोशतां व्ययैः।
किं शुष्यति समुद्रोऽपि वारिभिर्वारिदाहृतैः ॥ ८६ ॥
त्वरे प्रयाहि यत्कर्त्ता कर्त्ता तद्भविता ध्रुवम्।
भर्त्सनापरमेवं तं निर्भर्त्स्योहमपीयिवान् ॥ ८७ ॥
विशंके रणमल्लोऽसौ रुष्टः केनापि हेतुना।
तेनाज्ञापि ध्रुवं येन दर्शां प्रौढिं वहत्यसौ ॥ ८८ ॥
तत्पश्चर्पैर्जनैर्युक्तो गत्वा सायं तदालयम्।
तं प्रसाद्य सद्योऽपि किं मात्रोऽसौ शकेश्वरः ॥ ८९ ॥
त्वरयित्वेति भूकान्तं रणमल्लानुरञ्जने।
वीरमं निरुपाभूय रतिपालो विनिर्ययौ ॥ ९० ॥
तदा चास्य मुखाद्गन्धः प्रससार मदोद्भवः।
अंगादन्यप्रियाश्लेषसंशीत्वर्या इवानिलः ॥ ९१ ॥
दाक्ष्यात् विज्ञायते नैनं संगतं शत्रुभूपतेः।
नृपं विज्ञापयामास वीरमो रहसि स्थितम् ॥ ९२ ॥
तथा हि स ऋषिः पीत्वा मधु वेश्यामरीरमत्।
असिस्वदच्च गोमांसं लिंगभंगमरीरचत् ॥ ९६ ॥
असिसात् क्रियते स्वामिंस्ततो यद्येवमेव तत्।
स शकेशो निष्फलारम्भः सद्यस्तर्हि प्रयात्यसौ ॥ ९७ ॥
उदेति काले कस्मिंश्चित्प्रतीच्यामपि भास्करः।
भज्यमानं परं दुर्गं न तिष्ठेदिति मे मतिः ॥ ९९ ॥

है। रानियों ने लड़की को पढ़ा-लिखाकर राजा के पास भेजा और निवेदन कराया कि राजा उसे देकर ही संधि कर ले। हम्मीरदेव ने यह षड्यंत्र केवल रनिवास का ही समझा और देवलदेवी को समझा-बुझा दिया। रणमल्ल को भी रतिपाल ने बहकाया कि राजा तुमसे अप्रसन्न है; वह आज संध्या को ही तुम्हें कैद करने आवेगा। संध्या को जब राजा, रतिपाल के पूर्व परामर्श के अनुसार, रणमल्ल के स्थान पर पाँच छः व्यक्तियों के साथ उसे प्रसन्न करने के विचार से आया तो वह शंकितहृदय हो दुर्ग में से भाग गया। रतिपाल भी उसी के साथ साथ स्पष्ट रूप से शत्रु-शिविर में जा पहुँचा[1]।

रतिपालः—

(१) उक्त्वेति विरते राज्ञि प्रससार पुरान्तरे।
वार्ता नृपं शकाधीशो यत्पुत्रीमेव याचते ॥ १०५ ॥
इतश्च राजपत्नीभिरनुशास्य प्रणोदिता।
पुत्री देवल्लदेवीति नत्वा भूपं व्यजिज्ञपत् ॥ १०६ ॥
हाहा तात मदर्थं किं राज्यं विप्लावयस्यदः।
किं कीलिकार्थं प्रासादं प्रपातयति कश्चन ॥ १०७ ॥
प्रभूता अपि पुत्राः किं कुर्युः पूर्वं तमोंगजाः।
परार्थमेव वर्धेत या छुद्रश्रीरिवान्वहम् ॥ १०८ ॥
मत्प्रदानेन साम्राज्यं चिरं यत्क्रियते स्थिरम्।
तत्काचखण्डदानेन रक्षा चिन्तामणेर्न किम् ॥ १०९ ॥
इत्यादि तथा राजा का उत्तर श्लोक १२९ तक।
इतः स रतिपालोऽपि तूर्णं गत्वा तदालयम्।
कलयन्नाकुलीभावं रणमल्लमभाषत ॥ १३० ॥
भ्रातः किं सुखमासीनस्त्वरस्व प्रपलायितुम्।
सेवाहेवाकिनां शत्रुर्बद्धमभ्येति यद्विभुः ॥ १३१ ॥
सुधांशौ विषवत्तस्मिन्नेतत्संभाव्यते कथम्।
इत्याचिख्यासवचास्तेन रतिपालः पुनर्जगौ ॥ १३२ ॥

राजा हम्मीरदेव ने जाहड़ से पूछा—"कोष्ठागार में अन्न कितना है ?" उसने सत्य कहने से भयभीत होकर कहा—"बहुत समय तक के लिये पर्याप्त है।" किंतु शीघ्र ही राजा को सत्य ज्ञात हो गया। उसमें भी राजा ने विश्वासघात समझा।

इस प्रकार सर्वत्र विश्वासघात से अपने आपको घिरा देखकर हम्मीर क्रोध और निराशा से व्याकुल हो उठा[1]।

प्रातःकाल दर्बार में आकर उसने महिमाशाह से कहा—"भाई ! हम क्षत्रिय हैं और अपने देश की रक्षा के लिये प्राण दे देना हमारा धर्म है; किंतु आप वैदेशिक हैं, अतः आपको हमारे साथ मरना उचित नहीं। इसलिये आप जहाँ जाना चाहें वहाँ आपको भेज दिया जाय।"

महिमाशाह ने क्रोध से तिलमिलाकर कहा—"अच्छा।" इसके पश्चात् वह अपने घर आया एवं अपने पुत्र-कलत्र को तलवार से मारकर फिर हम्मीर के पास गया और कहने लगा, "इतने समय तक मैं आपके आश्रय में रहा। आपने मेरी बाँह पकड़कर मुझे अपना भाई बनाया एवं मुझे शत्रु द्वारा अपमानित न होने दिया। अतः मेरी पत्नी की इच्छा है कि अंतिम बार वह आपके दर्शन कर ले।"

स पञ्चपैर्जैनैयुक्तो यदि साय त्वदालयम्।
एति तस्मै वचः सत्यमित्युक्त्वासावगाद्गृहम् ॥ १३३ ॥
अथ दृष्ट्वा यथादिष्टमायान्तं स क्षितीश्वरम्।
जातप्रतीतिरुत्तीर्य दुर्गाद्भीत्यामिलद्विपोः ॥ १३४ ॥
उत्तीर्य रतिपालोऽपि दुर्गात्स्वर्गादिवोच्चकैः।
शिश्राय निरयावासमिवावासं शकेशितुः ॥ १३५ ॥

(१) तयोस्तच्चेष्टितं दृष्ट्वा कलिं धिक्कलयन्नयम्।
कोशेऽन्नं कियदस्तीति नृपः पप्रच्छ जाहडम् ॥ १३६ ॥
वदामि यदि नास्तीति तदा संधिर्भवेद्भ्रुवम्।
मान्यर्थभावाद्ध्यात्वेति जगौ न कियदित्यसौ ॥ १३७ ॥

राजा सद्भाव से महिमाशाह के घर को उसके साथ चल दिया। किंतु वहाँ जाकर जो कुछ उसने देखा उससे उसे आश्चर्य हुआ। महिमाशाह की स्त्रियों और बच्चों के शोणित-प्लावित कलेवरों को देखकर वह महिमाशाह से चिपटकर रोने लगा[1]।

---

(१) अथ प्रातरधिश्रित्य सभां स क्षितिवल्लभः।
स्वतस्सहोदराध्यक्षं महिमासाहिमब्रवीत् ॥ १४८ ॥
प्राणानपि मुमुक्षामो वयमात्मश्रितैः कृते।
क्षत्रियाणामयं धर्मो न युगान्तेपि नश्वरः ॥ १४९ ॥
यूयं वैदेशिकास्तद्वः स्थातुं युक्तं न सापदि।
यियासा यत्र कुत्रापि ब्रूत तत्र नयामि वत् ॥ १५१ ॥
नृपस्य वचसा तेन प्रासेनेव हतो हृदि।
मूर्छया प्रपतन्नुच्चैरवष्टब्ध इव क्षुधा ॥ १५२ ॥
एवमस्त्विति जल्पाको महिमाभ्यं स्य मंदिरम्।
कुटुंबमसिसात्कृत्वा नृपं गत्वेदमब्रवीत् ॥ १५३ ॥
पाणिगृहीती त्वद्धातुर्गन्तुमुत्कण्ठिताप्यसौ।
इलाविलासिनी कान्तं मामाहेति सगद्‌गदम् ॥ १५४ ॥
कांतैताचन्ति वर्षाणि लब्धिमांसो यदोकसि।
अप्याताानुभवं नैवा स्मार्ष्मं शत्रुपराभवम् ॥ १५५ ॥
यस्य प्रसादैः संप्राप्तसौख्यलक्षैर्निरंतरम्।
अवेधि नापि तिग्मांशुरुदितोस्तमितोपि वा ॥ १५६ ॥
तमिदानीमदृष्ट्वैव यद्येवं नाथ गम्यते।
पश्चात्ताप हतं तर्हि मनः केनोपशाम्यति ॥ १५७ ॥
प्रसाद्यागत्य तत्सद्यो मंदिरं मेदिनीपते।
स्वदर्शनामृतैः पश्चात्तापतप्तां निषिच्यताम् ॥ १५८ ॥
एवमभ्यर्थितस्तेन महिमासाहिना विभुः।
आलंब्य तद्भुजादण्डं सादरं सानुजोचलत् ॥ १५९ ॥
आसाद्य तद्गृहं भूपो यावदन्तर्विशत्यसौ।
कुरुक्षेत्रमिवाद्राक्षीत्तावत्सर्वं तदंगणम् ॥ १६० ॥
अराकपूरे शिरांसीह शिशूनां योषितामपि।
तान्यवेक्ष्य मूर्छालः क्ष्मापालः क्ष्मातले पतत् ॥ १६१ ॥

इसके पश्चात् हम्मीर को केवल एक ही कार्य शेष रह गया था और वह था 'जौहर व्रत' तथा 'शाका' की तैयारी। किले में स्त्रियों को चिता पर बिठाकर आग लगा दी गई और उसमें देवलदेवी भी बैठी। राजपूतों ने केसरिया वस्त्र पहनकर तलवार हाथ में ली। दुर्ग के द्वार खोलकर राजपूतों ने भयानक निर्दयता के साथ शत्रु पर छापा मारा। सबसे प्रथम वीरम ने प्राण दिए, फिर महिमाशाह ने मित्र-धर्म निबाहकर रण में स्वर्ग-लाभ किया। इसके पश्चात् जाज, गंगाधर टाक और क्षेत्रसिंह परमार आदि ने प्राण त्यागे। सबके पश्चात् शत्रु के हाथ से मार न खानेवाले दुर्जय हम्मीर ने स्वयं अपना मस्तक काटकर रणचण्डी की भेंट चढ़ा दिया[1]।

विवेचना

श्री हम्मीरदेव की दिग्विजय का विषय पुरातत्त्व के विद्यार्थियों के लिये एक नया क्षेत्र उपस्थित करता है। सब मिलाकर इस

बंधूनां वीरमादीनां विमूर्छौघाश्रुसेवनैः।
जगित्वा महिमासाहेः कण्ठे व्यलपदित्यसौ॥ १६२॥

(१) ततः प्रदाय पैराणां मुक्तिद्वारं स युक्तिवित्।
प्रवेष्टुं ज्वलने शिष्टमतिरादिष्टवान् प्रियाः॥ १७१॥
पुत्रीं देवल्लदेवीं च दोर्भ्यामालिंग्य निर्भरम्।
नितरां निःश्वसन् क्रन्दन् कष्टेन महता जहौ॥ १८२॥
ऊचे च चेद्भवेत्पुत्री भूयात्तर्हि भवादृशी।
परां कोटिं ययानायि गौर्येव जनको निजः॥ १८३॥
अथ श्रावणमासस्य सितपक्ष्यां रवौ निशि।
दिवि कीर्तिं कलन्तीं स्वां विलोकितुमिवोत्सुकः॥ १९६॥
अहंकारैरिवाध्यच्चैर्मूर्त्तैर्वीररसैरिव।
अन्वितो नवभिर्वीरै रणं शिश्राय पार्थिवः॥ १९७॥

नव वीर ये थे—१ वीरम, २ जाजदेव, ३–६ चार मुगल (महिमाशाह, गर्भरूक, तिचर मुगल और वेचर), ७ गंगाधर टाक, ८ क्षेत्रसिंह और ९ स्वयं हम्मीर।

प्रसंग में १७ भौगोलिक और ५ ऐतिहासिक नाम आए हैं, किंतु इनमें से बहुत से नाम ऐसे हैं जिन पर टीका-टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं है।

भौगोलिक नामों में सबसे प्रथम भीमरसपुर का नाम आया है (सर्ग ६ श्लोक १५) जो अर्जुन भूपति की राजधानी था। हम्मीरदेव के समकालीन जिस अर्जुन का नाम इस समय इतिहास को ज्ञात है वह बघेला वंश का अर्जुन हो सकता है। इसका एक लेख संवत् १३२० (सन् १२६३ ई०) का प्रकाशित हो चुका है (Indian Anti. Vol. XI. p. 343 तथा Bhavanager Inscriptions p. 224) दूसरा एक और लेख उसके पुत्र सारंग का भी प्राप्त हो चुका है जो संवत् १३४३ का है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि लगभग इसी समय तक अर्जुनदेव चौलुक्य ने राज्य किया होगा। प्रायः इसी संवत् १३४३ से कुछ पूर्व या इसके लगभग हम्मीरदेव ने अपनी दिग्विजय की यात्रा आरंभ की होगी क्योंकि संवत् १३३९ में उसका अभिषेक हो चुका था।

हम्मीर-महाकाव्य के अनुसार अर्जुनदेव ने भीमरसपुर में आश्रय लिया था, किंतु हम्मीरदेव ने उसे वहाँ परास्त किया एवं मंडलकृत (मांडलगढ़) से कर लेकर वह आगे बढ़ा। इसका यह अभिप्राय हो सकता है कि अर्जुन की वास्तविक राजधानी मांडलगढ़ थी जिसे उसने इस युद्ध के अवसर पर छोड़कर भीमरसपुर में आश्रय लिया था। इस अनुमान के ठीक होने पर कदाचित् यह स्वीकार करने में आपत्ति न होगी कि यह अर्जुन खैराडे के सोलंकियों का पूर्वज होगा और भीमरसपुर वर्तमान भैंसरोड़पुर।

यह वंश सदा से ही राणा उदयपुर का राजभक्त चला आता था एवं मेवाड़ का प्रसिद्ध ठिकाना रह चुका था। मांडलगढ़ जहाजपुर से ११ कोस, चित्तौड़ से १७ कोस, बधनौर से २८ कोस, अज-

मेर से ४५ कोस और बूँदी से २२ कोस के अंतर पर एक प्रसिद्ध स्थान है। अकबर के समय में भी यहाँ के ठाकुरों ने मांडलगढ़ छोड़कर अन्यत्र आश्रय लिया था। संवत् १७११ में शाहजहाँ ने यह स्थान राणा से लेकर रूपसिंह राठौर को दिया था, किंतु संवत् १७१४ में वह फिर सोलंकियों के अधिकार में चला गया। इस स्थान को पुरमांडल या मांडलपुर अथवा मांडल से नहीं मिलाना चाहिए।

मांडलगढ़ से चलकर हम्मीरदेव ने प्रसिद्ध धारा नगरी पर आक्रमण किया। वहाँ इस समय भोज (द्वितीय) राज्य कर रहा था। इसी मालवा-विजय के प्रसंग में अवंति नगरी, शिप्रा तथा रेवा नदियों का नामोल्लेख पाया जाता है। यहाँ उज्जयनी का नाम अवंति से भिन्न विशाला लिखा है जो कभी विक्रमादित्य की राजधानी थी।

मेवाड़ तथा उसकी तत्कालीन राजधानी चित्तौड़ के इतिहास के विषय में यहाँ कुछ कहना आवश्यक नहीं है। यद्यपि ग्रंथकर्ता ने मेवाड़पति का नाम किसी कारण से नहीं लिखा है, किंतु अन्य ऐतिहासिक आधारों पर कहा जा सकता है कि इस समय मेवाड़ का प्रसिद्ध राजवंश दो शाखाओं में विभाजित था जो शीघ्र ही फिर मिलकर एक हो जानेवाली थीं। बड़ी शाखा या चित्तौड़ के शासक रावल अथवा महारावल कहलाते थे एवं महारावल समरसिंह हम्मीरदेव के समकालीन थे। संवत् १३५८ में समरसिंह की मृत्यु के पीछे रत्नसिंह रावल हुए जिनसे २ वर्ष पीछे संवत् १३६० (सन् १३०३ ई०) में अलाउद्दीन का युद्ध हुआ था। रत्नसिंह की मृत्यु के पश्चात् लक्ष्मणसिंह तथा उसके ७ पुत्र क्रम से अभिषिक्त होकर उसी युद्ध में काम आए और चित्तौड़ पर मुसलमानों का अधिकार हो गया था। यह लक्ष्मणसिंह इस वंश की दूसरी "राणा" शाखा के थे जो सीसोद में राज्य करती थी। इसी समय

२५

से फिर ये दोनों शाखाएँ एक हो गईं एवं चित्तौड़ के रावल आगे से राणा तथा महाराणा कहे जाने लगे। एक प्रकार से यह कहना उचित होगा कि इस अवसर पर मेवाड़ की प्रधान रावल शाखा का अंत हो जाने पर सीसोदे की छोटी शाखा, जिसके शासक राणा कहे जाते थे, चित्तौड़ की अधिकारिणी हो गई थी। इससे स्पष्ट है कि संवत् १३६० के प्रसिद्ध शाका से पूर्व सीसौदी शाखा मेड़ता में राज्य करती थी।

मुँहणोत नैणसी की ख्यात के अनुसार इस शाखा की स्थापना रावल कर्णसिंह ने, अपने शूर-वीर पुत्र राहप को, वहाँ का राज्य देकर, की थी, क्योंकि इसी राहप ने तत्कालीन राणा को परास्त करके वँधुआ वनाया था। रावल कर्णसिंह ने अपने दूसरे छोटे पुत्र माहप को चित्रकूट का राज्य देकर उसे रावल की पदवी दी थी। उस समय चित्तौड़ को चित्रकूट कहते थे। अस्तु, इस दिग्विजय में चित्रकूट (चित्तौड़), वर्धनपुर (वधनौर या वेदनौर), महाराष्ट्र (मेड़ता), खंडिल (खंडेला) और कंकराल (कॉकरौली) ऐसे स्थान हैं जो राजनीतिक भूगोल की दृष्टि से मेवाड़ राज्य में ही गिने जाते रहे हैं। मेड़ता के शासक सीसोदिया-वंशी लक्ष्मणसिंह और चित्तौड़ के रावल समरसिंह के नाम ऊपर आ चुके हैं, शेष ठिकानों के तत्कालीन जागीरदारों का विवरण इस समय मिल सकना कठिन है।

मेवाड़ से चलकर अर्बुदेश्वर अथवा आबूपति से हम्मीरदेव का युद्ध हुआ। उस समय आबू का परमार राज्य निर्वल होता जा रहा था और संभवतः यही अंतिम युद्ध था जो तत्कालीन परमार-वंश ने अपने राज्य को बाहर के आक्रमण से बचाने के लिये किया होगा। यदि यह युद्ध संवत् १३४४ के पश्चात् हुआ होगा (जैसा होना अधिक संभव भी है) तो उस समय वहाँ की परमार शाखा का अंतिम नरेश प्रतापसिंह राज्य करता था जिसके शासन-काल में जालौर के चौहानों

ने भी परमारों का बहुत सा राज्य दबा लिया था। यहाँ यह भी ध्यान में रखने की बात है कि स्वयं प्रतापसिंह ने अपने राज्य का उद्धार, जैत्रकर्ण को युद्ध में परास्त करके, किया था। यह बात पाट नारायण के निम्नलिखित शिलालेख से ज्ञात होती है—

कामं प्रमथ्य समरे जगदेकवीरः
सं जैत्रकर्णमिह कर्णमिवेन्द्रसूनुः।
चन्द्रावतीं परकुलोदधिदूरमग्ना-
मुर्वी वराह इव यः सहसोद्दधार ॥ १८ ॥

चंगा और चंपा दो स्थान और हैं जिन पर हम्मीरदेव ने दिग्विजय के प्रसंग में आक्रमण किया था। प्रथम वर्धनपुर (बधनौर या बेदनोर) से अजमेर और पुष्कर के मध्य में और दूसरा खंडेला से ककराल को जाते समय मार्ग में पड़ा था। इस समय इन स्थानों का निश्चय कर सकना हमारे लिये अशक्य है, अतः इनका संकेत किए बिना ही हम हम्मीर-दिग्विजय का वर्णन समाप्त करते हैं। चंपा के विषय में काव्य से इतना अवश्य ज्ञात होता है कि यह स्थान हम्मीर के भाई वीरम की राजधानी था (सर्ग १३—१)।

अलाउद्दीन की रणथंभौर पर चढ़ाई

हम्मीरदेव के स्वतंत्र सत्ताधीश हो जाने का उल्लेख फारसी इतिहासों में भी पाया जाता है। जियाउद्दीन बरनी ने अपने इतिहास में लिखा है—"किला रणथंभौर भी जो राजधानी दिल्ली के निकट है इस समय (सन् हिजरी ६९८) राय पिथौरा (पृथ्वीराज) के नवासे हम्मीरदेव ने ले लिया था और वह वहाँ का मुकद्दम बन बैठा था।" (पृष्ठ २७२)

तारीख फरिश्ता के लेखक ने लिखा है—"सन् ६९९ ई० में बादशाह ने पहले इल्मासबेग उलग खाँ हाकिम समाना को और मलिक

नसरत हाकिम कड़ा को तलब फर्माकर किला रणथंभौर की फतह के लिये रवाना फर्माया। वहाँ का राजा पूरा खुदमुख्तार बना हुआ था और कदीम राजा देहली की नस्ल से था और पहाड़ी मुल्क की वजह से सरकश था"। (पृष्ठ १५७—५८)

इस कथन से स्पष्ट ही मुसलमानों के रणथंभौर पर उन आक्रमणों की विफलता की पुष्टि होती है जो सन् ६९१ हिजरी (संवत् १३४८-४९, सन् १२९२ ई०) तक होते रहे थे। किंतु इस अवसर पर अलाउद्दीन ने जिस मुख्य हेतु से प्रेरित होकर हम्मीरदेव पर चढ़ाई करने का विचार किया था उसका उल्लेख जियाउद्दीन ने नहीं किया है यद्यपि हम्मीर-महाकाव्य से स्पष्ट ज्ञात होता है कि यह युद्ध देवलदेवी तथा महिमाशाह के लिये लड़ा गया था। महिमाशाह एक विद्रोही मुगल था जो अलाउद्दीन की सेना में से भागकर हम्मीरदेव की शरण में आकर रणथंभौर में रहने लगा था (सर्ग ११ श्लोक ६०-६१) किंतु मुंतखबाउत्तवारीख में इसे बहुत स्पष्ट रूप से प्रकट किया है। उक्त पुस्तक का उद्धरण पाठकों के लाभार्थ हम यहाँ देते हैं—

"जब उलग़ खाँ (गुजरात और खंभात की विजय के पश्चात्) अलौर (शुद्ध नाम जालौर) में आया तब जो माल गनीमत से लश्करवालों के हाथ लगा था, बड़ी सख्ती से वापिस किया। मुगलों को यह अमर निहायत नागवार मालूम हुआ और बिगड़कर मुकाबिले पर आए। आखिर सजा पाकर मुतफर्रिक और परेशान हो गए और राजा हम्मीरदेव के पास झाँई में, जो रणथंभौर के पास है, पहुँचे।" (उर्दू संस्करण, नवलकिशोर प्रेस, पृष्ठ ५९)

आगे फिर लिखा है—"जालौर के भागे हुए कैदी जो रणथंभौर में बंद थे बाद फतह होने किले के वह भी पकड़े गए। उनका सरदार मुहम्मदशाह नामी जख्मी था। बादशाह ने उससे पूछा कि अगर मैं तेरे जख्मों का इलाज करूँ, बाद सेहत के तू मुझसे

किस तरह पेश आवेगा। उसने जवाब दिया कि अगर काबू पाऊँ तो तुझको जिंदा न छोड़ूँ और हम्मीरदेव के बेटे को बादशाह बनाऊँ।" बादशाह को यह सुनकर अचंभा हुआ। (पृष्ठ ६१)

तारीख फरिश्ता में भी इस विषय में जो कुछ लिखा है वह भी ध्यान देने योग्य है—

"जब इल्मासबेग उलग खाँ और नुसरत खाँ (गुजरात और खंभात विजय के पीछे) जालौर के पास पहुँचे तब उन्होंने 'मर्दुम-लश्कर' को खम्स गनायम के वास्ते और सिवाय उसके मवाखजः करके बतआजियत व तशदीद ज्यादा तल्वी में हद से तंग किया इस वास्ते बाज मुगल ने कि जिनको नौ मुस्लिम कहते थे और मुकद्दम उनका मुहम्मदशाह नाम रखता था मय और लोगों के कि वह भी मवाखजः से आजिज आए थे मुत्तफिक होकर जमीयत बहम पहुँचाई और मलिक आजउद्दीन जो भाई मलिक नुसरत खाँ और अमीर हाजिब इल्मासबेग उलग खाँ का था पैक-अजल की तरह उसके सर पर आए और उसे कत्ल करके इल्मासबेग उलग खाँ की बार-गाह की तरफ मुतवज्जह हुए। इल्मासबेग उलग खाँ कि अजल उसकी न पहुँची थी दूसरी तरफ से भाग गया और अपने तई पयादः मलिक नुसरत खाँ की बारगाह में पहुँचाया और बागियों ने सुल्तान के भांजे को इल्मासबेग उलग खाँ गुमान करके कत्ल किया और मलिक नुसरत खाँ ने फौरन् नक्कारः-जंग पर चोब मारी। मर्दुम-लश्कर इस गुमान से कि राजा जालौर या दूसरा गनीम पहुँचा है उसी वक्त जंग पर आमादा हुए और फौज फौज बारगाह नुसरत खाँ की तरफ दौड़े और मुफसिदों की गिरफ्तारी का कस्द किया और वह मुतफर्रिक होकर अतराफ व जवानिब में भाग गए और इल्मास-बेग उलग खाँ और मलिक नुसरत खाँ की फौजों के तअल्लुक से ये तंग आए। तब हम्मीरदेव राजा रणथंभौर के पास कि नत्थूराय

हाकिम अजमेर की अजफाद से था पनाह ले गए।" (उर्दू संस्करण पृष्ठ १५३—५४)

उक्त उद्धरण में 'नत्थूराय' स्पष्ट ही राय पिथौरा के नाम का अशुद्ध और उल्टा रूप है जो फारसी लेखकों के प्रमाद से हो गया है। आगे फिर रणथंभौर की चढ़ाई के प्रसंग मे लिखा है—'सन् ६९९ ई० में बादशाह ने पहले इल्मासबेग उलग खाँ हाकिम समाना को और मलिक नुसरत हाकिम कड़ा को तलब फर्माकर किला रणथंभौर की फतह के लिये रवाना फर्माया। वहाँ का राजा पूरा खुदमुख्तार बना हुआ था और कदीम राजा देहली की नस्ल से था।" (तारीख फरिश्ता, उर्दू संस्करण पृष्ठ १५७—५८)

युद्ध का विस्तृत उल्लेख करने के पश्चात् (जिसके संबंध में आगे लिखा जायगा) फिरिश्ता के लेखक ने लिखा है—"राजा हम्मीरदेव मय अपने लोगों के मारा गया। साबिक में फतह गुजरात के वाके में जिक्र हो चुका कि जालौर के मुकाम पर मुहम्मदशाह मुगल मय नौमुस्लिमों के बागी हो गया था और आखिर मगलूब होकर किला रणथंभौर में पनाह ली थी, इस वक्त राजा के साथ होकर लड़ा और उसके अकसर साथी मारे गए और खुद मुहम्मदशाह जख्मी पड़ा हुआ था। इत्तफाकन बादशाह ने उसे देखा और तरस खाकर फर्माया कि अगर मैं तेरा इलाज करके तुझे तंदुरुस्त करूँ तो तू क्या सुलूक करेगा। उसने जहालत से जवाब दिया अगर अच्छा हो जाऊँ तो तुझे कत्ल करके हम्मीरदेव के बेटे को राजा बनाऊँ। बादशाह ने गुस्सा होकर उस पर हाथी चला दिया।" (ता० फ०, पृ० १६०)

जियाउद्दीन बरनी ने भी नौमुस्लिम मुगलों के इस विद्रोह का वर्णन अपने इतिहास के पृष्ठ २५२-५३ पर किया है जिसमें नौमुस्लिम मुगल सेनापतियों की अधीनता में ३००० नौमुस्लिम मुगल लड़े थे एवं हारकर दूसरे मुतमर्द (जबर्दस्त) राजाओं की शरण में चले गए

थे। बरनी ने इसी प्रसंग में यह भी लिखा है कि दिल्ली में जब इस मुगल विद्रोह की सूचना पहुँची तब अलाउद्दीन ने सब नौमुस्लिम मुगलों को पकड़कर कैद कर दिया यहाँ तक कि उनके स्त्री और बच्चे भी पकड़कर कैद कर लिए गए। इससे पहले कभी किसी अपराधी के अपराध के दंड में उसके बाल-बच्चों को दंड नहीं दिया जाता था, किंतु इससे भी बढ़कर एक और अन्यायपूर्ण अत्याचार का उल्लेख यह इतिहास-लेखक, इसी प्रसंग में, इस प्रकार करता है कि अपने भाई नुसरत खाँ को मार डालने का प्रयत्न करने के अपराधियों से बदला लेने के लिये उनके नाबालिग बच्चों को उनकी माताओं और बहनों के सिरों में—गुर्ज पत्थरों में दे मारने की तरह—मार-मार कर मार डाला गया—इस तरह सिरों से मारा कि रुई की तरह धुना गया (बर सरे मादरान एशां बतरकादंद)। इस नृशंसता-पूर्ण अत्याचार से सबके दिल हिल गए। जान पड़ता है कि इसके पश्चात् जो आक्रमण मुगलों ने खिलजी-काल में भारतवर्ष पर किए थे वे सब नौमुस्लिम मुगलों के स्वतंत्र संबंधियों ने इन अत्याचारों को सुन और जानकर इनका बदला लेने के लिये ही किए थे। अस्तु।

बरनी ने यद्यपि इस प्रसंग में हम्मीरदेव और मुहम्मदशाह के नामों का उल्लेख नहीं किया है, किंतु उसने पृष्ठ २४० पर 'मलिक मुहम्मदशः' का नाम लिखा है जो संभवतः यही मुहम्मदशाह मुगल है।

इसी मुहम्मदशः या मुहम्मदशाह को संस्कृत और हिंदी पुस्तकों में महिमाशाह भी लिखा है। मुँहणोत नैणसी की ख्यात में जालौर के चौहानों के प्रसंग में लिखा है—

अलाउद्दीन बादशाह ने गुजरात पर चढ़ाई कर वहाँ की बहुत सी प्रजा को मारा। सोरठ में देव पट्टन में सोमइया महादेव के ज्योतिर्लिंग को उठाकर गीले चमड़े में बाँधा.........बादशाह का डेरा

('बादशाही फौज का डेरा' होना चाहिए) जालौर के गाँव सकराणे हुआ जो जालौर से नौ कोस है। रावल कान्हड़......को बादशाही उमरा मंमूशाह मीर गभरू मिले जिनका भाई किसी हरम के मामले में पकड़ा गया था। यह किस्सा बहुत लंबा-चौड़ा है। वे लोग २५ हजार के स्वामी थे। उदास होकर बैठे थे। उन्होंने कान्हड़देव और काँधल (ओलेचा) की बात सुनी और उसको आता देखकर उससे मिले और कहा कि हम भी तुममें शामिल हैं और तुम्हारे काम आवेंगे। कौल बचन हुए, कहा हम रात को छापा मारेंगे। एक तरफ से हम आवेंगे और दूसरी तरफ से तुम आना। काँधल कान्हड़देव के पास आया और उसने सब वृत्तांत सुनाया। तीसरे दिन अपनी सारी सेना को इकट्ठा करके रावल ने रात को बादशाही लश्कर पर छापा मारा, मंमूशाह व गभरूशाह भी दूसरी तरफ से आ पहुँचे। बादशाह के बहुत से आदमी मारे गए। बादशाह किसी प्रकार बचकर भाग गया। कान्हड़देव के राजपूतों ने भागते हुए तुरकों का पीछा किया और बहुतों को मार डाला। फिर सोमइया महादेव के पास जाकर कान्हड़देव ने पीठ में हाथ दे उसे उठाया और उस लिंग को मकराणा में स्थापित किया और बड़ा मँदिर बनवाया। रावल कान्हड़देव ने हिंदुस्तान की बड़ी मर्यादा बना रखी।

मंमूशाह और मीर गभरू कान्हड़देव के पास आकर रहे और उनका वेतन बढ़ा दिया गया, परंतु वे तो बादशाही के रहनेवाले थे, नित्य गौएँ मारने लगे। हिंदुओं को यह बात बहुत बुरी लगी। रावल ने कहा कि इनको किसी प्रकार यहाँ से विदा करना चाहिए। तब किसी ने कहा कि इनके पास सुंदर पतुरियाँ हैं; उनको मँगवाओ। ये देंगे नहीं और आप ही चले जावेंगे। रावल ने अपने दो मनुष्यों को भेजकर पतुरियाँ मँगवाईं। उन्होंने कहा कि महादेव का मंदिर संपूर्ण होने पर हम आप ही चले जाते, परंतु रावलजी ने

हमारी पतुरियाँ मँगवाईं इससे जान पड़ता है कि वे हमको विदा करना चाहते हैं। तब वे वहाँ से रुखसत होकर राजा हम्मीरदेव चौहान के पास जा रहे। हम्मीरदेव ने उनका बहुत आदर किया। जब बादशाह अलाउद्दीन हम्मीर पर चढ़कर आया और गढ़ (रणथंभौर) को घेरा तब संवत् १३५२ श्रावण बदी ५ को बादशाह से युद्ध कर हम्मीरदेव काम आया। (नागरीप्रचारिणी सभा का संस्करण—भाग १ पृष्ठ १५५—१६०)

उक्त उद्धरण में केवल दो बातें इतिहास से विरुद्ध हैं—स्वयं बादशाह का गुजरात की चढ़ाई में जाना और लौटती बार सकराने या मकराने में ठहरना तथा हम्मीरदेव से युद्ध होने का संवत् और तिथि। शेष बातें प्रायः दूसरे इतिहासों से पुष्ट होती हैं। उक्त दोनों अशुद्धियाँ लेखक या लिपिकर्ता की भी हो सकती हैं।

महिमाशाह का नाम, जान पड़ता है, अपने समय में अधिक विश्रुत रहा था एवं उसके संबंध की अनेक ऐतिहासिक कथाएँ भी प्रचलित हो गई थीं। अतएव संस्कृत की एक बालोपयोगी पुस्तक में भी उसके संबंध की एक कथा प्राप्त होती है जिसे हम अनुवाद सहित यहाँ उद्धृत करने के लिये पाठकों से क्षमा चाहते हैं। जहाँ से यह कथा उद्धृत की गई है वह पुस्तक मिथिला के महाराज शिवसिंह के इच्छानुसार लिखी गई थी एवं लेखक को जरइल परगने का विस्फी नाम का एक गाँव श्रावण शु० ७ गुरुवार संवत् १४६९ विक्रम (सन् १४१२ की जुलाई ११) को इसके उपलक्ष्य में दिया गया था। कहने का अभिप्राय यह है कि मुहम्मदशाह को शरण देने के कारण अलाउद्दीन का हम्मीरदेव पर चढ़ाई करने और हम्मीरदेव के मारे जाने का वृत्तान्त उस समय तक लोगों की जबान पर था। इस कथा में 'कालिंदी-तीर' पर 'योगिनीपुर' कहकर दिल्ली का परिचय देना हम्मीर-महाकाव्य के योगिनीपुर (सर्ग ४ श्लोक १०१) की स्मृति

कराता है। साथ ही अलाउद्दीन का 'रक्षितदीन-अदीनराज' पर्याय-रूपांतर काव्य के अल्लावदीन को याद दिलाता है।

अस्ति कालिंदीतीरे योगिनीपुरं नाम नगरम्। तत्र च निजभुजविजितनिखिलभूमंडलसकलारातिप्रलयधूमकेतुरनेककरितुरगपदातिसमेतः संकलितजनपदो निर्जितविपक्षनरपतिसीमंतिनीसहस्रनयनजलकल्पितापारपारावारो रक्षितदीनोऽदीनो नाम यवनराजो बभूव। स चैकदा केनापि निमित्तेन महिमासाहिनाम्ने सेनान्ये चुकोप। स च सेनानीस्तं प्रभुं प्रकुपितं प्राणग्राहकञ्च ज्ञात्वा चिन्तयामास। सामर्षो राजा विश्वसनीयो न भवति। तदिदानीं यावदनिरुद्धोऽस्मि तावत्क्वापि गत्वा निजप्राणरक्षां करोमीति परामृश्य सपरिवारः पलायितः। पलायमानोप्यचिन्तयत्। सपरिवारस्य दूरगमनमशक्यं परिवारं परित्यज्य पलायनमपि नोचितम्।

तदिहैव दयावीरं हम्मीरदेवं समाश्रित्य तिष्ठामीति पराभृत्य स यवनो महिमासाहिर्हम्मीरदेवमुपागम्याह। देव विनापराधं हन्तुमुद्यतस्य स्वामिनस्त्रासेनाहं त्वां शरणागतोऽस्मि; यदि मां रक्षितुं शक्नोषि तर्हि विश्वास देहि। नोचेदितोप्यन्यत्र गच्छामि। राजोवाच—मम शरणागतं त्वां यमोऽपि मयि जीवति पराभवितुं न शक्नोति। तदभयं तिष्ठ। ततस्तस्य राज्ञो वचनेन स यवनस्तस्मिन् रणस्तम्भनाम्नि दुर्गे निःशंकमुवास। क्रमेण तमदीनराजस्तत्रावस्थितं विदित्वा परमसामर्षः करितुरगपदातिपदाघातैर्धरित्रीं चालयन् कोलाहलैर्दिशो मुखरयन् कियद्भिरपि वासरैर्लंङ्घितवर्त्मा दुर्गद्वारमागत्य शरासारैः प्रलयघनवर्षं दर्शयामास। हम्मीरदेवोपि परिखागभीरचतुर्मेजलं कुन्तदन्तुरितप्राकारं शेखरं पताकाप्रबोधितद्वारश्रियं दुर्गं कृत्वा ज्याघातकर्णकटुकैर्वाणैर्गगनमन्धीकृतवान्। प्रथमयुद्धानन्तरं अदीनराजेन हम्मीरदेवं प्रति दूतः प्रहितः। दूत उवाच—राजन् हम्मीरदेव! श्रीमान् अदीनराजस्त्वामादिशति यन्ममापथ्यका-

रिणं महिमासाहिं परित्यज्य देहि। यद्येनं न ददासि तदा श्वस्तेन प्रभाते तव दुर्गं खुराघातैश्चूर्णविशेषं कृत्वा महिमासाहिना सह त्वामन्त:पुरं नेष्यामि। हम्मीरदेव उवाच—रे दूत त्वमवध्योसि तत. किं करवाणि अस्योत्तरं तव स्वामिने खड्गधाराभिरेव दास्यामि न वचोभिः। मम शरणागतं यमोऽपि वीचितुं न शक्नोति किम्पुनरदीनराजः। ततो निर्भर्त्सिते दूते गते सति अदीनराजो युद्धसम्बद्धरोपो बभूव। एवमुभयोरपि बलयोर्युद्धे प्रवर्त्तमाने त्रीणि वर्षाणि यावत् प्रत्यहं सम्मुखाः पराङ्मुखाः प्रहारिणः पराभूताः हन्तारो हताश्च परस्परं योधा बभूवुः। पश्चादर्द्धावशिष्ट सुभटे अदीनसैन्ये दुर्गे ग्रहीतुमशक्ये च अदीनराजः परावृत्य निजनगरगमनाकांक्षी बभूव। तच्च भग्नोद्यमं दृष्ट्वा रायमल्लरामपालनामानौ हम्मीरदेवस्य द्वौ सचिवौ दुष्टावदीनराजमागत्य मिलितौ। तावूचतुः—अदीनराज भवता क्वापि न गन्तव्यम्। दुर्गे दुर्भिक्षमापतितम्। आवां दुर्गस्य मर्मज्ञौ श्वः परश्वो वा दुर्गं ग्राहयिष्यावः। ततस्तौ दुष्टसचिवौ पुरस्कृत्य अदीनराजेन दुर्गद्वाराण्यवरुद्धानि। तथा संङ्कटं दृष्ट्वा हम्मीरदेवः स्वसैनिकान् प्रत्युवाच—रे रे जाजमदेवप्रभृतयो योधाः परिमितबलोप्यहं शरणागतकरुणया प्रवृद्धबलेनाप्यदीनराजेन समं योत्स्यामि। एतच्च नीतिविदामसम्मतं कर्म। ततो यूयं सर्वे दुर्गाद्बहिर्भूय स्थानान्तरं गच्छ। त ऊचुः—देव! भवान्निरपराधो राजा शरणागतस्य करुणया संग्रामे मरणमङ्गीकुरुते। वयं भवदाजीव्यभुजः कथमिदानीं भवन्तं स्वामिनं परित्यज्य कापुरुषत्वमनुसरामः। किञ्च श्वस्तनप्रभाते देवस्य शत्रुं हत्वा प्रभोर्मनोरथं साधयिष्यामः। यवनस्त्वयं वराकः प्रदीयताम्। तेन रक्षणीयरक्षा सम्भवति यतस्तद्रक्षानिमित्तकोऽयमारम्भः। यवन उवाच—देव किमर्थं ममैकस्य विदेशिनो रक्षार्थं सपुत्रकलत्रं स्वकीयराज्यं विनाशयिष्यसि। ततो मां त्यज देहि। राजोवाच—यवन मा मैवं ब्रूहि। किञ्च यदि किञ्चिन्मन्यसे निर्भयस्थानं तदा त्वां प्रापयामि। यवन

उवाच—राजन् मा मैवं ब्रूहि। सर्वेभ्यः प्रथमं मयैव विपक्षशिरसि खड्गप्रहारः कर्तव्यः। राजोवाच—स्त्रियः परं बहिःक्रियन्ताम्। स्त्रियः ऊचुः। कथं स्वामी शरणागतरक्षणार्थं संग्राममङ्गीकृत्य स्वर्गयात्रामहोत्सवे प्रवृत्तेऽस्मान् बहिःकर्तुमिच्छति। कथं प्राणपतेर्विना भूतले स्थास्यामः। यतः—

मा जीवन्तु स्त्रियोऽनाथा वृक्षेण च विना लताः।
साध्वीनां जगति प्राणाः पतिप्राणानुगामिनः॥

ततो वयमपि वीरस्त्रीजनोचितं हुताशनप्रवेशमाचरिष्यामः। एवं

भटैरङ्गीकृतं युद्धं स्त्रीभिरिष्टो हुताशनः।
राज्ञो हम्मीरदेवस्य परार्थं जीवमुज्झतः॥

ततः प्रभाते युद्धे वर्तमाने हम्मीरदेवस्तुरगारूढः कृतसन्नाहो निजसुभटसार्थसहितः पराक्रमं कुर्वाणो दुर्गान्निसृत्य खड्गधाराप्रहारैर्विपक्षवाजिनः पातयन् कुञ्जरान् घातयन् रथान्निपातयन् कबन्धान्नर्त्तयन् रुधिरधाराप्रवाहेण मेदिनीमलङ्कुर्वन् शरशकलितसर्वाङ्गस्तुरगपृष्ठे त्यक्तप्राणः सम्मुखः संग्रामभूमौ निपपात सूर्यमण्डलभेदी च बभूव। तथाहि—

ते प्रासादा निरुपमगुणास्ताः प्रसन्नास्तरुण्यः
राज्यं तच्च द्रविणबहुलं ते गजास्ते तुरंगाः।
त्यक्तुं यत्र प्रभवति नरः किञ्चिदेकं पदार्थं
सर्वं त्यक्त्वा समिति पतितो हन्त हम्मीरदेवः॥ ५॥

इस प्रकार हम्मीर-महाकाव्य में उल्लिखित एक कारण का उल्लेख प्रायः सब ही फारसी इतिहासों से पुष्ट होता है; किंतु दूसरा कारण अर्थात् 'देवलदेवी' का वर्णन फारसी इतिहासों में हम्मीरदेव के युद्ध के प्रसंग में नहीं पाया जाता, प्रत्युत गुजरात के राजा कर्ण के साथ युद्ध के प्रसंग में पाया जाता है। फारसी इतिहास-लेखकों के प्रमाद से ही ऐसा हुआ है। इसकी विवेचना हम अपने "देवलदेवी और

खिज्र खाँ" शीर्षक लेख में सप्रमाण कर चुके हैं, अतः उसे यहाँ दुह-राने की आवश्यकता नहीं है। अब युद्ध के समय पर विचार किया जाता है।

रणथंभौर पर चढ़ाई का समय

महाकाव्य के अनुसार रणथंभौर का युद्ध संवत् १३५८ के श्रावण शुक्ला ७ रविवार को समाप्त हुआ था (सर्ग १३ श्लोक १९६)। इस युद्ध में जितनी लड़ाइयाँ हुईं उनका ब्योरा काव्य के अनुसार इस प्रकार है—

१—उलू खाँ (उलगखाँ) की सर्वप्रथम चढ़ाई जिसमें अद्रि-घट्टिका में भीमसिंह मारा गया (सर्ग ९)।

२—उल्लू खाँ की दूसरी चढ़ाई जिसमें भोजदेव की सम्मति से अलाउद्दीन ने उसे १ लाख सवार देकर भेजा था (सर्ग १० श्लोक ३१)। यह लड़ाई हिंदौन की घाटी में हुई और उलग खाँ फिर हारकर भागा। इस बार शकों की स्त्रियों से राजधानी में मठा बिकवाया गया। इसी प्रसंग में मुगल शरणागतों ने जगरा पर आक्रमण करके पीथम को कैदी बनाया।

३—भोज के भड़काने और उलगखाँ के हारकर दिल्ली पहुँचने पर नुसरतखाँ और उलगखाँ को संयुक्त सेना सहित अलाउद्दीन ने बड़ी तैयारी से भेजा (सर्ग ११)। नुसरतखाँ मारा गया (सर्ग ११ श्लोक १००)। यह युद्ध ३ मास तक चलता रहा (सर्ग ११ श्लोक ९९)

४—अलाउद्दीन स्वयं रणस्तंभपुर पहुँचा (सर्ग १२)। दो दिन तक घनघोर युद्ध हुआ जिसमें ८५ सहस्र यवन वीर मारे गए (सर्ग १२ श्लोक ८८)। फिर वर्षाऋतु के आने से युद्ध बंद रहा। इसी अवसर में रतिपाल और रणमल्ल को उसने विश्वासघात के लिये तत्पर कर लिया और अंतिम युद्ध होने पर हम्मीरदेव मारा गया (सर्ग १३)।

मुसलमानों की तवारीखों में प्रथम दो युद्धों का उल्लेख नहीं पाया जाता, प्रत्युत अंत की दो लड़ाइयों का वर्णन मिलता है। वास्तव में उनसे यह आशा भी नहीं की जा सकती कि वे अपने स्वामी की हार का वर्णन करते, विशेषतः जियाउद्दीन बरनी, जो समसामयिक ऐतिहासिक होने के कारण अलाउद्दीन का दरबारी और वेतनभोगी भी था, इस प्रकार की बातें अपने कठोर स्वभाव के स्वामी के संबंध में कदापि नहीं लिख सकता था। फिर और इतिहास-लेखक लिखते भी कहाँ से, जब सबने अपना उस समय का इतिहास उसी के आधार पर लिखा है? किंतु जान पड़ता है कि उपर्युक्त प्रथम दो युद्धों की पराजय ने ही अलाउद्दीन की आँखें खोली थीं कि हम्मीरदेव स्वतंत्र हो गया है और उसके बढ़ते हुए बल ने अलाउद्दीन को उधर प्रवृत्त किया था। तो भी महिमाशाह आदि चारों मुगल सरदार इन दोनों युद्धों से पहले पहुँच चुके जान पड़ते हैं क्योंकि दूसरे युद्ध में उन्होंने भाग लिया। फलतः पहले दो युद्ध जालौर में मुगल-विद्रोह के पश्चात् के हैं। यह मुगल-विद्रोह सन् ६९७ हिजरी के मध्य की बात है। कहने का अभिप्राय यह है कि यह संग्राम सन् ६९७ हिजरी के अंत (संवत् १३५५ के आषाढ़ श्रावण के लगभग तदनुसार जून जूलाई १२९८ ईस्वी) से आरंभ हुआ था और श्रावण १३५८ (जीकाद ७०० हिजरी तदनुसार जूलाई सन् १३०१ ईस्वी) में समाप्त हुआ अर्थात् मुसलमानों को इस दुर्ग के विजय करने में तीन साल से अधिक लग गए।

रणथंभौर का दुर्ग

इस समय रणथंभौर का प्रसिद्ध अभेद्य दुर्ग जयपुर राज्य के दक्षिण-पूर्वी कोण में सवाई माधोपुर की नजामत में गिना जाता है। यह २६°२′ अक्षांश उत्तर और ७६°२८′ रेखांश पूर्व में

एक ऊँची चट्टान या पहाड़ी पर स्थित है जो भूतल से १५७६ फुट ऊँची है। इसके चारों ओर दृढ़ परिखा है। इंपीरियल गजेटियर में लिखा है कि संवत् १२२६ में गुलाम सुल्तान अल्तमश का इस पर कुछ समय के लिये अधिकार हो गया था किंतु इसके पश्चात् सन् १२९० में जलालउद्दीन खिलजी ने और सन् १३०० में अलाउद्दीन ने इस पर व्यर्थ चढ़ाई की थी (भाग २१ पृष्ठ २३५)।

दुर्ग की रचना

रणथंभौर का दुर्ग पहाड़ी दुर्ग है जो स्वयं चारों ओर पहाड़ी और पहाड़ों से घिरा है। एक प्रकार से यह कहना उचित होगा कि उसका परकोटा ही पहाड़ी टीलों से बना है। जिस पहाड़ी पर किला है उसके चारों ओर ये पहाड़ी श्रेणियाँ लगभग १४ कोस की लंबाई और ४ कोस की चौड़ाई में फैली हैं और पहाड़ी तथा इन श्रेणियों के बीच में पठार तथा समतल भूमि है। वह पहाड़ जिस पर दुर्ग है सीधा दीवार की नाईं है एवं चारों ओर से मैदान, तालाब और जंगल से घिरा है। किलेवाली पहाड़ी के दक्षिण में एक और पहाड़ी वैसी ही सीधी खड़ी है तथा इन दोनों पहाड़ियों के बीच में एक बड़ा जंगली नाला है। इसी पहाड़ी को मुसलमानों ने 'रन' और 'मदन' लिखा है। इस दक्षिण की पहाड़ी से आगे बढ़कर वह पहाड़ियों की श्रेणी है जो दुर्ग के परकोटे का काम देती है एवं जिसके अनेक कूट अर्धकूट या बुर्ज से बने हैं। ये सब कूट स्वयं खूब मजबूत दुर्गों का काम देते हैं। इस दुर्ग की रचना के विषय में फरिश्ता, आईन अकबरी, बदायूँनी आदि ने अनेक सच्ची झूठी बातें—वास्तविक परिस्थिति को न जानने के कारण—लिख दी हैं।

वास्तव में प्रकृति द्वारा निर्मित ऐसा पर्वतीय दुर्ग सरलता से विजय नहीं किया जा सकता था, इसी लिये रणथंभौर की इतनी प्रशंसा थी।

मुसलमानों की तवारीख़ों में प्रथम दो युद्धों का उल्लेख नहीं पाया जाता, प्रत्युत अंत की दो लड़ाइयों का वर्णन मिलता है। वास्तव में उनसे यह आशा भी नहीं की जा सकती कि वे अपने स्वामी की हार का वर्णन करते, विशेषत: जियाउद्दीन बरनी, जो समसामयिक ऐतिहासिक होने के कारण अलाउद्दीन का दरबारी और वेतनभोगी भी था, इस प्रकार की बातें अपने कठोर स्वभाव के स्वामी के संबंध में कदापि नहीं लिख सकता था। फिर और इतिहास-लेखक लिखते भी कहाँ से, जब सबने अपना उस समय का इतिहास उसी के आधार पर लिखा है ? किंतु जान पड़ता है कि उपर्युक्त प्रथम दो युद्धों की पराजय ने ही अलाउद्दीन की आँखें खोली थीं कि हम्मीर-देव स्वतंत्र हो गया है और उसके बढ़ते हुए बल ने अलाउद्दीन को उधर प्रवृत्त किया था। तो भी महिमाशाह आदि चारों मुगल सरदार इन दोनों युद्धों से पहले पहुँच चुके जान पड़ते हैं क्योंकि दूसरे युद्ध में उन्होंने भाग लिया। फलत: पहले दो युद्ध जालौर में मुगल-विद्रोह के पश्चात् के हैं। यह मुगल-विद्रोह सन् ६९७ हिजरी के मध्य की बात है। कहने का अभिप्राय यह है कि यह संग्राम सन् ६९७ हिजरी के अंत (संवत् १३५५ के आषाढ़ श्रावण के लगभग तदनुसार जून जूलाई १२९८ ईस्वी) से आरंभ हुआ था और श्रावण १३५८ (जीकाद ७०० हिजरी तदनुसार जूलाई सन् १३०१ ईस्वी) में समाप्त हुआ अर्थात् मुसलमानों को इस दुर्ग के विजय करने में तीन साल से अधिक लग गए।

रणथंभोर का दुर्ग

इस समय रणथंभोर का प्रसिद्ध अभेद्य दुर्ग जयपुर राज्य के दक्षिण-पूर्वी कोण में सवाई माधोपुर की नजामत में गिना जाता है। यह २६°२′ अक्षांश उत्तर और ७६°२८′ रेखांश पूर्व में

एक ऊँची चट्टान या पहाड़ी पर स्थित है जो भूतल से १५७६ फुट ऊँची है। इसके चारों ओर दृढ़ परिखा है। इंपीरियल गजेटियर में लिखा है कि संवत् १२२६ में गुलाम सुल्तान अल्तमश का इस पर कुछ समय के लिये अधिकार हो गया था किंतु इसके पश्चात् सन् १२९० में जलालउद्दीन खिलजी ने और सन् १३०० में अलाउद्दीन ने इस पर व्यर्थ चढ़ाई की थी (भाग २१ पृष्ठ २३५)।

दुर्ग की रचना

रणथंभौर का दुर्ग पहाड़ी दुर्ग है जो स्वयं चारों ओर पहाड़ी और पहाड़ों से घिरा है। एक प्रकार से यह कहना उचित होगा कि उसका परकोटा ही पहाड़ी टीलों से बना है। जिस पहाड़ी पर किला है उसके चारों ओर ये पहाड़ी श्रेणियाँ लगभग १४ कोस की लंबाई और ४ कोस की चौड़ाई में फैली हैं और पहाड़ी तथा इन श्रेणियों के बीच में पठार तथा समतल भूमि है। वह पहाड़ जिस पर दुर्ग है सीधा दीवार की नाईं है एवं चारों ओर से मैदान, तालाब और जंगल से घिरा है। किलेवाली पहाड़ी के दक्षिण में एक और पहाड़ी वैसी ही सीधी खड़ी है तथा इन दोनों पहाड़ियों के बीच में एक बड़ा जंगली नाला है। इसी पहाड़ी को मुसलमानों ने 'रन' और 'मदन' लिखा है। इस दक्षिण की पहाड़ी से आगे बढ़कर वह पहाड़ियों की श्रेणी है जो दुर्ग के परकोटे का काम देती है एवं जसके अनेक कूट अर्धकूट या बुर्ज से बने हैं। ये सब कूट स्वयं वूद मजबूत दुर्गों का काम देते हैं। इस दुर्ग की रचना के विषय में फरिश्ता, आईन अकबरी, बदायूँनी आदि ने अनेक सच्ची भूठी बातें—वास्तविक परिस्थिति को न जानने के कारण—लिख दी हैं।

वास्तव में प्रकृति द्वारा निर्मित ऐसा पर्वतीय दुर्ग सरलता से विजय नहीं किया जा सकता था, इसी लिये रणथंभौर की इतनी प्रशंसा थी।

युद्ध का वर्णन—उलग खाँ की चढ़ाई

शरणवत्सल हम्मीरदेव चौहान दिग्विजय के पश्चात् कोटियज्ञ करने में लगा और यज्ञ के अंत में वह एक मास के मुनिव्रत में संलग्न था कि उसकी दिग्विजय की चर्चा दिल्ली दर्बार तक जा पहुँची। खिलजी सुल्तान ने इसे एक प्रकार की चिनौती समझा और उलग खाँ को उसके विरुद्ध चढ़ाई करने की आज्ञा दी। इस सेवा के लिये उसे बयाना का प्रांत दिया गया। (बरनी पृष्ठ २७२) किंतु उसे धर्मसिंह और भीमसिंह से परास्त होकर छल का आश्रय लेना पड़ा और वह जैसे-तैसे प्राण बचाकर दिल्ली पहुँचा (हम्मीर-महाकाव्य)। यह घटना सन् ६९७ के अंत या ६९८ के आरंभ की है। इसके पश्चात् नुसरतखाँ को अलाउद्दीन ने कड़ा प्रांत देकर उसे तथा दूसरे प्रांतों से सेना ले जाकर उलग खाँ की सहायता करने की आज्ञा दी (बरनी पृष्ठ २७२)। इन दोनों ने पहले झाई पर अधिकार किया अथवा उसे अपने युद्ध का स्कंधावार (Base) बनाया और फिर रणस्तंभपुर का घेरा डाला (बरनी)। इस बीच में हम्मीरदेव का एक भाई, जो खड्गग्राही भी था, भोजदेव अपने सहोदर पीथम समेत हम्मीरदेव से असंतुष्ट होकर अलाउद्दीन की सेवा में आकर रहने लगा था। उसे 'जगरा' की जागीर दे दी गई थी। उसने भी अपने भाई के विरुद्ध इस युद्ध में भाग लिया। उलग खाँ के साथ इस बार १ लाख सवार थे। इस समय तक हम्मीरदेव के विरुद्ध चढ़ाई करने के लिये अलाउद्दीन के लिये एक और हेतु भी उत्पन्न हो गया था और वह यह कि उसके जालौरवाले मुगल-विद्रोही भी हम्मीरदेव की शरण में आ गए थे।

इस युद्ध में भी मुसलमानों की हार हुई। उनकी बहुत सी सेना मारी गई और कुछ स्त्रियाँ कैद हुईं जिनसे राजधानी में मठा बिकवाया गया। इस युद्ध में महिमाशाह, गर्भरूक या गभरू, तिचर और बेचर मुगल भी दिल्ली की फौज से लड़े थे। रतिपाल को इस

विजय के लिये पुरस्कार दिया गया। किंतु मुगलों ने इस तमाम झगडे की जड़ भोज और पीथम को समझकर हम्मीरदेव से उन पर चढाई करने की आज्ञा ली एवं जगरा में जाकर वे पीथम को बंदी करके रणथंभोर को ले आए। ये सब बातें हम्मीर-महाकाव्य से ही ज्ञात होती हैं, किसी फारसी इतिहास मे इनका पता नहीं चलता। यह घटना पहली घटना से दो या तीन मास पश्चात् की है।

तीसरी बार फिर उलगखाँ और नुसरतखाँ को अलाउद्दीन ने रणथंभोर पर भेजा और स्वयं भी पीछे चला। किंतु अलाउद्दीन के रणस्थल मे पहुँचने से पूर्व ही नुसरतखाँ मारा गया और उसका शव अलाउद्दीन को दिल्ली में मिला (सन् ६९८ हि०—बरनी पृष्ठ २७२; बदायूँनी, उर्दू संस्करण पृष्ठ ५९, हम्मीर-महाकाव्य सर्ग ११ श्लोक १००—०२)।

अब अलाउद्दीन दिल्ली मे अधिक देर न ठहर सका। उसने अपने सरदारों और उनके अधीन सेना को भिन्न भिन्न प्रांतों से एकत्र करके राजपूताने को कूच किया।

मार्ग में अलाउद्दीन तिलपत में शिकार के लिये ठहरा कि शिकार-गाह में ही अलाउद्दीन के भाई अकतखाँ ने उसके प्राण लेकर स्वयं गद्दी पर बैठने के विचार से घातक आक्रमण किया, किंतु माणिक नामक एक नौमुस्लिम हिंदू ने, जिसे इतिहास मे मलिक काफूर भी कहा गया है, उसके ऊपर चलाए तीरों को अपने ऊपर लेकर उसके प्राण बचाए (बरनी)। यह घटना बसत संवत् १३५६ (सन् ६९८ हि०) के आरंभ की है।

अलाउद्दीन के रणस्थल मे पहुँचने से पूर्व जो दो युद्ध हुए थे एवं ऊपर जिनका उल्लेख किया गया है वे वास्तव में उस स्थल पर हुए जान पड़ते हैं जो प्रधान दुर्ग और कोट के मध्य में है एव जिसे मुसलमानों ने 'रन' या 'मदन' कहा है। इस पहाड़ी पर से युद्ध करने

में क्षत्रियों ने जिस कौशल और साहस का परिचय दिया उसका उल्लेख हम्मीर-महाकाव्य के कर्ता ने सर्ग ११ के श्लोक ७० से सर्ग के अंत तक योग्यतापूर्वक किया है जो हम संक्षेप में ऊपर लिख चुके हैं।

फरिश्ता ने लिखा है कि अलाउद्दीन के रणथंभौर पहुँचने पर युद्ध में अधिक तत्परता दिखाई गई और मुसलमानी सेना ने नकब (सेंध) लगाने में सफलता प्राप्त की तो भी राजपूत लोग दुर्ग पर से तीर, पत्थर और आग की वर्षा कर बहुत से लोगों को प्राणहीन करते थे और बादशाह के समझाने बुझाने पर ध्यान नहीं देते थे (पृ०.१५६—उर्दू संस्करण)।

इसके दो कारण थे। पहाड़ों के पेचीदा मार्गों से होकर राजपूतों को रसद और सहायता निरंतर पहुँचती रहती थी जिनका मुसलमानों को कुछ पता नहीं मिलता था और अलाउद्दीन के विरुद्ध जो विद्रोह उसके सूबेदार कर रहे थे उनका पता भी राजपूतों को मिलता रहता था जिससे राजपूत प्रायः यही समझते रहते थे कि अलाउद्दीन को संभवतः गृह्य आपत्तियों से घबराकर स्वयं ही घेरा उठा लेना पड़ेगा (फरिश्ता)।

यद्यपि यह ठीक है कि अलाउद्दीन के गवर्नर उसके विरुद्ध विद्रोह करके स्वतंत्र सत्ता कायम करने का प्रयत्न करते थे एवं उसके संबंधी भी उसे मारकर स्वयं राज्यसत्ता हथियाना चाहते थे—क्योंकि उस समय तक दिल्ली के मुसलमानी राजवंश का यही क्रम चला आता था एवं इस प्रकार के कामों की एक रूढ़ि सी पड़ गई थी—किंतु ऐसा ज्ञात होता है कि राजपूतों को इन बातों का कुछ भी पता नहीं था क्योंकि यदि उन्हें पता होता तो वे उन विद्रोहों में अलाउद्दीन के विरुद्ध चेष्टा करते तथा महाकाव्य में उनका उल्लेख भी पाया जाता। तो भी यह माना जाना उचित ही है कि रणथंभौर के युद्ध में इतना

अधिक समय लगने के जहाँ और कारण थे वहाँ यह भी अंशतः एक कारण था।

फरिश्ता का यह कथन भी ध्यान देने योग्य है कि "राजपूत बादशाह के समझाने बुझाने पर ध्यान नहीं देते थे।" इस कथन से फरिश्ता का संकेत उन दो घटनाओं की तरफ होना संभव है जिनका उल्लेख हम्मीर-महाकाव्य में सर्ग ११ श्लोक ५४ से ६९ तक तथा सर्ग १२ श्लोक १ से ६ तक में हुआ है।

रणभूमि में पहुँचने पर अलाउद्दीन और हम्मीर का दिनद्वय-वाला भीषण युद्ध हुआ जिसमें ८५ हजार मुसलमान मारे गए (सर्ग १२)। इसके पश्चात् युद्ध बंद रहा। इसी अंतर में अलाउद्दीन अपने विद्रोही सरदारों का दमन करने में लगा रहा, जिनमें मुख्य हाजी मौला, अमीर उमर मंगू, सुलेमान और अकतखाँ के सहायक मुख्य थे।

सामयिक संधि-काल में राजपूतों ने युद्ध की और भी दृढ़ता से तैयारी की (फरिश्ता, पृष्ठ १६०)। अंत में संवत् १३५८ में अलाउद्दीन ने आस-पास से गरीब प्रजा को इकट्ठा किया और बोरे तैयार कराकर सेना में बाँटकर उनमें रेत भरवाया तथा उन्हें गार (नाले) में भरवाकर बड़े बड़े बंद तैयार कराए एवं उन पर बड़े बड़े पत्थर और पत्थर फेंकने के यंत्र लगाए तथा पत्थरों से दुर्ग के पश्चिम परकोटे को तोड़ा। राजपूतों ने ऊपर किले पर से आग बरसाई जिससे दोनों तरफ की सेना का सत्यानाश हुआ।' मुसलमानी सेना ने इस अवसर पर झाँई से धार तक का देश उजाड़ दिया (बरनी पृष्ठ २७७)। राजपूतों ने इस नाले या खाई के पुल को ही नष्ट नहीं किया, किंतु उन्होंने मुसलमानों की तैयार की हुई सुरंग को भी गर्म तेल से भरकर नष्ट किया तथा उसमें जलती हुई राल छोड़ी जिससे अलाउद्दीन की सेना नष्ट हो गई (महाकाव्य सर्ग १३ श्लोक ३९ से ४८ तक)। बरनी आदि मुसलमान लेखकों ने जिस युद्ध का उपर्युक्त संकेत

किया है उसका स्पष्ट वर्णन महाकाव्य के आधार पर हम लिख आए हैं।

इसके पश्चात् हम्मीरदेव किस प्रकार विश्वासघात के फंदे में फँसे, रणमल और रतिपाल को किस प्रकार यवन-शिविर में संधि के बहाने बुलाकर भेद-नीति से अलाउद्दीन ने काम लिया, किस प्रकार राज-प्रासाद में स्त्रियों ने जौहर और पुरुषों ने शाका किया आदि बातें मुसलमानी इतिहासों में नहीं आतीं किंतु हम्मीरदेव की मृत्यु के पश्चात् किले पर मुसलमानों के अधिकार होने का उल्लेख पाया जाता है। किंतु काव्य में ये सब बातें विस्तारपूर्वक दी गई हैं और उनमें से कम से कम राजा के रणमल्ल आदि मंत्रियों के विद्रोह का उल्लेख मुसलमान इतिहास-लेखक भी अत्यंत संक्षेप में करते हैं। फरिश्ता ने लिखा है कि "राजा हम्मीरदेव मय अपने लोगों के मारा गया......राजा के वजीर रणमल्ल वगैरः जो राजा से जुदा हो गए थे सबके कत्ल का हुक्म दिया और फर्माया कि इन लोगों ने अपने वली न्यामत के साथ कैसा सलूक किया जो हम इनसे वफादारी की उम्मीद करें ?" (उर्दू संस्करण पृष्ठ १६०)।

वास्तव में रतिपाल को जिस प्रकार कंचन और कंचनी (कामिनी) की सहायता से तोड़-फोड़कर मिला लिया था (हम्मीर-महाकाव्य सर्ग १३ श्लोक ७१ से ८१ तक) वह सब कोई भी ईमानदार (या पक्षपाती भी) मुसलमान इतिहास-लेखक नहीं लिख सकता था। विशेषतः बरनी ने तो, राजकीय इतिहास-लेखक होने के कारण, मुहम्मदशाह और रणमल्ल के नामों का उल्लेख या उनके संबंध की किसी घटना तक का संकेत नहीं किया है।

युद्ध का फल

हम्मीरदेव और उसके वे सेनापति आदि युद्ध करते करते वीरता-पूर्वक स्वर्ग सिधारे और राजपूतनियों ने महल में सौभाग्यवती महा-

रानी हीरादेवी और देवलदेवी समेत अग्निप्रवेश किया। महिमाशाह पर शरणवत्सल हम्मीर के इस वीरत्व-पूर्ण आत्मोत्सर्ग और मित्र-धर्म निवाहने का वह प्रभाव पड़ा जो एक वीर पर पड़ना चाहिए था। उसने अपने कुटुंबियों को तलवार की भेंट करके वीरतापूर्वक मुसलमान सेना से लोहा लिया। वह उन वीर और साहसी मुगलों में से एक था जो जलालउद्दीन के समय में भारत में आकर मुसलमान हो गए थे एवं जिनके सरदार अलगूखाँ को जलालउद्दीन खिलजी ने अपना दामाद बनाया था। इससे पहले मुगल बौद्धधर्मावलंबी थे, अतः महिमाशाह में अभी तक बौद्ध-धर्म का आचार और साहस शेष था। वह लड़ाई में घायल होकर गिर पड़ा था कि अलाउद्दीन को भी उसकी सूचना मिली। फरिश्ता ने लिखा है कि अलाउद्दीन ने उससे पूछा—"यदि तुम्हारी चिकित्सा कराकर तुम्हें आरोग्य कर दिया जावे तो तुम मुझसे कैसा बर्ताव करोगे?" उसने जवाब दिया—"मैं तुझे मारकर शरणवत्सल हम्मीरदेव के लड़के को गद्दी पर अभिषिक्त करूँगा।" अलाउद्दीन ने यह सुनकर उस पर हाथी चलवा दिया (पृष्ठ १६०)। वास्तव में अलाउद्दीन और उसके सेनापतियों ने गुजरात-विजय के पश्चात् नौमुस्लिम मुगलों से जैसी क्रूरता और नृशंसता का बर्ताव किया था उसको स्मरण करके कोई भी मुगल यही उत्तर देता। मुगलों के पाँच या छः आक्रमण भी अलाउद्दीन के समय में इन अत्याचारों का बदला लेने के लिये हुए थे।

रणथंभौर का किला उलगखाँ के सुपुर्द किया गया और अलाउद्दीन कुछ समय पीछे दिल्ली को लौट गया। किंतु महिमाशाह मुगल के कथन का उस पर यथेष्ट प्रभाव पड़ा और उसने रणथंभौर के दुर्ग में ही इस प्रश्न पर अपने मंत्रिमंडल से गंभीरतापूर्वक विचार किया कि इस प्रकार बार बार विद्रोह क्यों होते हैं एवं इन्हें किस प्रकार दबाया जा सकता है। किंतु यह विषय इस निबंध से बाहर का है।

उलगखाँ चार या पाँच मास पीछे, जब वह दक्षिण तथा तिलंगाने पर चढ़ाई करने की योजना पर अलाउद्दीन से विचार और परामर्श करने को जा रहा था, मार्ग में ही मर गया और उसका शव दिल्ली में ले जाकर दफनाया गया। इस प्रकार अलाउद्दीन के 'चार यारों' में दो रणथंभौर की भेंट हो गए (बदायूँनी—पृष्ठ २८३)। इसके पश्चात् रणथंभौर फिर राजपूतों के अधिकार में आ गया।

नुसरतखाँ की मृत्यु

नुसरतखाँ की मृत्यु का वृत्तांत जिस प्रकार हम्मीर-महाकाव्य में दिया है वह फारसी इतिहासों से कुछ भिन्न नहीं है, प्रत्युत वे उसकी पुष्टि करते हैं। राजपूतों का चलाया हुआ एक गोला तुर्कों के चलाए हुए गोले से टकराकर कई टुकड़े हो गया। उन टुकड़ों में से एक टुकड़ा नुसरतखाँ के लगा और वह मर गया (सर्ग ११ श्लोक १००)। फरिश्ता के अनुसार मंजनीक से चलाए हुए पत्थर के लगने से वह मरा था (Brigg's, Vol. II, p. 301 Elliot and Dowson, Vol. III, p. 172)। बदायूँनी ने लिखा है कि नुसरतखाँ ने उलगखाँ की सहायता करने के विचार से रणथंभौर के किले को घेरा। एक दिन एक पत्थर सिर पर गिरा और उसके सदमे से वह मर गया (पृष्ठ ६०)।

किंतु अमीर खुसरू नुसरतखाँ की मृत्यु का हाल न आशिकी में लिखता है और न इस घटना का उल्लेख वह अपनी तारीख अलाई में करता है।

सच बात तो यह है कि उलगखाँ और नुसरतखाँ के जिन दो युद्धों का हाल काव्य के सर्ग ११ में लिखा गया है वह सब तथा सर्ग ११ में वर्णित अन्य सब घटनाएँ भारतवर्ष के तत्कालीन इतिहास में नई शोध की बातें हैं जिन पर इतिहासवेत्ताओं को ध्यान देना आवश्यक है।

सेनाओं की संख्या

काव्य के अनुसार स्थान स्थान पर यवन-सेना की संख्या का उल्लेख किया गया है, किंतु उसमें राजपूती सेना की संख्या का उल्लेख प्राप्त नहीं होता। तो भी वह दस हज़ार से अधिक न रही होगी। उलगखाँ प्रथम बार ८० हज़ार घुड़सवारों के साथ बनास नदी के तट पर लड़ा था (सर्ग ९ श्लोक १०६)। दूसरी बार वह १ लाख सवार ले गया था जब तुर्क स्त्रियों से रणस्तंभपुर में मठा विकवाया गया था (सर्ग १० श्लोक ३१)। तीसरी बार नुसरत-खाँ के साथ मुसलमान सिपाहियों की संख्या का उल्लेख कहीं नहीं पाया जाता। किंतु, जान पड़ता है, अलाउद्दीन अपने साथ कोई अलग सेना नहीं लाया था। उसके आने पर प्रथम दो दिन के युद्ध में ८५००० मुसलमान मारे गए थे (सर्ग १२ श्लोक ८८)। हम्मीर-देव की सेना की संख्या बदायूँनी ने १० हजार सवार और बेई-तिहा प्यादे लिखी है। रैंकिस भी यही कहता है। खुसरू ने भी आशिकी में यही लिखा है तथा यह भी कहा है कि घोड़े अरबी थे और बहुत से हाथी तथा पैदल सिपाही भी थे।

इस सब विवेचना को पढ़ने के परचात, हमारा विश्वास है कि, ऐतिहासिक दृष्टि में काव्य का महत्त्व बहुत अधिक हो जाता है एवं उसे अधिक समय तक ऐतिहासिक संसार से नहीं भुलाया जा सकता।

(११) बुंदेलखंड का संक्षिप्त इतिहास

[लेखक—श्री गोरेलाल तिवाड़ी, बिलासपुर]

(पत्रिका भाग १२, पृष्ठ २३४ से आगे)

अध्याय ३३

पेशवाई का अंत और अँगरेजों का राज्य

१—जिस समय बुंदेलखंड में अँगरेजों ने अपना राज्य जमाया उस समय सारे भारतवर्ष में गड़बड़ मची हुई थी। विक्रम-संवत् १८६४ में लार्ड मिंटो कंपनी की सरकार के गवर्नर हुए। इस समय राजपूताने के राजा लोग भी आपस में लड़ रहे थे। उदयपुर की राजकुमारी कृष्णाकुमारी के कारण जयपुर और जोधपुर के राजाओं में युद्ध हो गया। जब उदयपुर की राजकुमारी ने विष खाकर आत्महत्या कर ली तब वह युद्ध बंद हुआ। पिंडारे लोग मालवा, बुंदेलखंड और राजपूताने में अपने दौरे कर रहे थे। सिर्फ पंजाब में ही इस समय महाराज रणजीतसिंह के कारण शांति थी। अँगरेज लोगों ने भी रणजीतसिंह से सुलह कर ली थी।

२—इसी समय मराठों और अँगरेजों से युद्ध हुआ। बाजीराव पेशवा, सेंधिया और होल्कर अँगरेजों की बढ़ती रोकने का प्रयत्न कर रहे थे। अँगरेजों के गवर्नर लार्ड मिंटो के चले जाने पर लार्ड हेस्टिंग्ज गवर्नर हुए। इन्होंने मराठों से विक्रम-संवत् १८७४ में दूसरी संधि की। इस संधि के अनुसार बुंदेलखंड के मराठे अँगरेजों के अधीन हो गए और उनका संबंध पेशवा दरबार से जाता रहा। यह संधि मराठों की ओर से नाना गोविंदराव ने की। इस संधि की मुख्य शर्तें ये थीं—

(१) संवत् १८६३ की संधि की शर्तें जिनमें कोई फेरफार न हुआ हो ज्यों की त्यों रहेंगी।

(२) अँगरेज-सरकार राजाओं के वारिसों के राज्य पर कायम होने पर नजराना न लेगी और नाना गोविंदराव का और उनके वारिसों का राज्य का मालिक होना स्वीकार करेगी।

(३) यदि नाना गोविंदराव के प्रांत पर कोई आक्रमण करेगा तो अँगरेज उनकी सहायता करेंगे और बाहरी दुश्मन या राजा से जो संधि अँगरेज करेंगे उसे नाना साहब को मंजूर करना होगा।

(४) नाना साहब महोबे के आस-पास का इलाका अँगरेजों को दें।

(५) नाना साहब बिना अँगरेजों की आज्ञा के किसी बाहरी शत्रु से न लड़ें और न उस पर आक्रमण करें।

(६) नाना साहब सरकार अँगरेज की आज्ञा बिना किसी राजा से संधि न करें।

(७) मराठों और अँगरेजों की सीमा के झगड़ों का फैसला अँगरेजों का पोलिटिकल सुपरिंटेंडेंट करेगा। उसका फैसला नाना साहब को मानना पड़ेगा।

(८) सागर के विनायकराव और जालौन के नाना साहब के बीच में जो झगड़े होंगे उनका फैसला सरकार अँगरेज के कहने के अनुसार ही होगा।

(९) यदि अँगरेज-सरकार की फौज को नाना साहब के राज्य में से निकलने की जरूरत होगी तो नाना साहब उसे हर प्रकार की सहायता देते रहेंगे।

इस प्रकार यह संधि जालौन मे तारीख १ फरवरी सन् १८१७ को हुई[1]।

---

(१) इस संधि के अनुसार अग्र-लिखित गाँव अँगरेजों को मिले—

३—इस संधि के थोड़े ही दिनों के पश्चात् मराठों और अँगरेजों में फिर लड़ाई हो गई। उपर्युक्त संधि के अनुसार पूना के पेशवा अँगरेजों के अधीन हो गए और बुंदेलखंड पर पेशवा दरबार का कोई अधिकार न रहा। इसलिये पेशवा बाजीराव ने फिर अँगरेजों से स्वतंत्र होने का प्रयत्न किया। पूना में जो अँगरेजों का रेजिडेंट रहता था उसे बाजीराव के इरादों का हाल मालूम हो गया और वह पूना से भागकर किरकी पहुँचा। वहाँ पर भी पेशवा ने उस पर आक्रमण किया परंतु रेजिडेंट को अँगरेजों से सहायता मिल जाने के कारण उसने पेशवा को हटा दिया। पेशवा को भागना पड़ा और अँगरेजी सेना ने पेशवा का पीछा किया। पेशवा फिर बंदी कर लिया गया। नागपुर के भोंसले ने भी सीताबर्डी में अँगरेजों पर आक्रमण किया परंतु भोंसले भी हार गए। होल्कर ने भी इसी प्रकार प्रयत्न किया परंतु होल्कर भी हार गए। इस युद्ध के पश्चात् बाजीराव पेशवा के सब प्रदेश विक्रम-संवत् १८७५ में अँगरेजों ने अपने अधिकार में कर लिए। बाजीराव कानपुर के पास बिठूर में रहने लगे और उन्हें अँगरेज सरकार की ओर से ८ लाख रुपए वार्षिक पेंशन मिलने लगी। मराठों को हराकर इस प्रकार अँगरेज सारे भारतवर्ष में सबसे अधिक बलशाली हो गए। बुंदेलखंड का (बाँदे के समीप) उत्तरीय भाग तो उनके राज्य में आ गया था और शेष भाग के राजाओं ने अँगरेजों का आधिपत्य स्वीकार कर लिया था पर जिन राजाओं से पहले संधियाँ न हुई थीं उनसे

संरेह, सुर्दे, चांदे बुजुर्ग, बरदेई, जरौली, पैरार, अछरोन, बिहरा, कमा, हरयोखी, फतेहपुर, रतबा, अपहोली, रेवंद, अकिहानी, बिहनी, अमसार, चमरकथा, सरा, मरखा, लचइरा, कदार, कोदसा, खजहा, कमूखर, ऊजरहटा, अकौना, भयानी, सदोई, फारधा, नूरपुर, सेरा, सरोली, कंजुला, भोई, सोंटई, सिरसई कलां, सिरसई खुर्द, अधारी पुरना, कुस्यारी, खरदई, जसकुर माफी, समरिया, कलरुया, जरारा, लोई, भानपुर और नकरई।

भी अब संधियाँ कर ली गईं और, इन संधियों के अनुसार, उन सब राजाओं ने अँगरेजों का आधिपत्य स्वीकार कर लिया। इन सब बातों का उल्लेख पूर्व अध्याय में हो चुका है।

४—जालौन में नाना साहब के साथ जब अँगरेजों ने संधि की उसी समय पेशवा का सब राज्य अँगरेजों ने ले लिया और पेशवा बिठूर में जा रहे। इस समय सागर विनायकराव चांदोरकर के अधिकार में था। विनायकराव अपना राज्य स्वतंत्र रीति से चलाते थे और जालौन के नाना साहब से कोई संबंध न रखते थे। इस कारण जालौन की संधि का सागर से कोई संबंध न था। विनायकराव ने भोंसले को सहायता दी थी और कुछ पिंडारे लोगों को भी सहायता दी थी। इस कारण अँगरेज-सरकार ने विनायकराव का सब प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया। इससे विनायकराव सूबेदार को अँगरेज सरकार की ओर से २॥ लाख रुपए वार्षिक पेंशन के मिलने लगे[1]।

५—रुकमाबाई ने बलवंतराव उर्फ बाबा साहब को गोद ले लिया था। इस कारण रुकमाबाई के पश्चात् ये बलवंतराव ही राज्य के अधिकारी होते। परंतु यह प्रांत अँगरेजों के अधिकार में आ जाने के कारण बलवंतराव को पाँच हजार रुपए साल की पेंशन दी गई। ये आजकल भी सागरवाले राजा कहलाते हैं और जबलपुर में रहते

---

(१) विनायकराव चांदोरकर की मृत्यु संवत् १८८२ में हुई। इनके पुत्र मोरेश्वरराव को सरकार से १० हजार रुपए पेंशन मिलती थी। ये झाँसी के रामचंद्रराव सूबेदार के बहनोई थे। मोरेश्वरराव के दो पुत्र कृष्णराव और त्र्यंबकराव हुए। ये दोनों पुरुष बड़े प्रसिद्ध थे। कृष्णराव से लार्ड विलियम बैंटिंक ने स्वयं भेंट की थी और उन्हें उन्होंने "राव" की उपाधि तथा एक हजार रुपए की जागीर दी थी। त्र्यंबकराव सूबेदार के पुत्र वासुदेवराव ने इस इतिहास के लेखन में विशेष सहायता दी है।

जब सागर में अँगरेजी राज्य हुआ तब विनायकराव और अँगरेजों के बीच ये शर्तें हुई थीं।

हैं। झाँसी में रघुनाथ हरी के मर जाने पर उनके भाई शिवराव भाऊ सूबेदार हुए थे। शिवराव भाऊ के मरने पर उनके अल्पवयस्क पुत्र रामचंद्रराव सूबेदार हुए। रामचंद्रराव के समय उनकी माता सखूबाई राज-काज देखती थीं परंतु उन्होंने एक बार अपने पुत्र को ही मरवा डालने का प्रयत्न किया। इस कारण सखूबाई कैद कर ली गईं और रामचंद्रराव स्वतंत्रतापूर्वक सूबेदारी करने लगे। जब पेशवा का राज्य अँगरेजों ने ले लिया तब झाँसी में रामचंद्रराव ही सूबेदार थे। अँगरेजों और झाँसी राज्य से सीपरी की छावनी में संधि हुई थी। इस संधि-पत्र के अनुसार ब्रिटिश सरकार ने झाँसी का राज-वंश परंपरा के लिये रामचंद्रराव को दिया। यह संधि विक्रम-संवत् १८७४ में हुई थी। विक्रम-संवत् १८७५ में पेशवा की दूसरी संधि होने के समय झाँसी रामचंद्रराव के अधिकार में था और नाना गोविंदराव जालौन तथा गुरसराय के अधिकारी थे।

६—सागर जिले का धामौनी परगना भोंसलों के अधिकार में था। यह परगना अँगरेजों ने भोंसलों से विक्रम-संवत् १८७५ (सन् १८१८) की संधि के समय ले लिया। गढ़ाकोटा, मालथौन, देवरी, गौर-झामर और नाहरमऊ सेंधिया को अर्जुनसिंह ने दिए थे[1]। विक्रम संवत् १८७५ में ये सेंधिया के अधिकार में ही थे पर संवत् १८७८ में ये परगने सेंधिया ने अँगरेजों को प्रबंध के लिये सौंप दिए थे। दमोह अँगरेजों के अधिकार में सागर के साथ ही आ गया था।

---

(१) राहतगढ़ मधुकरशाह के समय में सागर जिले में था और इस पर गोंड़ लोगों का राज्य था। जब इसे मुसलमानों ने लिया तब यह भोपाल के नवाब मुहम्मदखाँ के अधीन हो गया। मुहम्मदखाँ के वंशज यहाँ पर विक्रम-संवत् १८६४ तक रहे। इस वर्ष सेंधिया ने राहतगढ़ पर अधिकार कर लिया और राहतगढ़ के नवाब हैदर को पेंशन दे दी गई। विक्रम-संवत् १८७५ में राहतगढ़, गढ़ाकोटा आदि के साथ, अँगरेजों को दिया गया।

अध्याय ३४

राजविद्रोह के पहले बुंदेलखंड का हाल

१—जालौन के नाना गोविंदराव की मृत्यु विक्रम-संवत् १८७६ में हुई। इनके पश्चात् इनके पुत्र बालाजी गोविंद जालौन के शासक हुए। अँगरेजों के पोलिटिकल एजेंट ने भी बालाजी गोविंद का नाना साहब की गद्दी पर बैठना स्वीकार किया। नाना साहब एक योग्य शासक थे इससे बुंदेलखंड के कई राजाओं ने उनकी मृत्यु पर शोक प्रकट किया। नाना गोविंद के समय से ही जालौन का शासन, नाना साहब की ओर से, नारो भास्कर करते थे और गुरसराय का प्रबंध दिनकरराव अन्ना देखते थे। बालाजी गोविंद के शासन से प्रजा बहुत प्रसन्न थी[1]। बालाजी गोविंद की मृत्यु के पश्चात् वारिसों में झगड़े उठ खड़े हुए और नारो भास्कर तथा दिनकरराव अन्ना में भी अनबन हो गई।

२—दिनकरराव अन्ना और नारो भास्कर में अनबन होने का कारण यह था कि बालाजी गोविंद की विधवा ने रावे गोविंदराव नाम का एक पुत्र गोद लिया पर दिनकरराव अन्ना ने यह बात

---

(१) समकालीन कवि राजाराम ने बालाजी की निम्न-लिखित प्रशंसा की है—

जन्नुक ज्यों ज्ञानिन में जामवंत स्वापद में
ध्रुव ज्यों ध्यानिन में सुंदर बिराजा है।
परसुराम बीरन में राम रनधीरन में
गंगाजल नीरन में सिद्ध करत काजा है॥
राजाराम कहै सदा वेद ज्यों विधानन में
कुबेर धनमानन में दूसरो न ताजा है।
उदित उदार महाराज वीर बालाराव
राजन में राजा दुजराजन में राजा है॥

स्वीकार न की। इस कारण इन दोनों का झगड़ा अँगरेजों ने तय किया और राव गोविंदराव का गोद में लिया जाना अँगरेजों ने मंजूर किया। इस फैसले के अनुसार राव गोविंदराव जालौन के राजा हो गए। राव गोविंदराव अल्पवयस्क थे इसलिये इनकी ओर से राज्य का सब कार्य इनको गोद लेनेवाली माता लक्ष्मीबाई देखती थीं। नारो शंकर को यह बात अच्छी न लगी और वे अलग रहने लगे तथा वहाँ पर धोखे से मारे गए। इनके मरने के पश्चात् राव गोविंदराव से राज्य-कार्य भले प्रकार न चल सका। राज्य-प्रबंध ठीक न होने से विक्रम-संवत् १८९५ (सन् १८३८) में जालौन का प्रबंध अँगरेजों ने अपने अधिकार में ले लिया। जालौन सूबे में उस समय महोबा, रामपुरा, मुहम्मदाबाद आदि परगने थे। दो वर्ष के बाद राव गोविंदराव की मृत्यु बाँदे में हो गई। राव गोविंदराव के कोई पुत्र न था। उनके मरने पर बालाजी गोविंद की बहिन और दिनकरराव अन्ना के पुत्र केशवराव ने अपना दावा राज्य पर किया। दिनकरराव अन्ना गोविंद पंत के नाती थे इसलिये केशवराव का हक राज्य पर था। परंतु कंपनी की सरकार ने किसी की न सुनी और जालौन पर अधिकार कर लिया।

३—गुरसराय (या गुलसराय) बाजीराव पेशवा को महाराज छत्रसाल ने दिया था। बुंदेलखंड के मराठी राज्य के शासक, पेशवा की ओर से, गोविंद पंत नियत किए गए थे। गोविंद पंत ने अपनी ओर से गुरसराय के प्रबंध के लिये दिनकरराव अन्ना को नियत किया था। इन्होंने गुरसराय का प्रबंध बहुत अच्छा किया। इनके बड़े पुत्र बालकृष्ण भाऊ का देहांत जल्दी हो गया था इससे इनके दूसरे पुत्र केशवराव गुरसराय के शासक हुए। अँगरेजों ने केशवराव को गुरसराय का शासक माना और इन्होंने सन् सत्तावन के विद्रोह के समय अँगरेजों की बड़ी सहायता की।

४—सीपरी में संवत् १८७४ (सन् १८१७) की संधि के अनुसार रामचंद्रराव को वंश-परंपरा के लिये झाँसी का राज्य मिला था। इनकी मृत्यु संवत् १८९२ में हुई। इनके निस्संतान होने से इनकी विधवा ने अपनी ननँद का, कृष्णराव चांदोरकर नामक, लड़का गोद लिया। यह सागर के सूबेदार विनायकराव चांदोरकर का नाती और रामचंद्रराव की बहिन का लड़का था। परंतु सरकार ने यह गोदनामा स्वीकार न किया। इसलिये शिवरामराव भाऊ के दूसरे पुत्र रघुनाथराव झाँसी के राज्य के मालिक हुए। रघुनाथराव दुर्व्यसनी थे। इससे इनका राज्य-प्रबंध अँगरेजों ने अपने हाथ में कर लिया। रघुनाथराव संवत् १८९५ में मरे। इनके मरने पर चार मनुष्यों ने राजा होने के अपने अपने हक बताए। रघुनाथराव की स्त्री स्वयं रानी होना चाहती थी। इनका गजरा नामक दासी से उत्पन्न हुआ पुत्र अलीबहादुर भी गद्दी पर दावा करता था। शिवरामराव भाऊ के पुत्र गंगाधर ने भी राजगद्दी पाने का दावा किया। चौथा, राज्य का माँगनेवाला, रामचंद्रराव के मरने के पश्चात् गोद लिया हुआ पुत्र कृष्णराव था[1]।

---

(१) रामचंद्रराव की ंशावली इस प्रकार है—

श्री

वंशावली राजे झाँसीवाले नेवालकर गोत्र गौतम

राजा हरी दामोदर नेवालकर (पान्होला के)

|

शिवरामराव भाऊ राजा (स्त्री सखूबाई)

|

- कन्या भ्र० शाहोर नागपूर
- कन्या भ्र० ना० गोविंद चांदोरकर
- रघुनाथराव राजे
  - वेश्या पुत्र
    - अलीबहादुर
    - नसरत जंग
- कृष्णराव उर्फ छोटे भाऊ (स्त्री सरस्वती बाई)
  - |
- गंगाधरराव राजे मृत सं० १९११ (स्त्री महारानी लक्ष्मी बाई मृत सन् १८५७ लश्कर में)
  - |
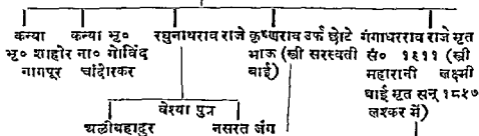
इनके हकों का तसफिया करने के लिये अँगरेज सरकार ने एक समिति नियत की जिसके सदस्य ग्वालियर के रेजिडेंट स्पेअर्स तथा दो और अँगरेज थे। इन्होंने यही निश्चय किया कि रघुनाथराव के पश्चात् गद्दी के अधिकारी गंगाधरराव ही हैं। उसी निश्चय के अनुसार गंगाधरराव झाँसी के राजा बनाए गए।

५—गंगाधरराव ने झाँसी का बहुत उत्तम प्रबंध किया। झाँसी राज्य पर जो कर्ज था वह अदा कर दिया और आमदनी भी बढ़ाई। ये बड़े धार्मिक मनुष्य थे और तीर्थाटन बहुत करते थे। इनकी स्त्री ही प्रसिद्ध महारानी लक्ष्मीबाई हैं। गंगाधरराव को इन महारानी से एक पुत्र भी हुआ था परंतु उसका देहांत, तीन मास की अवस्था में ही, हो गया। संवत् १९१० में गंगाधरराव का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया और उन्होंने उस समय वासुदेव नेवालकर नाम का एक पुत्र गोद लिया। इस पुत्र का नाम गोद लेने के पश्चात् दामोदर गंगाधरराव रखा गया। कुछ दिनों के पश्चात् गंगाधर-

---

कृष्णराव | गंगाधरराव

गंगाधरराव → दामोदरराव दत्तक (वंश इंदौर में)

कृष्णराव →
- ताईंड० गंगाबाई भ्र० मोरेश्वरराव विनायकराव सूबेदार सागर
  - ८कृष्णराव सागर (दत्तक रामचंद्रराव राजे झाँसी)
  - व्यंकटराव सूबेदार सागर
- रामचंद्रराव राजे मृत सं० १८८२
  - ०१ कृष्णराव सूबेदार दत्तक नाजायज करार दिया गया
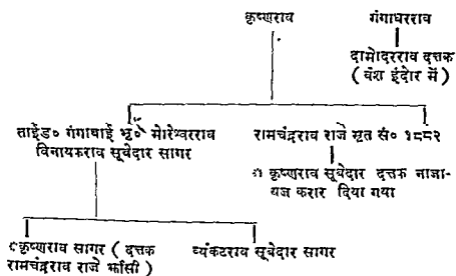
यह वंशावली सागर के सूबेदार घराने से मिली है।

राव का देहांत हो गया। उस समय महारानी लक्ष्मीबाई की अवस्था केवल अठारह वर्ष की थी।

६—संवत् १८९२ में आगरा और इलाहाबाद आदि के प्रदेशों का एक अलग प्रांत अँगरेजों ने बनाया। इसका नाम पश्चिमोत्तर प्रदेश रखा गया। इस प्रदेश में बुंदेलखंड के वे सब भाग आ गए जो अँगरेजों के अधिकार में थे। इसमें जालौन, हमीरपुर, बाँदा और सागर के जिले थे। उन दिनों दमोह जिला सागर जिले के भीतर ही था। पश्चिमोत्तर प्रदेश का सदर मुकाम आगरे मे था।

७—बुंदेलखंड के राजाओं के साथ अँगरेजों की संधियाँ हुई थीं। उन सब लोगों को अपने अधिकार में रखने के लिये इन लोगों ने छावनियों मे फौज रखी और उनके प्रबंध की देख-रेख के लिये पोलिटिकल एजेंट रखे। संवत् १८९२ (सन् १८३५) में पश्चिमोत्तर प्रदेश के लेफ्टिनेंट गवर्नर के सुपुर्द उन सब राजाओं की देख-रेख का भार था। ४ वर्ष के बाद सागर और दमोह के जिले पश्चिमोत्तर प्रदेश से अलग कर दिए गए और इन जिलों का अधिकार एक कमिश्नर को दिया गया। यह कमिश्नर झाँसी के पोलिटिकल एजेंट के अधीन था। पीछे से झाँसी का पोलिटिकल एजेंट नौगाँव चला गया और बुंदेलखंड ग्वालियर के रेजीडेंट के अधीन हो गया। कुछ वर्षों के बाद संवत् १९११ में मध्यभारत के सब राज्य सेंट्रल इंडिया कहलाने लगे और इनकी देख-रेख इसी एजेंसी के एजेंट के सुपुर्द कर दी गई। तदुपरांत संवत् १९४५ मे खनियाधन नामक राज्य ग्वालियर के रेजिडेंट के अधिकार मे कर दिया गया और १९५३ में कालिंजर के चौबों की जागीरें और बरोंड़ा बघेलखंड के पोलिटिकल एजेंट के अधिकार में कर दिया गया।

८—बुंदेलखंड की रियासतों में ओड़छा, दतिया और समथर ये विशेष महत्त्व की समझी जाती हैं। इन तीनों में से सबसे मुख्य

रियासत ओड़छे की है। ओड़छे के राजा टीकमगढ़ में रहते हैं इससे इस रियासत को टीकमगढ़ का राज्य भी कहते हैं। ओड़छे के राजा झाँसी के राजा को ४५००) रुपए सालाना दिया करते थे। जब अँगरेज सरकार ने झाँसी का राज्य ले लिया तब अँगरेज सरकार को यह रकम मिलने लगी। परंतु फिर अँगरेजों ने इस रकम का लेना भी छोड़ दिया क्योंकि ओड़छे के राजा ने राज-विद्रोह के समय सन् १८५७ (विक्रम-संवत् १९१४) में अँगरेज सरकार को सहायता दी थी। इनसे और अँगरेजों से बराबरी की संधि हुई है परंतु राजा अँगरेजों की सलाह के बिना बाहरी राज्य से राजनीतिक बात-चीत नहीं कर सकते। दतिया और समथर के राज्यों से भी अँगरेजों से इसी प्रकार की संधियाँ हुई हैं। ये राज्य अपने आंतरिक प्रबंध में अँगरेजों से स्वतंत्र हैं।

९—बुंदेलखंड के अन्य राज्यों को सनदें मिली हैं और अँगरेज सरकार को इन राज्यों के आंतरिक प्रबंध में भी हस्तक्षेप करने के बहुत कुछ अधिकार हैं। इन राज्यों पर अँगरेजों ने उस समय अधिकार किया था जिस समय अलीबहादुर हराया गया था। अँगरेजों ने सनदें देकर इन राज्यों के शासकों को उनके राज्य से न हटाया और शासकों ने अँगरेजों से सनदें लेकर अँगरेजों की अधीनता स्वीकार की। इन सनदवाले राज्यों के भी दो विभाग हैं। पहले विभाग में वे राज्य आते हैं जिन्हें फौजदारी और दीवानी के पूरे अधिकार हैं परंतु खून के मामलों में पोलिटिकल एजेंट की अनुमति लेनी पड़ती है। इस विभाग में पन्ना, चरखारी, अजयगढ़, बिजावर, बावनी और छत्रपुर के राज्य हैं। दूसरे विभाग के राजाओं को फौजदारी मामलों में भी पूरे अधिकार नहीं हैं। इन राज्यों के बड़े बड़े मुकदमे पोलिटिकल एजेंट करता है। इस विभाग में सरीला, धुरवाई, बिजना, टोड़ी-फतेहपुर, पहाड़ी (बाँका),

जिगनी, लुगासी, बिहट, बेरी, अलीपुरा, गौरहार, गरौली और नयगवाँ रिवई हैं।

१०—संवत् १८८८ और १८९९ में बुंदेलखंड मे कई स्थानों पर अँगरेज सरकार के विरुद्ध विद्रोह हुए। इस समय चिरगाँव के राव बखतसिंह ने बगावत की। इसने बहुत सी फौज इकट्ठी करके अँगरेजी सत्ता को उखाड़ने का प्रयत्न किया। परंतु झाँसी के राजा केशवराव ने अँगरेजो की सहायता की और राव बखतसिंह हमीरपुर जिले में पँडवारी नाम के स्थान पर, अँगरेजों की फौज के हाथ से, मारा गया। चिरगाँव पर फिर अँगरेजों का अधिकार हो गया। राव बखतसिंह के राव रघुनाथसिंह नाम का एक पुत्र था। इसने सन् १८५७ ई० के राज-विद्रोह के समय अँगरेजों को सहायता दी थी इसलिये अँगरेजों की ओर से इसे ४५००) रुपए की वार्षिक पेंशन मिली। अब राव रघुनाथसिंह के पुत्र दलीपसिंह को २२५०) रुपए की वार्षिक पेंशन मिलती है।

११—संवत् १८९९ मे सागर जिले मे राज-विद्रोह हुआ। चंद्रापुर के बुंदेला ठाकुर जवाहिरसिंह और मालथौन के समीप नराट घाटी के मधुकरशाह और गणेशजू पर सागर की दीवानी अदालतों की डिक्रियाँ तामील की गईं। इस पर वे लोग उठ खड़े हुए और उन्होंने कुछ पुलिसवालों को मार डाला। उन लोगों ने फिर बहुत से आदमियों के साथ खिमलासा, खुरई, नरयावली, धामौनी और विनैका लूट लिए। नरसिंहपुर के जमींदार देलनशाह गोंड ने भी उपद्रव आरंभ कर दिया। उसने देवरी और उसके आस-पास का इलाका लूट लिया। यह धूम साल भर तक मची रही। अंत में मधुकरशाह और गणेशजू भानपुर में पकड़े गए। मधुकरशाह को फाँसी दी गई और गणेशजू को कालापानी हुआ। इस उपद्रव से सारे जिले मे अशांति फैल गई और सरकारी जमा भी वसूल न हो सकी।

अध्याय ३५

राज-विद्रोह का कारण

१—संवत् १६०५ (सन् १८४८) में अँगरेजों के राज्य के गवर्नर लार्ड डलहौजी हुए। लार्ड डलहौजी ने, जिस प्रकार हो सका, अँगरेजी राज्य की सीमा बढ़ाने का प्रयत्न किया। जिस समय वे आए उस समय पंजाब में महाराज रणजीतसिंह के अल्पवयस्क पुत्र दिलीपसिंह का राज्य था और दिलीपसिंह की ओर से उनकी माता महारानी जिंदा राज्य-कार्य देखती थीं। अँगरेजों ने महारानी जिंदा के शासन-प्रबंध को अयोग्य बताकर प्रबंध अपने हाथ में ले लिया। जिस समय अँगरेज शासकों ने मुल्तान पर अधिकार किया उस समय मुल्तान में झगड़े हुए जिसमें कई अँगरेज मारे गए। अँगरेजों ने इन उपद्रवों का दोष महारानी जिंदा पर लगाया और उन्हें पंजाब छोड़कर काशी में जाकर रहना पड़ा। महारानी जिंदा के निर्वासन से सारे पंजाब में अशांति फैल गई। महारानी के काशी चले जाने के थोड़े दिनों के बाद पंजाब में फिर विप्लव हो गया और अँगरेजों ने सिक्खों को हराकर पंजाब पर अपना पूरा अधिकार कर लिया। दिलीपसिंह इँगलैंड भेज दिए गए और उन्हें कुछ पेंशन दी गई। दिलीपसिंह के प्रति जो व्यवहार अँगरेजों ने किया उससे पंजाब में बहुत अशांति फैल गई। पंजाब को अधिकार में करने के पश्चात् लार्ड डलहौजी ने सतारे पर अपनी दृष्टि डाली। सतारे में महाराज शिवाजी के वंशज प्रतापसिंह नाम के एक राजा राज्य कर रहे थे। इनके कोई संतान न होने से इन्होंने एक दत्तक पुत्र लिया था। प्रतापसिंह के ऊपर अँगरेजों ने यह अभियोग लगाया कि ये पुर्तगाली लोगों से मिले हुए हैं। इस अभियोग के कारण प्रतापसिंह कैद कर लिए गए और काशी भेज दिए गए। सतारे का राज्य अँगरेजों ने प्रतापसिंह के भाई आपा साहब को दे दिया। आपा साहब के भी

कोई पुत्र न था। इससे आपा साहब ने भी एक बालक गोद लिया था। परंतु लार्ड डलहौजी ने देशी राज्यों को अँगरेजी राज्य में मिला लेने की नीयत से एक कानून ऐसा बनाया था जिसके अनुसार कोई देशी राजा, अँगरेजों की अनुमति लिए बिना, दत्तक न ले सकते थे। इस कानून के अनुसार आपा साहब और प्रतापसिंह के दत्तक पुत्रों को अँगरेजों ने न माना और आपा साहब के मरने पर सतारा भी अँगरेजी राज्य मे मिला लिया गया।

२—झाँसी के गंगाधरराव की मृत्यु का समाचार बुंदेलखंड के पोलिटिकल एजेंट मेजर मालकम के पास, ता० २१ नवंबर सन् १८५३ ईस्वी को, पहुँचा। इसकी खबर एजेंट ने अँगरेज सरकार के परराष्ट्र-सचिव को भेजी। इस विषय में एजेंट ने जो पत्र परराष्ट्र-सचिव के पास भेजा था उसमे गंगाधरराव की मृत्यु पर शोक प्रकट किया गया था और दामोदरराव के गोद लिए जाने का हाल भी लिखा गया था। उसके साथ एजेंट ने परराष्ट्र-सचिव को यह भी लिखा कि नियमानुसार झाँसी के राजा को गोद लेने का अधिकार नहीं है इसलिये अँगरेज लोग झाँसी का राज्य अँगरेजी राज्य में मिला सकते हैं। रानी लक्ष्मीबाई के विषय मे एजेंट साहब ने पाँच हजार रुपए माहवार की पेंशन दी जाने की सलाह दी। उपर्युक्त आशय का पत्र भेजकर मेजर मालकम ने झाँसी का बंदोबस्त स्वयं करना आरंभ कर दिया। प्रबंध में कोई अड़चन न पड़े इस उद्देश्य से मालकम साहब ने सेंधिया की कंटिंजेंट पलटन का एक भाग और बंगाल नेटिव इनफेंट्री का एक भाग अपने पास रखा और कुछ सेना झाँसी और करेरा के किलों में रखी।

३—झाँसी के दरबार ने गंगाधरराव के दत्तक पुत्र दामोदरराव के नाम से राज्य-कार्य चलाने का निश्चय कर लिया। जिस समय दामोदरराव गोद लिए गए थे उस समय बुंदेलखंड के

असिस्टेंट पोलिटिकल एजेंट मेजर एलिस भी उपस्थित थे। गोद का संस्कार होने के पहले अँगरेजों को खबर भी दे दी गई थी। इस खबर के पश्चात् मेजर एलिस गोद के समय पहुँचे थे और झाँसी के राज-कर्मचारियों ने यही समझा था कि दामोदरराव के गोद लिए जाने के विषय में अँगरेजों ने अनुमति दे दी है। झाँसी राज्य और अँगरेजों से जो शर्तें हुई थीं उनके अनुसार भी वंशपरंपरा के लिये राज्य रामचंद्रराव को मिला था। परंतु लार्ड डलहौजी की नीयत झाँसी राज्य को अँगरेजी राज्य में मिला लेने की थी। मेजर मालकम की भी यही सलाह थी कि झाँसी का राज्य अँगरेजों के राज्य में मिला लिया जाय। मालकम साहब के पत्र का बहुत दिनों तक उत्तर न दिया गया। इसलिये महारानी लक्ष्मीबाई ने दूसरा पत्र अँगरेजों को लिखा। इस दूसरे पत्र में महारानी लक्ष्मीबाई ने अँगरेजों की पुरानी संधियों का उल्लेख करते हुए झाँसी राज्य को रामचंद्रराव के वंश में कायम रखने के उद्देश्य से दत्तक पुत्र लेने की आवश्यकता बतलाई और अँगरेज सरकार से प्रार्थना की कि दामोदरराव का गोद लिया जाना स्वीकार किया जाय। एलिस साहब ने एक पत्र अँगरेजों के गवर्नर को लिखा था। उस पत्र में एलिस साहब ने झाँसी का राज्य दामोदरराव को दिए जाने की सलाह दी थी। परंतु एलिस साहब की सलाह नहीं मानी गई।

४—इस समय झाँसी की राजगद्दी खाली देखकर गंगाधरराव के प्राचीन निवासस्थान खानदेश में रहनेवाले उनके घराने के पुरुषों में से सदाशिव नारायण नाम के एक व्यक्ति ने मालकम साहब को राज्य पाने के लिये एक प्रार्थना-पत्र भेजा। मालकम साहब ने सदाशिव नारायण के पक्ष का समर्थन किया और गवर्नर-जनरल को एक पत्र भेजा जिसमें यह लिखा कि झाँसी के राज्य का अधिकारी सदाशिव नारायण ही है। अँगरेजों के गवर्नर-जनरल लार्ड डलहौजी

संवत् १९११ (सन् १८५४) में दौरे से लौटकर कलकत्ते पहुँचे। यहाँ पर इनके सामने झाँसी राज्य-सम्बन्धी पत्र पेश किए गए। लाट साहब के परराष्ट्र-सचिव मिस्टर ग्रंट ने झाँसी के मामले की एक बड़ी मिसल तैयार की। इसमें झाँसी और अँगरेजों के प्राचीन संबंध का उल्लेख करने के पश्चात् यह रिपोर्ट लिखी गई कि झाँसी का राज्य लावारिस हो गया है और नियमानुसार वह अँगरेजी राज्य में मिला लिया जाय। यह रिपोर्ट लार्ड डलहौजी के सामने पेश की गई। रिपोर्ट पढ़कर वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने झाँसी राज्य को अँगरेजी राज्य में मिला लेने का हुक्म दे दिया। गंगाधरराव ने दामोदरराव को गोद लिया था परंतु अँगरेजों ने इस गोदनामे को, नियम-विरुद्ध बताकर, नहीं माना।

५—झाँसी में रानी लक्ष्मीबाई अँगरेजों के उत्तर की प्रतीक्षा कर रही थीं। उत्तर आने में विलंब होने के कारण रानी लक्ष्मीबाई ने दूसरा प्रार्थना-पत्र अँगरेज सरकार के पास भेजा। इस पत्र पर मालकम साहब ने रानी लक्ष्मीबाई के अनुकूल राय दी। परंतु यह पत्र अभी गवर्नर के पास न पहुँच पाया था कि गवर्नर ने झाँसी को अँगरेजी राज्य में मिला लेने का हुक्म दे दिया। गवर्नर का हुक्म मालकम और एलिस के पास होता हुआ रानी लक्ष्मीबाई के पास पहुँचा। हुक्म पाते ही रानी लक्ष्मीबाई मूर्च्छित हो गईं। मूर्च्छा दूर होने पर अचानक उनके मुँह से ये शब्द निकले कि "मैं झाँसी न दूँगी।" अँगरेजों ने झाँसी की रानी के खर्च के लिये पाँच हजार रुपए माहवार नियत किए थे परंतु रानी ने इसे लेना स्वीकार न किया। दामोदरराव की निजी संपत्ति रानी लक्ष्मीबाई के अधिकार में कर दी गई। अँगरेजों ने अपने खजाने से छः लाख रुपए दामोदरराव के नाम से जमा करा दिए। ये रुपए रानी लक्ष्मीबाई के अधिकार में नहीं दिए गए।

६—झाँसी में अँगरेजी राज्य हो गया। रानी लक्ष्मीबाई को झाँसी का किला छोड़कर शहर में रहना पड़ा। अँगरेजों की पलटन झाँसी में रहने लगी। रानी लक्ष्मीबाई की सेना को अँगरेजों ने छः मास का वेतन देकर सदा के लिये विदा कर दिया। अँगरेजों की ओर से झाँसी के कमिश्नर मेजर स्कीन साहब नियत किए गए। परंतु रानी लक्ष्मीबाई अपना राज्य लेने के लिये अँगरेजों से लिखा-पढ़ी करती रहीं। इन्होंने अपना मुकदमा लंदन के कोर्ट आफ डायरेक्टर्स के सामने पेश करने के लिये वकील नियुक्त किए। इन वकीलों में एक कलकत्ते के उमेशचंद्र बनर्जी थे और दूसरे एक यूरोपियन थे। इन महाशयों को रानी ने साठ हजार रुपए मिहनताने के रूप में दिए। इन महाशयों ने क्या किया इसका कुछ पता न चला परंतु लंदन के कोर्ट आफ डायरेक्टर्स ने भारत के गवर्नर का हुक्म कायम रखा। भारतवर्ष के अँगरेजी राज्य का कर्ता-धर्ता उस समय लंदन का कोर्ट आफ डायरेक्टर्स ही था।

७—निराश होकर रानी लक्ष्मीबाई अपना समय दान-धर्म में बिताने लगीं। परंतु उन्होंने अँगरेजों से विद्रोह करने की बात न सोची। दामोदरराव के यज्ञोपवीत के समय रुपयों की आवश्यकता पड़ी। इनके जो रुपए अँगरेजों ने जमा करा दिए थे वे रानी ने माँगे। अँगरेजों ने ये रुपए रानी को तब दिए जब कि रानी ने एक जमानतनामा इस आशय का लिख दिया कि यदि दामोदरराव बड़े होने पर रुपयों का दावा अँगरेजों से करें तो इन रुपयों की देनदार रानी लक्ष्मीबाई होंगी।

८—झाँसी को किसी प्रकार अपने अधिकार में करने के पश्चात् लार्ड डलहौजी ने नागपुर की ओर ध्यान दिया। नागपुर के आपा साहब को गद्दी से उतारकर अँगरेजों ने भोंसला-वंश के तृतीय रघुजी नामक एक बालक को नागपुर का राज्य दिया। संवत् १६१०

(ता० ११ दिसंबर सन १८५३ ईस्वी) को तृतीय रघुजी का देहांत हो गया। रघुजी के अल्पवयस्क होने के कारण उनकी नानी बंकोवाई नागपुर का राज्य-कार्य देखती थीं। रघुजी के मरने पर बंकोवाई ने बालक गोद लेने की इच्छा प्रकट की। यह भी तय कर लिया गया कि अहरराव नामका बालक गोद लिया जाय। अँगरेजों के रेजिडेंट ने न तो इसका विरोध किया और न अनुमति दी। बंकोवाई ने अहरराव को गोद ले लिया और गोद के पश्चात् अहरराव का नाम जानोजी भोंसला रखा गया। अँगरेजों ने यह गोदनामा नियम विरुद्ध बताकर नागपुर का राज्य अँगरेजी राज्य में मिला लिया और भोंसले की सब संपत्ति अपने अधिकार में कर ली।

९—संवत् १८७५ में पूना के पेशवा बाजीराव गद्दी से उतारे गए थे और वे कानपुर के निकट बिठूर में रहने लगे थे। बिठूर में इन्हें अँगरेजों की ओर से आठ लाख की वार्षिक वृत्ति मिलती थी। यहाँ उन्हें एक जागीर भी दी गई थी। बाजीराव के कोई पुत्र न था इससे वे एक बालक को गोद लेना चाहते थे। दत्तक लेने के लिये उन्होंने अँगरेजों से अनुमति माँगी। अँगरेजों ने इस पत्र का यही संदिग्ध उत्तर दिया कि पेशवा के मरने पर उनके वंशजों की उचित व्यवस्था की जायगी। बाजीराव के तीन दत्तक पुत्र थे। बड़े का नाम नाना साहब धोंडू पन्त था। जिस समय बाजीराव मरने लगे उस समय उन्होंने वसीयतनामे के द्वारा नाना साहब को सब संपत्ति का मालिक बनाया। बाजीराव का देहांत संवत् १९०८ में हुआ। उनके मरने पर नाना साहब को बिठूर की जागीर तो मिल गई परंतु अँगरेजों ने उन्हें आठ लाख की पेंशन न दी क्योंकि उनका गोदनामा अँगरेजों ने न माना। नाना साहब ने आठ लाख की वार्षिक वृत्ति के लिये बहुत लिखा-पढ़ी की परंतु कुछ सुनाई न हुई। लंदन से भी यही हुक्म आया कि आठ

लाख की वृत्ति नाना साहब को न दी जाय। कुछ दिनों के बाद अँगरेजों ने अवध के वाजिदअली शाह का प्रबंध बुरा बताकर उस राज्य पर भी अपना अधिकार कर लिया।

१०—लार्ड डलहौजी की इस नीति से इन सब राज्यों में असंतोष फैल गया। अँगरेजी राज्य की व्यवस्था भी ठीक न थी। अँगरेज किसी प्रकार रुपए वसूल करना ही अपना ध्येय समझते थे। अंतर्वेद के जमींदार भी असंतुष्ट हो गए थे क्योंकि उनके अधिकारों की परवाह न करके कई जमींदारों के नाम कृषकों में लिख लिए गए थे। जमा की वसूली भी बहुत सख्ती से होती थी। इससे भी सारे देश में असंतोष फैल रहा था। विद्रोह का असली कारण यही असंतोष था परंतु प्रासंगिक कारण बहुत तुच्छ था। विप्लव का प्रासंगिक कारण सैनिकों का असंतोष ही था और इस असंतोष का कारण सैनिकों में इस अफवाह का फैल जाना था कि अँगरेज लोग गाय और सुअर की चर्बी लगे कारतूस सैनिकों को देकर उन्हें धर्म-भ्रष्ट करना चाहते हैं।

अध्याय ३६

विद्रोह का आरंभ

१—लार्ड डलहौजी संवत् १९१३ (सन् १८५६) में इँगलैंड चले गए। उनके स्थान पर लार्ड केनिंग भारतवर्ष के अँगरेजी राज्य के गवर्नर हुए। लार्ड डलहौजी की राजनीति से जो असंतोष भारतवर्ष में उत्पन्न हो गया था वह लार्ड केनिंग को भली भाँति मालूम था। उन्होंने भारतवर्ष में आते समय कहा भी था कि अशांति होने के कारण कोई भी छोटी बात भारतवर्ष में विप्लव उत्पन्न कर सकेगी। लार्ड केनिंग का अनुमान सत्य निकला। भारतवर्ष

(ता० ११ दिसंबर सन १८५३ ईस्वी) को तृतीय रघुजी का देहांत हो गया। रघुजी के अल्पवयस्क होने के कारण उनकी नानी बंकोबाई नागपुर का राज्य-कार्य देखती थीं। रघुजी के मरने पर बंकोबाई ने बालक गोद लेने की इच्छा प्रकट की। यह भी तय कर लिया गया कि अहरराव नामका बालक गोद लिया जाय। अँगरेजों के रेजिडेंट ने न तो इसका विरोध किया और न अनुमति दी। बंकोबाई ने अहरराव को गोद ले लिया और गोद के पश्चात् अहरराव का नाम जानोजी भोंसला रखा गया। अँगरेजों ने यह गोदनामा नियम विरुद्ध बताकर नागपुर का राज्य अँगरेजी राज्य में मिला लिया और भोंसले की सब संपत्ति अपने अधिकार में कर ली।

६—संवत् १८७५ में पूना के पेशवा बाजीराव गद्दी से उतारे गए थे और वे कानपुर के निकट बिठूर में रहने लगे थे। बिठूर में इन्हें अँगरेजों की ओर से आठ लाख की वार्षिक वृत्ति मिलती थी। यहाँ उन्हें एक जागीर भी दी गई थी। बाजीराव के कोई पुत्र न था इससे वे एक बालक को गोद लेना चाहते थे। दत्तक लेने के लिये उन्होंने अँगरेजों से अनुमति माँगी। अँगरेजों ने इस पत्र का यही संदिग्ध उत्तर दिया कि पेशवा के मरने पर उनके वंशजों की उचित व्यवस्था की जायगी। बाजीराव के तीन दत्तक पुत्र थे। बड़े का नाम नाना साहब धोंडू पन्त था। जिस समय बाजीराव मरने लगे उस समय उन्होंने वसीयतनामे के द्वारा नाना साहब को सब संपत्ति का मालिक बनाया। बाजीराव का देहांत संवत् १९०८ में हुआ। उनके मरने पर नाना साहब को बिठूर की जागीर तो मिल गई परंतु अँगरेजों ने उन्हें आठ लाख की पेंशन न दी क्योंकि उनका गोदनामा अँगरेजों ने न माना। नाना साहब ने आठ लाख की वार्षिक वृत्ति के लिये बहुत लिखा-पढ़ी की परंतु कुछ सुनाई न हुई। लंदन से भी यही हुक्म आया कि आठ

लाख की वृत्ति नाना साहब को न दी जाय। कुछ दिनों के बाद अँगरेजों ने अवध के वाजिदअली शाह का प्रबंध बुरा बताकर उस राज्य पर भी अपना अधिकार कर लिया।

१०—लार्ड डलहौजी की इस नीति से इन सब राज्यों में असंतोष फैल गया। अँगरेजी राज्य की व्यवस्था भी ठीक न थी। अँगरेज किसी प्रकार रुपए वसूल करना ही अपना ध्येय समझते थे। अंतर्वेद के जमींदार भी असंतुष्ट हो गए थे क्योंकि उनके अधिकारों की परवाह न करके कई जमींदारों के नाम कृषकों में लिख लिए गए थे। जमा की वसूली भी बहुत सख्ती से होती थी। इससे भी सारे देश में असंतोष फैल रहा था। विद्रोह का असली कारण यही असंतोष था परंतु प्रासंगिक कारण बहुत तुच्छ था। विप्लव का प्रासंगिक कारण सैनिकों का असंतोष ही था और इस असंतोष का कारण सैनिकों में इस अफवाह का फैल जाना था कि अँगरेज लोग गाय और सुअर की चर्बी लगे कारतूस सैनिकों को देकर उन्हें धर्म-भ्रष्ट करना चाहते हैं।

अध्याय ३६

विद्रोह का आरंभ

१—लार्ड डलहौजी संवत् १९१३ (सन् १८५६) में इँगलैंड चले गए। उनके स्थान पर लार्ड केनिंग भारतवर्ष के अँगरेजी राज्य के गवर्नर हुए। लार्ड डलहौजी की राजनीति से जो असंतोष भारतवर्ष में उत्पन्न हो गया था वह लार्ड केनिंग को भली भाँति मालूम था। उन्होंने भारतवर्ष में आते समय कहा भी था कि अशांति होने के कारण कोई भी छोटी बात भारतवर्ष में विप्लव उत्पन्न कर सकेगी। लार्ड केनिग का अनुमान सत्य निकला। भारतवर्ष

में विप्लव होने का प्रासंगिक कारण बहुत ही तुच्छ था। अँगरेज-सरकार की सेना में यह खबर फैल गई कि हिंदू और मुसलमानों का धर्म भ्रष्ट करने के लिये गाय और सुअर की चर्बी लगे कारतूस दिए जाते हैं। बस, इसी कारण से सेना ने विद्रोह कर दिया। सबसे पहले बरहमपुर की सेना ने विद्रोह किया। आरंभ में यह विद्रोह सिपाही-विद्रोह था परंतु देश की अशांति से यही विद्रोह राष्ट्र-विप्लव बन गया। बंगाल के पश्चात् मेरठ की सेना ने विद्रोह किया। मेरठ पर बागियों का अधिकार हो गया। फिर दिल्ली में उपद्रव हुआ। दिल्ली की सेना ने आखिरी मुगल बादशाह को दिल्ली के तख्त पर बैठाया। मेरठ और दिल्ली की खबर चारों ओर शीघ्र ही फैल गई। बरेली, मुर्शिदाबाद, लखनऊ, इलाहाबाद, काशी इत्यादि स्थानों में बलवे होने लगे। अँगरेजों ने विद्रोहियों को दंड देने के लिये एक विशेष कानून भी बनाया जिसके अनुसार फौजी अफसर थोड़ी तहकीकात करके अपराधियों को दंड दे सकें और उनके निर्णय की फिर कहीं अपील न हो।

२—कानपुर में भी विद्रोह की खबर पहुँची। कानपुर के सिपाहियों ने सुना कि दिल्ली में फिर से मुगल राज्य स्थापित हो गया है। इसलिये कानपुर के सैनिक भी अँगरेजों को निकालकर भगाने की चेष्टा करने लगे। यहाँ पर विद्रोहियों को अजीमुल्ला नामक एक मुसलमान ने विशेष सहायता दी। अजीमुल्ला नाना साहब का मित्र था। वह नाना साहब के मुकदमे की पैरवी के लिये नाना साहब की ओर से इँगलैंड भी गया था। अजीमुल्ला ने नाना साहब को विद्रोहियों में शामिल होने की सलाह दी और नाना साहब को पेशवा बना देने का उसने वादा किया। नाना साहब अजीमुल्ला की बातों में आ गए। कानपुर के सब सिपाहियों ने नाना साहब को अपना मुखिया बनाया और वे सब काम उनके ही नाम से करने लगे।

३—कानपुर के बलवे का समाचार झाँसी पहुँचा। झाँसी में अँगरेजों की सेना के नायक कप्तान डनलाप थे। रानी लक्ष्मीबाई का विद्रोहियों से कोई संबंध न था; वे तो ईश्वराराधना में लगी हुई थीं। परंतु अँगरेजों की काली पलटन बागी हो गई थी। इस सेना के हवलदार गुरुबख्श ने अचानक बलवे का झंडा खड़ा कर दिया और गोला बारूद जो कुछ था उस पर अधिकार कर लिया। अँगरेजों ने यह हाल देखकर किले में रहना छोड़ दिया और नौगाँव को सहायता के लिये खबर भेजी। उस समय नौगाँव और नागौद में अँगरेजों की सेना रहा करती थी। अभी यह सेना सहायता के लिये पहुँच न सकी कि किले तथा शहर पर विद्रोहियों का अधिकार हो गया। अँगरेजों की स्त्रियाँ और बच्चे किले को छोड़कर बाहर आ गए थे परंतु किले में अँगरेजी सेना के सिपाही रह गए थे। इन सिपाहियों को विद्रोहियों ने हरा दिया। गार्डन नामक एक अँगरेज सेनापति इस युद्ध में मारे गए। विद्रोहियों के एक मुखिया ने अँगरेजों को अभयदान दे उनके हथियार रखवा लिए परंतु फिर उन लोगों को उसने मरवा डाला। झाँसी के कमिश्नर स्कीन साहब का वध इसी समय हुआ।

४—विद्रोह के दो या तीन दिन पहले मिस्टर गार्डन रानी लक्ष्मीबाई से मिले। उन्हें रानी लक्ष्मीबाई पर पूरा विश्वास था और वे जानते थे कि रानी लक्ष्मीबाई अँगरेजों से विद्रोह न करेंगी। जब विद्रोह हुआ तब किले के कई अँगरेजों की स्त्रियाँ और बच्चे रानी लक्ष्मीबाई के पास गए और रानी ने उनकी रक्षा की। किले में जब विद्रोहियों ने अँगरेजों को घेर लिया था तब रानी लक्ष्मीबाई ने उनकी सहायता के लिये अनाज आदि किले में भेजा था[1]।

---

(१) आगरे से मार्टिन नामक एक अँगरेज ने दामोदरराव को ता० २० अगस्त सन् १८८६ को एक पत्र में यह लिखा था—"Your mother was

५—विद्रोहियों ने किले पर अधिकार करने के पश्चात् रानी लक्ष्मीबाई का घर घेरा। रानी लक्ष्मीबाई ने विद्रोहियों से अपना बचाव करने के लिये उन्हें तीन लाख रुपयों के जेवर दिए। फिर रानी लक्ष्मीबाई ने यह सब हाल अँगरेजों को लिख भेजा और वे सागर के कमिश्नर की ओर से झाँसी का राज्य-प्रबंध देखने लगीं[1]।

६—सदाशिव नारायण नाम का एक मनुष्य, जिसने झाँसी के राज्य का उत्तराधिकारी होने का दावा किया था, एक बड़ी भारी सेना लेकर झाँसी के समीप पहुँचा। उसने करेरा पर आक्रमण किया। करेरा के अँगरेजों की ओर के थानेदार और तहसीलदार को उसने मार भगाया और फिर करेरा पर अधिकार कर लिया। फिर यहाँ पर सदाशिव नारायण ने अपना राज्याभिषेक कराया। जब यह हाल रानी लक्ष्मीबाई ने सुना तब वे अपनी सेना लेकर सदाशिव नारायण से लड़ने गईं। सदाशिव नारायण रानी लक्ष्मीबाई की सेना से डरकर भागा और करेरा पर रानी लक्ष्मीबाई का अधिकार हो गया। सदाशिव नारायण फिर नरवर की ओर भागा। वहाँ

---

very unjustly and cruelly dealt with and no one knows her true case as I do. The poor thing took no part in the massacre of the European residents of Jhansi in June, 1857. On the contrary she supplied them with food for two days after they had gone into the Fort. * * * she then advised Major Skene and Captain Gordon to fly at once to Datia and place themselves under the Raja's protection ० ० "

(१) बलवे के पश्चात् झाँसी के कमिश्नर मिस्टर पिंक थे। इन्होंने लिखा था कि रानी लक्ष्मीबाई ने झाँसी का प्रबंध अँगरेजों की ओर से किया था और वे अँगरेजों के विरुद्ध न थीं।

पर सेंधिया ने उसे सहायता दी, परंतु रानी लक्ष्मीबाई ने उसे नरवर में पकड़कर झाँसी के किले में कैद कर लिया।

७—ओड़छे के राजा के पास नत्थेखाँ नाम का दीवान था। इसने बीस हजार मनुष्यों की सेना लेकर झाँसी पर आक्रमण किया। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने अँगरेजों के पोलिटिकल एजेंट के पास सहायता माँगने के लिये एक दूत भेजा। इस दूत को नत्थेखाँ के मनुष्य ने मार्ग मे ही मार डाला। फिर रानी लक्ष्मीबाई ने नत्थेखाँ से युद्ध किया। रानी लक्ष्मीबाई ने दीवान जवाहिरसिंह को अपना सेनापति बनाया। जवाहिर ने वीरता से युद्ध किया और झाँसी की सेना ने नत्थेखाँ को हरा दिया। मार्टिन साहब ने झाँसी के इस कार्य की प्रशंसा की है और दतिया और टीकमगढ़ के राज्यों के प्रति अप्रसन्नता प्रकट की है क्योंकि उन्होंने ऐसे समय मे अँगरेजों को सहायता न दी[1]।

८—रानी लक्ष्मीबाई के सहायक दीवान रघुनाथसिंह थे। ये हमेशा अँगरेज-सरकार की सहायता करते रहे। इन्हें महारानी विक्टोरिया ने सहायता के बदले में पुरस्कार भी दिया था। परंतु किसी कारण अँगरेजों को यह भ्रम हो गया कि महारानी लक्ष्मीबाई विद्रोहियों से मिली हैं। इसी भ्रम के कारण अँगरेजों ने अपने सेनापति सर ह्यू रोज को झाँसी पर आक्रमण करने के लिये भेजा। झाँसी की रानी को यह सुनकर बहुत आश्चर्य हुआ।

---

(१) मिस्टर मार्टिन ने लिखा है—

"After the mutinous troops had quited Jhansi, she certainly took possession of her country, when the two States, Datia and Tehri who could easily have protected our people, but would not do so much as raise a finger to help us ☆."

वे अभी तक अँगरेजों की सहायता करती आई थीं और झाँसी का शासन भी वे अँगरेजों की ओर से कर रही थीं। अँगरेजों की सेना को आते देख उन्होंने समझ लिया कि अँगरेजों के मन में कुछ भ्रम हो गया है। इस भ्रम को दूर करने के लिये रानी ने अपने दूत अँगरेजों के पास भेजे। परंतु दुर्भाग्य-वश ये दूत बिलकुल अनभिज्ञ थे और अँगरेजों के पास ये पहुँच ही न पाए। झाँसी में अँगरेजों की जो हत्या हुई थी उससे अँगरेज लोग जलकर आग हो रहे थे। ऐसे समय में कौन उनका मित्र और कौन उनका शत्रु था, इसका भी ज्ञान उन्हें न रहा। उनका यही विश्वास था कि झाँसी का हत्याकांड रानी लक्ष्मीबाई ने ही कराया है। इसी का बदला लेने के लिये अँगरेजों ने अपनी सेना झाँसी को भेजी थी।

९—अँगरेजों की सेना के दो भाग थे। एक सेना बंबई और मद्रास की थी। इस सेना ने अपने ठहरने का स्थान मऊ नियत किया और यहीं से आक्रमण करने का निश्चय किया। इस सेना के नायक सर ह्यू रोज थे। दूसरी सेना सहायता के लिये जबलपुर में रखी गई। इस सेना के नायक जनरल विटलाक थे। सर ह्यू रोज ने अपनी मऊ की सेना के दो विभाग कर दिए। एक विभाग मऊ में रहा और दूसरा सीहोर भेजा गया। सीहोर जाते समय इस विभाग के साथ भोपाल की बेगम के भेजे हुए ८०० सिपाही, अँगरेजों की सहायता के लिये, हो गए।

अध्याय ३७

दक्षिण बुंदेलखंड में विद्रोह

१—जिस प्रकार मेरठ और दिल्ली का हाल सुनते ही झाँसी में उपद्रव हुआ उसी प्रकार बुंदेलखंड के अँगरेजी राज्य के सब जिलों

में उपद्रव आरंभ हो गया। सागर में अँगरेजों की दो हिंदुस्तानी पलटनें और एक अँगरेजी पलटन रहती थीं। ज्योंही झाँसी में अँगरेजों के मारे जाने की खबर सागर पहुँची त्योंही सागर की नंबर ४२ की हिंदुस्तानी पलटन बागी हो गई। बानपुर के राजा ठाकुर मर्दनसिंह ने अपनी सेना लेकर खुरई तहसील और नरयावली के परगने पर अधिकार कर लिया। खुरई में अँगरेजों की ओर से अहमदबख्श नाम का तहसीलदार था। यह भी मर्दनसिंह से मिल गया और इसने मर्दनसिंह को खुरई पर अधिकार कर लेने में सहायता दी। मर्दनसिंह फिर अपनी सेना लेकर ललितपुर पहुँचा। वहाँ से चंदेरी जाकर उसने चंदेरी के अँगरेजी अफसर को घेर लिया। शाहगढ़ के राजा ने भी विद्रोह आरंभ कर दिया। शाहगढ़ में बखतबली का राज्य था। भोपाल राज्य की आमापानी नामक गढ़ी के नवाब ने कुछ सेना लेकर राहतगढ़ पर अधिकार कर लिया[1]।

२—सर ह्यू रोज ने अपनी मऊ की सेना के दो विभाग किए थे। एक विभाग मऊ में ही रहा और दूसरा सीहोर की ओर भेजा जा रहा था। सागर के विद्रोह का समाचार मिलते ही यह सीहोर जानेवाली सेना सागर की ओर भेज दी गई। चंदेरी की ओर भी कुछ सेना भेजी गई। परंतु इस सेना को मालथोन के

---

(१) राहतगढ़ पहले से ही आमापानी के नवाब के अधिकार में था। परंतु संवत् १८६४ में सेंधिया ने नवाब को हराकर राहतगढ़ उससे ले लिया था। फिर यह अँगरेजों को सन् १८२६ (संवत् १८८३) में दे दिया गया था।

(२) मालथोन को अकबर बादशाह के सरदार मुहम्मदखाँ ने बसाया था। फिर इस पर गोंड़ लोगों ने अधिकार कर लिया। तदनंतर ओड़छे के दीवान अचलसिंह ने इस पर अधिकार कर लिया पर ओड़छेवालों से सन् १७४८ में इसे गढ़ाकोटा के पृथ्वीसिंह ने ले लिया। फिर अर्जुनसिंह ने इसे सेंधिया को दिया और सेंधिया ने सन् १८२० में अँगरेजों को दिया।

निकट मर्दनसिंह की सेना ने रोक लिया। मर्दनसिंह से युद्ध करने में सहायता देने के लिये सागर से सेना भेजी गई। सागर में नंबर ३१ की हिंदुस्तानी पलटन बागी न हुई थी। सागर की सेना की सहायता से मर्दनसिंह की सेना हटा दी गई और बालाबेट पर अँगरेजों का फिर से अधिकार हो गया।

३—सागर की नंबर ४२ की हिंदुस्तानी पलटन बागी हो गई थी। इस पलटन के सरदार का नाम शेख रमजान था। शेख रमजान ने सागर में मुसलमानी झंडा खड़ा कर दिया और सब सैनिकों के सम्मिलित होने के लिये डंका बजाया। सब सिपाहियों ने मिलकर शेख रमजान को अपना जनरल बनाया। इस पलटन ने पहले सागर में लूट-मार की और लगभग १० हजार रुपए लूट के द्वारा वसूल किए। फिर इसने नंबर ३१ की हिंदुस्तानी पलटन पर आक्रमण किया। इन दोनों पलटनों में बहुत देर तक युद्ध हुआ परंतु फिर बागी पलटन शाहगढ़ की ओर चली गई। शाहगढ़ के राजा बखतबली ने इस बागी पलटन से मेल कर लिया। बानपुर के मर्दनसिंह को भी खबर दी गई। मर्दनसिंह ने बखतबली को सहायता देने का वचन दिया। फिर मर्दनसिंह और बखतबली ने सब जागीरदारों और जमींदारों के पास बलवे में शामिल होने के लिये संदेश भेजा। इनके कुछ सिपाही दमोह पहुँचे। बागी सिपाहियों के डर के मारे दमोह के डिपटी कमिश्नर अपना खजाना लेकर जेल के भीतर रहने लगे। बागियों ने दमोह के आस-पास लूट-मार की और चले गए।

४—सागर, दमोह और जबलपुर जिलों में बागियों की संख्या बहुत बढ़ गई। दमोह जिले के सब लोधी ठाकुर अँगरेजों के विरुद्ध हो गए। हिंडोरिया का ताल्लुकेदार किशोरसिंह भी बागी हो गया। शाहगढ़ के राजा ने विनैका पर अधिकार कर लिया। शाहगढ़ के

राजा से लड़ने के लिये अँगरेजों ने सागर की नंबर ३१ की हिंदुस्तानी पलटन भेजी। इस पलटन को शाहगढ़ के राजा की पलटन ने आसानी से हरा दिया। शाहगढ़ के राजा के एक सरदार पजन-सिंह उर्फ बोधन दौआ ने गढ़ाकोटा पर चढ़ाई की और शाहगढ़ के राजा की ओर से उसने गढ़ाकोटा पर अधिकार कर लिया। बानपुर के राजा ने सागर पर आक्रमण किया। इसी समय जबलपुर की नंबर ५२ की पलटन भी बागी हो गई। अँगरेजों ने देखा कि बिना बाहरी सहायता के सागर, दमोह और जबलपुर का बचाना कठिन होगा। इसलिये उन लोगों ने पन्ना के राजा से सहायता माँगी। पन्ना के राजा ने अँगरेजों को सहायता देने का पहले ही वचन दिया था और ज्योंही अँगरेजों का संदेश उनके पास पहुँचा त्योंही उन्होंने कुँवर श्यामलेजू के साथ अपनी सेना अँगरेजों की सहायता के लिये भेजी। पन्ना की सेना ने पहले सिमरिया से बागियों को भगाया और सिम-रिया पर अधिकार किया। फिर इस सेना ने हटा तहसील पर अपना अधिकार कर लिया। इसके पीछे श्यामलेजू दमोह आए और वे यहाँ का प्रबंध अँगरेजों की ओर से देखने लगे। दमोह में शांति स्थापित करने का कार्य पन्ना की सेना ने ही किया।

५—जबलपुर की नंबर ५२ की बागी पलटन ने दमोह जिले में बहुत कुछ उपद्रव मचाया परंतु पन्ना की सेना ने जबलपुर की इस पल-टन को हरा दिया। इस पलटन ने रेहली पर भी धावा किया। फिर यह गढ़ाकोटा पहुँची और गढ़ाकोटा के बोधन दौआ ने इसे सहायता दी। फिर गढ़ाकोटा की सेना और जबलपुर की बागी पलटन भापेल पहुँची और वहाँ पर अँगरेजों की सेना ने इन दोनों को हरा दिया। हार होने पर ये दोनों भापेल से वापस आ गए। सन् १८५८ के आरंभ में सर ह्यू रोज की सेना राहत-गढ़ पहुँची। राहतगढ़ का किला बागियों के अधिकार में था।

इस किले को लेने के लिये सर ह्यू रोज को बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। तीन दिनों के घोर संग्राम के पश्चात् यह किला अँगरेजों के हाथ आया। आमापानी का नवाब किले से भागा परंतु अँगरेजों ने उसे पकड़ लिया और मार डाला। हार होने पर बागी लोग राहतगढ़ से भागे और बरौदिया के निकट इकट्ठे हुए। बरौदिया में अँगरेजों ने बानपुर के मर्दनसिंह को हराया। फिर सर ह्यू रोज सागर की ओर आए और सागर पर अपना अधिकार करके गढ़ाकोटा की ओर चले गए।

६—गढ़ाकोटा पर बखतबली की ओर से दौआ का अधिकार था। अँगरेजों ने किले पर गोले बरसाना आरंभ किया। किले के भीतर से दौआ बहुत देर तक अँगरेजों से लड़ता रहा। जब किले के भीतर का सामान खर्च हो गया तब दौआ किला छोड़कर शाहगढ़ की ओर भाग गया। किला बिलकुल खाली कर दिया गया और अँगरेज लोग खाली किले पर बहुत देर तक गोले मारते रहे। फिर जब किले के खाली होने का पता लगा तब अँगरेजों ने उस पर अधिकार कर लिया। गढ़ाकोटा पर अधिकार करने के पश्चात् अँगरेजों की सेना शाहगढ़ की ओर बखतबली से लड़ने के लिये गई। शाहगढ़ के राजा बखतबली का अधिकार मालथोन, मदनपुर और धामौनी पर था। सर ह्यू रोज झाँसी को जल्दी जाना चाहते थे। परंतु शाहगढ़ के राजा को हराए बिना झाँसी जाना कठिन था। यहाँ पर बागियों की बहुत सी सेना भिन्न भिन्न स्थानों पर फैली हुई थी। सर ह्यू रोज चतुर सेनापति थे इसलिये उन्होंने अपनी सेना के कई विभाग करके बागियों की इस बिखरी हुई सेना से लड़ने के लिये भिन्न भिन्न स्थानों पर उन्हें नियत कर दिया। सर ह्यू रोज स्वयं एक सेना-विभाग अपने साथ लेकर नराट की घाटी की ओर चले। इस घाटी पर मर्दनसिंह की बहुत बड़ी सेना स्थित थी

इसलिये सर ह्यू रोज ने मदनपुर होते हुए निकल जाना ठीक समझा। सर ह्यू रोज को मदनपुर की ओर जाते हुए देख मर्दनसिंह ने भी अपनी सेना के साथ मदनपुर की ओर प्रस्थान किया। यह देखते ही सर ह्यू रोज ने अपनी थोड़ी सी सेना फिर नराट की घाटी की ओर भेजी और मर्दनसिंह की सेना को वहीं पर अटका लिया। मदनपुर में सर ह्यू रोज ने शाहगढ़ की सेना को हरा दिया। यह युद्ध बड़ा भीषण हुआ और अँगरेजों की बहुत सी सेना मारी गई। सर ह्यू रोज को भी एक गोली लगी और उसी गोली की चोट से उनका घोड़ा मर गया। परंतु विजय अँगरेजों को मिली। इस समय यदि मर्दनसिंह की सेना मदनपुर पहुँच जाती तो सर ह्यू रोज को विजय पाना असंभव हो जाता। परंतु सर ह्यू रोज ने चतुराई से मर्दनसिंह को नराट की घाटी पर अटका लिया और मर्दनसिंह तथा शाहगढ़वाले बखतबली का मेल न होने पाया। शाहगढ़ का राज्य इस युद्ध के पश्चात् अँगरेजों के अधिकार में आ गया और राजा को शाहगढ़ छोड़कर भागना पड़ा। शाहगढ़ राज्य के कई सरदार, जो अँगरेजों के हाथ पड़े, मार डाले गए।

७—मर्दनसिंह नराट की घाटी के समीप अँगरेजों की सेना के एक विभाग से लड़ रहे थे। जब मर्दनसिंह को बखतबली की हार का हाल मालूम हुआ तब वे भी वहाँ से भाग गए। बानपुर, खुरई, नरयावली इत्यादि स्थानों पर अँगरेजों ने अपना अधिकार कर लिया।

८—बुंदेलखंड के दक्षिणी भाग में बागियों को हराकर सर ह्यू रोज तालबहट की ओर चले। तालबहट का किला भी विद्रोहियों के हाथ में था। अँगरेजों ने यह किला ले लिया और विद्रोहियों को भगा दिया। सर ह्यू रोज फिर चंदेरी गए और वहाँ पर भी विद्रोहियों को हराकर उन्होंने अपना अधिकार कर लिया।

९—फिर सर ह्यू रोज ने झाँसी पर आक्रमण करने की तैयारी की। आक्रमण करने के पहले उन्हें खबर मिली कि तात्या टोपे ने चरखारी के राजा रतनसिंह पर चढ़ाई की है। रतनसिंह अँगरेजों के मित्र थे और अँगरेजों का काम था कि राजा रतनसिंह की सहायता करें। परंतु सर ह्यू रोज को झाँसी ले लेने की पड़ी थी, इससे चरखारी की ओर कोई ध्यान न दिया गया।

१०—तात्या टोपे महाराष्ट्र ब्राह्मण थे। ये बाल्यकाल से ही बड़े वीर थे। बाजीराव पेशवा इन्हें बहुत चाहते थे। ये बाजीराव पेशवा के साथ बिठूर में रहते थे। बाजीराव के मरने पर ये नाना साहब के विश्वासपात्र नौकर हो गए। कानपुर के विद्रोह में तात्या टोपे ने नाना साहब को बहुत सहायता दी थी। तात्या टोपे के अलौकिक शौर्य के कारण अँगरेजों ने उसे "हिंदू गैरीबाल्डी" कहा है।

अध्याय ३८

झाँसी और काल्पी की लड़ाइयाँ

१—रानी लक्ष्मीबाई झाँसी में अँगरेजों की ही ओर से शासन कर रही थीं परंतु जब उन्हें मालूम हुआ कि अँगरेजों की सेना झाँसी पर आक्रमण के लिये आ पहुँची है तब उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने चाहा कि अँगरेजों के पास अपना दूत भेजकर सब बातें समझावें परंतु दूत भी अँगरेजों के पास न पहुँच सका। कहा जाता है कि वह दूत रास्ते में ही मार डाला गया। अँगरेजी सेना निकट ही आ गई थी; अँगरेजों को भ्रम यही था कि रानी बागी हो गई हैं। इसलिये समझौते की कोई आशा न थी और रानी लक्ष्मीबाई को युद्ध करने का ही हुक्म देना पड़ा।

२—रानी लक्ष्मीबाई ने किले के बचाव के लिये पहले से ही सामान तैयार करा लिया था। गोले, बारूद और तोपें सब झाँसी के किले ही में तैयार हुई थीं। इन तोपों की और गोलों की अँगरेजों ने बड़ी प्रशंसा की है। कई गोले अँगरेजों के गोलों से भी अच्छे थे। रानी के पास एक चतुर गोलंदाज भी था जिसका नाम गुलाम गौसखाँ था। इसने भी बड़ी बहादुरी से काम किया था और अपने कौशल से अँगरेजों को चकित कर दिया था।

३—अँगरेजों ने किले पर आक्रमण करने के पहले ही झाँसी शहर से बाहर निकलने के सब मार्ग रोक लिए। झाँसी के आस-पास की पहाड़ियों पर भी अँगरेजी सेना रख दी गई थी। पहले तोपों से ही लड़ाई हुई। फिर जरा आगे हटकर अँगरेजों ने किले के दक्षिण से आक्रमण करना आरंभ किया। अँगरेजों ने किले के दक्षिणी भाग पर खूब गोले बरसाए और दक्षिण से तोपों का उत्तर देना झाँसी की सेना के लिये असंभव हो गया। इस समय झाँसी के गोलंदाज गुलाम गौसखाँ ने अँगरेजों के गोलंदाज को मार गिराया और फिर दोनों ओर से तोपों की मार होने लगी।

४—झाँसी के किले से जो गोले छूटते थे वे भी बहुत बड़े थे। कई गोले डेढ़ मन तक के वजन के थे। ये गोले झाँसी के ही बने थे और अँगरेजों के गोलों से भी उत्तम थे। दोनों ओर से गोलों का युद्ध सात दिन तक होता रहा[1]। आठवें दिन अँगरेजों की विजय के चिह्न दिखाई देने लगे। झाँसी का किला चारों ओर से घिरा था। झाँसी में अँगरेजों से लड़ने के लिये बारूद और गोले तो थे परंतु सैनिक शिक्षित न थे। सैनिकों की शिक्षा के लिये रानी को समय भी न मिला था। इस कारण झाँसी की रानी ने नाना साहब पेशवा से सहायता माँगी। नाना साहब ने अपने विश्वासी

(१) झाँसी का युद्ध २३ मार्च सन् १८५८ ईस्वी से आरंभ हुआ था।

और शूर सरदार तात्या टोपे को सहायता के लिये भेजा। तात्या टोपे अपने साथ बीस हज़ार सेना लेकर काल्पी से रवाना हुए। वे झाँसी जल्दी पहुँचे और उस समय अँगरेज़ों से युद्ध हो ही रहा था। सर ह्यू रोज भी चतुर सेनापति थे। उन्होंने ऐसा प्रबंध किया कि तात्या टोपे की सेना झाँसी की सेना से न मिलने पाई[1]। तात्या टोपे इस समय चरखारी की सेना को हराकर आए थे और उनकी सेना समझती थी कि अँगरेजों को हराना बहुत आसान काम होगा। अँगरेजों की सेना तात्या टोपे की सेना के दोनों ओर पहाड़ियों पर जम गई और उसने गोले बरसाना आरंभ कर दिया। तात्या टोपे की सेना का स्थान ठीक न था, इसलिये इन गोलों की मार से उसे बड़ी हानि हुई। दाहिनी और बाईं ओर से अँगरेज़ों ने गोले बरसाना आरंभ किया और तात्या टोपे की सेना को हार जाना पड़ा। इस युद्ध में तात्या टोपे के लगभग १५०० मनुष्य मारे गए। तात्या टोपे की सेना हारकर भागी और सेना का बहुत सा सामान अँगरेजों के हाथ आया। तात्या टोपे की यह पहली हार थी और इसमें भी उन्हें बहुत हानि हुई। वे काल्पी की ओर भागकर चले गए[2]।

५—महारानी लक्ष्मीबाई वीरता से अपने किले का बचाव करती रहीं। सर ह्यू रोज ने किले के पश्चिम से गोले बरसाना आरंभ किया। अँगरेज़ों की जो सेना झाँसी के किले के पश्चिम भेजी गई उसके सेनापति मेजर गाल थे। किले के दक्षिण की ओर किडेल, राबिंसन और स्टुअर्ट थे। सर ह्यू रोज ने उत्तर ओर भी सेना भेजी और इस सेना के नायक मिस्टर लौथ थे। इन्होंने तीनों ओर से झाँसी के किले पर गोले बरसाना आरंभ किया। गोलों की

(१) तात्या टोपे से युद्ध पहली अप्रेल सन् १८५८ से आरंभ हुआ।
(२) तात्या टोपे की हार तारीख ३ अप्रेल सन् १८५८ को हुई।

मार से किले की दीवारें बहुत कमजोर हो गईं। तात्या टोपे की हार का हाल सुनकर रानी लक्ष्मीबाई के सैनिक निराश हो गए थे परंतु रानी उन्हें उत्साहित करती रहीं।

६—अँगरेजी सेना धीरे धीरे किले के पास बढ़ती आ रही थी परंतु किले के भीतर से भी खूब गोलों की वर्षा होती थी जिससे अँगरेजों की सेना में बहुत हानि पहुँचती थी। अँगरेजों के सरदारों—डिक, मिकली, बोनस और फॉक्स—ने किले की दीवारों पर चढ़ने का प्रयत्न किया परंतु वे मारे गए। अँगरेजों की सेना यह सब मार सहती हुई आगे बढ़ती आई। रानी लक्ष्मीबाई को किले से बाहर निकल जाना पड़ा। फिर रानी लक्ष्मीबाई की सेना और अँगरेजों की सेना से शहर में युद्ध हुआ। शहर में भी अँगरेजों का अधिकार हो गया और रानी लक्ष्मीबाई अपने महल में से अँगरेजों की सेना से लड़ती रहीं। अँगरेजों ने शहर में घुसने पर विजन बोल दिया। जो कोई हिंदुस्तानी मिलता था वही मार डाला जाता था और उसकी संपत्ति लूट ली जाती थी। बच्चा या बूढ़ा जो कोई मिला मार डाला गया। सारे शहर में लूट-मार मच गई। जो अपना सब धन अँगरेजों की सेना के हवाले कर देता था वही अपनी जान बचा सकता था। इस प्रकार सारे शहर में अपना अधिकार करके सर ह्यू रोज ने रानी के महल पर आक्रमण किया। यहाँ पर रानी लक्ष्मीबाई ने अंतिम बार युद्ध किया। परंतु अँगरेजों की सेना ने महल को चारों ओर से घेर लिया और महल में आग लगा दी। अँगरेजों की सेना राजमहल में घुस पड़ी। राजमहल में जो मनुष्य मिले मार डाले गए। रानी लक्ष्मीबाई ने कुछ सैनिकों के साथ भाग जाने का निश्चय किया। परंतु भागना भी बड़ा कठिन कार्य था। चारों ओर से अँगरेजों की सेना थी। इतने पर भी रानी लक्ष्मीबाई ने हिम्मत बाँधी। अपने पुत्र दामोदरराव को उन्होंने

अपनी पीठ पर बाँधा और अपने मित्र मोरोपंत ताँबे के साथ भागने के लिये तैयार हो गईं। वे पुरुष के वेश में अँगरेजी सेना के बीच में से तलवार चलाती हुई काल्पी की ओर भाग गईं।

७—सर ह्यू रोज को रानी के भाग जाने का हाल मालूम होने पर बड़ा आश्चर्य हुआ। उनके सैनिकों ने रानी को पकड़ने का प्रयत्न किया परंतु रानी का पता न लगा। अँगरेजी सेना के बीच में से इस प्रकार भाग जाना रानी की वीरता और रण-कौशल का परिचय देता है[1]। रानी के चले जाने पर अँगरेजों ने शहर और किले पर अपना अधिकार जमा लिया। गोरे सिपाही अपने भाई-बंदों के मारे जाने के कारण बहुत क्रुद्ध थे। उनका तो यही विश्वास था कि रानी लक्ष्मीबाई और झाँसी के शहरवालों ने ही, अँगरेजों को मरवाया है। अब उन्हें उसका बदला लेने का अवसर मिला। उन लोगों ने निर्दयता से झाँसी के निवासियों की हत्या करना आरंभ किया। झाँसी में जो मनुष्य, स्त्रियाँ और बच्चे बचे थे वे सैनिक नहीं थे। अँगरेजों की गोलियों के सामने वे कुछ न कर सकते थे। झाँसी शहर में लाशों के ढेर लग गए। इस प्रकार तीन दिन तक अँगरेजों के हुक्म से शहर के निर्दोष निवासियों की हत्या होती रही। झाँसी का पुस्तकालय नष्ट कर दिया गया; महालक्ष्मी के मंदिर के सब आभूषण लूट लिए गए। गोरों ने इस प्रकार तीन दिन तक लूट-मार की। फिर मद्रासी पलटन ने, तदनंतर हैदराबादी पलटन ने लूट-मार की। इस प्रकार सात दिनों तक लूट-मार होती रही। आठवें दिन लूट का माल नीलाम कराया गया और बहुत सा माल सेंधियों ने मोल लिया। उस समय के

---

(१) रानी लक्ष्मीबाई झाँसी से तारीख ३ अप्रैल सन् १८५८ को भागीं।

वृत्तांत से पता लगता है कि युद्ध में उतने मनुष्य नहीं मरे जितने विजन और लूट के समय मरे[1]।

८—झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई भांडेर नामक गाँव में पहुँचीं। यहाँ पर अँगरेजों की सेना पहुँची। रानी के पास इस समय कोई सेना न थी। उन्होंने अपने पुत्र को पीठ पर बाँधा और लड़ने लगीं। रानी लक्ष्मीबाई ने अपनी तलवार से अँगरेजी सेना के नायक मिस्टर बौकर को घायल करके गिरा दिया और वे काल्पी की ओर चली गईं। बौकर साहब अपनी सेना लेकर लौट आए। काल्पी में इस समय कानपुर के बागियों का अधिकार था। कानपुर के नाना साहब के सैनिकों ने अँगरेजों के डिपटी कलेक्टर मुंशी शिवप्रसाद को काल्पी से मार भगाया था और काल्पी पर अधिकार कर लिया था। नाना साहब के भाई राव साहब पेशवा काल्पी में थे। काल्पी में लड़ाई का बहुत सा सामान इकट्ठा था। काल्पी के राव साहब ने रानी लक्ष्मीबाई का स्वागत किया। रानी लक्ष्मीबाई ने राव साहब को सहायता देने का वचन दिया और राव साहब ने भी, रानी के कहने के अनुसार, अँगरेजों से युद्ध करने का निश्चय कर लिया। जब रानी लक्ष्मीबाई और राव साहब पेशवा के मेल का हाल विद्रोहियों ने सुना तब उन्हें बहुत प्रसन्नता हुई और उन्हें आशा हो गई कि वे इन दोनों की सहायता से अँगरेजों पर विजय पावेंगे। बाँदा के नवाब अलीबहादुर भी अँगरेजों के विरुद्ध थे। इनके पास भी बहुत सी सेना थी। ये अपनी सेना लेकर काल्पी में आकर राव साहब से मिले। शाहगढ़ के राजा बखतबली, जिन्हें अँगरेजों ने सागर जिले में हरा दिया था, अब फिर से सेना इकट्ठी करके काल्पी पहुँचे। बानपुर के मर्दनसिंह भी अपनी सेना के साथ यहाँ पर

(१) दत्तात्रेय बलवंत पारसनीस कृत "झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई" नामक ग्रंथ देखिए।

आए। इन सब सेनाओं की कवायद राव साहब पेशवा ने ली और सर्वसम्मति से इस सेना के नायक तात्या टोपे बनाए गए।

९—जब सर ह्यू रोज को यह खबर मिली तब उन्होंने भी अपनी तैयारी करके काल्पी पर आक्रमण किया। पहले सर ह्यू रोज की एक पलटन ने कौंच पर आक्रमण किया। कौंच पर भी राज-विद्रोहियों का अधिकार था। सर ह्यू रोज की सेना के इस विभाग ने कौंच में विद्रोहियों को हरा दिया और कौंच का किला अपने अधिकार में कर लिया। सर ह्यू रोज ने बानपुर और शाहगढ़ की फौज को रोकने का प्रयत्न भी किया परंतु वे सफल न हुए और उनकी सब फौज काल्पी पहुँच ही गई।

१०—अँगरेजों ने पहले कौंच के पास लोहारी नामक किले पर आक्रमण किया। यह किला भी विद्रोहियों के हाथ में था। उनकी ओर से यहाँ अफगानों की पलटन नियत थी। अँगरेजों ने अफगानों की पलटन को हराकर लोहारी के किले पर अधिकार कर लिया। जिस समय लोहारी में अँगरेजों से युद्ध हो रहा था उस समय कौंच पर फिर से विद्रोहियों ने अधिकार कर लिया था। इसलिए लोहारी से लौटकर सर ह्यू रोज ने कौंच पर आक्रमण किया। कौंच में इस समय बाँदा के नवाब, तात्या टोपे इत्यादि सब तैयार बैठे थे। अँगरेजों ने चारों ओर से कौंच को घेर लिया। अँगरेजी सेना और विद्रोहियों में बड़ी देर तक युद्ध होता रहा। इस युद्ध में अँगरेजों को विजय मिली और कौंच अँगरेजों के अधिकार में आ गया।

११—कौंच को लेकर सर ह्यू रोज काल्पी की ओर चले। काल्पी पर हरदोई और उरई की ओर से चढ़ाई की गई। काल्पी पर महारानी लक्ष्मीबाई ने एक सेना अपने अधिकार में रखी। रोहिलों की सेना भी इस समय रानी लक्ष्मीबाई की सहायता को आ पहुँची

थी। दोनों ओर से गोलों की वर्षा हुई। अँगरेजों के पास बहुत सेना थी और लड़ाई का सामान भी खूब था। रानी लक्ष्मीबाई ने हारती हुई सेना को बहुत साहस दिया। परंतु अंत में कालपी की सेना को पीछे हटना पड़ा। आगे बढ़ती हुई अँगरेजी सेना रानी की सेना को कत्ल करने लगी। सर ह्यू रोज ने आकर कालपी पर अधिकार कर लिया। कालपी की सेना भागी और लड़ाई का बहुत सा सामान, जो वह सेना छोड़ती गई, अँगरेजों को मिल गया। रानी लक्ष्मीबाई, राव साहब पेशवा और बाँदा के नवाब कालपी छोड़कर चले गए। अँगरेजी फौज ने कालपी को तीन दिन तक खूब लूटा। अँगरेजों के हाथ बहुत सी तोपें और गोले लगे।

अध्याय ३९

बलवे की शांति

१—जिस समय सर ह्यू रोज झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के साथ युद्ध में लगे थे उस समय जबलपुर की सेना के नायक विटलाक, पूर्व की ओर, बलवा करनेवालों का दमन कर रहे थे। दमोह में पन्ना के राजा ने अँगरेजों को सहायता दी थी और विटलाक ने बचे-खुचे विद्रोह को नष्ट कर दिया था। बाँदा में जो राजविद्रोह हुआ था उसे भी विटलाक ने ही शांत किया। फिर ये सर ह्यू रोज की सहायता करने कालपी पहुँचे।

२—राव साहब पेशवा कालपी से भागकर गोपालपुरा पहुँचे। तात्या टोपे भी यहीं पर पेशवा से मिले। बांदा के नवाब भी इन्हें सहायता देने पहुँच गए। इस तरह गोपालपुरा में तीनों की सेना इकट्ठी हुई। महारानी लक्ष्मीबाई राव साहब पेशवा के साथ ही

थीं। इस समय रानी लक्ष्मीबाई ने राव साहब से कहा कि झाँसी और काल्पी पर आक्रमण करना बहुत कठिन होगा क्योंकि अँगरेजों की बहुत सी सेना यहाँ पर अड़ी है और उसके पास लड़ाई का सामान भी बहुत है। इसलिये रानी ने ग्वालियर पर आक्रमण करने और आक्रमण करके ग्वालियर के राजा सेंधिया से सहायता लेने की सलाह दी। सबने रानी लक्ष्मीबाई की सलाह मानी और ग्वालियर पर आक्रमण करने का निश्चय कर लिया।

३—ग्वालियर के राज्य में अँगरेजों का बड़ा मान था। सेंधिया महाराज जयाजीराव के समय में अँगरेजों के रेजिडेंट ही वास्तविक शासक थे। ग्वालियर में अँगरेजों की सेना भी थी पर इस सेना का मन बदला हुआ था। यहाँ की सेना ने एक बार विद्रोह भी किया था परंतु वह दबा दिया गया था। ग्वालियर दरबार में भी अँगरेजों के विरुद्ध सलाहें हो रही थीं। राव साहब पेशवा के दूतों ने ग्वालियर की सेना को भड़काया। वहाँ की सेना चाहती थी कि सेंधिया महाराज भी अँगरेजों के विरुद्ध हो जायँ; परंतु सेंधिया अँगरेजों के मित्र ही बने रहे। इससे सेंधिया की फ़ौज ने भी बलवे का झंडा खड़ा कर दिया। ऐसे समय में सेंधिया ने खुद सेना भरती की और विद्रोह को दबाने की चेष्टा की। तात्या टोपे और पेशवा की सेना ग्वालियर की सेना की सहायता को न पहुँच सकी क्योंकि उस सेना को इस समय कानपुर जाना पड़ा था। कानपुर में तात्या टोपे ने अँगरेज़ों को हरा दिया और फिर वह सेना गोपालपुरा में इकट्ठी हुई। इस सेना ने ग्वालियर की ओर कूच किया। ग्वालियर की सेना इस समय भी बदली हुई थी, इससे पेशवा की सेना को सेंधिया के राज्य में घुसने में कोई कठिनाई न हुई। पेशवा ने सेंधिया को बहुत पत्र लिखे और उनसे सहायता के लिये प्रार्थना की। सेंधिया ने बहुत

दिनों तक उत्तर न दिया। अंत में सेंधिया की सरकार ने यही निश्चय किया कि राव साहब को सहायता देना ठीक नहीं। सेंधिया ने राव साहब से लड़ने का भी निश्चय कर लिया।

४—मुरार के निकट बहादुरपुर नामक ग्राम में सेंधिया से युद्ध हुआ। रानी लक्ष्मीबाई ने सेंधिया की फौज को हरा दिया। जयाजीराव सेंधिया को हारकर आगरे की ओर भाग जाना पड़ा। रानी लक्ष्मीबाई ने अपनी सेना सहित ग्वालियर में प्रवेश किया। इस समय ग्वालियर के लोग भी अँगरेजों से असंतुष्ट थे इसलिये ग्वालियरवालों ने राव साहब पेशवा का स्वागत किया। ग्वालियर के राज्य पर राव साहब पेशवा ने अधिकार कर लिया। राव साहब की सेना ने ग्वालियर की रेजिडेंसी को जला दिया और उस मकान का माल लूट लिया। परंतु पेशवा के हुक्म से शहर में लूट-मार न हुई। ग्वालियर पर अधिकार करके पेशवा ब्राह्मण-भोजन कराने और नाच-रंग में मस्त हो गए और अँगरेजों के साथ लड़ने के लिये तैयार रहने की बात बिलकुल भूल गए। रानी लक्ष्मीबाई ने पेशवा से बहुतेरा कहा कि यह समय लड़ने का है, आराम करने का नहीं, परंतु रानी के उपदेश पर राव साहब ने ध्यान न दिया।

५—सर ह्यू रोज यह खबर सुनकर बड़े अचंभे में पड़े। उन्होंने सुनते ही बहुत सी सेना एकत्र की और ग्वालियर पर आक्रमण किया। अँगरेजों की सेना मुरार के समीप तक आ पहुँची। परंतु राव साहब पेशवा और तात्या टोपे को इसकी बिलकुल खबर न हुई। वे तो वहाँ आनंद मनाने में लगे थे। अँगरेजों ने जब आक्रमण करने की पूरी तैयारी कर ली तब कहीं पेशवा की ओर से तात्या टोपे को सेना तैयार करने का हुक्म मिला। तात्या टोपे मुरार की ओर अँगरेजों से युद्ध करने चले। अँगरेजों ने अचानक तात्या टोपे की सेना पर आक्रमण किया। दो घंटे तक युद्ध हुआ

और अँगरेजों की जीत रही[1]। अँगरेजों ने मुरार पर अधिकार कर लिया।

६—ग्वालियर में जब यह खबर पहुँची तब पेशवा घबरा गए। परंतु रानी लक्ष्मीबाई ने उन्हें शांत किया और युद्ध के लिये उत्साहित किया। ग्वालियर के पूर्व की रक्षा का भार रानी लक्ष्मीबाई ने अपने ऊपर लिया। शेष और तात्या टोपे रहे। सर ह्यू रोज ग्वालियर से पाँच मील कोटा की सराय नामक स्थान पर पहुँचे और वहाँ से उन्होंने आक्रमण करना निश्चित किया। उनके साथ ब्रिगेडियर स्मिथ भी थे। ये लक्ष्मीवाई की ओर नियुक्त थे। ब्रिगेडियर स्मिथ किसी प्रकार रानी लक्ष्मीबाई की सेना को पीछे न हटा सके। परंतु सर ह्यू रोज ने पेशवा की सेना के मोरचे छीन लिए। यह हाल सुनते ही रानी की सेना भी घबरा गई। सेंधिया महाराज को अँगरेजों ने अपने पास आगरे से बुला लिया था। इससे सेंधिया की सेना, जो अभी पेशवा को सहायता दे रही थी, बदल गई। अँगरेजों ने आगे बढ़कर रानी लक्ष्मीबाई की सेना को भी घेर लिया। परंतु रानी अपने कुछ सवारों के साथ लड़ती रहीं। अँगरेजों की सेना के सवारों ने चारों ओर से रानी को घेर लिया था पर रानी अपनी तलवारों की मार से सबको सामने से भगा देती थीं। उनके शरीर पर चारों ओर से तलवारों और भालों की मार हो रही थी। एक तलवार से उनके सिर का कुछ भाग छिन्न हो गया था और एक भाला उनकी छाती में भी आ लगा था। ऐसे समय में भी आक्रमणकारी सैनिकों को रानी ने अपनी तलवार से मार डाला। फिर और लड़ना ठीक न समझ रानी युद्ध से निकल गईं और संग्रामभूमि के निकट एक पर्णकुटी में ठहरीं। यहीं पर इनकी मृत्यु ज्येष्ठ शुक्ल ७ संवत् १९१५ को हुई। रामचंद्रराव

(१) यह युद्ध १६ जून सन् १८५८ ईसवी को हुआ।

देशमुख नामक सरदार ने रानी के शरीर को, घास के ढेर में रखकर, जला दिया।

७—रानी लक्ष्मीबाई की मृत्यु हो जाने पर अँगरेजों ने तात्या टोपे और पेशवा को बहुत आसानी से हरा दिया। इनकी सेना भागी और ग्वालियर पर अँगरेजों ने अधिकार कर लिया। जयाजी राव फिर राजगद्दी पर बैठाए गए। ग्वालियर से भागने पर तात्या टोपे, राव साहब पेशवा और बाँदा के नवाब ने आलीपुरा में युद्ध किया परंतु वे यहाँ पर भी हारे। बाँदा के नवाब अँगरेजों से फिर मिल गए। अँगरेजों ने इन्हें फिर से पेंशन दी और ये इंदौर में रहने लगे।

८—तात्या टोपे और पेशवा अँगरेजों से न मिले। तात्या टोपे ने बहुत दिनों तक अँगरेजों को तंग किया और अंत में अँगरेजों ने उन्हें पकड़कर फाँसी दे दी। राव साहब पेशवा ने जब लड़ने में कोई सार न देखा तब वे संन्यासी-वेश धारण करके रहने लगे। परंतु अँगरेजों ने उन्हें पकड़कर विठूर में फाँसी दे दी। यहीं पर राजविद्रोह का अंत हुआ।

९—रानी लक्ष्मीबाई ने जिस वीरता के साथ युद्ध किया उसे देखकर अँगरेजों ने भी रानी की प्रशंसा की। झाँसी के किले के भीतर ही जिस प्रकार लड़ाई का सामान हो सका उसी को देखकर अँगरेजों को अचंभा हुआ। रानी की हार का कारण पेशवा और तात्या टोपे की लापरवाही ही थी जिसके कारण वे अपने आक्रमण-कारी शत्रु अँगरेजों के राज्य में घुस आने पर भी युद्ध की तैयारी न कर सके। इस राजविद्रोह में ओड़छे के राजा ने अँगरेजों के विरुद्ध कोई कार्य नहीं किया। दतिया और समथर के राजा भी सदा अँगरेजों के मित्र बने रहे।

१०—शाहगढ़ के राजा को अँगरेजों ने कैद कर लिया और उन्हें लाहौर भेज दिया। शाहगढ़ का राज्य अँगरेजों के अधिकार में आ गया। बानपुर सेंधिया को मिला।

११—सेंधिया को ग्वालियर का राज्य अँगरेजों ने दिया परंतु मुरार में और ग्वालियर के किले पर अँगरेजों का अधिकार रहा। झाँसी भी ग्वालियर के राज्य में मिला दी गई। सन् १८८६ (संवत् १९४३) में झाँसी अँगरेजों ने ले ली और ग्वालियर सेंधिया को दे दिए गए। तब से झाँसी भी संयुक्तप्रांत का एक जिला है।

१२—सन् १८५७ के विद्रोह का एक प्रधान कारण गोद-संबंधी कानून था जिसके कारण राजा लोग, बिना अँगरेजों की अनुमति के, गोद में पुत्र न ले सकते थे। सन् १८६२ (संवत् १९१९) में यह कानून बदल दिया गया और प्रत्येक राजा को गोद लेने का अधिकार दे दिया गया। परंतु गोद के समय आश्रित राजाओं से उस वर्ष की आमदनी का चौथाई भाग नजराने में लिया जाता है।

अध्याय ४०

आधुनिक दशा

१—राज-विद्रोह शांत हो जाने पर बुंदेलखंड में कोई झगड़े नहीं हुए। राज-विद्रोह के समय अँगरेजों की ओर से लार्ड केनिंग गवर्नर थे। जब कंपनी के हाथ से अँगरेजी राज्य इँगलैंड की महारानी विक्टोरिया के हाथ में आया तब लार्ड केनिंग भारतवर्ष के अँगरेजी राज्य के वाइसराय कहलाए। झाँसी, जालौन, बाँदा, हमीरपुर और ललितपुर के जिले अँगरेजी राज्य के पश्चिमोत्तर प्रदेश में थे। पीछे से इस प्रदेश का नाम संयुक्त प्रदेश रखा गया। यह प्रदेश एक लेफ्टिनेंट
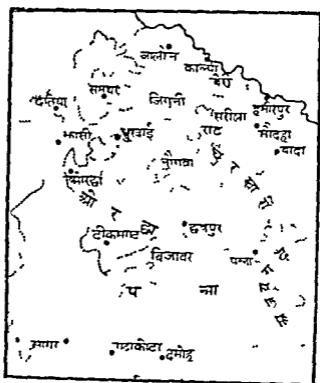
बुंदेलखंड
[राजविद्रोह के पश्चात्]

[अ० ३६

गवर्नर के अधिकार में था। अब यहाँ पर गवर्नर रहता है। गवर्नर को सलाह देने के लिये एक कौंसिल भी है। सागर और दमोह के जिले पहले पश्चिमोत्तर प्रदेश में थे, फिर ये जिले नर्मदा टेरिटरीज में शामिल कर दिए गए थे। राज-विद्रोह के पश्चात् एक नया प्रांत बनाया गया जिसका नाम मध्यप्रदेश रखा गया। इस प्रदेश की रचना संवत् १९१८ (सन् १८६१) में हुई। मध्यप्रदेश पहले चीफ कमिश्नर के अधिकार में था परंतु अब इसका शासन संयुक्तप्रदेश के समान गवर्नर और सलाह देनेवाली कौंसिल के अधिकार में है। सागर और दमोह के जिले इसी प्रदेश में शामिल हैं।

२—बुंदेलखंड के देशी राज्यों में ओड़छा, दतिया और समथर मुख्य हैं। इन राज्यों को अपने अपने आंतरिक प्रबंध का पूरा अधिकार है। ये राज्य सनदवाले राज्य नहीं हैं। इन राज्यों से और अँगरेजी राज्य से संधियाँ हुई हैं। ओड़छे के राजा हम्मीरसिंहजी वि० सं० १९३१ में निस्संतान मरे। इन्हें १९२२ में महाराजा की पदवी मिली थी। इनके मरने पर इन्हीं के छोटे भाई प्रतापसिंहजी गद्दी पर बैठे। इस समय इनकी आयु २० वर्ष की थी पर राज-नियमों से अनभिज्ञ होने के कारण सरकार ने मेजर ए० मेन को राज्य का प्रबंधकर्ता नियुक्त किया। महाराजा के पूर्व रियासत ने १९१४ विक्रमीय के राज-विद्रोह के समय अँगरेजों की अच्छी सहायता की थी। उसी के उपलक्ष में टारौली जागीर का ३०००) वार्षिक कर, जो पहले झाँसी के राजा को दिया जाता था और अब अँगरेज सरकार लेने लगी थी, माफ कर दिया गया। इसके सिवा मोहनपुर का २००) वार्षिक इस्तमरारी लगान भी छोड़ दिया गया। महाराज को वि० सं० १९४३ में सरामद-ई-हाई राजा बुंदेलखंड और सवाई महेंद्र की पदवियाँ दी गईं और वि० सं० १९५५ में जी० सी० आई० ई० की पदवी मिली। इसके पश्चात् ये वि० सं० १९६३ में जी० सी० एस० आई० की पदवी

गवर्नर के अधिकार में था। अब यहाँ पर गवर्नर रहता है। गवर्नर को सलाह देने के लिये एक कौंसिल भी है। सागर और दमोह के जिले पहले पश्चिमोत्तर प्रदेश में थे, फिर ये जिले नर्मदा टेरिटरीज में शामिल कर दिए गए थे। राज-विद्रोह के पश्चात् एक नया प्रांत बनाया गया जिसका नाम मध्यप्रदेश रखा गया। इस प्रदेश की रचना संवत् १९१८ (सन् १८६१) में हुई। मध्यप्रदेश पहले चीफ कमिश्नर के अधिकार में था परंतु अब इसका शासन संयुक्तप्रदेश के समान गवर्नर और सलाह देनेवाली कौंसिल के अधिकार में है। सागर और दमोह के जिले इसी प्रदेश में शामिल हैं।

२—बुंदेलखंड के देशी राज्यों में ओड़छा, दतिया और समथर मुख्य हैं। इन राज्यों को अपने अपने आंतरिक प्रबंध का पूरा अधिकार है। ये राज्य सनदवाले राज्य नहीं हैं। इन राज्यों से और अँगरेजी राज्य से संधियाँ हुई हैं। ओड़छे के राजा हम्मीरसिंहजी वि० सं० १९३१ में निस्संतान मरे। इन्हें १९२२ में महाराजा की पदवी मिली थी। इनके मरने पर इन्हीं के छोटे भाई प्रतापसिंहजी गद्दी पर बैठे। इस समय इनकी आयु २० वर्ष की थी पर राज-नियमों से अनभिज्ञ होने के कारण सरकार ने मेजर ए० मेन को राज्य का प्रबंधकर्ता नियुक्त किया। महाराजा के पूर्व रियासत ने १९१४ विक्रमीय के राज-विद्रोह के समय अँगरेजों की अच्छी सहायता की थी। उसी के उपलक्ष में टारौली जागीर का ३०००) वार्षिक कर, जो पहले झाँसी के राजा को दिया जाता था और अब अँगरेज सरकार लेने लगी थी, माफ कर दिया गया। इसके सिवा मोहनपुर का २००) वार्षिक इस्तमरारी लगान भी छोड़ दिया गया। महाराज को वि० सं० १९४३ में सरामद-ई-हाई राजा बुंदेलखंड और सवाई महेंद्र की पदवियाँ दी गईं और वि० सं० १९५५ में जी० सी० आई० ई० की पदवी मिली। इसके पश्चात् ये वि० सं० १९६३ में जी० सी० एस० आई० की पदवी

से विभूषित किए गए। इन्हें १९ तोपों की सलामी मिलती है। इनके भगवंतसिंह और सावंतसिंह नाम के दो पुत्र हुए। इनमें से ज्येष्ठ कुमार भगवंतसिंह का तो स्वर्गवास हो गया है और सावंतसिंहजी बिजावर की गद्दी पर बैठाए गए हैं। भगवंतसिंहजी के वीरसिंह, करनसिंह और घनश्यामसिंह नाम के तीन पुत्र हैं।

३—ओड़छे में काश्तकारी लगान का कानून बहुत अच्छा है। यह कानून पुरानी प्रथा के अनुसार ही है। इस कानून के अनुसार किसानों को लगान देने में कष्ट नहीं होता क्योंकि जब उपज हो जाती है तब उपज का भाग राज्य को दिया जाता है। अँगरेजी राज्य में लगान पहले से ही नियत कर दिया जाता है और काश्तकारों को वह देना ही पड़ता है। यदि उपज न हुई तो लगान देने में कठिनाई होती है। ओड़छे में किसानों को कृषि के लिये बीज और रुपए भी दिए जाते हैं। जब उपज होती है तब रुपए वसूल कर लिए जाते हैं। लगान इत्यादि की वसूली गाँव में मालगुजार करता है। यह गाँव का मालिक समझा जाता है। परंतु काश्तकारों के अधिकारों की रक्षा राज्य की ओर से होती है। यहाँ पर राजा सब भूमि का मालिक नहीं समझा जाता क्योंकि मालगुजारों के पास जो जमीन है उसके वास्तविक मालिक वे ही समझे जाते हैं। बुंदेलखंड के अधिकतर राज्यों में कृषि-संबंधी प्रथा ओड़छे के समान ही है।

४—दतिया के महाराज विजयबहादुर का देहांत संवत् १९१४ में हुआ। इनके कोई पुत्र न था इससे इनके दत्तक पुत्र भवानीसिंह संवत् १९१४ में राजा हुए। भवानीसिंह के विरुद्ध मृत महाराजा के दासी-पुत्र अर्जुनसिंह ने झगड़ा किया परंतु अँगरेजों की सहायता से वह झगड़ा शांत कर दिया गया।

५—समथर के राजा हिंदूपत के चतुरसिंह और अर्जुनसिंह नाम के दो पुत्र हुए। राजकुमार चतुरसिंह की राज्य करने योग्य

अवस्था होने पर उन्हें गद्दी दी गई पर रियासत का एक चतुर्थांश राजा हिंदूपत, राजमहिषी और अर्जुनसिंह उर्फ अलीबहादुर इन तीनों के भरण-पोषण के लिये दिया गया था। पर राजमाता के मर जाने पर महाराजा हिंदूपत और उनके कुँवर अर्जुनसिंह को भरण-पोषण के लिये ३०००) रुपए मासिक मिलते हैं और ६०००) रुपया वार्षिक आमदनी का एक गाँव भी लगा हुआ है।

६—राजा चतुरसिंह के ४ कुँवर (राजाबहादुर वीरसिंह, रावराजा विक्रमाजीत, कुँवर जगतराज और कुँवर रघुवीरसिंह) और नन्हें राजा नाम का एक पौत्र भी है।

७—पन्ना आदि रियासतों में राजाओं को पूरे अधिकार नहीं हैं। पन्ना के राजा नृपतिसिंह का देहांत संवत् १९२७ में हुआ। उनके पश्चात् उनके पुत्र रुद्रप्रताप राजगद्दी पर बैठे। महाराज रुद्रप्रताप और उनके भाइयों में अनबन हो गई और उनके भाई खुमानसिंह ने उनकी शिकायतें भी कई बार पालिटिकल एजेंट से कीं। उनके भाई लोकपालसिंह भी उनसे अप्रसन्न थे। परंतु महाराज रुद्रप्रताप के कोई पुत्र न होने से उनके पश्चात् लोकपालसिंह ही राज्य के अधिकारी हुए। महाराज लोकपालसिंह के पश्चात् उनके पुत्र माधवसिंह पन्ना के राजा हुए। महाराज माधवसिंह के समय में उनके काका खुमानसिंह की बहुत चलती थी इसलिये उन्होंने खुमानसिंह को जहर देकर मरवा डाला। इस अपराध पर विचार करने के लिये अँगरेजों ने एक कमिशन नियत किया। उस कमिशन ने महाराजा माधवसिंह को दोषी ठहराया। इस अपराध के कारण माधवसिंह राजगद्दी से उतार दिए गए और कैद कर लिए गए। उनकी जगह मृत राजा खुमानसिंह के पुत्र यादवेंद्र सिंह पन्ना के राजा बनाए गए।

८—अजयगढ़ में बखतसिंह के पश्चात् उनके पुत्र माधवसिंह, उनके पश्चात् महीपतसिंह और महीपतसिंह के पश्चात् विजयसिंह

राजा हुए। आजकल भूपालसिंह महाराज का राज्य है। इसी प्रकार अन्य राज्यों में सनदें पानेवाले राजाओं के वंशजों का राज्य है।

९—बुंदेलखंड की रियासतें बाहरी राज्यों से किसी प्रकार का राजनैतिक संबंध नहीं कर सकतीं। परराष्ट्र-संबंधी कार्य जो अँगरेज सरकार करे वही इन राज्यों को मानना पड़ता है। कई देशी रियासतों में मंत्रि-मंडल है। परंतु इन मंत्रि-मंडलों को सलाह देने के अतिरिक्त और कुछ अधिकार नहीं है। राजा जो चाहे कर सकता है। उसके कार्य में कोई बाधा नहीं डाल सकता और न कोई हस्तक्षेप कर सकता है। इसलिये राज्य के प्रबंध की उत्तमता राजा की योग्यता पर अवलंबित है। यदि राजा योग्य और उदार होता है तो वह अपनी प्रजा को सब प्रकार से सुख कर सकता है। यदि कहीं राजा योग्य न हुआ तो प्रजा को कष्ट होता है। भारतवर्ष के कई देशी राज्यों में राज-प्रबंध के लिये सभाएँ हैं जिन्हें राजाओं ने राज्य-प्रबंध के बहुत से अधिकार दिए हैं परंतु ऐसी राज-सभाएँ अभी बुंदेलखंड में नहीं हैं।

१०—देशी राज्यों की रक्षा का भार संधि के नियमों के अनुसार अँगरेज सरकार पर है। देशी राज्यों को अँगरेजों की सहायता के लिये ही कुछ सेना रखनी पड़ती है। इस सेना को "इंपीरियल सर्विस ट्रूप्स" कहते हैं। इस सेना के सिवा देशी राज्य थोड़ी सी सेना अपने आंतरिक प्रबंध के लिये रख सकते हैं। परंतु अपने बचाव के लिये या किसी बाहरी राजा से लड़ने के लिये ये लोग बिलकुल सेना नहीं रख सकते। यदि दो देशी राज्यों में कोई झगड़ा होता है तो उसका निर्णय अँगरेज सरकार करती है।

११—बुंदेलखंड के देशी राज्यों की देख-रेख अँगरेजों की ओर से बुंदेलखंड एजेंसी के सिपुर्द है। इस एजेंसी का एजेंट नौगाँव में रहता है।

---

(१२) कवि जटमल रचित गोरा बादल की बात

[लेखक—महामहोपाध्याय रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद ओझा]

सुलतान अलाउद्दीन खिलजी की चित्तौड़ पर चढ़ाई के समय काम आनेवाले वीर गोरा बादल की कथा राजपूताने आदि में घर घर प्रसिद्ध है। प्रत्येक जगह उक्त वीरों की वीर-गाथा बड़े ही प्रेम से सुनी जाती है। गत सितंबर मास में मेरा दौरा बीकानेर राज्य के इतिहास-प्रसिद्ध भटनेर (हनुमानगढ़) नामक दुर्ग के अवलोकनार्थ हुआ। उस समय बीकानेर में पुरानी राजस्थानी एवं हिंदी भाषा के परम प्रेमी ठाकुर रामसिंहजी एम० ए० (डाइरेक्टर ऑफ पब्लिक इंसट्रक्शन, बीकानेर स्टेट) और स्वामी नरोत्तमदासजी एम० ए० (प्रोफेसर ऑफ हिंदी तथा संस्कृत, डूंगर कॉलेज, बीकानेर) से मिलना हुआ। मुझे यह बात जानकर बड़ा हर्ष हुआ कि ये दोनों विद्वान् आजकल ढोला-मारू की प्राचीन कथा का संपादन कर रहे हैं और 'गोरा बादल की बात' नामक पद्यात्मक पुस्तक का भी संपादन करनेवाले हैं। उन्होंने मुझको उपर्युक्त दोनों पुस्तकें दिखलाईं, जिनको मैंने इस प्रवास में पढ़ा। पाठकों के अवलोकनार्थ आज मैं 'गोरा बादल की बात' नामक पुस्तक का आशय यहाँ पर प्रकट कर ऐतिहासिक दृष्टि से उस पर कुछ विवेचना करता हूँ।

प्रारंभ में यह बतला देना आवश्यक है कि उक्त काव्य का कथानक मलिक मुहम्मद जायसी के पद्मावत से मिलता जुलता है तो भी कई स्थलों में उससे भिन्नता भी है। सभव है कि जटमल ने, जो इस ग्रंथ का रचयिता है, जायसी के ग्रंथ 'पद्मावत' को देखा हो अथवा सुना हो; क्योंकि वह उसकी रचना से ८३ वर्ष पूर्व बन चुका था।

जटमल ने इस ग्रंथ में चित्तौड़ के राजा रत्नसेन (रत्नसिंह) और उसकी रानी के संबंध की कथा लिखते हुए गोरा बादल के युद्ध का विशेष रूप से वर्णन किया है, इसी से उसका नाम 'गोरा बादल की बात' रखा गया। जायसी का ग्रंथ विस्तृत है और जटमल का संक्षिप्त, जायसी के समान उसमें स्थलों आदि का विशद वर्णन नहीं मिलता। उसकी कथा का सारांश निम्नलिखित है—

जंबूद्वीप के अंतर्गत भरतखंड में चित्तौड़गढ़ नाम का एक बड़ा नगर है, जहाँ का राजा रत्नसेन शूर वीरों का प्रेमी था और उसकी सेवा में बहुत से वीर राजपूत रहते थे। यह चौहान राजा चतुर और बड़ा दानी था, जिससे उसके यहाँ दूर दूर से याचक लोग आया करते थे। एक दिन उक्त राजा के पास याचक (भाट) आए और उन्होंने उसकी प्रशंसा के विरुद सुनाए। तब राजा ने पूछा कि तुम कहाँ से आए हो। उन्होंने उत्तर दिया कि तुम्हारी कीर्ति सुनकर हम सिंहलद्वीप से आए हैं। राजा ने उनका सम्मान कर पूछा कि सिंहलद्वीप कैसा है। वहाँ क्या क्या वस्तु पैदा होती है? उन याचक भाटों ने कहा कि समुद्र के पार वह अद्भुत नगर है, जहाँ ऐरावत हाथी और पद्मिनी स्त्रियाँ होती हैं।

राजा के पद्मिनी के गुण पूछने पर भाटों ने स्त्रियों में चित्रिणी, हस्तिनी, शङ्खिनी और पद्मिनी चार जाति होना कह पद्मिनी के लक्षण, रूप, रंग का वर्णन किया, जिससे राजा पद्मिनी पर आसक्त हो गया। इतने में एक दिन वहाँ एक योगी आया और उसने राजद्वार पर धूनी लगा दी। राजा ने उसे बड़ा सिद्ध देख भक्तिपूर्वक उसकी पूजा की, जिससे योगी ने राजा को मनोवांछित वर माँगने को कहा। इस पर उसने कहा कि मेरा विवाह पद्मिनी स्त्री के साथ करा दीजिए। फिर योगी ने राजा को कहा कि सिंहलद्वीप में पद्मावती (पद्मिनी) है, वहाँ यदि तुमको चलना है तो राज-पाट तजकर चलो। राजा

ने उसकी बात स्वीकार कर ली। तदनंतर योगी ने मृग-चर्म पर बैठकर मंत्र पढ़ा, जिसके प्रभाव से रत्नसेन तथा वह योगी उड़कर सिंहलद्वीप पहुँचे। योगी ने राजा को कहा कि तुम साधु का भेष कर लो और भिक्षा माँगने जाओ। फिर राजा साधु का भेष बनाकर राजद्वार पर गया और राजकन्या पद्मावती को देख मूर्च्छित हो गया। राजकन्या ने अपनी दासी के द्वारा मूर्च्छित राजा पर पानी छिड़कवाया और बत्तीस लक्षणों से युक्त उसका अनुपम रूप देख मोतियों का हार तोड़कर मोतियों से उसे भिक्षा कराई। फिर वह सिद्ध योगी राजा के महलों में गया और उसने राजा से कहा कि तुम्हारी पुत्री पद्मिनी विवाह योग्य हुई है; इसलिये मैं उसके लिये वर लाया हूँ। रत्नसेन उसका नाम है और वह चित्तौड़-गढ़ का स्वामी है, उसके साथ पद्मावती का विवाह कर दो। योगी के वचन सुनकर राजा ने पद्मावती का विवाह रत्नसेन के साथ कर दिया और दहेज में बहुत से रत्न, सुवर्ण, मोती तथा वस्त्र आदि दिए। फिर रत्नसेन ने पद्मावती सहित चित्तौड़ जाने के लिये सिंहलद्वीप के राजा से सीख माँगी। उसने राघव चेतन नामक ब्राह्मण को भी साथ देकर रत्नसेन तथा पद्मावती को विदा किया। रत्नसेन, पद्मावती, योगी और राघव चेतन उड़नखटोले (विमान) में बैठकर चित्तौड़ पहुँचे। राजा अन्य सब रानियों को छोड़कर पद्मावती पर ऐसा मोहित हो गया कि वह उसको देखे विना जल भी नहीं पीता था। एक दिन वह दो घड़ी रात्रि रहे, शिकार को चला। उस समय राघव चेतन को उसने अपने साथ लिया। शिकार के समय जंगल में राजा को प्यास लगी। पर उसका यह नियम था कि पद्मावती को देखे विना वह जल नहीं पीता था, इसलिये राघव चेतन ने एक पुतली बनाई जो सब भाँति से पद्मावती के तुल्य थी, यहाँ तक कि पद्मावती के जंघा पर का तिल भी पुतली की जंघा पर विद्यमान था। उस तिल को

देखकर राजा को राघव के विषय में संदेह उत्पन्न हुआ। निदान उसने चित्तौड़ लौट आने पर उसको वहाँ से निकाल दिया। तब वह साधु का भेष धारण कर दिल्ली पहुँचा, जहाँ अल्लावदी (अलाउद्दीन) बादशाह राज्य करता था। एक दिन बादशाह शिकार खेलने को चला, उस समय राघव चेतन ने अपना वाद्य बजाया, जिसकी ध्वनि सुन वन के सब जानवर उसके पास चले गए और शाह को कोई जानवर नहीं मिला। अलाउद्दीन भी उस वाद्य की ध्वनि सुन वहाँ पहुँचा और वहाँ का चरित्र देख उसे आश्चर्य हुआ। फिर वह घोड़े से उतरकर राघव के पास गया और उसके राग से प्रसन्न हो गया। उसने उसको अपने यहाँ चलने को कहा। पहले तो राघव चेतन ने जाना स्वीकार न किया, परंतु अंत में बादशाह का आग्रह देख वह उसके साथ हो गया। उसकी गानविद्या की निपुणता से बादशाह का प्रतिदिन उस पर स्नेह बढ़ने लगा।

एक दिन बादशाह के पास कोई व्यक्ति खरगोश लाया। उसके कोमल अंग पर हाथ फेरते हुए बादशाह ने राघव से पूछा कि इससे भी कोमल कोई वस्तु है? उसने उत्तर दिया कि इससे हजार गुनी कोमल पद्मिनी है। शाह ने उससे पूछा कि स्त्रियाँ कितनी जाति की होती हैं। राघव ने स्त्रियों की चार जातियों के नाम चित्रिणी, हस्तिनी, शंखिनी और पद्मिनी बतलाए, और उनके लक्षणों का वर्णन करते हुए सबसे पहले पद्मिनी जाति की स्त्री की बढ़ावे के साथ प्रशंसा की; जैसे कि उसके शरीर के पसीने से कस्तूरी की सी वास का फैलना, मुख से कमल की सी सुगंध का निकलना और भौंरों का उसके चारों ओर मँडराना आदि। तत्पश्चात् चित्रिणी, हस्तिनी और शंखिनी जाति की स्त्रियों का वर्णन करते हुए शंखिनी की बुराइयाँ बतलाने में उसने कसर नहीं रखा। फिर शश, मृग, वृषभ और तुरंग जाति के पुरुषों के लक्षण बताते हुए शश जाति का पुरुष पद्मिनी के, मृग

जाति का चित्रिणी के, वृपभ जाति का हस्तिनी के और तुरंग जाति का पुरुप शंखिनी के लिये उपयुक्त वतलाया। बादशाह ने राघव की बात सुनकर कहा-कि हमारे अंतःपुर में दो हजार स्त्रियाँ हैं। उनको महल में जाकर देखो। उसने उनको प्रत्यक्ष देखना अस्वीकार कर तेल के कुंड में उन सुंदरियों के प्रतिविम्ब देखकर कहा कि इनमें चित्रिणी, हस्तिनी और शंखिनी जाति की स्त्रियाँ तो बहुत हैं, पर पद्मिनी जाति की एक भी नहीं है। इस पर सुलतान ने कहा कि जहाँ कहीं हो वहाँ ले जाकर मुझे पद्मिनी जाति की स्त्री शीघ्र दिखलाओ। उसके लिये जो माँगो वह मैं तुम्हें दूँगा। उसने कहा कि पद्मिनी समुद्र के परे सिहलद्वीप में रहती है। समुद्र को देखकर कायरों के हृदय कंपित होते हैं। राघव का यह कथन सुनकर सुलतान ने पद्मिनी के लिये प्रस्थान कर समुद्र के किनारे पड़ाव डाला और पद्मिनी को देखने के लिये हठ किया। तब राघव ने सुलतान से कहा कि पद्मिनी समीप में तो रत्नसेन चहुवान के पास है। यह सुनकर शाह ने बड़ी भारी सेना के साथ रत्नसेन पर चढ़ाई कर दी और वह चित्तौड़ के समीप आ ठहरा। वह १२ वर्ष तक किले को घेरे रहा, परंतु रत्नसेन ने उसकी एक न मानी। तब उस (सुलतान) ने राघव से पूछा कि अब क्या करें। चित्तौड़ का गढ़ बड़ा बाँका है, वह बलपूर्वक नहीं लिया जा सकता। राघव ने सुलतान से कहा कि अब तो कपट करना चाहिए; डेरे उठाकर लौटने का बहाना करना चाहिए, जिससे राजा को विश्वास हो जाय। फिर सुलतान ने अपने खवास को भेजकर रत्नसेन से कहलाया कि "मैं तो अब लौटता हूँ। मुझे एक प्रहर के लिये ही चित्तौड़ का किला दिखला दो और मेरे इस वचन को मानो तो मैं तुम्हे सातहजारी (मंसबदार) बना दूँ, पद्मिनी को बहिन और तुम्हें भाई बनाऊँ तथा बहुत से नए इलाके भी तुम्हें दूँ।"

राजा ने जब देखा कि सुलतान डेरे उठा रहा है तब उसको गढ़ पर बुलाया। वह (बादशाह) अपने साथ दस-बीस बहादुरों को लेकर कपटपूर्वक वहाँ पहुँचा। राजा ने शाह की बड़ी खातिर की। बादशाह ने राजा से कहा कि तुम मेरे भाई हो गए हो, मुझे पद्मिनी दिखलाओ ताकि मैं घर लौट जाऊँ। रत्नसेन चहुवान ने पद्मिनी को कहा कि सुलतान ने तुमको बहिन बनाया है सो तुम उसको अपना मुँह दिखला दो। इस पर उसने अपनी एक अत्यंत सुंदरी दासी को अपने वस्त्राभरण पहिनाकर बादशाह के पास भेजा जिसे देखकर वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। राघव ने शाह से कहा कि हे सुलतान, यह पद्मिनी नहीं है, ऐसा कहकर उसने पद्मिनी के रूप, गंध आदि की प्रशंसा की। इस पर शाह ने राजा का हाथ पकड़कर कहा कि तुमने मुझसे कपट कर अन्य स्त्री दिखलाई है। पद्मिनी से कहो कि वह मुझे अपना मुँह दिखलावे। तब पद्मिनी ने खिड़की से अपना मुँह बाहर निकाला, जिसे देखते ही शाह ने गिरते गिरते एक स्तंभ को पकड़ लिया। फिर उसने कहा—भाई रत्नसेन क्षण भर के लिये आप मेरे डेरे पर चलो, ताकि मैं भी आपका सम्मान करूँ। सुलतान वहाँ से लौटकर रत्नसेन के साथ पहले दरवाजे पर पहुँचा, उस समय उस (सुलतान) ने उसको लाख रुपए दिए। दूसरे दरवाजे पर पहुँचने पर उसने उसको दस किले देकर लालच में डाला। फिर इस प्रकार वह राजा को लुभाकर उसे किले से बाहर ले गया और उसे कपटपूर्वक पकड़ लिया, जिससे गढ़ में आतंक छा गया। बादशाह राजा को नित्य पिटवाता, चाबुक लगवाता और कहता कि पद्मिनी को देने पर ही तुझे आराम मिलेगा। चित्तौड़ के निवासियों को दिखलाने के लिये राजा को दुर्ग के सामने लाकर लटकवाता, जिससे वहाँ के निवासी दुखी हो गए। अंत में मार खाते हुए राजा ने कायर

होकर पद्मावती देना स्वीकार किया और रानी को लेने के लिये खवास भेजकर कहलाया कि मेरे जीवन की आशा करती हो तो एक क्षण भी विलंब मत करो। रानी ने राजा से कहलाया कि प्राण चले जायँ, तो भी अपनी स्त्री दूसरे को नहीं देनी चाहिए। मृत्यु से कोई नहीं बच सकता, इसलिये प्राण देकर संसार में यश लेना चाहिए, मुझको देने में आप कलंकित होंगे और मेरा सतीत्व नष्ट होगा। फिर रानी पद्मावती पान का बीड़ा लेकर बादल के पास गई और कहा कि अब मेरी रक्षा करनेवाला कोई नहीं दीखता, केवल तुझसे ही आशा है। उसने उसको कहा कि आप गोरा के पास जायँ, मैं बीड़ा सिर पर चढ़ाता हूँ, निश्चिंत रहें। फिर वह तुरंत ही गोरा के पास गई और पति को विपत्ति से छुड़ाने के विचार से कहा कि मंत्रियों ने मुझे बादशाह के पास जाने की सलाह दी है। इस स्थिति में जैसा तुम्हारी समझ में आवे वैसा करो जिससे राजा छूटे। गोरा ने बीड़ा उठाकर कहा कि अब आप घर जायँ। फिर गोरा और बादल परस्पर विचार करने लगे कि बादशाह की अपार सेना से किस प्रकार युद्ध किया जाय। बादल ने कहा कि पाँच सौ डोलियों में दो दो योद्धा बैठें और चार चार योद्धा प्रत्येक डोली को उठावें। उन (डोलियों) के भीतर सब भाँति के शस्त्र रख सिंगारे हुए कोतल घोड़े आगे कर उनको बादशाह के पास ले जाकर कहें कि हम पद्मिनी को लाए हैं, पर कोई तुर्क उसको देखने के लिये आने की इच्छा न करे। अनंतर योद्धा लोग डोलियों को छोड़ शस्त्र धारण करें, रण में पीठ न दिखाकर राजा के बंधन काटें और शाह का सिर उड़ावें। बादल के इस कथन को सभी ने स्वीकार किया। डोलियाँ सुसज्जित हो जाने पर मखमल आदि के कीमती पर्दे उन पर लगाए गए, फिर उनमें सशस्त्र वीरों को बिठला राजपूत वीर ही उन्हें अपने कंधों पर उठाकर ले चले। एक

वकील को बादशाह के पास भेजकर कहलाया कि रत्नसेन आज तुम्हें पद्मिनी सौंपता है। सुलतान यह बात सुन बड़ा ही प्रसन्न हुआ, उसने बादल को कहलाया कि पद्मिनी शीघ्र ही लाई जाय। सुलतान के ये वचन सुनकर बादल डोलियों के समीप आया और अपने वीरों को कहने लगा कि ज्योंही मैं कहूँ, त्योंही भाला हाथ में लेकर शत्रुओं पर टूट पड़ना। भाला टूट जाने पर गुरज और गुरज के टूट जाने पर कटार का वार करना।

जब अल्पवयस्क बादल लड़ने को चला तो उसकी माता ने आकर कहा कि हे पुत्र! तूने यह क्या किया। तू ही मेरा जीवन है, तेरे बिना संसार मेरे लिये अंधकार है और सब कुछ सूना तथा नीरस है। तेरे बिना मुझको कुछ नहीं सूझता। मेरे गात्र टूटते हैं, छाती फटती है, जहाँ कठोर तीर बरसते हैं वहाँ तू आगे बढ़कर शाह की सेना से कैसे लड़ेगा? बादल ने अपनी माता को कहा—"हे माता! तू मुझे बालक क्यों कहती है? बादशाह के सिर पर तलवार का प्रहार करूँ तो मुझे शाबाश कहना। सिंह, बाज पक्षी और वीर पुरुष कभी छोटे नहीं कहलाते। मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं आगे बढ़कर खूब युद्ध करूँगा। स्वामी के लिये अनेक योद्धाओं को मारूँगा, हाथियों को गिराकर, बख्तरों को तोड़, तलवार चलाता हुआ बादशाह को मारूँगा। यदि मर गया तो जगत् में मेरा यश होगा और युद्धस्थल से मुँह मोड़कर मैं तुझे कभी न लजाऊँगा।" बादल की माता उसकी प्रतिज्ञा की प्रशंसा कर 'तेरी जय हो' यह आशिष देती हुई लौट गई। फिर उस (माता) ने बादल की स्त्री के पास जाकर कहा कि तेरा पति मेरे समझाए तो समझता नहीं, अब तू जाकर उसको रोक। उसकी नवोढ़ा स्त्री ने उससे कहा कि हे पति! अभी तो आपने शय्या का सुख भी नहीं भोगा। जहाँ साँगों के प्रहार होते हैं, निरंतर तोपों से गोले चलते हैं और सिर टूट टूटकर धड़ों

पर गिरते हैं, ऐसे युद्ध में आपको नहीं जाना चाहिए। बादल ने उत्तर दिया कि यदि युद्ध में मृत्यु हुई तो श्रेष्ठ कहलावेंगे और जीते रहें तो राज्य का सुख भोगेंगे। हे स्त्री! दोनों प्रकार से लाभ ही है। यदि सुमेरु पहाड़ चलायमान हो, समुद्र मर्यादा छोड़ दे, अर्जुन का बाण निष्फल जाय, विधाता के लेख मिट जायँ, तभी होनहार टल सकती है। मैं रण से कभी विमुख न होऊँगा। फिर उसने अपना जूड़ा (मस्तक के बाल) काटकर अपनी स्त्री को इस अभिप्राय से दिया कि उसके युद्ध में काम आने पर वह इस जूड़े के साथ सती हो जाय।

गढ़ से डोलियाँ नीचे लाई गई। उन पर सुगंधित अरगजा छिड़का हुआ था, जिससे चारों ओर भौंरे मँडलाते थे। असली भेद बादशाह को मालूम नहीं हुआ। गोरा और बादल दोनों घोड़े पर सवार हुए। बादशाह के पास पहुँच उन्होंने सलाम किया और अर्ज की कि पद्मिनी के आने की खबर सुनकर आपके अमीर उसको देखने की इच्छा से दौड़ने लगे हैं, जो आपके एवं हमारे लिये लज्जा की बात है। इस पर बादशाह ने आज्ञा दी कि कोई उठकर पद्मिनी को देखने की चेष्टा करेगा तो वह मारा जायगा। तदनंतर उन्होंने शाह से कहा कि रत्नसेन को हुक्म हो जाय कि वह पद्मिनी से मिलकर उसे आपके सुपुर्द कर दे। सुलतान ने इस बात को स्वीकार कर लिया।

फिर रत्नसेन जहाँ पर कैद था, वहाँ जाकर बादल ने अपने मस्तक को उसके चरणों पर रख दिया। उस पर राजा ने क्रोधित हो उससे कहा कि तूने बुरा काम किया कि पद्मावती को ले आया। इस पर बादल ने कहा कि पद्मावती को यहाँ नहीं लाये हैं। डोलियों को भीतर ले जाकर लुहार से राजा की बेड़ियाँ कटवाई। तबल के बजते ही सुभटगण डोलियों से निकल आए। रण-वाद्य बजने लगे। जिससे शूर वीरों का चित्त उत्साहित होने लगा। शाही सेना में कोला-

हल मच गया। बात और की और हो गई। पद्मिनी अपनी ही ठौर रह गई और युद्ध के लिये राजपूत आ डटे। अफीम का सेवन किए हुए तीन सहस्र क्षत्रिय वीर मरने मारने को उद्यत हो गए। उधर बादशाह भी अपनी सेना को सज्जित कर हाथी पर सवार हो गया। युद्ध आरंभ हुआ। गोरा और बादल वीरता दिखलाकर शत्रुओं के सिर उड़ाने लगे। तलवार, तीर, भाले आदि शस्त्रों की वर्षा होने लगी और एक शाही अमीर के हाथ से गोरा मारा गया। बादल ने बहुत से शत्रुओं का संहार किया और राजा को बंधन से मुक्त कर घोड़े पर बिठला चित्तौड़ को भेज दिया। लोहू की नदियाँ बहने लगीं, दोनों ओर के अनेक वीर मारे गए, अंत में बादल विजयी होकर लौटा। पद्मिनी ने आकर बादल की आरती की और मोतियों का थाल भरकर उसके मस्तक पर वारा। उस (पद्मिनी) ने उसको चिरजीव होने की आशीष दी। वह गोरा बादल की वीरता की प्रशंसा करने लगी। बादल की स्त्री उसको बधाई देकर शाह के हाथी के दाँतों पर घोड़े के पाँव टिकाने तथा शाह पर तलवार चलाने की प्रशंसा कर उसके उत्साह को बढ़ाने लगी। बादल की चाची (गोरा की स्त्री) बादल से आकर पूछने लगी कि मेरा पति युद्ध में लड़ता हुआ मारा गया, या भागता हुआ ? उसके उत्तर में बादल के मुख से गोरा की वीरता का वर्णन सुन गोरा की स्त्री अपने पति की पगड़ी के साथ सती हो गई।

उपर्युक्त अवतरण से पाठकों को इस कथा का सारांश ज्ञात होगा। जायसी और जटमल के लेखों में जो अंतर है, उसके कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

मलिक मुहम्मद हीरामन तोते के द्वारा पद्मिनी का रूप सुनकर उस पर मोहित होना बतलाता है और जटमल भाटों द्वारा पद्मिनी का परिचय कराता है।

जायसी कहता है कि पद्मिनी पर आसक्त बना हुआ राजा, योगी बनकर सिंहल को चला, अनेक राजकुमार भी चेले होकर उसके साथ हो गए और तोते को भी अपने साथ ले लिया। विविध सकट सहता हुआ प्रेम-मुग्ध राजा सिंहल मे पहुँचा। इस विषय मे जटमल का यह कथन है कि योगी ने मृगचर्म पर बैठकर मन्त्र पढ़ा जिसके प्रभाव से रत्नसेन तथा वह योगी सिंहल मे पहुँचे।

जायसी तोते के द्वारा पद्मिनी का रत्नसेन से परिचय होना और वसंत पंचमी के दिन विश्वेश्वर के मंदिर में रत्नसेन तथा पद्मिनी के परस्पर साक्षात् होने पर उसका मोहित हो जाना और अनेक प्रकार से आपत्तियाँ उठाने के बाद शिव की आज्ञा से सिहल के राजा का रत्नसेन के साथ पद्मिनी के विवाह होने का वर्णन करता है; तो जटमल कहता है कि जब रत्नसेन सिंहल मे पहुँच गया, तब उस योगी ने वहाँ के राजा को रत्नसेन का परिचय देकर पद्मिनी के लिये उसे योग्य वर बतलाया, जिससे सिंहल के राजा ने उसका विवाह उसके साथ कर दिया।

जायसी बतलाता है कि रत्नसेन सिंहल मे कुछ काल तक रह गया। इस बीच मे उसकी पहले की रानी नागमती ने विरह के दु:ख से दु:खित होकर एक पक्षी के द्वारा उसके पास संदेश पहुँचाया, तब रत्नसिंह को चित्तौड़ का स्मरण हुआ, फिर वह वहाँ से विदा हो कर अपनी नई रानी (पद्मिनी) सहित चला। मार्ग मे समुद्र के भयंकर तूफान आदि आपत्तियाँ उठाता हुआ बड़ी कठिनता से अपनी राजधानी को लौटा; तो जटमल का कहना है कि राजा, पद्मावती और योगी आदि उड़नखटोले (विमान) मे बैठकर चित्तौड़ को पहुँचे।

जायसी राघव चेतन नामक ब्राह्मण का (जो जादू-टोने में निपुण था) राजा के पास आ रहना और जादूगरी का भेद खुल

जाने पर उसका राजा द्वारा वहाँ से निकाला जाना तथा उसका अलाउद्दीन के पास जाकर पद्मिनी के सौंदर्य्य की प्रशंसा करना बतलाता है और जटमल राघव चेतन का राजा के साथ, सिहल से उड़नखटोले में बैठ चित्तौड़ आने का उल्लेख कर कहता है कि राजा पद्मिनी पर इतना अधिक आसक्त हो गया कि उसको देखे बिना जल तक नहीं पीता था। एक दिन वह शिकार को गया, जहाँ प्यास से व्याकुल हो गया; जिस पर राघव ने ठीक पद्मिनी के सदृश पुतली बनाई, यहाँ तक कि पद्मिनी की जंघा पर का तिल भी विद्यमान था। उस तिल को देखकर राजा को उस पर संदेह हुआ और उसको उसने अपने यहाँ से निकाल दिया।

जायसी ने राघव चेतन के दिल्ली जाने और पद्मिनी के रूप की बादशाह से प्रशंसा करने पर बादशाह के उस पर आसक्त होने और रत्नसिंह के पास दूत भेज पद्मिनी दे देने के लिये कहलाने तथा उसके इनकार करने पर चित्तौड़ पर चढ़ाई करने का उल्लेख किया है। जटमल ने राघव चेतन का साधु बनकर दिल्ली जाना, उसकी गान-विद्या से अलाउद्दीन का उससे प्रसन्न होना, एवं पद्मिनी आदि चारों जाति की स्त्रियों का वर्णन करने पर बादशाह का पद्मिनी जाति की स्त्री पर आसक्त होना और पद्मिनी के लिये चित्तौड़ पर चढ़ आना बतलाया है।

जायसी का कथन है कि आठ वर्ष तक चित्तौड़ को घेरे रहने पर भी सुलतान उसको फतह नहीं कर सका। ऐसे में दिल्ली पर शत्रु की पश्चिम की ओर से चढ़ाई होने की खबर पाकर उसने कपट-कौशल से राजा को कहलाया कि हम आपसे मेल कर लौटना चाहते हैं, पद्मिनी को नहीं माँगते। इस पर विश्वास कर राजा ने उसको चित्तौड़ के दुर्ग में बुलवाकर आतिथ्य किया। वहाँ पर शतरंज खेलते समय अपने सामने रखे हुए एक दर्पण में पद्मिनी का प्रतिबिंब देख-

कर उसकी दशा और की और हो गई। दूसरे दिन राजा के प्रति अत्यंत स्नेह दिखलाकर उसके वहाँ से विदा होते समय राजा भी उसको पहुँचाने चला। प्रत्येक द्वार पर वह राजा को भेंट देता गया और सातवें दरवाजे के बाहर निकलते ही, गुप्त रीति से तैयार रखी हुई, सेना के द्वारा उसे पकड़वा लिया। फिर उसको बंदी बना दिल्ली ले गया, जहाँ पर वह राजा से कहता कि पद्मिनी के देने पर ही तुम कैद से मुक्त हो सकोगे। इस विषय में जटमल कहता है कि १२ वर्ष तक लड़ने पर भी सुलतान किले को फतह नहीं कर सका, तब उसने दिल्ली लौट जाने के बहाने से डेरे उठाना शुरू कर दिया और रत्नसेन से कहलाया कि मैं तो अब लौटता हूँ, मुझे एक प्रहर के लिये ही चित्तौड़ का किला दिखला दो और मेरे इस वचन को मानो तो मैं तुम्हें सात हजारी (मंसबदार) बना दूँ, पद्मिनी को बहिन और तुम्हे भाई बनाऊँ तथा बहुत से नए इलाके भी तुम्हे दूँ। सुलतान के इस प्रस्ताव को राजा ने स्वीकार किया और बादशाह को अपना मिहमान बना किले में बुलाया। वहाँ उसने पद्मिनी को देखना चाहा। फिर खिड़की के बाहर निकला हुआ पद्मिनी का मुख देखते ही उसकी पापमय वासना बढ़ गई। उसने राजा को लोभ में डाल अपना मिहमान बनाने की इच्छा प्रकट कर उसको अपने साथ लिया। प्रत्येक दरवाजे पर पारितोषिक आदि देकर राजा का मन बढ़ाता गया और किले के अंतिम दरवाजे से बाहर जाते ही उसने राजा को पकड़वा लिया।

जायसी लिखता है कि कुंभलनेर के राजा ने पद्मिनी को लुभाकर ले आने के लिये एक वृद्धा दूती को चित्तौड़ में भेजा। वह तरुणी-भेष धारण कर पद्मिनी के पास पहुँची और युवा अवस्था में पति का वियोग हो जाने से कुंभलनेर के राजा के पास चलने और भोग-विलास में दिन बिताने की बात कही।

यह सुनकर पद्मिनी ने उसे अपने यहाँ से निकलवा दिया। पति को कैद से छुड़ाने का संकल्प कर अपने वीर सामंत गोरा बादल से सम्मति माँगी। उस पर उन्होंने जिस भाँति सुलतान ने छल किया, उसी प्रकार उससे छल कर राजा को कैद से छुड़ाने की सलाह दी। फिर उन्होंने सोलह सौ डोलियों में पद्मिनी की सहेलियों के नाम से वीर राजपूतों को बिठलाया। अब वे पद्मिनी के स्थान पर लोहार को बैठाकर चित्तौर से दिल्ली को चले। वहाँ उन्होंने पद्मिनी के दिल्ली आने की खबर देकर सुलतान को कहलाया कि एक घड़ी के लिये उसको अपने पति से मिलकर गढ़ की कुंजियाँ सौंपने की आज्ञा दी जाय, फिर वह आपकी सेवा में उपस्थित हो जाय। सुलतान के यह स्वीकार करने पर वे राजा रत्नसेन के पास पहुँचे और अपने साथ के लोहार से उसकी बेड़ी कटवाने के बाद उसे घोड़े पर सवार करा ससैन्य नगर से बाहर निकल गए। इस पर सुलतान की सेना ने पीछा किया और गोरा लड़ता हुआ मारा गया। परंतु बादल ने राजा सहित चित्तौड़ में प्रवेश किया। यहाँ जटमल का कहना है कि सुलतान राजा को नित्य पिटवाता और कहता कि पद्मिनी को देने पर ही तुम्हारा निस्तार होगा। चित्तौड़ के निवासियों को दिखलाने के लिये वह राजा को दुर्ग के सामने ले जाकर लटकवाता; इससे वहाँ के निवासी अधीर हो गए। अंत में मार खाते खाते राजा ने भी दुखी होकर पद्मिनी को दे देना स्वीकार किया। निदान रानी को लेने के लिये खवास को भेजा, जिस पर पद्मिनी ने उस प्रस्ताव को अस्वीकार किया; किंतु मंत्रियों ने राजा को बंदीगृह से मुक्त करने की इच्छा से पद्मिनी को सुलतान को सौंपने का विचार कर लिया। तब वह अपने सतीत्व के रक्षार्थ बीड़ा लेकर बादल के पास गई, जिसने उसको गोरा के पास जाकर उसे भी उद्यत करने को कहा। यद्यपि बादल छोटी अवस्था का था

तो भी वह पद्मिनी के सतीत्व-रक्षार्थ तथा अपने राजा को छुड़ाने के लिये तैयार हो गया। उसकी माता और स्त्री ने बहुत कुछ कहा, किंतु वह अपने संकल्प पर दृढ़ रहा। गोरा और बादल ने पाँच सौ डोलियों में दो दो सशस्त्र राजपूत बिठलाकर प्रत्येक डोली को चार चार राजपूतों से उठवाया और उन्हें सुलतान के शिविर में ले जाकर अलाउद्दीन से कहलाया कि पद्मिनी को ले आए हैं। बादशाह की तरफ से कैदखाने में जाकर पद्मिनी को रत्नसिंह से मिल लेने की आज्ञा हो जाने पर सब डोलियाँ वहाँ पहुँचाई गईं जहाँ रत्नसेन कैद था। फिर राजा की बेड़ी काटी जाकर उसे घोड़े पर सवार करा चित्तौड़ को रवाना किया। अनंतर संकेतानुसार राजपूत डोलियों से निकल पड़े। सुलतान को यह भेद मालूम होने पर वह भी अपनी सेना को ले खड़ा हुआ और युद्ध होने लगा, जिसमें गोरा मारा गया। अंत में बादल विजयी होकर लौटा और गोरा की स्त्री बादल के मुँह से युद्ध के समय के गोरा के वीरोचित कार्यों की कथा सुनकर सती हो गई। यहीं पर जटमल अपना ग्रंथ समाप्त करता है।

ऊपर की दोनों कथाओं में इतना तो अवश्य ही ऐतिहासिक तत्त्व है कि रत्नसिंह (रत्नसेन) चित्तौड़ का राजा, पद्मिनी उसकी रानी, गोरा बादल उसके सरदार और अलाउद्दीन खिलजी दिल्ली का सुलतान था, जिसने पद्मिनी के लिये चित्तौड़ पर चढ़ाई की थी।

जटमल अपने विषय में लिखता है कि पठान सरदारों के मुखिए नासिरखाँ के बेटे अलीखाँन न्याजी के समय नाहर जाति के धर्मसी के पुत्र जटमल कवि ने संवला नामक गाँव में रहते हुए संवत् १६८० (ई० स० १६२४) फाल्गुन सुदी १५ को ग्रंथ समाप्त किया। उसके काव्य की भाषा सरस है और उसमें राजस्थानी डिंगल भाषा के भी बहुत से शब्दों का प्रयोग हुआ है।

ओसवाल महाजनों की जाति में नाहर एक गोत्र है, अतएव संभव है कि जटमल जाति का ओसवाल महाजन हो*। सबला गाँव कहाँ है, इसका पता अभी तक नहीं चला, पर इतना तो निश्चित है कि वह (जटमल) मेवाड़ का निवासी नहीं था। यदि ऐसा होता तो चित्तौड़ के राजा रत्नसेन को, जो गुहिलवंशी था, कदापि वह चौहान-वंशी नहीं लिखता। वह बारह वर्ष (जायसी ८ वर्ष) तक बादशाह का निरर्थक ही चित्तौड़ को घेरे रहना बतलाता है जो निर्मूल है। उस समय तक मंसबदारी की प्रथा भी जारी नहीं हुई थी। छः महीने तक चित्तौड़ का घेरा रहने के बाद सुलतान अलाउद्दीन ने वह किला फतह कर लिया, जिसमें रत्नसिंह मारा गया और पद्मिनी ने जौहर की अग्नि में प्राणाहुति दी।

जायसी ने पद्मिनी के पिता को सिंहल (लंका) का राजा चौहान-वंशी गंधर्वसेन (गंध्रवसेन) बतलाया है, किंतु जटमल ने पद्मिनी के पिता के नाम और वंश का परिचय नहीं दिया है। पद्मिनी कहाँ के राजा की पुत्री थी, इसका निश्चय करने के पूर्व रत्नसिंह (रत्नसेन) के राजत्वकाल पर भी दृष्टि देना आवश्यक है। इस कथा का चरित्र-नायक रत्नसिंह (रतनसी, रत्नसेन) चित्तौड़ के गुहिलवंशी राजा समरसिंह का पुत्र था। समरसिंह के समय के अब तक आठ शिलालेख मिले हैं, जिनमें सबसे पहला वि० सं० १३३० (ई०

---

* कलकत्ते के सुप्रसिद्ध विद्वान् बाबू पूर्णचंदजी नाहर एम० ए०, बी० एल० से ज्ञात हुआ कि उनके संग्रह में जटमल का रचा हुआ एक और भी काव्य ग्रंथ है, जिसमें जटमल का कुछ विशेष परिचय मिलता है। यह लेख लिखते समय वह ग्रंथ हमारे पास नहीं पहुँचा, जिससे जटमल का पूर्ण परिचय नहीं दिया जा सका। नाहरजी के यहाँ से उक्त पुस्तक के आने पर ग्रंथ कर्ता के विषय में कुछ अधिक ज्ञात हो सका तो फिर कभी वह पृथक् रूप से प्रकाशित किया जायगा।

स० १२७३') कार्तिक सुदी १ का है और अंतिम वि० सं० १३५८ (ई० स० १३०२) माघ सुदी १० का है, जिससे यह तो स्पष्ट है कि वि० सं० १३५८ के माघ सुदी १० तक मेवाड़ का राजा समरसिंह ही था। उसके पुत्र रत्नसिंह का केवल एक ही शिला-लेख दरीबा नामक गाँव के देवी के मंदिर में मिला है जो विक्रमी सं० १३५९ (ई० स० १३०३) माघ सुदी ५ बुधवार का है। इन लेखों से प्रकट है कि वि० सं० १३५८ के माघ सुदी ११ और वि० सं० १३५९ के माघ सुदी ५ के बीच किसी समय रत्नसिंह मेवाड़ का स्वामी हुआ। फारसी इतिहास लेखक मलिक खुसरो, जो चित्तौड़ की चढ़ाई में शरीक था, लिखता है कि सोमवार ता० ८ जमादि-उस्सानी हि० स० ७०२ (वि० सं० १३५९ माघ सुदी ९ = ता० २८ जनवरी ई० स० १३०३) को चित्तौड़ पर चढ़ाई करने के लिये दिल्ली से सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने प्रस्थान किया और सोमवार ता० ११ मुहर्रम हि० स० ७०३ (वि० सं० १३६० भाद्रपद सुदी १४ = ता० २६ अगस्त ई० स० १३०३) को चित्तौड़ का किला फतह हुआ। इस हिसाब से रत्नसिंह का राज्य समय कठिनता से लग-भग १ वर्ष ही आता है। संभव नहीं कि इस थोड़ी सी अवधि में समुद्र पार लंका जैसे दूर के स्थान में वह जा सका हो।

काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'जायसी-ग्रंथा-वली' (पद्मावत और अखरावट) के विद्वान् संपादक पं० रामचंद्र शुक्ल ने उक्त ग्रंथ की भूमिका में सिंहल द्वीप के विषय में लिखा है कि 'पद्मिनी सिंहल की नहीं हो सकती। यदि सिंहल नाम ठीक मानें तो वह राजपूताने या गुजरात में कोई स्थान हो' यह कथन निर्मूल नहीं है। चित्तौड़ से अनुमान २५ कोस पूर्व सिंगोली नाम का प्राचीन स्थान है, जहाँ प्राचीन खँडहर और किले आदि के चिह्न अब तक विद्यमान हैं। सिंगोली और उसका समीपवर्त्ती मेवाड़ का

पूर्वी प्रांत रत्नसिंह के समय चौहानों के अधिकार में था। जायसी पद्मिनी के पिता को चौहानवंशीय गंधर्वसेन लिखता है, यदि यह ठीक हो तो वह मेवाड़ के पूर्वी भाग सिंगोली का स्वामी हो सकता है।, सिंगोली और सिंहल के नामों में विशेष अंतर न होने से संभव है कि जायसी और जटमल ने सिंगोली को सिंहलद्वीप (लंका) मान लिया हो। सिंहल अर्थात् लंका पर कभी चौहानों का राज्य नहीं हुआ, इसके अतिरिक्त रत्नसिंह के समय वहाँ का राजा गंधर्वसेन भी नहीं था। उस समय लंका में राजा कीर्तिनिश्शंक देव (चौथा) या भुवनैकबाहु (तीसरा) होना चाहिए।

नागरी-प्रचारिणी सभा की हिंदी पुस्तकों की खोज संबंधी सन् १९०१ ईसवी की रिपोर्ट के पृ० ४५ मे संख्या ४८ पर बंगाल एशियाटिक सोसाइटी में जो जटमल रचित 'गोरा-बादल की कथा' है उसके विषय में लिखा है कि यह गद्य और पद्य में है; किंतु स्वामी नरोत्तमदासजी द्वारा जो प्रति अवलोकन में आई वह पद्यमय है। इन दोनों प्रतियों का आशय एक होने पर भी रचना भिन्न भिन्न प्रकार से हुई है। रचना-काल भी दोनों पुस्तकों का एक है और कर्ता भी दोनों का एक ही है। संभव है, जटमल ने कथा को रोचक बनाने के लिये ही बंगाल एशियाटिक सोसाइटीवाली प्रति में गद्य का प्रयोग किया हो।

---

(१२) काठियावाड़ आदि के गोहिल

[लेखक—श्री मुनि जिनविजय, विश्वभारती, बोलपुर।]

श्रीमान् रायबहादुर महामहोपाध्याय पंडितप्रवर श्री गौरीशंकर हीराचंदजी ओझा ने अपने राजपूताने के इतिहास के चौथे खंड में उदयपुर राज्य का इतिहास लिखते समय राजपूताने से बाहर के गुहिलवंशी राजपूतों का भी कुछ परिचय दिया है। उसमें 'काठियावाड़ आदि के गोहिल' नामक शीर्षक के नीचे काठियावाड़ के भावनगर और पालीताणा आदि राज्यों का, जो गोहिलवंशी राजकुलों के अधीन हैं, वर्णन करते हुए उनके राजाओं का भी मेवाड़ की शाखा में होना बतलाकर उन्हें सूर्यवंशी प्रमाणित किया है और भावनगर, पालीताणा आदि राजकुलों को आधुनिक इतिहास-लेखक, जो भाटों आदि की कल्पनाओं पर चंद्रवंशी बतलाते हैं, अनैतिहासिक साबित किया है।

हमने म० म० पं० श्री गौरीशंकरजी ओझा के लिखे हुए उक्त प्रकरण को खूब विचार-पूर्वक पढ़ा है और उसके पूर्वापर संबंध का ठीक ठीक विचार किया है। ओझाजी का लेख पढ़ने के पहले भी हमारा स्वतंत्र अभिप्राय, जो हमने अपने ऐतिहासिक अध्ययन के परिणाम में स्थिर किया था, यही था कि काठियावाड़ के गोहिल राजपूत उसी प्रसिद्ध राजवंश की संतान हैं, जो आज करीब १२ सौ वर्ष से मेवाड़ की पुण्य भूमि का रक्षण कर रहा है। काठियावाड़ के गोहिलों के चंद्रवंशी होने का कोई भी प्राचीन उल्लेख अभी तक हमारे देखने में नहीं आया। प्रतिष्ठानपुर के जिस शालिवाहन राजा के साथ इनके पूर्वजों का संबंध बतलाया जाता है वह केवल कपोल-कल्पित ही है। प्रतिष्ठानपुर के शालिवाहन का राज्य कभी

मारवाड़ या मेवाड़ में, जहाँ से इन गोहिलों का निकास बतलाया जाता है, रहा हो ऐसा कोई प्रमाण अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है और दूसरी बात यह है कि प्रतिष्ठान का शालिवाहन चंद्रवंशी न होकर आंध्रवंशी था और संभवतः द्रविड़ जाति का था। उस राजवंश का लोप तो प्रायः विक्रम की तीसरी शताब्दी के ही लगभग हो चुका था जब कि इन वर्तमान राजपूत कुलों के अस्तित्व का भी कोई चिह्न नहीं था।

हमारा तो अनुमान यह होता है कि अणहिलपुर के चालुक्य-चक्रवर्ती सिद्धराज जयसिंह के समय में इन काठियावाड़ के गोहिलों का मेवाड़ से इधर आना हुआ होगा। सिद्धराज ने मालवे के परमार राजा यशोवर्मा को पराजित कर वहाँ पर अपनी आण बरताई उस समय मेवाड़ का राज्य भी, जो मालवेवालों के अधीन था, गुजरात के छत्र के नीचे आया। उसी समय मेवाड़ के राजवंश का कोई व्यक्ति नियमानुसार गूर्जरेश्वर की सेवा में उपस्थित हुआ होगा, जो मांगरोलवाले संवत् १२०२ के लेख में सूचित किया गया है। इस लेख से मालूम होता है कि गुहिलवंशीय साहार का पुत्र सहजिग सिद्धराज की सेवा में उपस्थित हुआ था जिसके कुल आदि का महत्त्व समझकर सिद्धराज ने उसे अपना अंगरक्षक बनाया था। बाद में उसके पुत्र को सौराष्ट्र का अधिकारी नियुक्त किया जो कुमारपाल के समय में भी उसी पद पर बना रहा और पीछे के सोलंकी राजाओं के समय में भी उनकी संतान इस प्रकार अधिकारारूढ़ बनी रही और शनैः शनैः समय पाकर उन्होंने स्वतंत्र बनकर इन काठियावाड़ के गोहिल राज्यों की नींव डाली।

गुजरात में हिंदू राजसत्ता का नाश होने पर और मुसलमानी सत्ता के कायम होने पर इस देश के राजपूत घरानों की बड़ी दुर्दशा हुई। इनके लिये न कोई आधारभूत राजकुल था और न

कोई सहायता देनेवाला आश्रयस्थान था। इसलिये एक प्रकार से ये शुरू शुरू में इधर-उधर मारे मारे फिरते रहे और बागियों की तरह डाकुओं का सा जीवन व्यतीत करते रहे। ऐसी अनवस्था में इनका राजपूताने के बड़े बड़े राजघरानों से संबंध विछिन्न हो गया और ये अपना पूर्व निवासस्थान और कौटुंबिक संबंध भी भूल गए। पीछे से दो सौ चार सौ वर्ष बाद जब ये फिर सँभले और अपने पैर स्थिर कर चुके तब फिर अपने पूर्वजों की देख-भाल करने लगे। उस समय जो भाट-चारण इनके समीप पहुँचे और उन्होंने जो कुछ कपोल-कल्पनाएँ दौड़ाकर इनके वंश आदि का नामकरण किया उसी को इन्होंने सत्य मानकर उसके अनुसार अपना इतिहास गढ़ लिया। इन गोहिलों को शायद इतनी स्मृति तो रह गई थी कि इनका पूर्वज कोई शालिवाहन था। इसलिये भाटों ने इतिहास-प्रसिद्ध शालिवाहन ही को इनका पूर्वज बतलाया और उसका चंद्रवंशी होना मानकर इनका वंशानुक्रम उसके साथ जा मिलाया। लेकिन वास्तव में, जैसा कि ओझाजी ने बतलाया है, ये मेवाड़ के गुहिल शालिवाहन की संतान हैं और सूर्यवंशी हैं। भाटों की कल्पना के कारण राजपूतों के वंशों में बड़ी बड़ी अनवस्थाएँ उत्पन्न हो गई हैं यह तो सभी इतिहासज्ञ जानते हैं—जैसा कि पृथ्वीराज रासो की कल्पना के कारण सोलंकी और चाहमानों का भी अग्निवंशी होना रूढ़ हो गया है, जो नितांत भ्रममूलक है। अब जब कि हमारे पास बहुत से सत्य ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध हैं, केवल भाटों की उन निर्मूल कल्पनाओं के ऊपर निर्भर रहना और इतिहास के अंधकार में निमग्न रहना आवश्यक नहीं है। सत्य की गवेषणा कर अपने वंश की शुद्धि का पता लगाकर पूर्वजों के इतिवृत्त का उद्धार करना ही यथार्थ में पितृ-तर्पण और शुद्ध श्राद्ध है।

---

(१४) प्रेमरंग तथा आभासरामायण

[लेखक—श्रीव्रजरत्नदास बी० ए०, एल-एल० बी०, काशी]

हिंदी-साहित्य के इतिहास पर दृष्टि दौड़ाने से ज्ञात होता है कि भारतेंदु-काल के पहले उसके गद्य या पद्य दोनों ही भागों में प्राचीन काव्य-भाषा, मुख्यतः व्रजभाषा का दौरदौरा था। उसके साथ साथ अवधी को भी स्थान मिला था। स्थानिक बोलचाल के शब्दों या शब्द-योजनाओं का भी मेल बराबर मिलता अवश्य है पर उनका काव्य-भाषा की परंपरा में कोई स्थान-विशेष नहीं है। इस प्राचीन समय से चली आती हुई काव्य-भाषा का प्राधान्य, देखा जाता है कि, व्रजमंडल से लेकर विहार की सीमा तक के प्रांत भर में था; जिसके अंतर्गत अवधी भी सम्मिलित है। इस विशद प्रांत, व्रज-भाषा के दुर्ग के बाहर रहनेवाले अन्यभाषा-भाषी जिन कवियों ने हिंदी भाषा को अपनाया है उनमें खड़ी बोली हिंदी ही का प्राधान्य है, प्राचीन काव्य-भाषा का नहीं। इस प्रांत में भी खड़ी बोली हिंदी के जो प्राचीन कवि हो गए हैं उनमें मुसलमान ही अधिक हैं। हिंदुओं द्वारा मुसलमानों की उक्ति के लिये इस भाषा का प्रयोग हुआ है। प्रथम कोटि में अमीर खुसरो, नवाब अब्दुर्रहीमखाँ खानखाना आदि हैं और दूसरी में भूषण, सूदन आदि। इनके सिवा कुछ ही कवि ऐसे हुए हैं जिन्होंने इस खड़ी बोली हिंदी में कविता की है और वे इन दोनों कोटियों में नहीं आते। इनमें शीतल, भगवत-रसिक, सहचरिशरण आदि मुख्य हैं। पर साथ ही यह ध्यान रखना चाहिए कि इन सभी कवियों ने खड़ी बोली हिंदी में मुक्तक काव्य की रचना की है पर आज एक ऐसे कवि का परिचय दिया जाता है जिन्होंने खड़ी बोली हिंदी में प्रबंध-काव्य की रचना की है

संस्कृत, प्राकृत दोउ कहे इंद्रप्रस्थ के बोल।
वाल्मीकीय प्रसाद सों गाए राग निचोल ॥

खड़ी बोली भाषा के विषय में इनका यह कथन कि वह इंद्रप्रस्थ (दिल्ली) की बोली है, महत्त्वपूर्ण है। आज से १३० वर्ष पहले भी खड़ी बोली हिंदी दिल्ली के आसपास की भाषा मानी जाती थी। कुछ 'एकैडेमिशियनों' का यह कथन कि खड़ी बोली हिंदी अर्थात् हिंदुस्तानी भाषा को डा० गिलक्राइस्ट की तत्त्वावधानता में फोर्ट विलियम कालेज के पंडितों तथा मुंशियों ने जन्म दिया है, बिलकुल असंगत तथा सारहीन है। उसी प्रकार व्रज भाषा से उर्दू का जन्म मानना तथा उर्दू में से फारसी अरबी शब्दों को निकालकर संस्कृत शब्दों को भर खड़ी बोली बनाने का कथन निरर्थक ज्ञात होता है।

अस्तु, समग्र ग्रंथ में गाने के छंदों ही का प्रयोग है और प्रत्येक कांड के लिये भिन्न भिन्न छंद प्रयुक्त हुए हैं। अंत में बारह दोहों में फलस्तुति तथा रचना-काल दिया गया है। इस ग्रंथ की समाप्ति विक्रम-संवत् १८५८ के अधिक ज्येष्ठ कृष्ण ११ को हुई थी। इस ग्रंथ के उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह ग्रंथ पूरा इस लेख के साथ प्रकाशित कर दिया जाता है।

गरबावली—इस ग्रंथ की जो हस्त-लिखित प्रति मेरे सामने है वह खंडित हो गई थी पर किसी सज्जन ने अन्य प्रति से उसे पूरा कर दिया है। यह चौहत्तर पत्रों में समाप्त हुई है। साढ़े नौ इंच लंबे तथा सवा चार इंच चौड़े पत्रों पर छः छः पंक्तियों में यह ग्रंथ लिखा गया है। कागज भी अच्छा है और अक्षर भी सुंदर तथा सुडौल हैं। इस प्रति का लिपि-काल नहीं दिया है पर यह प्राचीन अवश्य है। यह ग्रंथ गुजराती भाषा में आसासरामायण के ढंग पर लिखा गया है। इसमें भी बालकांड से उत्तरकांड तक सातों कांड भिन्न भिन्न गाने योग्य छंदों में रचे गए हैं और वाल्मीकीय

कथानुसार रामचरित वर्णित है। यह आभासरामायण से कुछ बड़ा ग्रंथ है। गुजराती स्त्रियों में गाने की एक प्रथा को गरबा कहते हैं। कजली के गाने के समान कुछ स्त्रियाँ मंडलाकार खड़ी हो जाती हैं और गाती हुई घूमती जाती हैं। दोनों में एक विभिन्नता है कि कजली में स्त्रियाँ भीतरी ओर मुख किए रहती हैं पर गरबा में बाहरी ओर। उसी प्रकार के गीत गाने का यह संग्रह होने से इसका गरबावली नामकरण किया गया है।

यह ग्रंथ गुजराती भाषा में है इससे विशेष उदाहरण न देकर दो-चार पद उद्धृत कर दिए जाते हैं। इसके विषय में विशेष लिखना भी अपने सामर्थ्य के बाहर ही है। इसमें एक स्थान पर एक श्लोक दिया गया है जो स्थानादि के विचार से इन्हीं कवि की रचना ज्ञात होती है, इसलिये वह भी यहाँ उद्धृत कर दिया जाता है। हो सकता है कि यह किसी अन्य की रचना हो।

धन्यायोध्या दशरथनृपः सा च धन्या...
धन्यो वंशो रघुकुलभवो यत्र रामावतारः।
धन्या वाणी कविवरमुखे रामनामप्रपन्ना
धन्यो लोकः प्रतिदिनमसौ रामवृत्तं शृणोतु॥

प्रभु पंपा तीरे जोय। कमल जलचर दीठा॥
करे कोकिल गायन लोय। गलां रमणिय मीठां॥
त्याहाँ कै के फल नां झाड। फूलनी वेल घणी॥
एव्हे आव्यो फागुण पाड। पाड़ा विरह तणी॥
सुन्हे रत्य पीडे छे बसंत। कामिनि पाशिविना॥
गाए भमरा भमि भमि संत। सुगंध पवन भीना।

पदावली—इस संग्रह की हस्त-लिखित प्रति सं० १८८६ वि० की लिखी हुई है। यह छोटे छोटे २७८ पत्रों की रेशमी जिल्द बँधी हुई पुस्तक है जिसके प्रत्येक पत्रे के दोनों ओर पाँच पाँच पंक्तियाँ

हैं। प्रत्येक पंक्ति में प्रायः सोलह अक्षर हैं। कागज मोटा बाँसी है और लेखक ने बड़े परिश्रम से लिखा है, जिससे अक्षर एक रंग, सुडौल तथा सुंदर आए हैं। पद प्रायः छोटे छोटे ही हैं, इससे उनकी संख्या लगभग चार सौ के है। इनकी भाषा प्रायः हिंदी काव्य-परंपरा की है पर कुछ पद फारसी-मिश्रित खड़ी बोली, पंजाबी तथा गुजराती के हैं। इन सबमें श्रीकृष्णजी तथा श्रीरामचंद्र के चरित्र वर्णित हैं। आरंभ में चार-पाँच पदों में शिवजी, विष्णु भगवान्, अन्य अवतार, ऋषि, भक्त आदि की स्तुति-कथा है। प्रायः सभी पद साधारण कोटि के हैं। कुछ पद विरक्ति तथा भक्ति के हैं। दो-चार उदाहरण दिए जाते हैं।

पंजाबी भाषा—

जांदाई जांदा सुन देवो खबरां न थेदां साँडे हाल विरह दी।
कसम तूं सानूं साँडे जॉव दी कहें दे नाँल चलें दे विन डिठियन
रहे दे॥

'प्रेमरंग' पाय दुरनाम न सहेंदे॥

खड़ी बोली हिंदी का एक उदाहरण—

आज भी हुआ है मुझे इंतजारी में फजर।
कर गया करार यार शब को आवते फजर॥
करता निमाज इबादत में हमेशे फजर।
आज अश्क सों वजू कराया यार ने फजर॥
जाना था उम्मेद महासिल हुई मैंने फजर।
बदकरार ने किया है बेकरार दिल फजर॥

उर्दू-मिश्रित हिंदी—

तदिय नरेतन दिरनांत दॉनी तरीम् तदीम् दीम् तनम् तनम्।
यललिय ललल्म् यल लल लले॥ धु०॥

दिलदार जाला हेच कुनं चार न दारम् ।
ब उम्मेद लासखुन से इश्तिफाक दिलबदारम् ॥
'प्रेमरंग' प्रभु वाह भल भले भले ॥

गुजराती भाषा का एक पद—

जावा दे कन्हैया ह्याँ की सास लड़ाकी॥
ननदल छोटी दग ड्यारी पीठी ।
शाशू पुँमै थारी लड़वा माँ झगड़ा की ॥
पनि डानें जाताँ लाँकै पाग गयाँ छे ।
झूठी साँची बोले थाके साघ रगड़ा की ॥
'प्रेमरंग' प्रभु थाँसों प्रान पग्यो छे ।
छाती प्रीत राखो ह्याँ की लाज बड़ाकी ॥

श्लोकावली—यह संपूर्ण ग्रंथ प्राप्त नहीं हुआ है। यह भी वाल्मीकीय रामायण की चाल पर सात कांडों में विभाजित है और खड़ी बोली हिंदी में संस्कृत वृत्तों में रचा गया है। इसका किष्किंधा कांड मात्र मुझे मिला है, जो संपूर्ण यहाँ दे दिया जाता है, क्योंकि इसमें केवल ग्यारह श्लोक हैं।

(स्रग्धरा छंद)

देखायं या प्रभू ने जलचर विचरे वृच्छ ये पच्छि बोलें ।
बोलें वन के मृगादिक गुलम पुहुप ये भृंग उन्मत्त डोलें ॥
डोलें दोनों वियोगी सिय सिय उचरें चाय ओवा न तोलें ।
तोलें शोभा सुगंधी जनक-कुँअरि की कंठ सो साउँ ढोलें ॥१॥
आयो भाई बसंत: प्रफुलित कुसुम प्रानप्यारी नहीं है ।
केकाकाकीयभेका विहरत वन मे पार वाकी वही है ॥
कैसे काटे वियोगी मधुरितु रिपु को बसंते बर्स बीता ।
बोले लछमन प्रभू को दुक विरह सहो पाइहो राम सीता ॥२॥

वन में राघो छिपाए कड़क रव किया बालि बाहर निकाला।
कुस्ती मूकों लड़े दो रविज घट गयो त्रास सों राम भाला॥
पीड़ा सुग्रीव पाई दवर गिरि चढ़ो बालि ने आप मान्यो।
आए राघो कपी ए कहत हमहिं को मारबो मंन में ठान्यो॥३॥
बोले राजाधिराजा सुनहु तुम सखा क्रोध को दूर कीजे।
जाते बाली बचा है हनन न किया दोख मोको न दीजे॥
दोनों भाई सरीखे लड़त नहि लखे कौन वाली दुहुंन में।
ताते नाहीं चलाया शर मरम विषे मित्र को घात मन में॥४॥
कीजे लछमन सखा को कछुक लख परे कंठ मे बेल डाली।
जाते बन के मुनी को सवन् सिर्नए आए मारन कुं बाली॥
दोनों वन में लुकाने शर धनुस धरे वालि को टेर दीनों।
सुनते धायो धरायो पकरत ग्रहणी नीत की बात कीनी॥५॥
मारा भाग फिरा है गहि बलि बल सों टेर की शब्द भारी।
कीने राघो सखा है त्रिभुवन-विजयी मान नीती हमारी॥
ल्याओ सुग्रीव भाई अनुजवत करो द्वेष का लेश त्यागो।
मानो नाहीं प्रिया की मरन-मुख भि पट् टेर ज्यों तीर लागो॥६॥
जी सो मारो नहीं मैं गरब परिहरो जाहु तूं रोस मेरी।
दीनीं आसीस भार्या सगुन कर गई बालि ने बारि हेरी॥
धाया सुग्रीव पाया धर पकर भई मुष्टि की वृष्टि कीनी।
पटके फटूके व छटूके गट-पट लपटे ओट ले चोट दीनी॥७॥

(मालिनी छंद)

कपि कहि वपु छोटा वालि का देह मोटा।
नहि तुल बल जोटा प्राक्रमी भाइ खोटा॥
धनुख दु शत डारों दुंदुभी भाइ मारी।
प्रबल रिपु हमारो फेंकिए हाड नारी॥८॥

(शार्दूलविक्रीडित छंद)

सेए राम सुभाई के गुन कहे मोको हरावे जवें।
बोले तात ने कीजियो दुरमती जा जीवता तूँ अवे॥
सेंमि भाई राय के नगर का राजा बनेगा नहीं।
तारा अंगद प्राण त्याग करिहैं मैं भी मरेगा जहीं॥६॥

(मत्तमयूरा छंद)

बोले राजा दासहि आग्या कर दीजे।
सीता जाने राम कहें खोज न कीजे॥
बंदर भेजे चार दिसा की भूईं भाखी।
जाओ खोजो मासहि आवो मन राखी॥१०॥

(शिखरिणी छंद)

कहो कैसे जावें कहत हँस वृद्धा कपिन सों।
मुँदाओ आँखों को सवन हम काढ़ें विपन सों॥
ढँपी आँखें काढे मलयगिरि देखा उदधि पें।
बड़ी चिंता व्यापी सब मकर बीता जलधि पें॥११॥

निवेदन

जिन प्रतियों के आधार पर आभासरामायण का पाठ संशोधित किया गया है, उनके दाताओं का मैं विशेष रूप से आभारी हूँ। यहाँ उन प्रतियों का विवरण दे दिया जाता है।

१—यह हस्तलिखित प्रति संवत् १८६७ के भाद्रपद शुक्ल १ गुरुवार को समाप्त हुई थी। इसमें ३१ पत्रे हैं। प्रत्येक पत्रे में दस दस पंक्तियाँ दोनों ओर हैं। मोटे बाँसी कागज पर लिखा गया है। पाठ विशेषतः शुद्ध है। यह प्रति संपूर्ण है और इसी का विशेष रूप से आधार लिया गया है। इस प्रति को पं० लज्जाराम मेहता के दौहित्र पं० रामजीवन नागर ने सभा को दिया है। मेहताजी ने अपनी जीवितावस्था ही में इस पुस्तक तथा गरबावली को सभा

द्वारा प्रकाशित कराने के लिये पत्र द्वारा लिखा था और उन्हें संपादित करने को भी वे तैयार थे पर ईश्वरेच्छा से वे इस कार्य को न कर सके और यह कार्य सभा की आज्ञा से मुझे करना पड़ा।

२—यह प्रति भी हस्तलिखित है। आरंभ में पूर्ण होते भी अंत में खंडित है। इसका लेख पहली प्रति के समान सुडौल नहीं है पर पाठ तब भी साधारणतः अच्छा है। इसमें छोटे छोटे अट्ठावन पत्रे हैं और प्रत्येक में आठ-आठ पंक्तियाँ हैं। इसमें लंकाकांड प्रायः समाप्त है। आगे का उत्तरकांड बिलकुल नहीं है। इस प्रति को पं० हरीरामजी नागर ने दिया है।

३—यह प्रति भी हस्तलिखित है पर दोनों ओर से खंडित है। इसका लेख सुंदर है और बाँसी कागज पर पुस्तकाकार लिखा गया है। प्रत्येक पृष्ठ में पंद्रह पंक्तियाँ हैं। यह प्रति राय कृष्णदासजी की है।

४—यह प्रति इस निबंध के लेखक ही की है। यह पुराने कलकत्ता टाइप में छपी हुई है। इसके आरंभ तथा अंत दोनों ओर के एक एक पृष्ठ नहीं हैं। अड़तालीस पृष्ठों में ऑक्टेवो साइज की यह पुस्तक है, जिसके हर एक पेज में बाईस पंक्तियाँ हैं। इसका पाठ भी साधारणतः शुद्ध है। यह प्रति लगभग सौ वर्ष पुरानी है।

इस लेख के लिखने में पं० हरीरामजी नागर पंचोली से विशेष सहायता मिली है, तदर्थ मैं उनका अनुगृहीत हूँ। पर इतना अवश्य कहना पड़ता है कि इस कार्य में जितना उत्साह उन्होंने पहले दिखलाया था वह बाद को मंद पड़ गया और वे जितना कह चुके थे उतना साधन प्रस्तुत न कर सके। इस कारण यह लेख जैसा चाहिए था वैसा न लिखा जा सका।

आभासरामायण

बालकांड

(राग श्रृंग, ताल, छंद रेखता)

गनपति के चरन पूज लाल चंदन दूब सों।
सुभ काज-करनें सिद्ध-सिद्धि-बुद्धि धरुणि सों ॥ १ ॥
बानी बचन विसाल औ रसाल रस भरी।
दिल में करो खुशाल शब्द-जाल ख्याल सों ॥ २ ॥
गुरु कों करों प्रणाम जिन्हें परम इष्ट राम।
अज शिव-हनु नारद वाल्मीक तुलसि सों ॥ ३ ॥
अगम निगम जिनके कहते हैं दमबदम्।
दशरथ-कुमार राम मेघ-श्याम बदन सों ॥ ४ ॥
गुन क्या करों बखान सेस कहत आज लों।
बानी न चल सकेगि शब्द पारब्रह्म सों ॥ ५ ॥
उनका है लाडिला जो भक्त पवन का कुमार।
जिन्हें आठ जाम जात राम कहत सुनत सों ॥ ६ ॥
हनुमान हुकम माँग कहीं राम की कथा।
वाल्मीक ने कहा सो संक्षेप सजन सों ॥ ७ ॥
कहता हीं राग गाय भजन संजन रंजन राम।
रघुवर सों रजा पाय सिर नवाय चरन सों ॥ ८ ॥
तप वेद के निधान ग्यान देवरुख कहा।
वाल्मीक सों सुना उसे करोड़ कर कहा ॥ ९ ॥
वहि सों करोड़ छोर-उदधि सत्व मथनि काल।
चौविस हजार चौविस अच्छर लगाय लिया ॥१०॥

२—खुशाल = (फा० खुशहाल) प्रसन्न। ४—दमबदम् = बराबर, लगातार। ८—रजा = आज्ञा।

सीताकुमार सीरत किया जुग जुबाँ सभी।
रघुनाथ कों सुनाय के लोभाय वस किया ॥११॥
स्वर तान ताल राग रंग सएर की मजा।
स्रवनन् पियाले भर भर पायूख सब पिया ॥१२॥
लवकुश कहें श्री राम सुनें सुर नर मुनि बीच।
रघुनाथ ने किया सो आखिर तलक भया ॥१३॥
एक अवधपुरी भरी पुरी जरजरी निशान।
खुशदिल बसें बसिंदे मुतलक से गम गया ॥१४॥
अज के कुमार दसरथ महारथ छत्र धरै।
नवखंड सात द्वीप में करें दया मया ॥१५॥
पटरानि तीन तीन सै पचास महलसरा।
हुए साठ हजार साल छत्र चँवर रख दिया ॥१६॥
दसरथ उमर बुढ़ानी बिना पुत्र फिकरमद।
कहा जग्य मैं करों जो गुरु बसिष्ठ सिध करैं ॥१७॥
सुमंत्र कहे मैं सुना सनत्कुमार से।
ऋषिशृंग को बोलाय जगन सदन् में धरें ॥१८॥
ऋषि ल्यावने दसरथ गए घर रोमपाद के।
सनमान सों बोलाय सकल जन पायन परैं ॥१९॥
सरजू के पार जग्य करो महाऋषि कहे।
न्योता पठाओ सबन कों मंडलेश के घरें ॥२०॥

११—जुबाँ=कठाग्र, याद। १२—सएर=शैर, फारसी का पद। १३—आखिर तलक=अंत तक। १४—जरजरी निशान=जहाँ पुराने चिह्न वर्तमान हैं या (जर+जड़ो) जहाँ सुनहले मंडे फहरा रहे हैं। बसिंदे=बाशिंदः, नागरिक। मुतलक=(अ०) वर्तमान। १६—महलसरा=अंत पुर, रनिवास।

होवा है ऐसा जग कहीं नहीं हुआ सुना ।
जो कुछ कोई कि माँगे वोंहीं उसे भरे ॥२१॥
सब देव की सभा मिल गोविंद सरन जाय ।
विनती करे पोकार के रावन की डर डरे* ॥२२॥
धरेंगे† मनुख-जनम सुन करार सुर गए ।
पायस दिया निकल के जहाँ जग-अगिन जरे ॥२३॥
पायस खिलाए तीन को कीने विभाग चार ।
ब्रह्मा के बचन देव कपी-जन्म औतरे ॥२४॥
ऋषि को चलाय चाह सों चकोर-चित नरेश ।
इस बरस हिरस आस दरस परस चैत चंद ॥२५॥
दिन चैत सुदी नौमी ग्रह पाँच जब बुलंद ।
करकट लगन विकटहरन प्रगट भए मुकुंद ॥२६॥
शंख, शेप, चक्र तीन अनुज फिर भए ।
श्रीराम भरथ लछमन शत्रूघन नाम द्वंद्व ॥२७॥
कंज-नैन मेघ-श्याम राम, लछमन गोरे ।
वैसे भरथ शत्रूघन दोनों हैं एक जिंद ॥२८॥
ऐसे कुमार चार चारों वेद गुणनिधान ।
दशरथ के दिल के हार जग सुजन के आनंद-कंद ॥२९॥
सुंदर सरूप सर-धनु-धर रघुवर रनधीर ।
दशरथ के दिल को दिन दिन शादी को फिकिरमंद ॥३०॥
गाधी-कुमार झगड़ लछन-राम ले चले ।
बाम्हन के बन जगन विघन-हरन-मारन को रिंद ॥३१॥

---

* डरडुरे । † करेंगे । २५—हिरस = इच्छा । २८—जिंद = (अ०जिंस) समान । ३१—जगन = यज्ञों । रिंद = निर्भय ।

अतीबल पढ़ाय बन देखाय ताड़का मराय।
अस्त्र ले जे निशिचर हते अपसुंदसुंदनंद ॥३२॥
टारे विघन जगन के जंगल किए हरे।
ऋषि कुल मुल्क सुना चले कमान-जाग में ॥३३॥
गंगा के गुन अगनित विख्यात जगत सब सुने।
सागर भरे भगीरथ पितरों के भाग में ॥३४॥
विशाल पुरी पैठे जहाँ मारुत प्रगटे।
गौतम शिला अहल्या तारी सोहाग में ॥३५॥
गौतमकुमार शतानंद जनक ने सुना।
आए हैं ब्रह्म-ऋषी दो कुमार बाग मों ॥३६॥
कुशल पूछ शतानंद जनक जी कहे।
दो देव कौन ल्याए महबूब जाग मों ॥३७॥
खुश नैन खूब रूप सुरज चंद दिल हरे।
चहिए धनुष धरें करें सीता सोहाग मों ॥३८॥
रघुबीर हैं रनधीर दो दशरथ के लाडिले।
आए हैं लछन-राम काम धनुष-जाग मों ॥३९॥
सुन मन अनंद शतानंद राम सों कहे।
यह नृप सो ब्रह्म-ऋषि भए बसिष्ठ भाग मों ॥४०॥
ऋषि की कथा सुनाय शतानंद जनक चले।
कल आय धनु चढ़ाइए सीता बिहाइए ॥४१॥
शंकर-कमान मान असुर-सुर-नर बरसें।
रघुनाथ तुरत तोड़ा बल कों सराहिए ॥४२॥
रीझे जनक तिलक किया सिय माल गरे डाल।
दशरथ कों दूत जाकर जलदी बोलाइए ॥४३॥

३२—अतीबल = मंत्र हैं। ३७—महबूब = (अ०) प्रिय, अत्यंत सुंदर।

शादी की शुगल सुनकर खुश दिल सों सब चले।
दिन-रात चल बरात, जनकपुर पोंचाइए ॥४४॥
कुशध्वज बोलाय लाए युधजित अवध सों आए।
गुरु जनक कुल बखान कहा गोदान कराइए ॥४५॥
जनवास आय कह पठाय जनक सों मिले।
मंडप बनाय चारु चारों बर बोलाइए ॥४६॥
दशरथ-कुमार चार चार कुँअरि जनक की।
विहा दिया बिदा किया अवध कों जाइए ॥४७॥
मग में मिले भृगुनंदन रघुनंदन घेरे।
लेकर धनुष कहा महेंद्रगिर को धाइए ॥४८॥
राम-राम चीन्हे कीन्हें बखान वेद।
ब्राह्मन गए नृप सज भए नगर सजाइए ॥४९॥
तुरत भवन आय भरत कों बिदा किए।
शचिपत सों 'प्रेमरंग' सियावर रमाइए ॥५०॥

इति श्री आभासरामायणे बालकांड: समाप्त:।

अयोध्याकांड

(लावनी की चाल, रागिनी बरवै)

भरत शत्रूघन ले गए मामा खिजमत लछमन राम करी।
राजा दशरथ को राज देन को सालगिरह सायत ठहरी ॥ १ ॥
नहीं राम सा नर है जग में जगमोहन और जसधारी।
मँडलेश्वर मंजूर किया तब नृप करवावत तैयारी ॥ २ ॥
राम-राज का हुआ हँगामा घर घर खुशियाँ फैल गई।
कैकेयी की लौड़ी भौंड़ी देखत जल बल खाक भई ॥ ३ ॥

४४—शुगल=(अ०) विषय। १—खिजमत=(अ० खिदमत) सेवा।
३—हँगामा=समारोह।

कैकेयी को यों समुझाया रामराज मत होय कधी।
भरत विचारा वहाँ पठाया तुज पर होगी ऐन बदी ॥ ४ ॥
क्या जानें क्या जोग सुनाया बस कर राजा वचन लिया।
कैकेयी वरदान माँगकर आज तिलक मौकूफ किया ॥ ५ ॥
कैकेयी ने राम बोलाए बिदा कराए गुरु जन सों।
कौशल्या परि पाय मनाई लछमन कुढ़के तन मन सों ॥ ६ ॥
माँगी सीख सिया घर आये रहन कहा तब मरन लगी।
सर्वस दे निकसी मग में लख रोवत नगरी रैन जगी ॥ ७ ॥
कैकेयी सब मिल समुझाई धिक् धिक् पाई गुरुजन सों।
पहिर चीर जब बाहर निकसे बिरह-आग लागी तन सों ॥ ८ ॥
रथ पर बैठ चले जब बन कों थावर-जंगम संग चले।
नहिं कोइ वैसा रहा नगर में जिनके नैन न नीर ढले ॥ ९ ॥
राम चले वनवास रि सजनी उठ घर में क्या काम रहा।
सीता राम लिए लछमन सँग मुख सों राजा जाहु कहा ॥१०॥
हा हा करत चले नर-नारी जब लग रथ की धूर दिसी।
तन मन धन की सुध बिसराई बिरह-आग हिय सेल धँसी ॥११॥
पहिली रात बसे सब बन में बिना कहे चुपके सटके।
उठत, राम नहिं देखत रोवत घर आवत जिय जन हुटके ॥१२॥
गंगा दरस परस हिय हरखे शृंगवेर की मँजल लिया।
गुह मलाह की जात कौन सी दिल भर अपना यार किया ॥१३॥
गुह सों मिलकर नदी उतरकर भरद्वाज सों जाय मिले।
एक दिन रहे फलहार खाय कर चित्रकूट मों गए चले ॥१४॥
दंडक बन को दँसे विहारी वनचर मृग मुनि अभय दिए।
कुटी बनाय भुलाय राज को अचल अचल पर वास किए ॥१५॥

४—ऐन = ठीक। बदी = बुराई। ५—मौकूफ किया = रोक दिया।
१३—मँजल = मंजिल, पड़ाव।

वहाँ सुमंत्र बसत सुन बन में रोवत रथ को फेर लिया।
रोए तुरँग कुरँग भृंग जल थल बन पंछीहू रोय दिया ॥१६॥
पूछत नर नारी सब मिल कर कहा राम तुम त्याग किए।
कौशल्या नृप जब पूछेंगे कौन वचन तुम कंठ किए ॥१७॥
सुन सुमंत्र का रथ जब आया झटपट राजा उठ बैठे।
नहीं राम खाली रथ आया सुनत खाट पर फिर ऐंठे ॥१८॥
कहत सुमंत्र बसत हैं बन में कह पठवाया गुरुजन सों।
चौदह बरस बिताय आय कों फिर लागेंगा चरनन सों ॥१९॥
सुन कौशल्या बचन हमारा श्रवन-सराप-पाप जागा।
जैसा करै सो तैसा पावै राम बिरह सों फल लागा ॥२०॥
आधीरात पोकारत रोवत हाय राम लछमन सीता।
इतनी कही सो कही नहीं फिर बोले राजा जग जीता ॥२१॥
कौशल्या उठ प्रात पोकारी पति देखे परलोक गए।
जन रनवासा रोता सुनकर अवध-निवासी दीन भए ॥२२॥
कहत वसिष्ठ सभा कर सब कों बिन राजा नहीं काम चले।
तेल-कुंड में रख राजा को भरत बोलावन दूत चले ॥२३॥
भरत लैन कों चले दूत जब वहाँ सैन में सपन भया।
खान-पान की सुध बिसराई सखा सबन सों स्वाद गया ॥२४॥
पहुँचे दूत बोलावत गुरुजन जलदी चलिए अवधपुरी।
कुशल पूछ कहि चले पंथ मों किया मुकाम न एक घड़ी ॥२५॥
सात रात दिन चले पंथ मों पुरी जरी सी देख डरे।
रथ से उतर गए घर में फिर कैकेयी के पाँव पड़े ॥२६॥
कहत पिता नहि भाई देखों नगर उजर सा देख परे।
जितनी भई कहीं सब तितनी सुनत पड़े जो वृच्छ गिरे ॥२७॥
धिक् जननी तू नहिं मैं तेरा, पतिघातिन नागिन जैसी।
रामदास मोहि जानत सब जग क्या उलटी हिय बुद्धि बसी ॥२८॥

रैन बिहानी कौशल्या घर गुरु के कहे सों क्रिया करी।
राज देन लागे सब मिल तब हाय राम कहि आँख भरी ॥२९॥
कहत भरत सब सुने मंत्रि गुरु राम ले आवन अहद करो।
जो नहि माने कहा कधी तो बैठ साम्हने सों न टरों ॥३०॥
राम लैन कों चले सबन मिल नर-नारी सब ही निकसीं* ।
शृंगबेर में जाय पड़े तब गुह बोले अपने जन सों ॥३१॥
मिले भरत गुह कुशल पूछ कहि क्यों रघुबर सों लडन चले।
दास मुए बिन पास न पहुँचो सुनत भरत द्दग नीर ढले ॥३२॥
कहत भरत गुह वचन-बान सों मत बेधे-हिय बेध करो।
राम लेन कों जात जातिसँग चलो नाव पर तुम उतरो ॥३३॥
सुनत वचन गुह नाव बोलाई किया गुजारा लश्कर का।
भरद्वाज सों जाफत लेकर मिला ठेकाना रघुबर का ॥३४॥
लश्कर छोड़ा पावन जोड़ा संग लिए शत्रूघन को।
धुँआ देखकर हुए खुशाली इहाँ राम आए बन को ॥३५॥
वही समै सियपति वन बिहरत काग आँख पर तीर लगा।
लश्कर देख डरे† लछमन प्रभु भरत आय मत करत दगा ॥३६॥
मत लछमन यह बात विचारो मुकर राज देगा मुझको।
तुम चाहो तो तुम्हें दिखाऊँ भरत नहीं दुशमन तुमको ॥३७॥
पहुँचे भरत राम कों देखे दौड़ गिरे नहि पहुँच सके।
लिए उठाय गोद बैठाए लगी टकटकी रूप छके ॥३८॥
पिता-मरन सुन अति दुख पाए नदी नहाय आय बैठे।
भरत कहत कर जोड़ गोड़ गिर तीन भ्रात सें प्रभु जेठे ॥३९॥

---

* नरनारी निकसे घर सो। † कुटे। ३०—अहद–प्रण, प्रतिज्ञा। ३४—गुजारा = उतार। जाफत = (अ० जियाफत) जेवनार, भोज।

तुम राजा हम दास तुम्हारे चलो अवध पुर राज करो ।
जननी की तक़सीर माफ कर राजसिंघासन पाँव धरो ॥४०॥
ऐसे बहुविध वचन सुनाए नहिं रघुवर को एक लगे ।
चौदह बरस कहे सो कहे नहिं कहे किसी के राम डिगे ॥४१॥
नेम किया जब भरत मरन का करुणानिधि यह विधि बोले ।
यही पाँवरी राज करेगी जैसे हम पर छत्र ढले ॥४२॥
कहत भरत सब सुने सभाजन अहद अवध लग देह धरों ।
जो नहिं देखों चरन-कँवल तो पैठ अगिन में वोहि जरों ॥४३॥
पाँवर लेकर विदा होयकर सिर पर धर परनाम किया ।
आय अवधपुर उजर देखकर भरत आँख भर रोय दिया ॥४४॥
नंदिग्राम में बसे वैरागी चौदह बरस बितावन को ।
वहाँ राम गिरिराज त्यागकर चले अत्रि के आश्रम को ॥४५॥
मुनि पद परसे अनुसूया ने सियमुख सुना स्वयंवर को ।
'प्रेमरंग' प्रभु सुख से बसे धसे बनघन सर धनुधर को ॥४६॥

इति श्री आभासरामायणे अयोध्याकांड. समाप्त ।

आरण्यकांड

(रागिनी सोरठ, ताल धीमा तिताला, छंद रेखता)

पैठे हैं बन सघन में कर धर बान औ कमान ।
क्या खूब रूप महबूब जटाजूट मुकुट से ॥ १ ॥
लटकीले नैन बैन मधुर बोल बस किए ।
टारे न टरें तापस लटके हैं लटक से ॥ २ ॥
एक एक की कुटी जायकर फल मूल रहे खायकर ।
आगे से बन विकट से ठठके हैं खुटक से ॥ ३ ॥

४०—तक़सीर = दोष । ४३—अहद = समय ।

एतने में दौड़ आकर निशिचर ले चला सिय कों।
लछमन के कहे झपटे छोड़ाया है दपट से ॥ ४ ॥
सीने मे बेध पाय कर रख सीय ले चला दुहुँन कों।
सीता को देख रोते कर तोड़े हैं चटक से ॥ ५ ॥
विराध मैं अमर हों नहि मरता हों किसी से।
रघुनाथ जो तुम्हीं हो गाड़ोगे पटक से ॥ ६ ॥
गड़हे मों गाड़ निशिचर आगे कों चले हैं वन में।
शरभंग राम रंग हुए जल खाक झटक* सें ॥ ७ ॥
मिल मिल कों मुनि आए रघुवर-रूपगुण लोभाए।
भय पाय अभय माँगे रावन के कटक सें ॥ ८ ॥
यमराजदिकू में सुनते मुनिवर अगस्त कहाँ रहते।
दश साल यों गुजर कर सुतीच्छ राह बताए ॥ ९ ॥
पहुँचे हैं दरस परस कर मुनिवर पास रहैं रघुवर।
शमशेर कमान अछै शर अपनी अमान पाई ॥१०॥
रहना है हमैं बरसों कोई खुश ठौर हुक्म कीजे।
तप ज्ञान जान प्रभु कों जनस्थान वास बताई ॥११॥
जटायु आय मिलकर कर कुटिया में रहे कोइ दिन।
गुलबहार निहार सरोवर जल्दीहि नहाए भाई ॥१२॥
एक बेर कहैं शुगल मे वहाँ सूपनखी आई।
भोंड़ी सी सकल निगोड़ी सुंदर सरूप लोभाई ॥१३॥
दो चार दफे दौड़ाई व्याह करने को दोनों भाई।
हँस सुजान कान काटे हो नकटी वहाँ से धाई ॥१४॥
रघुनाथ सरूप कहे ते नाकों सें खून बहते।
चौदह चलाए खर ने निशिचर चढ़ाइ ल्याई ॥१५॥

---

* चटक।

देखे हैं बड़े भयानक प्रभु लछमन को सौंप थानक* ।
मारे हैं सभी सहज में जमराज पुरी देखाई ॥१६॥
राकस् को मार सुनकर खर चौदहो हजार लेकर।
ल्याया दूखन वगेरे त्रिशिरा, रघुबर से मराया ॥१७॥
खर एक देख रथ पर कहि दो-चार बात सखती ।
लड़ भिड़ कों थका जाना सर वेधि सिर गिराया ॥१८॥
सुर मुन ने सुना नहाए तज रनभूम कुटी में आए ।
बन ब्राह्मन अभय पाए हँस सियाराम गरे लगाया ॥१९॥
एक सुर्पनखी अकंपन डर दौड़ गई है लंका।
सीता कों हरन बताया मारीच मदत ठराया ॥२०॥
मारीच डरा डराया बल रघुनाथ का सुनाया ।
जंजाल घेर ल्याया जनस्थान हरिन चराया ॥२१॥
सिय देख फूल चुनते अजब सुवर्न हरन चुगते ।
मन नैन हरे हरिन ने रघुवीर कों दौड़ाया ॥२२॥
भरमे हैं दूर जाकर लगी सर बेध गिरा निशाचर।
मरतेइ कहा हो लछमन सिय प्राण डराया ॥२३॥
आतेहि अवाज लछमन सिय बरजोर पठाया ।
रावन ने सियाहरन कर खगराज कटाया ॥२४॥
पर काट चला गगन सों सिय रोती दि डाल गहना ।
धर अंक लंक पहुँचा सुखर खीर खिलाया ॥२५॥
मारीच- मार फिरते खग-मृग धाएँ भौंर करते ।
लछमन को देख डरते कहा सिया को कहाँ गँवाई ॥२६॥
कुटिया को देखि खाली फल गुल वेल फूल पूछे ।
बेकरार बेहाल बेबस ढूँढे हैं कहीं न पाई ॥२७॥

---

* 'थानक' यह शब्द एक प्रति में छूट गया है ।

रोते हैं राम से राम में कहाँ जाती हो तुम्हें देरा।
बनवास हास कैसी कहे कदलि कों गले लगाई ॥२८॥
गोदावरी डरी सी लख मृग दीन दखिन को दौड़े।
अत क्रोध काल अगिन सों रनभूम लछमन देखाई ॥२९॥
रथ छत्र बान कमान कर धर हाथ कबंध किसके।
इतने में देख खग को कहा सिया इसी ने खाई ॥३०॥
रोते हैं सुने सर धर बिन पर दर्द में राम देखे।
सीता की हरन सुनाई रघुबर गोद में मौत पाई ॥३१॥
चाचा सों सेवाय राम कर करनी सों चलाय सुरपुर।
कबंध बंध काटे तन जरने सों मदत बताई ॥३२॥
सुग्रीव सहाय सुनकर 'प्रेमरंग' मतंग-बन कों।
देखे शबरी सती की गत कर पंपा की सर* सोहाई ॥३३॥
इति श्री आभासरामायणे आरण्यकाण्डः समाप्तः।

किष्किधाकांड

(रागिनी सावंत, ताल दानलीला की चाल से, सवैया छंद)

फूलन की द्रुमनु की भखन की बहार निहार सरोवर भार जरे हैं।
कोकिल कूजत भँवर गूँजत मोरन कूकत पंख झरे हैं॥
कुंद कदंब नितंब से ताल तमाल नए नए भार भरे हैं।
आज अकाज बसंत असंत मरें न बिहंग अनंग धरे हैं॥ १॥
लछमन तुम जाय कहो सब से जब से हम प्राण धरे तन माहीं।
जानकी जानकी जानकी गाहक नाहक भर्त्तकरे मत भाहीं॥
आज समाज करें कपिराज तो राक्षस राजपुरी कुल नाहीं।
सौमित्र सरूप जगावत हो प्रभु पैठे पहाड़ पिगेश के माहीं॥ २॥

---

* पवन।

गोलांगुल वानर रीछ के ईश बसे वन बाली बली यह नेरे।
कुह कंदर श्रंदर बंदर हैं मुनि ताप प्रताप पहाड़न हेरे॥
सुग्रीव के जीव कों चैन यही चलि जाय मिले दिन-रात हैं दौरे।
बन सों निकसे कपि यों हद से उठके छटके एक ठोर न ठहरे॥ ३॥
महावीर बली रनधीर हरी हनुमान कहो अनुमान से जाने।
दूत सपूत सँवारत काज समाज किए बिन कौन पैचाने॥
द्विज रूप सों आय परे प्रभु पाय स्वरूप सुनाय रिझाय बखाने।
नरेंद्र कपिंद-समाज करें उनकी सुन कों प्रभु जो मनमाने॥ ४॥
सनेह सों बाँध धरे दोउ काँध ले आय नरेश कपीश मिलाए।
तरु डार बैठाय कों आग जराय कों मित्र कराय सभी सुख पाए॥
सिय कों हरना सुन कों गहना यों गिराय गई सो देखाय रोवाए।
सुग्रीव सँदेस सुने सों प्रभू कर कौल कहा कलि बालि मराए॥ ५॥
कौल सुने सो कलोल किया बली बालि बके सो बिचार से जाने।
प्रतीत न होत सियापत से तब दुंदुभी देह देखाय डराने॥
दुंदुभी देह गया दसयोजन ताल पताल बिधे सरमाने।
नाथ सनाथ किया मुजको धर हाथ अनाथ कहाँ लों बखाने॥ ६॥
प्रभु कों संग ले कों चले लड़ने बल बालि बढ़े तब काल से लागे।
पराय लुकाय रहे गिरि आय कहें प्रभु मार खेवाय को त्यागे॥
राम कहे दोनों भाइन में तब चीन्हि परे रन सों जब भागे।
इतनी कह कंठ लगाय लता फिर ताल ठोकाय लिया धर आगे॥ ७॥
बन ब्राह्मण आय प्रणाम कराय बैठाय सभी सुख* सो ललकारा।
सुन दाँत बजावत ताल लगावत धावत आवत रोकत तारा॥
नाथ छिपा कोइ साथ में है रघुनाथ के हाथ सहाय पोकारा।
तिय कों समुझाय भिड़े बन में नग शृंगन मूकिन जंघन मारा॥ ८॥

---

* छिपाय। १—कुह = पर्वत।

दपटें लपटें पटकें उठकें कर दाँत कटाकट देह विदारे।
शृंगन वृच्छन अंगन सों चर अंग भड़ाक पहाड़ से फारे॥
मुष्टि के कष्ट कनिष्ट छुटे तब दृष्ट के धृष्ट से इष्ट पोकारे।
अगस्त के दस्त के तीर की सिस्त में काल के गस्त सों वालि कों मारे॥९॥
हिय फाड़ गड़े सों पहाड़ डिगे तब दूर सों दीनदयाल देखाने।
पास बोलाय कहा लड़को तुम राजकुमार कि चोर छिपाने॥
तीर कमान वही सनमान जवान जवाय कों थान कों माने।
तिया वरजे गरजे न सहा तृण-कूप कों यूप धराधर जाने॥१०॥
राम कहैं कपि क्यों कलपे अलपे अपराध न बाधत प्रानी।
भर्त के भ्रात सों डर्त नहीं तिय वंध वधू तुम भोगत मानी॥
हम दीनदयाल निहाल करें जिहि हाथ धराय बँधाय जगानी।
एतनी सुन बालि धरे कर भाल कृपाल कृपा करो मैं अब जानी॥११॥
बँदरी बँदरा मरना सुन के बन आय कों वालि बिलोक कों रोवे।
अंगद अंग छुवे पर पाय उठाय कों गोद* बैठाय को रोवे†॥
तात तजो तुम जाति-सुभाव सहो सुख दुःख चचा खुश होवे।
एतनी कह माल पिन्हाय सुग्रीव कों बान निकासत प्रान को खोवे॥१२॥
सुषेण-सुता तारा सिगरी पति-अंग उठाय आलिंगन देहैं।
लछमन हनुमान कहे करनी करने कों चले कपि थान गहे हैं॥
अंगद अंग दहे पितु के सब स्नान किए हरि नग्र चले हैं।
हनुमान कहे प्रभु नग्र चलो ऋतु पावस मास में पास रहे हैं॥१३॥
राम कहे हम काम तजे वनवास सजे नहिं नग्र चहेंगे।
तुम भामिनि भूम सिराय कों आओ हम न घन दामिनी भार जरेंगे॥

---

* पास। † टेवे। ९—पृ८ = इशारा। दस्त = हाथ। सिस्त = आब, धार। गस्त = फेर। १०—तृण-कूप = जिस कुँए का मुख घास-पात से छिपा हो।

तुम चातुरमास बिलास करो हम चात्रिक बूँद की आस गहेंगे।
रविनंदन राज वैठाय को अंगद दे युवराज सबी सुख लेंगे ॥ १४ ॥
लछमन वदरा उमड़े घुमड़े गरजे वरसे जिय कों ललचावें।
दादुर कोकिल मोर के सोर घटा घन-घोर सि घेरत आवें ॥
जलधार धरा सों मिले ऋतु में हमें प्रान-प्रिया के वियोग सतावे।
सावन की सवजी लख जी कों नजीक सिया विन नैन डरावे ॥१५॥
देखो भादो नदी उमही श्रो मही धन-धान्य-भरी ऋतु त्यागत मीता।
हम सूखत स्वल्प सरोवर से इस आश्विन मास में पास न सीता ॥
जल सीत भए जल दाह गए फल फूल नए वरखा ऋतु वीता।
लछमन समुझावत तो नहि मानत उन्मत्त से मन्मथ अव* जीता ॥१६॥
मग सूख गए जल साफ भए नभ निर्मल चाँदनि चंद्र बिकासे।
कातिक मास करार किया कपि कारन कौन न सैन निकासे ॥
उन्मत्त को लत्त लगावत लछमन, बाल के काल के वान हैं खासे।
लछमन सुन सेस से साँस भरे सर साज सजे धस क्रोध प्रकासे ॥१७॥
डरपे बँदरा बँदरी न डरी समुझाय रिझाय कपीस मिलाए।
अंगद वीर हनूमान जांववंत नल नील सुषेण अनेक देखाए ॥
हरीश नरेश के पास चले सों चले तिहुँ लोक भले डरपाए।
हग हाथ सों पोंछत हैं रघुनाथ जो जक्त के नाथ अनाथ से पाए ॥१८॥
सरदार गिनाय वैठाय कहे कर जोर कपी प्रभु जो फरमावे।
राम कहें सब काम किए सिय खोज लगाय कों फौज लड़ावे ॥
उदयाचल दक्खिन अस्तगिरी कपि उत्तर कूल लौं देस वतावे।
कपि चार वोलाय कों चार दिशा पठए कहि एकहि मास में आवे ॥१९॥
तीन दिशा तीनों फौज गई हनुमान बखान मुँदरी पठवाई।
कै कोट जोजन के भुवन हे कपो तुम कैसे लखो किसने देखलाई ॥

---

* मन । १५—नजीक = नजदीक, पास ।

प्रभु बाल के वैर में भागत मे कर गोपद सी कै वेर घुमाई।
तीन दिसा फिर आए कपी हनूमान सँदेस की आस बँधाई ॥२०॥
दडक विंध्य मलाद्रि महेंद्र कौं ढूँढ़त भूख पियास के गाढे।
विल देख धँसे फल फूल दिसे कोई रोज बसे सो स्वयं प्रभु काढे॥
ऋतु बीतु गए सों लगे मरने सपाति सँदेश सो बाँदर बाढे।
छाल गिनाय थके न सके जाबुवान कहे हनुमान सों ठाढे॥ २१ ॥
जन्म समै शिशु रूप तुम्हीं रवि लेन चले तब राहु चलाए।
राहु को छोड़ गजेंद्र पै धावत वज्र लगे हनूमान कहाए॥
वायु के कोप सें देव बोलाय अवध्य कराय अती बल पाए।
'प्रेमरंग' प्रभू कों प्रतीत तुम्हीं उठ काज करो सँग अंगद आए ॥२२॥
इति श्री आभासरामायणे किष्किंधाकांड: समाप्त: ।

सुंदरकांड

१ (राग भैरव, धीमा तिताला, पद की चाल सों कवित्त)

हनूमान जीवन सब के तुम उठ सीता की खोज करो ॥ हनू० ॥
कहि सपाती पार जान की उछाल लगावन बल सुमिरो ॥ हनू० ॥
तब रावन रिपु सिया खोज की सुध आए बल बदन बढ़ाए।
जांबवान अंगद सुख पाए कहा सभन को यहि ठहरो ॥हनू०॥१॥
एतना कहत बढे मारुतसुत कही अंगद कों धीर धरो।
लंक उठाय धरों उत तें इत सुखी होय बानर विचरो ॥हनू०॥२॥
चूरन नग कर गगन गवो धर कर धर के मैनाक कका पर।
नाग-मात कों गर्व हरन कर मार सिंहिका पार परो ॥ हनू०॥३॥
मारजार सम बपु कर निसिमुख लंक जीत देखत डगरो।
चंद्र चाँदनी चमक चहु दिस वन उपवन सब ढूँढ़ि फिरो ॥हनू०॥४॥

२१—छाल = उछाल, कुदान।

घर घर घूमत कूदत धावत निकसत पैठत कहीं न बैठत।
रावन सदन वदन तिय देखत स्यंदन बिमान हेरन निकरो ॥हनु०॥५॥
तिल तिल जल थल महल हेर हरि हार हदस चिंता चित बाढ़ी।
कहीं न देखानी रैन बिहानी पुन खोजत घर घर सिगरो ॥हनु०॥६॥
वनिक असोक लखी मृगनैनी अलप रही पिछली जब रैनी।
शिंशु शाख शुक* रूप धर्यो तब रावन आवन शबद परो ॥हनु०॥७॥
नरम गरम कहि सिय धमकाई रावण तृण लख कोपत माई।
धिक तोहे मोहे रघुनाथ नाथ बिन नहिं दुसरो नर दृष्ट परो ॥हनु०॥८॥
खड्ग काढ़ मारन कों धायो मंदोदरी समुझाय फिरायो।
यातुधानि धमकी दबकी त्रिजटा सपने दशकंध मरो ॥हनु०॥ ९॥
भर्त्ता-विजय सुनत सिय हरखी बाईं और बाईं भुजा फरकी।
उखताय मर नगर में धरि बेनी तब हरि रघुवर जस उचरो ॥हनु०॥१०॥
चकित होय चितवत चहुँ दिस कपि बर मुख निरखत हरख डेरानो।
धीरज देवतिया लैके रघुनाथ कुशल कहि काज सरो ॥हनु०॥११॥
सुनि सुग्रीव सनेही सँग में राम लच्छन के लच्छन अँग में।
दूत हरी लख आँख भरी अँगुरी मुँदरी दै पाय परो ॥हनु०॥१२॥
श्रवन सुनत सिय नैन श्रवे कपि कहत राम आवत इत जलदी।
दिन नहिं चैन रैन नहिं निद्रा सिया नाम कों मंत्र ठरो ॥हनु०॥१३॥
बिदा करत मनि देत चिन्हाई काक तिलक की कथा सुनाई।
लछमन मनाय रघुवर लै आय सुग्रीव सहाय समुद्र तरो ॥हनु०॥१४॥
एक मास जीवन सुन मणि ले विदा होय मन तोड़ दियो।
बन† गिराय बनपाल मार जै राम दूत कहि सोर करो ॥हनु०॥१५॥
असी हजार किंकर बिदार पुनि सात पाँच मंत्रिन सँघार।
अचकुमार मार सुरवर-रिपु हार संभार न अस्त्र धरो ॥हनु०॥१६॥

---

* शिशु। † गृह। १६—सुरवर-रिपु = इंद्रजीत।

ब्रह्मा-वचन सुमिर मारुतसुत अक्ष सूत्र सों अंग धरयो।
नृप दरसन भापन विफरन विचरन स्वतंत्र तन जंत्र करो ॥हनु०॥१७॥
बाँध निशाचर नृप देखलाए कहो बाँदर तोहें कौन पठाए।
राम* हरीश कुशल कहि तुमको कुशल सिया ले पाय परो ॥हनु०॥१८॥
रामबान सों बाल गिरे खरदूखन त्रिशिरा ठौर मरे।
अज महेंद्र शिव शकति नहीं सिय-चोर बचावन वचन धरो ॥हनु०॥१९॥
स्यंदन चढ़ लड़ना बिसरायो भय पायो मारन फरमायो।
अनुज विभीषन कहि निषेध पुनि पूँछ जरन को मंत्र ठरो ॥हनु०॥२०॥
पूँछ जरावत नग्र फिरावत हरकारा कहि टेरत मारत।
लघु होय वदन छोड़ाय अगिन सों तज स्वकीय गढ़ लंक जरो ॥हनु०॥२१॥
कारज सिध कर पोंछ बुझायो हाँक सुनाय उदधि लँघ आयो।
जांबुवान अंगद जस गायो मधुबन पैठ विनाश करो ॥हनु०॥२२॥
दधिमुख जाय हरीश पोकारा हनूमान अंगद मोहे मारा।
सुकर सिया को देखि विचारा जाओ पठाओ माफ करो ॥हनु०॥२३॥
राम समीप पहुँच पद परसे देखी सिया निशाचर घर सें।
रुदित मुदित मुखपंकज-मनि ले सुमिर सनेह विरह विफरो ॥हनु०॥२४॥
कहो सँदेस यासों सुने सब यहि जीवन की आस रहि अब।
काक तिलक की कथा सुनत प्रभु हाय सिया कहि आँख भरो ॥हनु०॥२५॥
'प्रेमरंग' श्रीराम परम द्युति सर्वस ज्ञान अलिंगन दीनो।
कृत कृत मानत कहत पवनसुत प्रभु प्रताप ऐसो सुधरो ॥हनु०॥२६॥

इति श्री आभासरामायणे सुंदरकांडः समाप्तः।

युद्धकांड

(रागिनी पहाड़ी ताल, छंद पंचपदी सूरबीर की चाल से पँवाड़ा)

सुनकर जो कुछ हुआ सो हनुमन् सराहे राम।
दूजा नहीं न होगा निशिचइ मे काढ़े काम॥

* भ्रात।

यही हनुमान अकेला। गगन, गत मारे हेला॥
जाय सिया कों संदेसो मेला। लंका कीनी आग का ढेला॥
आय मुझे जीवन सों मेला॥ १॥

सर्बस देते बकसीस कपीस कों उठ गले लगाय।
हनुमान बली अंगद दोनों रघुबर लिए उठाय॥
फौजें बादल सी दौड़ीं। गर्जें जों जमीन सी फोड़ी॥
हथियार हाथों में डारे तोड़ी। बँदरों ने बागें मोड़ी॥
मुतलक मरने की डर भी छोड़ी॥ २॥

साइत कों साध चलने सों सगुन पवन सहाय।
रघुनाथ के हुकुम सों खेतों कों कूद बचाय॥
डेरा दर्याव पर दीना। बँदरों कों गिर्द में लीना॥
रीछ लँगूर कों पीठमें कीना। बिरहानल सों सीना भीन्हा॥
हाय सीता जोबन होयगा हीना॥ ३॥

लंका की दसा देख कों रावण को बेकरार।
निशिचर सभा बोलाय कों सब मिल करे विचार॥
मुझे अब क्या सल्लाह है। मैंने यमराज दला है।
उठाय गिरी कैलास हिला है। लड़ने कों राम चला है॥
संग उसे बँदरा मिला है॥ ४॥

बंदर समुद्दर पार कै बली बड़े सरनाम।
जल थल वनाय त्याय कों लड़ाय मारेगा राम॥
मुझे खतरा है जी का। मनसूबा बतलाओ उसी का॥
हरन किया मैं सीता सती का। महल्ल मुझे लागे फीका॥
सुभोग सिया सँग लागे नीका॥ ५॥

२—मुतलक = सब, बिलकुल।

सुनकर उठे निशाचर हाथों में ले हथियार।
इंद्रजीत प्रहस्त महोदर लड़ने कों पल्लेपार॥
सभी कों मारेंगे सोते। जीवेंगे सो जायँगे रोते॥
कै एक दर्याव में खायँगे गोते। उनों की आइ है मोते॥
जो कोइ दुमन सों वैर बोते॥ ६॥

धीमान सुन विभीषन कहते हैं सिर नवाय।
सुंदर सलाह सिया द्यो रघुवर की सरन जाय॥
लंका कों उजाड़ डालेंगे। भाई तेरा मार डालेंगे॥
बँदरे बेटों को बिदार डालेंगे। बरदान बहाय डालेंगे॥
दस सीस बानों सों काट डालेंगे॥७॥

रावण कहे अमर हों मैं अगिन कों द्यों जलाय।
मौतों कों मार डालों सूरज कों द्यों गिराय॥
तैंने मुझे क्या विचारा। नदियों की उलटाय द्यों धारा॥
कैयक राजों की हर ल्याया दारा। बंदर निशिचर का चारा॥
मुकर मैंने रघुवर को मारा॥ ८॥

धिक्कार है भाई तुझे नहीं मेरा दुशमन।
बातें बनावता जलावता है मेरा तन॥
विभीषन सुन कों रूठे। मारे सभी जाओगे झूठे॥
संग संगी चारों यार भी ऊठे। आए हैं हरीश जहाँ बैठे॥
बीच देखें रघुनाथ अनूठे॥ ६॥

आकाश सों पुकारा रघुनाथ की सरन।
लंका सदन सजन छोड़ा एक आसरा चरन॥
विभीषन नाम है मेरा। हरीश ने हरीफ़ सा हेरा॥
हनुमान कहैं इनकों दीजिए डेरा। प्रभु कहे भाई सा चेरा॥
जो कह एक बार सरन का टेरा॥ १०॥

१०—हरीफ़ = शत्रु।

बोलाय कों मिलाय कों चरन धराय कों।
लंका का भेद पाय को राजा बनाय कों ॥
सभी सुख सों विराजे। चेरा शार्दूल पर राजे ॥
देख दौड़ा रावन दरवाजे। समुंदर पर बंदर गाजे ॥
सुन सुवा सों सल्लाह साजे ॥११॥

गगन सों सुत्रा बोला रघुनाथ के समीप।
रावन कुशल कहा वखानता है लंक दीप ॥
लंकेश है काल का जैसा। दरियाव दर्म्यान में वैसा ॥
हरीश-नरेश जीतोगे कैसा। बदरों ने रौंदा ऐसा ॥
कसम् करता औ मरता है तैसा ॥१२॥

सबकी सलाह सों किए वासर उपास तीन।
शेष तज सीराना रघुनाथ हाथ कीन ॥
दया दर्याव न जानी। उठकर कमान को तानी ॥
काँप गए तीन लोक के मानी। कर जोड़ कों गोड़ गिरा पानी ॥
प्रभू की कीरत वखानी ॥१३॥

सर कों फेंकाय मारवाड़ देश सुध कराय।
नल कों बताय पुल कों पानी गया परि पाँय ॥
दिन पाँच मों पुल बनाया। लश्कर पलें पार चलाया ॥
हनूमान अंगद दोनों बीर उठाया। सुवेलें मुकाम कराया ॥
सुवा छोड़ने का हुकुम फुरमाया ॥१४॥

सगुन् मुमारख देख कों लछमन सों कहे राम।
दिल सों हुलास यों है सुर-मुन के साधें काम ॥
मुकाम मोर्चे पर साजे। लंका में नक्कारे बाजे ॥
सुन बंदर बमके औ गाजे। सुवा के संदेश सो लाजे ॥
रावन आगे सारन बिराजे ॥१५॥

१५—मुमारख = शुभ।

दोनों जाओ खबर ले आओ सिरोपाव पाओगे।
सरदार सब समुझ कों मुझको जताओगे॥
दोनों बंदर बने हैं। सर्दार के ए गिने हैं॥
पैचान बिभीषन ने धर लीने हैं। मंत्री सुक सारन चीन्हे हैं॥
छोड़ाय प्रभू को देखन दीने हैं॥१६॥

सारन ने सुन संदेशे रावण से सब कहे।
लंका निशाचर राजा सिय को दिये रहे॥
राघो जी सों रन पड़ेंगे। लछमन श्री सुग्रीव लड़ेंगे॥
भेदो बिभीषन भाई भिड़ेंगे। हनुमान अंगद बढ़ेंगे॥
उनके मुकाबिल कौन अड़ेंगे॥१७॥

जांबुवान नील नल सुषेण शत बली रभस।
मैंद द्विविद कुमुद तार दंभ गज पनस॥
गवय शरभ गंधमादन। गवाक्ष श्री केसरी तपन॥
काढ़ेंगे कराल रदन। सुनकर मलीन कर बदन॥
चढ़े हैं प्रसाद सदन॥१८॥

रावण कहे सारन सों बंदर का कहो सुमार।
कुमार किसके बल क्या दल क्या कहे पोकार॥
सारनु कहे सुन दीवाने। तुससे जबर चार बखाने॥
राम लछमन के निशान फराने। बिभीषन सुग्रीव टर्राने॥
कइ कोट अर्बुद बंदर अर्राने॥१९॥

मद देवों के कुमार तेरा बर श्री बल बिचार।
बाँदर लँगूर रीछ सों छाया है आरपार॥
सीया दे जीया जो चाहे। दसो सीस खोवेगा काहे॥
निर्लज्ज तुझे मैंने जाना है। राजा को चोरी बेजा है॥
सीता इहाँ जमराज भेजा है॥२०॥

१६—सिरोपाव = खिलअत, पुरस्कार में पाए हुए वस्त्र।

सुन दाँत पीस रावन सारन् सों लड़ पड़ा।
दुसमन का बल बखान बाण दिल मेरे गड़ा॥
लड़ा हों मैं देव दानो सों। परे हो जा दूर कानों सो॥
मार डालो दोनों कों जानों सो। नकारे बजवाय निशानों सों॥
दर्वाजे सजवाय ज्वानों सों॥२१॥

शार्दूल सब बोलाय कहा राम पास जाओ।
सरदार सबके दिल की जलदी खबर ले आओ॥
निशिचर लशकर में आए। विभीषन पहेचान पाए॥
पकड़ दो-चार कों मार दिवाए। रघुवर का हुकुम बचाए॥
आय रावण कों घाव देखाए॥२२॥

घबराय कों सभा कर चौकी सजाय कों।
बिजली की जीभवाला माया बनाय कों॥
निशाचर संग में लीना। रघुवर का सिर कमान कीना॥
सीता कों देखाय भी दीना। सीया मन में शोक सा भीना॥
देख सरमा ने माया है चीन्हा॥२३॥

दौड़ा आया निशाचर रावण को ले गया।
नाना कहे न लड़ भिड़क सुनी खफा भया॥
सरमा सों सीता संतोषी। रावन मारा जायगा दोषी॥
चौदो भुवन में कर्ता हैं शोषी। मंदोदरी छोड़ अनोखी॥
दुर्बुद्ध कहता है सीता को चोखी॥२४॥

माल्यवान खफा हुए उठ गए अविंध्य।
सब सज खड़े निशाचर दूजा है मानों सिंध॥
प्रहस्त कों पूरब दरवाजे। महोदर दखिन बिराजे॥
इंद्रजीत खड़ा पश्चिम में गाजे। अपने अपने दल कों साजे॥
आप चढ़ा उत्तर सों राजे॥२५॥

मध्य गोल खड़े करन विरूपाद्ध से कहा।
लंका सजी सभा तजी राजी महल रहा॥
राघो जी ने सभ्य बुलाए। लछमन औ सुग्रीव सब आए॥
हनूमान अंगद विभीषन बैठाए। दुश्मन के मकान देखाए॥
इस लंक ने देव दानो हटाए॥२६॥

रघूनाथ सों विनय सों कहते हैं बिभीषन।
मेरे रफीक चारों आए हैं इसी छिन॥
लंकेश लंका त्यार कराई। प्रहस्त पूरब जिम्मे पाई॥
पश्चिम दल पूत पठाई। दखिन दरवाजे दों भाई॥
उत्तर आया आप चढ़ाई॥२७॥

बिभीषन का वचन सुन कों नील कों दिया प्रहस्त।
दखिन दिया अंगद कों महापार्श्व महोदर मस्त॥
हनूमान कों रावण का बेटा। मेरा है लंकेश सों भेंटा॥
सुग्रीव रहे बीच फौज लपेटा। निशिचर कों देखाय दपेटा॥२८॥

सरदार संग ले प्रभु सुवेल गिरि चले।
देखि चाँदनी सुगंध पवन-विरह सों जले॥
लंका कों निहार बखानी। खाई में दर्याव सा पानी॥
अगम देखी लंका राजधानी। बागीचे नंदन के सानी॥
महलात मानों कैलास देखानी॥२९॥

सुवर्ण की देवाल रतन मोतियों मढ़ी।
प्रवाल थंभ घर घर पर्वत बनी गढ़ी॥
धनेश का विमान ले आए। इंद्र का ऐश्वर्य गिराए॥
पास बरुण ने छिपा बचाए। यमराज ने दंड छिपाए॥
तीनों भुवन की तिरिया हर ल्याए॥३०॥

२७—रफीक = मित्र। २९—सानी = बराबर।

ऐसा जो दुष्ट देखा हरीफ घात हरीश।
सिर छत्र चँवर ढुरे ढुरे दश बिराजे सीस॥
मुकुट दश चंद से चमके। बाँदर राजा देखते वमके॥
छलांग* मारी दशग्रीव पर धमके। छिन एक मारी देन को ठमके॥
उछल्ल पटका दोनों जंघ में लपटे† ॥३१॥

झपट लपट मुकुट पकड़ पटक दीया धर केश।
गटपट भए अटा पर मर्कट भए‡ पिगेश॥
लंकेश को हारा है जाना। माया बल करेगा माना॥
होठ दाँतों सों पीस गरमाना। सिर में थेपी मार उड़ाना॥
समीप राघो के पर पाय सरमाना ॥३२॥

हित राम कहें हरिवर तुम्हे उचित नहीं साहस।
आफत जो होती तुम पर मुजकों होता§ अपजस॥
ऐसा काम फेर न कीजे। बैठो फलाहार कीजे× ॥
हिस्सा लगाय सभों+ को दीजे। सबों की सल्लाह लीजे॥
सगुन होते हैं दुशमन जो छीजे ॥३३॥

सुबेल सों उतरकर लशकर मों आय मिले।
हनुमान नील अंगद मोर्चे मे गए चले॥
प्रभु सुग्रीव सों बोले। देखो उतपात के डोले॥
मौत माँगे निशिचर के गोले। कपिवर को संग लिए डोले॥
तर्कश औ कमान को तोले ॥३४॥

रावण ने सुना बंदर दरवाजे आय अड़े।
दहशत सों क्रोध कर कों निशिचर किए खड़े॥

---

* उड्डान। † जंग में जमके। ‡ पकड़। § आता। × जेईजे।
+ सभो।

राघो जी ने दूर सों जाना। लड़ेगा मुकर्रर गरमाना॥
दीनदयाल दया पहेचाना। वकील सों कहलाय पठाना*॥
अंगद सब सुन संदेस उड़ाना॥३५॥

निशिचर की सभा जाय को अंगद खड़े रहे।
रघुनाथ के सदेसे रावण से सब कहे॥
जीवन का जतन करेगा। भाई श्री बेटा मरेगा॥
राजधानी लंका शहर जरेगा। सीया दे शरन परेगा॥
बचाव यही जो वचन धरेगा॥३६॥

सुनकर पकड़† निशाचर चारों कों कहा धरो।
मानुष का दूत बंदर को बंध में करो॥
राखस चारों अंगद सों चिपटे। छलांग सों छूट पड़े रपटे॥
प्रसाद महल पर झपटे। अटारी को तोड़ उछल दपटे॥
रघुवर के चरण सों लपटे॥३७॥

अंगद की बात सुन कों लंका तैयार देख।
क्रुद्धके सिया निरोधथान लेख विरह के भेख॥
बंदरों ने नजर पहेचानी। भिड़ना है सल्लाह जानी॥
उछल चढ़े लंका राजधानी। प्रभू ने कबूल कर मानी॥
हुकुम किया लड़ना है ठानी॥३८॥

नल पनस चढ़ नगर उपर अनेक संग सहाय।
रावन को खबर पहुँची गढ़ी‡ को घेरी आय॥
लड़ने को हुकुम फरमाया। नक्कारे श्रौ शंख फुँकाया॥
निशिचर कोललकार लड़ाया। एकेक§ बंदर धर नीचे गिरवाया॥३९॥
पहाड़ पेड़ दाँत नखों सों गिरावते।
राखस भी प्रास बाण पेड़ों× सों लड़ावते॥

---

* कहलावना ठाना। † कोप कर। ‡ डेवढ़ी। § के एक। × पटों।
३९—दहशत = डर। मुकर्रर = अवश्य। ३८—निरोधथान = कारागार।

मारी की घात बचावें। अपना अपना नाव सुनावें ॥
महल तोड़ें औ खंदक पटावें। निशिचर जमपुर को जावें॥
रघुनाथ सेवक वैकुंठ को धावें ॥४०॥

नदियाँ वहाँ रुधिर की मुरदों का हुआ कीच।
जोड़ों सों जोड़े गठ गए बाजे बजे रण बीच॥
अंगद इंद्रजीत हराया। हरिश से प्रबस मराया॥
हनुमान जंबुमाली मार गिराया। लछमन विरूपाच्छ सों लाया॥
मित्रघ्न रावण के भाई ने खाया ॥४१॥

सुप्तघन जघन कोप सों रघुवर से लड़े चार।
एक एक कों एक तीर सों चारों कों डारे मार॥
कैएक बंदरों ने मारे। राखस सब जोड़ों सों हारे॥
भाग गए सो लंकेश पोकारे। हाथी रथी अश्व बिदारे॥
कबंध उठे मारो मार पोकारे ॥४२॥

कालरात कतल की सी रात हो गई।
कोई कों कोई न देखे* ऐसी कटा भई॥
हारा इंद्रजीत भी परता। छिप कों माया-बल कों करता॥
हराम जमीन मों पाँव न धरता। अस्तर बरसात सा करता† ॥
कै कोट काटे सिर भुटो सा गिरता ॥४३॥

सोय गए सब कोई नहा खड़ा दिसे।
रघुवीर दोनों बीर कों नख-सिख लों सर धसे॥
कसे दम ध्यान गिरे से। बिभीषन सुग्रीव डरे से॥
सर जीत चला मानों काम सरे से। सीता को देखाय मरे से॥
समुझाय त्रिजटा ने ले जाय परे से ॥४४॥

---

* जाने। † अस्तर सर बरसात सा करता। ४३—कटा = मार-काट। हराम = पिशाच।

गश सों उठे जब राम पास अनुज गिरा देख।
अनेक सर बिँधे रुँधे से प्राण हैं बिसेख॥
ब्रह्मा के वचन को पाला। सुषेण संजीवनी माला॥
सुपर्ण आए साँप सीस को ढाला। सखा कहके भेंट बैठाला॥
निव्रन उठे सभी सेन सम्हाला॥४५॥

धीरज दिया टंकार कर चिकार कपि करे।
सुन भूपती भुवनपति भूतों के पति डरे॥
रावण को संभ्रम ने घेरा। उठे सब कहता है चेरा॥
राम आय लंका द्वार पर डेरा। लंकेश जाना मौत है मेरा॥
ललकार धूम्राच्छ लड़ने को प्रेरा॥४६॥

धूम्राच्छ कों निकलते होता है अपसगुन।
मुकर जाना मरणा है सनमुख देखे हनुमन्॥
बानों की बरसात बरसाई। बंदर मारे फौज भगाई॥
यह देख हनुमान शिला उठाई। निशिचर ने गदा चलाई॥
बचाय मारी शिला मौत ही पाई॥४७॥

धूम्राच्छ मरा सुनकर रावण को चढ़ा काल।
वज्रदंष्ट्र भेजा रघुबर को मार डाल॥
फौजें अपनी संग ले चढ़ता। सगुन भोंड़े देख कों डरता॥
दखिन दरवाजे अंगद सों लड़ता। अगिन औ काल सा बढ़ता॥
देख अंगद भी ललकार को भिड़ता॥४८॥

एक पेड़ कपि ने फेंका निशिचर ने दीना तोड़।
नग-शृंग चलाए रथ पर तिल तिल सा दीना फोड़॥
कूदा निशिचर लपटाना। कुश्ती मुकी हारा जाना॥
उठाय तेगा ढाल लड़ना ठाना। अंगद खाई चोट घुमड़ाना॥
सँभाल मारी तेग सीस भिन्नाना॥४९॥

४५—सुपर्ण = गरुड़। निव्रन = (निर्व्रण) व्रण या घाव से रहित।

बज्रदंष्ट्र मरा सब अकंपन आया।
फौज सज चला जरा असगुन सों डरपाया॥
हरीगण की फौज भगाई। पटे औ तरवार चलाई॥
प्रास तोमर की मार कराई। कुमुद और मैंद भगाई॥
ललकार निशाचर फौज परताई॥५०॥
हनुमान पैठे दल मे राखस को घेर लिए।
लोहू-नदी वही मही मुरदे विछाय दिए॥
दरखत निशाचर ने छेदा। शिखर सों निशिचर को खेदा*॥
छितराय दिया हाड़ चाम औ मेदा। अकंपन हनुमान रगेदा॥
दरखत सों मार सरीर सब भेदा॥५१॥
हनूमान बल बखान कों सभी स्तुती करें।
रावण सुना अकम्पन हनूमान सों मरें॥
डरे टुक प्रहस्त वोलाया। वराना वहोत बढ़ाया॥
सरदार सेनापत तैयार कराया। बिभीषन ने नाव वताया॥
रथ चढ़ निशिचर बेशुमार ले आया॥५२॥
नरांतक औ कुम्भहनू महानाद समुन्नत।
द्विविद तार दुर्मुख जांबुवान सों पाई गत॥
राखस को बंदर विदारे। कैएक बंदर निशिचर सों हारे॥
रुधिर के दर्याव कर डारे। प्रहस्त सेनापति नील ललकारे॥५३॥
नग-शृंग ले पिला मिला सेनापती प्रहस्त।
बानों से काट पर्वत बंदर कों किया सुस्त॥
नील कों होश जोश जब जागा। लशकर निशाचर का भागा॥
प्रहस्त कूदा टूटे रथ कों त्यागा। मूशल लेकर नील सों लागा॥
घुमाय बल सों छाती नील की दागा॥५४॥

---

* फेदा। ५१—मही=पृथ्वी।

चोटें सँभाल नील पिला शिला उठाय मस्त।
जबर्दस्त प्रहस्त का मस्तक छितराय गए अस्त॥
सेनापत रावन का मारा। जस लै नील सेना संभारा॥
निशिचर ने जाय रावन पोकारा। डरपाय हिम्मत भी हारा॥
आप आया सब सहाय कों टारा॥५५॥

रथ पर देखो लंकेश कों सब सज खड़े सहाय।
सबके नाम राम पूछा बिभीपन दिया बताय॥
इन्हीं ने त्रैलोक्य हराया। रावन ने सब को रोवाया॥
परधान मरा सुन आप चढ़ आया। जिनने प्रभु की नार चोराया॥
देव दानो का मक्कान छोड़ाया॥५६॥

रघुवर कहैं मारो मुकर न जावता फिरे।
सब देव सजन देखें पायों सों सिर गिरे॥
अकेला रावन पिला है। सुग्रीव सजीव गिरा है॥
हनुमान मुट्टी सों कट्टी हिला है। नील की फुर्ती देख खिला है॥
लछमन बली को बर्छी कीला है॥५७॥

लछमन उठाए ना उठे हनुमान ने लखा।
रावन गिराय ल्याए लछमन कों निज सखा॥
देखा रघुनाथ रिसाने। सनमुख सिया-चोर देखाने॥
रामबान लगे नंगा होय पराने। भागा रावन देव हरखाने॥
लछमन बाँदरों के जखम झुराने॥५८॥

यों सहज बान चीखे तीखे लगे कठोर।
कहा कुंभकरन जागे लागेगा मेरा जोर॥
मुश्किल सों भाई जगाया। उठा जों पर्वत देखाया॥
आय रावन सों सनमान को पाया। महोदर कों डाँट दबकाया॥
सिरपाव पाय लड़ने कों धाया॥५९॥

रावन के पास जाते कपि कीं नजर पड़ा।
परवत सा देख कीं डरे अंगद हुआ खड़ा॥
विभीषन कीं राम देखावे। भाई पराक्रम बतावे॥
जंतर करो वंदर भाग न जावे। नील कीं यों हुकुम् फरमावे॥
ललकारो मारो यारो राम बचावे॥६०॥

निशिचर कीं संग ले चढ़ा बढ़ा वलाय सा।
वलका गिरी अकाश से त्रिशूल में गिद्ध धँसा॥
आया महाकाल का जैसा। बंदर जाना मौत है तैसा॥
घमासान करे जैसा जल् मों भैंसा। अंगद भी ललकारे ऐसा॥
उड़ाय देता आँधी पौन है तैसा॥६१॥

ऋषभ शरभ मैंद धूम नील रंभ तार।
कुमुद द्विविद पनस हनु इंद्रसुतकुमार॥
ललकार सुन सामने पड़ते। मरने सों मुतलक न डरते॥
बरसात विछौं निशाचर शिर करते। हजारों रगेद सों मरते॥
तिस निशचेर मर जान सों गिरते*॥६२॥

द्विविद ने पहाड़ कुंभकरन पर हना।
टुक बच गया निशाचर सेना का चूर बना॥
सबों ने विछौं सों मारे। राक्षस त्राहि त्राहि पोकारे॥
हनूमान अंगद ने मार विदारे। रुधिर के दर्याव कर डारे॥
कैएक निशिचर कीं हनूमान ने टारे†॥६३॥

निशिचर ने खेंच मारा हनूमान कीं त्रिशूल।
ललकार पहाड़ सा फाड़ घूमे साला जरा एक हूल॥

---

* सा विचरते। † निशिचर कीं हनुमान चेटारे। चोट गिर की सिर के चीथरे फारे॥

चोटें सँभाल नील पिला शिला उठाय मस्त।
जवर्दस्त प्रहस्त का मस्तक छितराय गए अस्त॥
सेनापत रावन का मारा। जस लै नील सेना सभारा॥
निशिचर ने जाय रावन पोकारा। डरपाय हिम्मत भी हारा॥
आप आया सब सहाय कों टारा॥५५॥

रथ पर देखो लंकेश को सब सज खड़े सहाय।
सबके नाम राम पूछा बिभीषन दिया बताय॥
इन्हीं ने त्रैलोक्य डराया। रावन ने सब को रोवाया॥
परधान मरा सुन आप चढ़ आया। जिनने प्रभु की नार चोराया॥
देव दानो का मक्कान छोड़ाया॥५६॥

रघुबर कहैं मारो मुकर न जावता फिरे।
सब देव सजन देखें वाणों सों सिर गिरे॥
अकेला रावन पिला है। सुग्रीव सजीव गिरा है॥
हनुमान मुष्टी सों कष्टी हिला है। नील की फुर्ती देख खिला है॥
लछमन बली को वर्छी कीला है॥५७॥

लछमन उठाए ना उठे हनुमान ने लखा।
रावन गिराय ल्याए लछमन कों निज सखा॥
देखा रघुनाथ रिसाने। सनमुख सिया-चोर देखाने॥
रामबान लगे नंगा होय पराने। भागा रावन देव हरखाने॥
लछमन बाँदरों के जखम भुराने॥५८॥

यों सहज बान चीखे तीखे लगे कठोर।
कहा कुंभकरन जागे लागेगा मेरा जोर॥
मुश्किल सों भाई जगाया। उठा जों पर्वत देखाया॥
आय रावन सों सनमान को पाया। महोदर को डाँट दबकाया॥
सिरपाव पाय लड़ने कों धाया॥५९॥

रावन के पास जाते कपि कों नजर पड़ा।
परवत सा देख कों डरे अंगद हुआ खड़ा॥
बिभीपन कों राम देखावे। भाई पराक्रम बतावे॥
जंतर करो बंदर भाग न जावे। नील कों यों हुकुम् फरमावे॥
ललकारो मारो यारो राम बचावे॥६०॥

निशिचर कों संग ले चढ़ा बढ़ा बलाय सा।
उलका गिरी अकाश से त्रिशूल में गिद्ध धँसा॥
आया महाकाल का जैसा। बंदर जाना मौत है तैसा॥
घमासान करे जैसा जल में भैंसा। अंगद भी ललकारे ऐसा॥
उड़ाय देता आँधी पौन है तैसा॥६१॥

ऋपभ शरभ मैंद धूम नील रंभ तार।
कुमुद द्विविद पनस हनु इंद्रसुतकुमार॥
ललकार सुन सामने पड़ते। मरने सों मुतलक न डरते॥
बरसात विछों निशाचर शिर करते। हजारों रगेद सों मरते॥
तिस निशचर मर जान सों गिरते*॥६२॥

द्विविद ने पहाड़ कुंभकरन पर हना।
टुक बच गया निशाचर सेना का चूर बना॥
सबों ने विछों सों मारे। राखस त्राहि त्राहि पोकारे॥
हनूमान अंगद ने मार विदारे। रुधिर के दर्याव कर डारे॥
कैएक निशिचर कों हनूमान ने टारे†॥६३॥

निशिचर ने खेंच मारा हनूमान कों त्रिशूल।
ललकार पहाड़ सा फाड़ धूमे साला जरा एक हूल॥

---

* ता विचरते। † निशिचर के हनुमान चोटारे। चोट गिर की सिर के चीयरे फारे॥

ऋषभ कपि पाँच मिल आए। पाँचों को वेदम सोलाए॥
अंगद कैएक पहाड़ बरसाए। निशिचर तिल् तिल् उड़ाए॥
त्रिशूल मारा अंगद छोड़ बचाए ॥६४॥

अंगद उछल तमाचा लगतेहि घुम गिरा।
उठ हँस को एक कुच सों कपि कों गिराय फिरा॥
वंदर का बिछौना कीना। सुग्रीव कों साम्हने लीना॥
छाती में भिन्नाय त्रिशूल कों दीना। हनूमान ने अधर में छीना॥
दो टूक कीया लागन न दीना ॥६५॥

चिढ़ कों पहाड़ फेंका सुग्रीव कों लागा।
उठाय ले चला लंका मों टुक धीर सों वीर जागा॥
मनसूबा कर कूख कों फाड़ा। कानों नाकों नोच उखाड़ा॥
डरपाय रघुबर सरन में ठाड़ा। नकटे ने मुग्दल को झाड़ा॥
भगाए वंदर धर लीना धाड़ा ॥६६॥

साथ ले विछाय आवता लछमन अड़े लड़े।
सर सों रिझाय राम कों देखाय दिए खड़े॥
अचल सा अचल पर धाया। निशिचर वंदर दोनों खाया॥
हाथ आया मुख में डाल चबाया। रघुबर ने अस्तर चलाया॥
घुमता आया लोहू माँस नहाया ॥६७॥

निशिचर ने कहा राम मैं बिराध नहीं कबंध।
बाली नहीं न मारिच मैं कुंभकरन धुंध॥
मुग्दल सों मैं देव भगाए। कहते दोनों हाथ उड़ाए॥
धाय आए दोनों पाव कटाए। सधा राम बान चलाए॥
सिर काट लंका द्वार वाट छेकाए ॥६८॥

बाजे बजाय देव पुहुप पावस : बरखें।
गंधर्व नाग यच्छ मुनी देपे हरखें॥

निशिचर जो बचे सो भागे । रावन तन में आग सी लागे ॥
दाँत काटे रोवे दुख मों पागे । जाने राम रूप मे जागे ॥
हृदसाय आसा जीवन की त्यागे ॥६८॥

रावन कों सुना रोते त्रिसिरा उठा बमक ।
चार भाई दो चाचा लड़ने को दीनि धमक ॥
हमने तीनों लोक कों जीता । मारेंगे वंदर के मीता ॥
भाग जावे सो जावेंगे जीता । युद्धोन्मत्त मत्त सा जीता ॥
महापार्श्व महोदर रन सजीता ॥७०॥

देवांतक श्रौ नरांतक अतिकाय त्रिशिर चार ।
रावन सों खुश खिलत ले लड़ने चले तैयार ॥
सेना सब सर्दार संग दीने । वंदर भी पहाड़ को लीने ॥
हथियार मोर्चे मों मुकाबले कीने । निशाचर के वंदर ने सीने ॥
फाड़ दाँतों सों हथियार कों छीने ॥७१॥

घोड़े चढ़ा नरांतक बल्लम सों मारता ।
कोटों कपी कटे हरीश श्रंगद पोकारता ॥
भेजा मार स्वार घोड़े का । दौड़ा घेरा ज्वान जोड़े का ॥
प्रास छाती लीना हाथ को डेका । ताजुब तिल तिल तोड़े का ॥
तल सों मारा घोड़ा आँख फोड़े का ॥७२॥

नरांतक ने बालिपुत्र के मस्तक चलाई मुष्ट ।
श्रंगद की लगी सीने से घुमड़ाय कों गिरा दुष्ट ॥
आँखें फाड़ मैात ही पाई । श्रंगद की जै देव सुनाई ॥
हनुमान सुग्रीव सो बेसवास पाई । राघोजी श्याबाश सुनाई ॥
बमके वंदर निशाचर फौज भगाई ॥७३॥

नरांतक को मरा सुन कों देवांतक दैाड़ा ।
श्रंगद कों दे हटाय तीनों ने हनूमान सों जंग जोड़ा ॥

घूसे सों सिर फाड़ डाला है । महोदर को तोल डाला है ॥
रन में त्रिशिर पर हनुमान वाला है।तीनों सीर कों काट डाला है॥
ऋषभ महापार्श्व कों मार डाला है ॥७४॥

अतिकाय अति प्रचंड है पराक्रमी महा।
बिभीषन कों राम पूछा रावन कुमार कहा॥
वंदर कों बिस्तर सा कीना । लछमन ने सन्मुख सों लीना ॥
कै एक अस्त्र सों हराय भी दीना । पवन के कहे सों चीन्हा ॥
ब्रह्मास्त्र मारा सिर कंकरी धीना ॥७५॥

सेना बची सो जाय कों रावन को डराया।
जाना प्रभू हैं राम कों हिम्मत सों हराया॥
चौकी चारों ओर सजाई। इंद्रजीत ने आज्ञा पाई॥
ब्रह्मास्त्र दिया अंतरध्यान देखाई । वंदर गर्दी कर देपलाई॥
साठ करोर निशाचर फौज मँगाई* ॥७६॥

सरदार सब सोलाए कोई नहीं बचे।
हनुमान बली बिभीषन निरबंच हैं वानर बचे॥
डंका दै लंका कों परता । रावन सुन संतोख कों धरता ॥
सुत गोद बैठाय चुंबन कों करता। बिभीषन हनुमान बिचरता॥
पहेचान जांबवान के गोड़ पर गिरता ॥७७॥

सुनो पवन के कुमार जांबवान ने कहा।
औषध ले आय जिवाओ प्रभु ब्रह्मास्त्र कों सहा॥
सुनते ही वदन बढ़ाए । औखद के पहाड़ को ल्याए ।
आते ही लश्कर में बंदर जिलाए । लछमन बाला राम उठाए ॥
धर आय गिर कों किलकार कराए ॥७८॥

हुकुम हुआ रघुनाथ का लंका जलाय दीया।
राखस स्त्रियाँ सर्वस जला दरियाव लाल कीया॥

* सड़सठ करोड़ निज फौज काम आई ।

महलों कों बंदर जलावें। लछमन राघोनाथ सोहावें॥
टंकार करके निशाचर डरपावें। यूपाच्छ प्रजंघ दो आवें॥
संग शोणिताच्छ कंपन भी धावें॥७९॥

अंगद द्विविद ओ मैंद तीनों यह चार सों लड़े।
मारे हैं चारों निशाचर जो द्वंद जुध जुड़े॥
निकुंभ का कुंभ जो भाई। अंगद की आँख गिराई॥
मैंद द्विविंद की जोड़ी सों लड़ाई। जांबवान की फौज भगाई॥
जाय सुग्रीव सों जंग मचाई॥८०॥

सुग्रीव ने बल बखाने सों मद कुंभ कों बढ़ा।
कुस्ती में लड़ थका तब हारि मूकियों गढ़ा॥
उठाय को दर्याव में डाला। जल में सों उछल के वाला॥
मुष्ट मारी मानों मौत सँभाला। घड़ी दो में हरि होश सँभाला॥
बज्र मारी मुष्टि शैल सा ढाला॥८१॥

निकुंभ सुना कुंभ को मरे सों जोश भरा।
कर परिघ ले पिला मिला हनुमान पहेचान ठहरा॥
बंदर भागे राम सरन में। परिघ तो हनुमान के तन में॥
तिल तिल हुआ वज्रांग बदन में। मूर्छा सी बचाय कों रन में॥
निकुंभ उठा मूकी खाय को छिन में॥८२॥

निकुंभ ने हरी को हर गगन ले उड़ा।
मस्तक में मुष्टि खाय को मुख बाय को पड़ा॥
पकड़ कों जमीन में पटका। गर्दन घुमाय को झटका॥
उखाड़ फेंका सिर किया मरघट का। टारा तीनों लोक का खटका॥
निशाचर बचा सो भय पाय को सटका॥८३॥

रावन ने दाँत पीस को मकराच्छ सों कही।
तुम जाओ फते सुनाओ सुनतेई कमान कर गही॥

मोर्छों पर वाव कीं फेरा । कहता है वल देखो मेरा ॥
जातेहि डालों रघूवर पर घेरा । बंदरों कों भगावता हेरा ॥
श्रीराम कहँ खर सा हाल है तेरा ॥८४॥

खर मारन की नोक सुन कों राम पर कुढ़ा ।
लड़भिड़ कों रथ कों तोड़ा सब शूल ले बढ़ा ॥
मारा सो रघुनाथ ने तोड़ा । राचस मूकी बाँध को दौड़ा ॥
अगन्यास्त्र सों राम ने सीना फोड़ा । खर के खर ने प्रान को छोड़ा ॥
सेना सब लंका भागी पीठ न मोड़ा ॥८५॥

मकराच्छ को मरा सुन रावन ने दाँत बजाय ।
मेघनाद भेजा जाता है सिर नवाय ॥
अपना इष्ट होम वर दीना । छिप कपि में कतलाम सा कीना ॥
राम लछमन कों भी पेंच में लीना । रावन का कुमार है चीन्हा ॥
ब्रह्मास्त्र सों भागा दर्शन न दीना ॥८६॥

पछिम सरफ गया सिया माया बनाय कों ।
हनुमान् ह्य डराए सिया-वध देखाय कों ॥
बंदर ज्यों बादल उड़ाए । लाखों लोथ कर दिखलाए ॥
हनुमान् पिलचे सब कपी पर धाए । नगश्रृंग सों मार हटाए ॥
पछताय फिरते रोते राम रोवाए ॥८७॥

सिया मरन हनुमान कहा राम सुन वदन फिरे ।
कदली कटे पटे से ऐसे घूम· घरराय गिरे ॥
लछमन ने संवोध सुनाया । बिभीषन दौंड़ा आया ॥
उठाय प्रभु कों हथियार सजाया । भतीजे का भेद बताया ॥
संग लाय लंका पर लछमन चढ़ाया ॥८८॥

बिभीषन का वचन सुन प्रभु सौमित्रि सों कहा ।
हनूमान् अंगद मिल दुष्ट मारो मैंने कष्ट बहुत सहा ॥

लछमन सुन कमान कों लीना। बिभीपन की बात कों चीन्हा॥
हनुमान अंगद की फौज संग दीना। रघुबर की परदछिना कीना॥
आय निकुंभिला सीम को छीना॥८६॥

बिभीपन कहे लछमन सों यहि गोल जो गिरे।
बिन होम हुए चिढ़ कों बिन रथ मिले फिरे॥
मारा तभी जायगा दुशमन। सुन बान बरसाए लछमन॥
बंदर लड़ावें ललकार बिभीपन। निशिचर देखें कीन्हे कदन॥
वों हीं दौड़ा चढ़ पहले स्यंदन॥९०॥

हनूमान पर चलाया एक तीर बेकदर।
ललकार कों बिभीपन लछमन मोहोब्बिल् कर॥
हनुमान पर स्वार कराए। इंद्रजीत के सामने आए॥
बढ़ा बरगत बिन पर छोड़ाए। लछमनजी कों भेद बताए॥
अंतर्ध्यान होते इस को हाथ लगाए॥९१॥

चाचा को चिढ़ भतीजा कहता कटुक बचन।
चाचा कहें बके जा मरने को तेरा चिह्न॥
लछमन सों बकवाद करता है। हथियारों की मार करता है॥
हनुमान पर चढ़ लछमन भिड़ते हैं। रन में बराबर लड़ता है॥
लछमन कहें नीच आज मरता है॥९२॥

कवच कटे दुहुँन के सर-जाल भरे अकास।
एक एक के बान काटे गटपट भए सब पास॥
बंदरों ने घोड़ों को फारा। रथवान का सिर उतारा॥
लछमन ने निशाचर के गाल बिदारा। कै एक बिभीपन ने मारा॥
छिप जाय रथ ल्याय इंद्रजीत ललकारा॥९३॥

अस्तर चलावे लछमन निशाचर निवारता।
अस्त्र अपाना मार कों बंदर बिदारता॥

११—मोहोब्बिल् = (अ० मुहिब) प्रीति से।

लछमन कमान सों बान है झरता। बानों पर बानों को सरता ॥
इंद्र का दीना बान कर में धरता। रघुबर का कसम सत करता ॥
चटाक मारा सिर भुट्टाक सा गिरता ॥९४॥

इंद्रजीत मरा इंद्र के अस्त्रों सों।
सब देव ऋषी देख हरष पुहुप बरखे स्तोत्र सों ॥
लछमन की जै कहे सिधारे। रघुबर के पर पाय निहारे ॥
तब गोद बैठाय बखान पुचकारे। सुषेण ने घाव सँभारे ॥
तय्यार ठाढ़े बंदर मोर्चे मारे ॥९५॥

मेघनाद मरा सुन रावन ने रोय दिया।
दाँतों सों ओठ काटे सिया मारन को तेग लिया ॥
दौड़ा देख जानकी डरती। रघुबर की फिकर को करती ॥
समुझाय सुपार्श्व ने बुद्धि फेर दी। सभा बैठे छाती जरती ॥
बिल्कुल भेजी फौज हल्ले करती ॥९६॥

रघुबर को आय घेरे मकड़ी सें लिए छाय।
गंधर्व अस्त्र मारा आपुस मों दिना कटाय ॥
टिड्डि तोड़ राम लखाने। अंत्री खुमे सों देव हरखाने ॥
निशिचर कों निशिचर सभी राम देखाने। स्वजन सों अस्त्र धखाने ॥
इस बल कों हम औ शंकर माने ॥९७॥

घर घर में पड़ा रोना रावन श्रवण सुना।
महाकाल सा क्रोध कर कहा लड़ना बना अपना ॥
मोछों पर ताव दे बोला। डर कों तीनों लोक भी डोला ॥
बड़ाई अपनी कहता बावल भोला। जिसको दे उसी का मौला ॥
राम मारों कह कमान कों तोला ॥९८॥

प्रथम पाँव धरते सनमुख सों हुई छींक।
अपसगुन मरने कों कहने लगे नजदीक ॥

रथ पर भारी जोस चढ़ दौड़ा। महापार्श्व विरूपाच्छ का जोड़ा ॥
भाई महोदर जंग में छोड़ा। वंदर कोटों कोट को तोड़ा ॥
सुग्रीव लड़ को निशिचर को मोड़ा ॥९९॥

विरूपाच्छ गज चढ़ा बढ़ा सुग्रीव सों लड़ा।
एक पेड़ सों गज गिराया विरूपाच्छ उछल खड़ा ॥
तेगा ढाल ले को लड़ता। सुग्रीव शिला-वृच्छ सों भिड़ता ॥
चोट तेगा खाय निफल को उड़वा। उछल लात छाती में जड़ता ॥
प्राण छुटे आँखें फाड़ को गिरता ॥१००॥

हुकुम सों महोदर ने वंदरों को भगाया।
सुग्रीव ने ललकार शिला सिर में लगाया ॥
निशिचर तिल् तिल् उड़ाई। रथ तोड़ जमीन देखाई ॥
हथियार तोड़े मूकी लात चलाई। तेगा ओ ढाल को लड़ाई ॥
सुग्रीव काटा सीस वेश वाह पाई ॥१०१॥

मारा सुना महोदर महापार्श्व आय धाय।
कपि का कतल्ल किया लिया अंगद सों राढ़ जाय ॥
वानों का बरसात बरसाया। रथ तोड़ा जमीन देखाया ॥
लोहंग मारा अंगद कूद बचाया। मूकों सों जमलोक पहुँचाया ॥
महापार्श्व मरने सों रावन को रोवाया ॥१०२॥

कट गए सभी सहाय रहा अकेला आप।
रथ पर तामस के अस्त्र सो वंदरों को दे संताप ॥
वानों का बादल सा छाया। राघोजी के रूप लोभाया ॥
अव्वल ललकार लछमन अटकाया। लड़ने छोड़े राम पर धाया ॥
असुरास्त्र पर राम अग्न्यास्त्र चलाया ॥१०३॥

रथ तोड़ दिया लछमन विभीषन मिल को।
बर्छी चलाई भाई बचा लछमन वेधे पिल को ॥

१०१—वेश = बहुत अच्छी।

गिरे प्राणहीन से होकर। रघुवर ने बानों सों मोह कर॥
हनुमान भेजा उत्तर राम ने रोकर। जड़ सों गिरि कों ल्याया नौकर।
संजीवनी दीनी उठे मुख धोकर ॥१०४॥

रथ बैठ आया रावन अस्तर चलावता।
रघुनाथ दिहा तोड़ इंद्र रथ भेजावता॥
बानों सों रावन खिजलाया। राहु रामचंद दबाया॥
तीनों भुवन में उत्पात देखाया। वर्छी सों त्रिशूल तोड़ाया॥
राम बाण सो अचेत भगाया ॥१०५॥

रावन को चेत होवे रथवान सों कहा।
तैंने क्यों मुझे भगाया घायल मुने सहा॥
दीना है इनाम का गहना। ले चल राम साम्हने रहना॥
दुशमन मारेगा या मार को रहना। अगस्त के उपदेश को चहना॥
श्री सूर्यनारायण को ब्रह्म कर कहना ॥१०६॥

रथवान ने रथ चलाय को जब राम पर पिला।
अंत्रिख सों देव देखे थलहल सों रथ चला॥
सगुन मरने के जाने। रथ फेरते धूल नहाने॥
रावन रथ के निशान फहराने। रघुवर की सहाय बेखाने॥
हुलास दिल में सभी देव बखाने ॥१०७॥

लड़ने लगे रथ दोनों निशिचर बंदर खड़े।
मरना है कहे रावन मारन कों राम लड़े॥
दोनों वीर बान चलावें। रावन ध्वजा काट गिरावें॥
राम रावण का निशान उठावें। बानों का पिंजर सा छावे॥
दौड़ाय रथ कों रथ के साथ सटावें ॥१०८॥

गटपट भए रथ दोनों घोड़े लिपट लड़े।
गदा मुशल पटा त्रिशूल राम पर झड़े॥

१०७—अंत्रिख = (अंतरिक्ष) आकाश।

वैसे राम बान बरसावें। चौदह भुवन त्रास सा पावें ॥
देव दानव मुनि नाग सपावें। गौ ब्राह्मन कल्यान मनावें ॥
रावन सों राम का जै सुनावें ॥१०९॥
रावन का शिर गिराया रघुवर ने बान सों।
ऐसे गिराए सौ शिर दशग्रीव जान सों ॥
क्यों कर राम बान जीवाया। दिन रात का युद्ध कराया ॥
जमीन आसमान परवत में धाया। मातली ने ब्रह्मास्त्र बताया ॥
अगस्त दीना बाण दस्त चढ़ाया ॥११०॥
डर गए सुर सरग सर प्रभू ने कर धरा।
ब्रह्मास्त्र प्रयोग कर सृजा रावन मरा ॥
छाती फोड़ रथ सों गेरा। सुर सुरसरि में स्नान कर फेरा ॥
तीर तूणीर पैठा पाय पर चेरा। सुर मुनि ने रघुनाथ को घेरा ॥
नकारे बजवाय सुमन बखेरा ॥१११॥
चौगिर्दे देव दल बादल से बानर चमके।
जै जै सियावर की कहैं विभीषन हुए गम के ॥
रावन की किस्मत बखानी। भाई मेरी एक न मानी ॥
राम-बानों सो सोया गुमानी। रावन की कर्नी कर्नी ठानी ॥
राम कहैं मेरा अब दोस्त है जानी ॥११२॥
मंदोदरी रावन मरा सुन फों सखी संग आय।
जार जार रोवे रनवास पती के पास खड़ी सब धाय ॥
मंदोदरी मूँड़ उठावे। रघुवर को विलाप सुनावे ॥
राम हनुमान संबोध समझावे। लछमन जी कर्नी करवावे ॥
कर काज विभीपन सरन में आवे ॥११३॥
लंकेश हुआ* विभीपन हनुमन कही सिय आस।
रघुवर की रजा पाय को विभीपन ले आए पास ॥

---

* भए।

प्रभु सीता त्याग कर दीनी। कसम कर कों आग ने लीनी॥
विधि वेद बानी बोले रामस्तुति कीनी। भाई माया राम की चीन्ही॥
दशरथनंदन सों सब व्यक्त है होनी॥११४॥

अगिन तें सिया लीनी* लीनी गले लगाय।
शंकर बखान कर गए दशरथ कों मिले धाय॥
इंद्र ने आसीस गुजरानी। जीवे बाँदर फल फूल श्री पानी॥
नित निस्त पावें ऐसी बोल दी बानी। उठे सब जो रैन बिहानी॥
सिय राम लछमन ने अचरज सी मानी॥११५॥

सब देव भए विदा गुरु विदाई† बिभीपन दीनी।
पुष्पक विमान चढ़ चले सँग फौज अनगिनी॥
निशाचर की रनभूमि देखाई। समुंदर किष्किध चढ़ाई॥
ऋष्यमूक पंपा जनस्थान लखाई। कुटी चित्रकूट की आई॥
मुकाम प्रयाग सो पंचमी पाई॥११६॥

हनुमान ने जाय संदेशे जब भरथ कों कहे।
आनंद भरे डगर नगर भेंट कर गहे॥
चले प्रभु कों मिलन कों। अवध में उत्साह है जन कों॥
जननी चलीं सभी संग ले धन कों। आए राम ग्राम मध्य भवन कों॥
राज लीना भाया भरत के मन कों॥११७॥

रथ पर चले नगर को त्रिभुवन में जैजैकार।
इक्ष्वाकुकुल में आय किया अभिषेक सरंजाम तैयार॥
समुंदर-जल बंदर सब ल्याए। सुर मुनिजन मिल राम नहल्याए॥
सिंघासन बैठे गुरु ने क्रीट पहनाए।
सब घर गए हनुमान बर पाए॥
दस साल हजार सुख सों देखलाए॥११८॥

---

* अगिन ने सिया दीनी। † दावत।

श्रीराम राज वैठे एंठे न सुने कोय।
धन्य धान्य भरी धरनी करनी स्वधर्म होय॥
अधर्म का लेश न जाना। जन ने जग में राम बखाना॥
देव मुनिगन सब ने इष्ट सा माना। धर्मादिक पदार्थ जिन पाना॥
'प्रेमरंग' गाए अनायास तर जाना॥११८॥

इति श्री आभासरामायणे युद्धकांडः समाप्तः।

उत्तरकांड

(रागिनी परज का जंगला, ताल धीमा तिताला, छंद रेखता*)

मिला जब राज रघुवर कों। मुनी सभी आए मिल कर कों॥
मरे कहते हैं निशिचर कों। लछमन धन धन कहें फिर कों॥ १॥
प्रभु पूछे हैं घन रव का। कहो बरदान सब बल का॥
कहें हैं अगस्त पुलस्त कुल का। जनम बीते लंकेश्वर का॥ २॥
अज के हेंती सों विद्युतकेश। उसे सुत साव दिया सो सुकेश॥
उसे सुत तीन हुए सो लंकेश। चढ़ाए रन में जिन हर कों॥ ३॥

---

* क प्रति में उत्तरकांड के आरंभ में भी निम्नलिखित पाँच दोहे अधिक हैं—

[व्याहृति]

जिहि बेद कही वही सरूप धर राम।
निमिख गोमती-तीर जग कीन्ह मुनि विश्राम॥
भूदेव बानर लंकपति जनक कैकयाधीश।
मुनि मिल सेवत चरन युग भ्रात मित्र अवधीश॥
भुवपति दीनदयाल प्रभु रावन मारन काज।
रघुपति सियपति श्रीपति कहें लव-कुश सिरताज॥
घनके शिष्य वल्मीकि के आदि-काव्य श्रुति नाम।
चौबिस सहस की संहिता सात कांड सरनाम॥
स्वर्ग मृत्यु पाताल में राम नाम विश्राम।
ऐसे हुए न होएँगे सज्जन मन अभिराम॥

सुमाली माल्यवान माली। सालंकटंकट के कुल पाली ॥
छिनाई लंक वनमाली। बचे दो भाग लड़ मर कों ॥ ४ ॥
सुमाली की कुमारी से। रावन घटकर्ण सुपनखी से ॥
जन विभीषन अधिकारी से। बढ़े बर पाय तप कर कों ॥ ५ ॥
लंका धनपाल सों छीनी। विहाय मंदोदरी लीनी ॥
जना सुत नाद घन कीनी। सोश्रा घटकर्ण किए घर कों ॥ ६ ॥
धनेश का दूत खिलाय डाला। चढ़ा धनपाल गिराय डाला ॥
उठाय कैलास हिलाय डाला। शंकर सों राय लिया वरकों ॥ ७ ॥
दहा तन वेदवती सीता। मरुत लाचार सों जीता ॥
अनरन्य के शाप भयभीता। जिताया अजब जमपुर कों ॥ ८ ॥
नागों का पुर किया बस में। दोनों दानों सो कर कसमें ॥
वरुण बेटे बचे रस में। बली बामन कहे हर कों ॥ ९ ॥
उछल पाताल में रवि सों। कहाया हार हजूरी सों ॥
दिवाने देख गरूरी सों। लड़ा मांधात किया दोस्ती ॥१०॥
पवन की आठ सीढ़ी चढ़। लड़ा रावन सभों सों बढ़ ॥
निशाकर ज्यों* अमर हर पढ़। कपिल सों भूल गई मस्ती ॥११॥
कइक तिरिया छिनाय ल्याया। रोई त्रिया श्राप फिर खाया ॥
सुपनखा स्थान खर पाया। कुंभीनसी काज चला गस्ती ॥१२॥
हजारों अचौहिणी लेकर। मधू को मिल लिया सँग धर ॥
पकड़ रंभा सों जबरी कर। नलकूबर श्राप बजी स्वस्ती ॥१३॥
सरग पहुँचे अमर सुन कों। बचन वामन लड़न सुन कों ॥
सुमाली मौत बस सुन को। शचीपति घेर लिया हस्ती ॥१४॥
रावन कों घेर लिया सुनकर। लड़ा घननाद अँधेरा कर ॥
पुलोमापूत भगाया डर। छोड़ाय रावन किया कुस्ती ॥१५॥

* ओज। १५—पुलोमापूत = इंद्र।

निशाचर का पूत लड़ा मिल कों। पकड़ ल्याय पाकशासन कों ॥
छोड़ाया देर दिया पन कों। बढ़ा इंद्रजित पिता पुस्ती ॥१६॥
कहें रघुनाथ अगस्त मुनि सों। कोई जबरदस्त न रावन सों ॥
छोड़ाया बाँध अर्जुन सों। पुलस्त कर दोस्त हुई सुस्ती ॥१७॥
सुना जब्बर बड़ा बाली। धरन रावन चला खाली ॥
बगल धर बाँध पचाय डाली। सिरों पर सिर जबरदस्ती ॥१८॥
हनुमान बल कों सराहे राम। कहा मुनिवर नंदिन काम ॥
पिता सुग्रीव सों सुमाता नाम। कुमार मुनि का कथन कहते ॥१९॥
दसानन मौत प्रभू पहेचान। सिया बुध रोहिनी सी मान ॥
नारद सितदीप बली जन जान। खेलाया गेंद जीया बहते ॥२०॥
बली रावन का सुत सरनाम। प्रभु मारन हुए नर राम ॥
कथा कहे मुनि गए निज धाम। जनक कैकेय निदा गहते ॥२१॥
यावत् बाँदर बिदा लेते। सरन हनुमान रहन देते ॥
बिभीखन और प्रतर्दन ते। त्रिरात् राजा बिरह दहते ॥२२॥
लिया पुष्पक बगीचे जाय। सिया बन कों लिया वर पाय ॥
निचन के वचन लछमन संग जाय। छोड़ा वाल्मीक वलु रहते ॥२३॥
सुमंत्र मंत्र कहा होनहार। मिले प्रभु सों रोए चौधार ॥
लछमन सों सुन शमन उर धार। सभा देखन नगर लहते ॥२४॥
निमी नृग सी चमनत्करी। गिरे गुरु देह देह धरी ॥
ययाती की चमा सुधरी। सभा गुन सुन करन्न कहते ॥२५॥
सुना द्विज का किया इनसाफ। गिद्ध को जान कीनी माफ ॥
मुनि मधुबन के माँगे साफ। लवन मारन अरिहन चहते ॥२६॥
शत्रुघ्न कों दिया सर राम। आए वाल्मीक मुनि के धाम ॥
सुना सौदास सिया सुत नाम। लड़े मधुबन लवन सहते ॥२७॥

१६—पाकशासन = इन्द्र।

कटा सिर शूल बिना शर सों । बसा वन राम विरह घर सों ॥
जिलाया बाल धर डर सों । कटा सिर सशद शंभु का तुर्त ॥२८॥
अगस्त के दस्त लिया गहना । सुना डंडक का वन कहना ॥
जिकर हयमेध अवध रहना । लछन वृत्रारि की कहि फर्त ॥२९॥
प्रभू इल की कथा कहते । पुरुष औरत जो नर रहते ॥
पूरुख पूत प्रगट लहवे । ऐसी साँच जाग की है जुर्त ॥३०॥
बोलाए बंधु सब जग में । आए वाल्मीक जग मग में ॥
कहा लव-कुश ने जग रँग में । सिया सोगंद किया सुध डर्त ॥३१॥
हुआ जग राजधानी आय । मिली जननी पती पद जाय ॥
भरत गंधर्व के तक्षपुर पाय । अंगदचंद्र के तपाय विर्त ॥३२॥
सुना प्रभु काल का भाखन । सिधारे काल कारन लछमन ॥
हजार ग्यारह हुए सम सुन । मुलक लव-कुश लिए कर सुत ॥३३॥
शत्रुघ्न को बोलाय लीने । नगर तज राम गवन कीने ॥
प्रभू परब्रह्म दरस दीने । गए गोप्तार मोहन मूर्त ॥३४॥
चले सब देव मिल सांतान । भए दिव्य देह चढ़े हैं विमान ॥
अवध में लेश न देखा श्रान । कहा वाल्मीक पढ़ें अनिवर्त ॥३५॥
अघमोचन कोट जनम का जान । इती आभास अंतरध्यान ॥
कहा 'प्रेमरंग' सियापति ध्यान । गायन सों राम मिलेंगे शर्त ॥३६॥

इति श्री आभासरामायणे उत्तरकांडः समाप्तः ।

फल-स्तुति

रामायण आभास यह सात कांड वाल्मीक ।
अर्थ ज्ञानी अधिक रस लेखत राम जस लीक ॥ १ ॥
मनन ज्ञान रस ज्ञान जिहिं राग ज्ञान सुध होय ।
ताहि रिझावन गान यह सुख सों समझत सोय ॥ २ ॥
सीखत सुनत जो राम-जस दहत पाप लखजोनि ।
अनुरागात्मक एक दृढ़ भक्ति उदय तिन्हि होनि ॥ ३ ॥

तारक मंत्र प्रतच्छ प्रभु दसरथनंदन राम।
सोइ शिव सब कों कहत हीं शिव होय धावत धाँम ॥ ४ ॥
छंद रचन जानत नहीं नहि जानत सुध राग।
छमा कीजे मोहि चतुर नर लखि रघुबर अनुराग ॥ ५ ॥
आस राम की कर अचल पास खड़े हैं जान।
मान त्याग कर भजत हों मन स्वरूप धरि ग्यान ॥ ६ ॥
कासीवासी विप्र हों रहत राम तट धाम।
पवनकुमार-प्रसाद सों गाय रिझावत राम ॥ ७ ॥
अज शिव शेष न कहि सकें महिमा सीताराम।
इंद्रदेव सुर देवसुत नागर कवि अभिराम ॥ ८ ॥
संस्कृत प्राकृत दोउ कहे इंद्रप्रस्थ के बोल।
वाल्मीकीय प्रसाद सों गाए राग निचोल ॥ ९ ॥
अठारह सो अट्ठावनों विक्रम शाक मलमास।
ज्येष्ठ कृष्ण एकादशी रविकुलनंदन पास ॥ १० ॥
जहाँ रामायन कहत कोइ सुनत कपी कर जोर।
पुलकित अंग नयन स्रवत आनि रिपु असु घोर ॥ ११ ॥
प्रभु संगत ज्यों तरसत ज्यों राख्यो कपि तन चाम।
'प्रेमरंग' हनुमंत धन सुनत अहर्निस राम ॥ १२ ॥

इति श्री आभासरामायणे फल-स्तुतिः समाप्ता।

(१५) खुमान और उनका हनुमत शिखनख

[लेखक—श्री अघौरी गंगाप्रसादसिंह, काशी]

चरखारी के राजा विजयविक्रमजीतसिंह बहादुर स्वयं एक अच्छे कवि थे और कवियों का आदर-मान भी यथेष्ट करते थे। उनके दरबार के प्रसिद्ध कवियों में खुमान या मान, प्रतापशाह, भोज, सबसुख और प्रयागदास के नाम विशेष उल्लेख योग्य हैं। खुमान या मान का आसन इन कवियों में सर्वोच्च था। डाक्टर ग्रियर्सन ने खुमान और 'मान' को दो कवि लिखा है पर वास्तव में ये दोनों नाम एक ही व्यक्ति के हैं*। खुमान का जन्म छतरपुर के निकट खरगाँव नामक ग्राम में हुआ था। शिवसिंह-सरोजकार के मतानुसार उनका जन्म-संवत् १८४० है। परंतु संवत् १८३६ के लिखे हुए उनके अमरप्रकाश नामक ग्रंथ के मिल जाने से यह सर्वथा अशुद्ध प्रमाणित हो चुका है। खुमान का कविता-काल यदि संवत् १८३० माना जाय तो उनका जन्म संवत् १८०० के लगभग मानना बहुत अनुचित न होगा। मिश्रबंधु-विनोद में खुमान का कविता-काल १८७० माना गया है और साथ ही यह भी लिखा गया है कि "खोज १९०५ में अमरप्रकाश का रचना-काल संवत् १८३६ लिखा है।" मालूम नहीं, इन विरोधी बातों को विनोद में

---

* Dr. Grierson erroneously takes Khuman and Mana to be two different persons whereas in reality they were one and the same.

Search reports for Hindi manuscripts.
(1906-1908.)

क्योंकर स्थान दिया गया है। जब खुमान-लिखित एक ग्रंथ १८३६ का प्राप्त हो चुका है तो उनका कविता-काल १८३६ न मानकर १८७० क्यों माना जाय ? पुनः यदि उस ग्रंथ के रचयिता अथवा उसके रचना-काल के संबंध में संदेह था तो उसे स्पष्ट क्यों न किया गया ? अस्तु, जो कुछ भी हो जब तक इस संबंध में कोई विशेष प्रकाश नहीं डाला जाता अमरप्रकाश के रचना-काल से ६ वर्ष पूर्व अर्थात् १८३० के करीब खुमान का कविता-काल मानना ही हमें युक्तिसंगत जान पड़ता है और कविता-काल से ३० वर्ष पूर्व उनका जन्म-संवत् मानना उचित होगा। कहा जाता है कि खुमान जन्मांध थे, काव्य-कला की शिक्षा उन्हें किसी साधु द्वारा प्राप्त हुई थी। खुमान हनुमानजी के भक्त थे और उनकी प्रशंसा में उन्होंने कई पुस्तकें भी लिखी हैं। यह किवदंती सुनने में आई है कि खुमान अपना देव-संबंधिनी कविताओं में संशोधन नहीं करते थे; एक बार जो कुछ मुख से निकल जाता था उसे आत्मप्रेरित वाक्य समझकर ज्यों का त्यों रहने देते थे। उनकी रचनाओं में जो थोड़ी-बहुत साधारण त्रुटियाँ परिलक्षित होती हैं, जान पड़ता है वे उनकी इसी धारणा के परिणाम हैं। फिर भी खुमान की रचनाएँ उत्कृष्ट हुई हैं और उनमें काव्यगुण—विशेषतः अनुप्रास—की अच्छी छटा देखने को मिलती है। अब तक की खोज में उनकी नीचे लिखी दस पुस्तकें प्राप्त हुई हैं—

(१) हनुमान पंचक—हनुमानजी की प्रार्थना।

(२) हनुमान पचीसी—हनुमानजी के विनय के २५ कवित्त।

(३) हनुमत पचीसी— " " "

(४) हनुमत शिखनख।

(५) लक्ष्मण शतक—१२९ छंदों में लक्ष्मण और मेघनाद के युद्ध का वर्णन है। इस पुस्तक की रचना सं० १८५५ में हुई।

(६) नृसिंह चरित्र—विष्णु के अवतार भगवान् नृसिंह के चरित्रों का वर्णन। इस पुस्तक की रचना सं० १८३९ में हुई।

(७) नृसिंह पचीसी—पचीस कवित्तों में भगवान् नृसिंह की प्रशंसा।

(८) नीति-निधान—चरखारी के राजा खुमानसिंह (१७६५-१७८५ ई०) के सबसे छोटे भाई दीवान पृथ्वीसिंह का हाल।

(९) अष्टयाम—चरखारी के राजा विक्रमसिंह का दैनिक कार्य-कलाप।

(१०) समर-सार—ब्रिटिश सरकार से संबंध-स्थापन के संबंध में चरखारी के राजा विक्रमजीत बहादुर की जब बातचीत चल रही थी उस समय किसी ब्रिटिश अफसर के अनुचित व्यवहार के दमन करने में राजकुमार धर्मपाल के शौर्य का वर्णन।

उक्त पुस्तकों में से लक्ष्मण शतक तथा नीति-निधान के अतिरिक्त और किसी पुस्तक की मुद्रित प्रति हमारे देखने में नहीं आई है। लक्ष्मण शतक नामक पुस्तक काशी के भारतजीवन कार्यालय से प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक की रचना बड़ी जोरदार है। इसमें काव्यगुण यथेष्ट मात्रा में प्रस्तुत है और इसके पढ़ने से इसके रचयिता की काव्य-शक्ति का अच्छा परिचय मिलता है। हम इस काव्य को एक बार सभी कविता-प्रेमी पाठकों से पढ़ने का अनुरोध करेंगे। इधर हाल में अपने एक मित्र की कृपा से खुमान-कृत 'हनुमत शिखनख' की एक प्रति हमें देखने को मिली है। इसकी प्रतिलिपि छत्रसालपुर-निवासी ठाकुरप्रसाद नामक किसी व्यक्ति ने संवत् १९२५ में अपने पठनार्थ की है। यथा—

यह हनुमत सिखनख लिख्यो कवि ठाकुरपरसाद।
छत्रसालपुर में समुझि, मास असाढ़ निनाद (?)॥

संवत सर भुज अंक ससि सुदि असाढ़ की तीज।
लिखि ठाकुर कवि पाठ निज मन में करि तजबीज॥

अब हम पाठकों के अवलोकनार्थ हनुमत शिखनख का संपूर्ण पाठ नीचे दे रहे हैं। इसमें हनुमानजी के प्रत्येक अंग पर रचना की गई है। यद्यपि इसकी रचना लक्ष्मण शतक के समान उत्कृष्ट नहीं बन आई है, फिर भी बुरी नहीं है।

हनुमत शिखनख

हनुमत्माहात्म्य

दरस महेस को गनेस को अलभ सभा,
सुलभ सुरेस को न पेस है धनेस को।
पूजि द्वारपालनि बचाव प्रजापाल दिग-
पाल लोकपाल पावै महल प्रबेस को?
बेर बेर कौन दीन अरज सुनावै तहाँ,
यातें बिनैवान हौं नरेस अवधेस को।
'मान' कबि सेस के कलेस काटिबे को होई
हुकुम हठीले हनुमंत पै हमेस को॥ १॥

मंडन उमंडि तन मंडि खल खंडन को,
दौर दंड दाहिनो उठाए मरदान हैं।
चोटी चंडिका की वाम चुटकी चपेटि कै,
महिरावनै दपेटि कटि दावे बलवान हैं॥
भनै कबि 'मान' लसै बिकट लंगूर दीह,
दाहिने चरन चापे नान्तक महान हैं।
साँकिनी दरन हनै डाँकिनी डरनि हंकि,
हाँकिनी हरन काकिनी* के हनुमान हैं॥ २॥

* काकिनी गाँव चरखारी राज्य में है। उसी काकिनी के हनुमानजी की उपासना खुमान कवि करते थे और यह शिखनख उन्हीं हनुमानजी का है।—ले०।

महाकाय, महाबल, महाबाहु, महानख,
महानाद, महामुख, महा मजबूत हैं।
भनै कवि 'मान' महावीर हनुमान महा,
देवन के देव महाराज रामदूत हैं॥
पैठिके पताल कीन्ही प्रभु की सहाइ,
महिरावनै ढहाइबे को औढर सपूत हैं।
डाकिनी के काल साकिनी के जीवहारी सदा,
काकिनी के गिरि पै विराजैं पौन-पूत हैं॥ ३॥

शिखा

शूल जनु कासी हरिचक्र मथुरा सी राम-
तारक-विभा सी कोट भानु की प्रभा सी है।
ओज-उदभासी औढि अंजनी प्रकासी राज-
राजै अमृतासी पति पूजी जम-पासी है॥
तेज-बल-रासी कवि 'मान' हो हुलासी जन-
पोसन सुधा सी काम-वर्षन मघा सी है।
भाल ज्यों त्रिपासी दृग-ज्वाल अति त्रासी,
हनुमंत की शिखासी प्रलै-पावक-शिखा सी है॥ ४॥

केश

हाटक-मुकुट दिपै दीपति प्रगट कोटि,
भानु के प्रभानु जे विभानु धरिबो करैं।
सगर-अराति भरिराति तिन्हैं ताकि,
सरराते तेज तीसन भँडार भरिबो करैं॥
भनै कवि 'मान' जे सराहै हृषीकेस तिन्हैं,
ध्याय अलकेस व्यौमकेस लरिबो करैं।
बंदौं केस केसरी-कुमार के सुबेस जे,
हमेस गुड़ाकेस के कलेस हरिबो करैं॥ ५॥

ललाट

खल-दल खंडिबो बिहंडिबो विघन-वृंद,
राम-रति मंडिबो घमंडी घमासान को।
संकट कौ खालिबो प्रसन्न प्रन पालिबो,
असंतन को सालिबो प्रदाता बरदान को॥
भनै कबि 'मान' सुर संतन के त्रान लिख्यो—
जामें बिधि-सान तप तेज नहिं मान को।
ब्याज उदघाट करै अरिन उचाट काल-
बंचन कपाट यों लिलाट हनुमान को॥ ६॥

भाल

बज्र की भिलनि मंडिलनि की गिलनि,
रघुराज कपिराज की मिलनि मजबूत के।
सिंधु-मद भारिबो उजारिबो बिपिन लंक,
धारिबो उबारिबो बिभीपन के सूत के॥
भनै कवि 'मान' ब्रह्मसक्ति ग्रसि जान राम-
भ्राता-प्रान-दान द्रोन-गिरि के अकूत के।
रंजन धनी को सोक-गंजन सिया को लिखो,
भाल खल-भंजन प्रभंजन के पूत के॥ ७॥

भौंह

खटकी दसानन को चटकी चढ़ी सी वाकि,
घँटकी है सदा प्रान-कला अच्छ भट की।
ब्रह्मसक्ति फटकी-सु झटकी तरेरि पेखि
पटकी सटकि मेघनाद से सुभट को (?)॥
'मान' कवि रट की सुवट की प्रतिज्ञा पालि,
लटकी त्रिलोकी-जाति देखे जाहि मटकी।

प्रगटो प्रभाउ तेज त्रिकुटी तरल वंदौं;
भृकुटी विकट महावीर मर्कट की ॥ ८ ॥
सत्रु मतिमंद होत दूरि दुख-दुंद होत,
मंगल अनंद होत मौज लौं मनुज की।
भनै कवि 'मान' मन-बंछित की दानि भक्ति-
भाव की निदान है सिया सौ अनुज की ॥
साँची सरनागत की लागति सहाइ जापै,
जागति है ताक़ति न देवता दनुज की।
खल-दल-भंजनी है रंजनी प्रपन्न कृपा,
भौंह भय-भंजनी है अंजनी-तनुज की ॥ ९ ॥

श्रवण

जिन्हैं कोप कंपत अकंपत सकंप जे
तमीचर त्रियान तुद तोपन तुवन के।
पिंग होत पिंगल सुदड जात दंडवल,
नाठ होत माठर दिनेस के उवन के ॥
भनै कवि 'मान' युद्ध क्रुद्ध के बढ़त देखि
जिनके चढ़त प्रान छूटत दुवन के।
घोर विक्रमन अच्छ अच्छ के भ्रमन
बंदौ उग्र ते वे श्रवन समीर के सुवन के ॥१०॥
जहाँ जेते होत रघुवीर-गुन-गान तेते,
सुनत निदान दानि कौसनि अनंद के।
कुंडलनि मंडित उमंड खल खंडन की,
सोक सोक-नासनि सिया के दुख-दंद के ॥
भनै कवि 'मान' भरे ज्ञान के मयूप पियैं,
बचन-पियूप सदा राम-मुख-चंद के।

दीन पै द्रवन बिनैवान के स्रवन
बंदौं उग्र ते वे स्रवन समीरन के नंद के ॥११॥

नेत्र

तप भरे तेह भरे राम-पद-नेह भरे,
संतत सनेह भरे प्रेम की प्रभा भरे।
सील भरे साहस सपूती मजबूती भरे,
तर्ज भरे बाल-ब्रह्मचारी की चपा भरे॥
भनै कवि 'मान' दान सान भरे मान भरे,
घमासान भरे दुष्ट-दरन-द्रपा भरे।
सोचन के मोचन विरोचन कुत्रासन ते,
बंदौं पिंगलोचन के लोचन कृपा भरे ॥१२॥

सुदृष्टि

कोटि कामधेनु लौं धुरीन कामना के देत,
चिंता हरि लेत कोटि चिंतामनि कूत की।
बिथा चकचूरै कोटि जीवन-सुधा लौं सिंधु
पूरै कोटि कलपलता लौं पुरहूत की॥
भनै कवि 'मान' कोटि सुधा लौं सुधार कोटि
सिंधुजा लौं सुरदानि दान पंचभूत की।
गंजन विपत्ति मन-रंजन सुभक्ति भय-
भंजनि है नजर प्रभंजन के पूत की ॥१३॥

कुदृष्टि

बाड़व की बरनि जमदंड की परनि,
चिल्ली झार की झरनि रिस भरनि गिरीस की।
गाज की गिरनि प्रलै-भानु की किरनि चक्री-
चक्र की फिरनि फूतकार कै फनीस की॥

दावानल दीसनि कै रीसन मुनीसन की
मीसनि भरी की दंत पीसनि रनीस की।
काली कालकूट की कला है काल-कोप की कै
कुनजरि क्रुद्ध कौसलेस के कपीस की ॥१४॥

नासिका

ओज-उद्भासिका सुभासिका की रासिका, कै
अच्छ-प्रान-प्यासिका विलासिका वलनि की।
पौन उनचासिका की जरा-अनुसासिका, कै
तमीचर-त्रासिका है लासिका दलन की॥
भनै कवि 'मान' राम-स्वासिका-उपासिका, कै
अरि प्रलै वासिका उसासिका चलन की।
मुनि-मन-कासिका प्रकासिका विजै की,
धन्य पौन-पूत-नासिका बिनासिका खलन की॥१५॥

कपोल

कैयो ब्रह्मसक्ति निज सक्ति गिलि मेलि जिन,
झेली सत कोटि चोट फोटि जे सुमार के।
निज को निवाल बालभानु-चक्रवाल
कालनेमि के कराल काल तेज के तुमार के॥
भनै कवि 'मान' कीन्हे ब्रह्म-अस्त्र ग्रास जे वे,
त्रास के घमंड देन खलनि खुमार के।
मेलत अडोल जामें अरिन के गोल जे वे,
बिपुल कपोल वंदौ केसरी-कुमार के॥१६॥

पंचमुख

प्राचो कपि-बदन अरीन को कदन—
नरसिंघा रन दच्छिन सु भूत-प्रेत-अंत को।

पच्छिराज पच्छिम निगाह विपराह भंजि,
उत्तर वराह-मुख संपति अनंत को ॥
भनै कवि 'मान' तुंड ऊरघ तुरंग मानि,
विद्या-ज्ञान-दानि त्रानकारी सुर-संत को ।
रच्यो जो न रंच न विरंचि के प्रपंच मुख,
पंचक सु वंदौ पंचमुखी हनुमंत को ॥ १७ ॥
जामें मेल मुद्रिका समुद्र कूदि गो ज्यों अरि
ओड्यो जिहि कुलिस-प्रहार पुरहूत को ।
समर घमंड जासों ग्रस्यो है उदंड अत्र
कीन्हो मद खंडन अखंडल के सूत को ॥
'मान' कवि जासों वोलि अमृत अमोल वोल,
दंपति सुखद पद पायो राम-दूत को ।
मारतंड-मंडल अखंड गिल्यो जासों यह,
दौं मुख-मंडल प्रचंड पौन-पूत को ॥ १८ ॥

छत्रपन छाजै बल-विक्रम विराजै साजै
संतन समाजै सदा मौजन उमंग की ॥
'मान' कबि गाजै जन-भीति भंजि भाजै तेज—
श्राजै ताजै तरजै तराजै रवि रंग की ।
लाजै प्रलै-घन की गराजै गल गाजै बाजै
डुंदुभी तेगूज व गराजै बजरंग की ॥ २० ॥
लागी लंक लूकैं जगी ज्वाल की भभूकैं लखि,
ऊकै तो कतूकै तिय कूकैं जातुधान की ।
दिष्ट राज जू के कर दू कै पद छूकै चूकै
श्ररिन की मूँकैं........मघवान की ॥
धूकै सम धूकै जन प्रन को न चूकै—
'मान' कवि जस रूकै भीम रूकै दिपै भान की ।
खलन की भूंकै भूत-भय भजि ढूकै हिय—
हूकै दसकंठहू कै हूकै हनुमान की ॥ २१ ॥

श्रोंठ

एक नभ श्रोर एक भूतल के छोर—
ब्रह्मांड कोर तोर काल ग्रास श्रनुमंता के ।
देखि दल भिन्न होत श्ररि-उर भिन्न—
दसकंठ-मन खिन्न दुख छिन्न सिया-कंता के ॥
भनै कवि 'मान' मघवान रन-चाव जिन
दापि दले दरपि दिवाकर के जंता के ।
वीर रुद्रस के बनाए विधि गौंढ़ खल
ढोढ कर ते वे श्रोठ बंदौ श्रंचहंता के ॥ २२ ॥

दंत

संत स्रुति श्रंत बिरवंत बरनंत बल—
संवत श्रनंत हितवंत भगवंत के ।

पच्छिराज पच्छिम निगाह बिपराह भंजि,
उत्तर बराह-मुख संपति अनंत को ॥
भनै कवि 'मान' तुंड ऊरध तुरंग मानि,
विद्या-ज्ञान-दानि त्रानकारी सुर-संत को
रच्यो जो न रंच न बिरंचि के प्रपंच मुख,
पंचक सु बंदौं पंचमुखी हनुमंत को ॥
जामें मेल मुद्रिका समुद्र कूदि गो ज्यों अरि
ओड़्यो जिहि कुलिस-प्रहार पुरहूत को
समर घमंड जासों ग्रस्यो है उदंड अत्र
कीन्हो मद खंडन अखंडल के सुत को
'मान' कवि जासों बोलि अमृत अमोल बोल,
दंपति सुखद पद पायो राम-दूत को
मारतंड-मंडल अखंड गिल्यो जासों यह,
दौं मुख-मंडल प्रचंड पौन-पूत को।

गराज मुख

जाकी होत हूह उड़ैं अरिन के जूह, कूह
फैलत समूह सैन भागि जातुधान की
जाकी सुने हंक मच्यो लंक में असंक, लंक-
पति भो ससंक निधरक प्रीति जानकी ॥
भनै कवि 'मान' आसुरीन के अरभ गिरैं
गर्भिन गरभ सिंधु सरभ सँसान की।
अंबुद अवाज जासों लाजत तराज बंदौं,
बज्र ते दराज सो गराज हनुमान की ॥ १८ ॥
खल-दल काजै गाजै गिरती दराजै जन
जोम की मिजाजै सिरताजै सफ-जंग की।

छत्रपन छाजै बल-बिक्रम बिराजै साजै
संतन समाजै सदा मौजन उमंग की ॥
'मान' कवि गाजै जन-भीति भंजि भाजै तेज—
आजै वाजै तरजै तराजै रबि रंग की ।
लाजै प्रलै-घन की गराजै गल गाजै बाजै
दुंदुभी तेगूज व गराजै बजरंग की ॥ २० ॥
लागी लंक लूकैं जगी ज्वाल की भभूकैं लखि,
ऊकै तो कतूकै तिय कूकैं जातुधान की ।
दिट्ट राज जू के कर टू कै पद छूकै बूकै
अरिन की मूँकैं........मघवान की ॥
धूकै सम धूकै जन प्रन को न चूकै—
'मान' कवि जस रूकै भीम रूकै दिपै भान की ।
खलन की भूंकै भूत-भय भजि टूकै हिय—
हूकै दसकंठहू कै हूकै हनुमान की ॥ २१ ॥

ओठ

एक नभ ओर एक भूतल के छोर—
ब्रह्मांड फोर तोर फाल ग्रास अनुमंता के ।
देखि दल भिन्न होत अरि-उर मिन्न—
दसकंठ-मन खिन्न दुख छिन्न सिया-कंता के ॥
भनै कबि 'मान' मघवान रन-चाव जिन
दापि दले दरपि दिवाकर के जंता के ।
वीर रुद्ररस के बनाए बिधि गौंढ़ खल
ढोढ कर ते वे ओठ बंदौं अंजनी-

पच्छिराज पच्छिम निगाह विपराह भंजि,
उत्तर बराह-मुख संपति अनंत को ॥
भनै कवि 'मान' तुंड ऊरध तुरंग मानि,
विद्या-ज्ञान-दानि जानकारी सुर-संत को ।
रच्यो जो न रंच न विरंचि के प्रपंच मुख,
पंचक सु बंदौं पंचमुखी हनुमंत को ॥ १७ ॥
जामें मेल मुद्रिका समुद्र कूदि गो ज्यों अरि
ओड़यो जिहि कुलिस-प्रहार पुरहूत को ।
समर घमंड जासों ग्रस्यो है उदंड अत्र
कीन्ह्यो मद खंडन अखंडल के सूत को ॥
'मान' कबि जासों बोलि अमृत अमोल बोल,
दंपति सुखद पद पायो राम-दूत को ।
मारतंड-मंडल अखंड गिल्यो जासों यह,
दैौं मुख-मंडल प्रचंड पौन-पूत को ॥ १८ ॥

गराज मुख

जाको होत हूह उड़ैं अरिन के जूह, कूह
फैलत समूह सैन भागि जातुधान की ।
जाकी सुने हूंक मच्यो लंक में असंक, लंक-
पति भो ससंक निधरक प्रीति जानकी ॥
भनै कवि 'मान' आसुरीन के अरभ गिरैं
गर्भिन गरभ सिधु सरभ सँसान की ।
अंबुद अवाज जासों लाजत तराज वंदौं,
बज्र ते दराज सो गराज हनुमान की ॥ १९ ॥
खल-दल काजै गाजै गिरती दराजै जन
जोम की मिजाजै सिरताजै सफ-जंग की ।

ठोढ़ी

प्रगट प्रभान सो सुमेर की सिखा कैधौं
प्रखर सिंदूराचल-सानु बड़े सान की।
अरुन उमंड घनी घन की घटा है प्रलै-
पावक-छटा है कै हरनि अरि-प्रान की॥
समीरन अमी जैत्र पत्री जाहि झूमी झूमी
समर घमंड चंद्र चूमी पवमान की।
गोड़ी भानु मंडली बगोड़ी सुर-सैन लरि
ओड़ी बज्र ओट धन्य ठोढ़ी हनुमान की॥ २६॥

कंठ

जासौं बाहु मेलि मिले सानुज सकेलि राम,
अत्त कर झेलि कर्‍यो खेल मल्लपन को।
दाब्यो भुजबीस को दब्यो ना-बन्यो खोरि है न
जाको ओर-छोर बन्यो जोर खल गन को॥
भनै कवि 'मान' मनि-माला छबिवान हरि-
जस को निधान धरै ध्यान घनाघन को।
मल्यो है सुकंठ जो सराह्यो सितिकंठ रन—
बंदौं यह कंठ दसकंठ-रिपु-जन को॥ २७॥

कंध

लाए द्रोन अचल उपाटि धरि जापै ब्योम
ब्यापै बल कापै कहि जात मजबूत के।
हेम-उपवीत पीत बसन परीत जे घरैया
इंदजीत जुद्ध लच्छन सपूत के॥
भनै कवि 'मान' महा बिक्रम बिराजमान
भारी जान समर सराहे पुरहूत के।

जे फटकटंत लखि निसचर गिरंत भूत-
भैरव डरंत भट भागत भिरंत के ॥
'मान' कवि मंत्र जपवंत मैं ढरंत संत
अंतक हरंत जे करंत अरि अंत के।
बज्र ते दुरंत दुतिवंत दरसंत ज्वाल-
वंत ते ज्वलंत वंदौं दंत हनुमंत के॥ २३ ॥

दाढ़ी

रुद्ररस रेलै रन खेलै मुख मेलै मारि
असुरनि नासै जे उबारै सुर गाढ़ ते।
चपल निसाचर-चमूनि चकचूरै मद्दि—
पूरै लंक भाजत जरूरै जाढ़ पाढ़ ते॥
जननि को ढाढ़ै सोक-सागर ते काढ़ै सान—
साढ़ै गुन बाढ़ै बल बाढ़ै बज्र पाढ़ ते।
परे प्रान पाढ़ै दलि दुष्टन को दाढ़ै धन्य
पौनपूत-दाढ़ै ढतै काढ़ै जमदाढ़ ते॥ २४ ॥

रसना

सिया-सोक गंजि मन रंजि फल जासौं मंजु-
स्वाद भंजि बाटिका त्रिकूट पुरहूत के
जहाँ बानी ग्रास जानै जानकी बिलास
महानाटक प्रकास कथ प्रभु की
भनै कवि 'मान' गान बिद्या में सुजान
आगम पुरान इतिहास के
असना निहारी जपै राम-जस नेम
बसना सुरसना प्रभंजन

ठोढ़ी

प्रगट प्रभान सो सुमेर की सिखा कैधौं
प्रखर सिंदूराचल-सानु बड़े सान की।
अरुन उमंड घनी घन की घटा है प्रलै-
पावक-छटा है कै हरनि अरि-प्रान की ॥
समीरन ऊमी जैत्र पत्री जाहि झूमी छूमी
समर घमंड चंद्र चूमी पवमान की।
गोड़ी भानु मंडली बगोड़ो सुर-सैन लरि
श्रोड़ी वज्र श्रोट धन्य ठोढ़ी हनुमान की ॥ २६ ॥

कंठ

जासों वाहु मेलि मिले सानुज सकेलि राम,
अस्त्र कर झेलि कर्‍यो खेल मल्लपन को।
दाब्यो भुजबीस को दब्यो ना-बन्यो खोरि है न
जाको ओर-छोर बन्यो जेर खल गन को ॥
भनै कबि 'मान' मनि-माला छबिवान हरि-
जस को निधान धरै ध्यान घनाघन को।
मल्यो है सुकंठ जो सराह्यो सितिकंठ रन—
वंदौं यह कंठ दसकंठ-रिपु-जन को ॥ २७ ॥

कंध

लाए द्रोन अचल उपाटि धरि जापै व्योम
व्यापै बल कापै कहि जात मजबूत के।
हेम-उपवीत पीत बसन परीत जे धरैया
इंद्रजीत जुद्ध लच्छन सपूत के ॥
भनै कबि 'मान' महा विक्रम विराजमान
भारी जान समर सराहे पुरहूत के।

जे कटकटंत लखि निसचर गिरंत भूत-
भैरव डरंत भट भागत भिरंत के ॥
'मान' कवि मंत्र जपवंत मैं ढरंत संत
अंतक हरंत जे करंत अरि अंत के।
बज्र ते दुरंत द्युतिवंत दरसंत ज्वाल-
वंत ते ज्वलंत बंदौं दंत हनुमंत के ॥ २३ ॥

दाढ़ी

रुद्ररस रेलै रन खेलै मुख मेलै मारि
असुरनि नासै जे उबारै सुर गाढ़ ते।
चपल निसाचर-चमूनि चकचूरै महि—
पूरै लंक भाजत जरूरै जाढ़ं पाढ़ ते ॥
जननि को ढाढ़ै सोक-सागर ते काढ़ै सान—
साढ़ै गुन बाढ़ै बल बाढ़ै बज्र बाढ़ ते।
परे प्रान पाढ़ै दलि दुष्टन को दाढ़ै धन्य
पौनपूत-दाढ़ै उते काढ़ै जसदाढ़ ते ॥ २४ ॥

रसना

सिया-सोक गंजि मन रंजि फल जासों मंजु-
स्वाद भंजि बाटिका त्रिकूट पुरहूत की।
जहाँ बानी बास जानै जानकी बिलास
महानाटक प्रकास कथ प्रभु की प्रभूत की ॥
भनै कवि 'मान' गान विद्या में सुजान बेद—
आगम पुरान इतिहास के अकूत की।
असना निहारी जपै राम-जस नेम विपै
यसना सुरसना प्रभंजन के पूत की ॥ २५ ॥

ठोढ़ी

प्रगट प्रभान सो सुमेर की सिखा कैधौं
प्रखर सिंदूराचल-सानु बड़े सान की।
अरुन उमंड घनी घन की घटा है प्रलै-
पावक-छटा है कै हरनि अरि-प्रान की॥
समीरन ऊमी जैत्र पत्री जाहि झूमी छूसी
समर घमंड चंद्र चूमी पवमान की।
गोड़ी भानु मंडली बगोड़ी सुर-सैन लरि
ओड़ी बज्र ओट धन्य ठोढ़ी हनुमान की॥ २६॥

कंठ

जासों बाहु मेलि मिले सानुज सकेलि राम,
अच्छ कर झेलि कर्‍यो खेल मल्लपन को।
दाब्यो भुजबीस को दब्यो ना-बन्यो खोरि है न
जाको ओर-छोर बन्यो जोर खल गन को॥
भनै कवि 'मान' मनि-माला छविवान हरि-
जस को निधान धरै ध्यान घनाघन को।
मल्यो है सुकंठ जो सराह्यो सितिकंठ रन—
वंदौं यह कंठ दसकंठ-रिपु-जन को॥ २७॥

कंध

लाए द्रोन अचल उपाटि धरि जापै व्योम
व्यापै बल कापै कहि जात मजबूत के।
हेम-उपवीत पीत बसन परीत जे धरैया
इंद्रजीत जुद्ध लच्छन सपूत के॥
भनै कवि 'मान' महा विक्रम विराजमान
भारी जान समर सराहे पुरहूत के।

जापै दीनबंधु सहित चढ़ाए ते वे
वंदौ जुग कंध दसकंधरि-प्रदूत के ॥ २८ ॥

भुजा

गिरि गढ़ ढाहन सनाहन हरन वार
क्रुद्ध ह्वै करन वार खल-दल भंग के।
'मान' कवि ओज उद्भूत मजबूत महा,
बिक्रम अकूत धरै तूव सफजंग के ॥
ठोकत ही जिन्हैं रन-ठौर तजि भाजै अरि
ठहरै न ठीक ठाक उमड़ि उमंग के।
भारी बलवंत कालदंड ते प्रचंड वंदौं,
उदित उदंड भुजदंड बजरंग के ॥२९॥
पूजी जे उमाहै भारी बल की उमाहै लोक—
छाही महिमा है प्रभुकारज प्रभूत की।
अरि-दल दाहै काल-दंड की उजाहै सुर—
मेटवी रुजाहै कै सनाहै पुरहूत की ॥
'मान' कवि गाहै सदा जासु जस गाहै
ओज थाहै अवगाहै जे निगाहै रनतूत की।
खलन को ढाहै करै दीनन पै छाहै जोम—
जन को निबाहै धन्य बाँहै पौनपूत की ॥३०॥

राम-रन-रंजा गज-कर्न-गल-गंजा रन—
अस्त्र मुख भंजा धन्य पंजा महाबल के ॥३१॥

मुष्टिका

फोरयो कुंभ-मस्तक लथोरयो कंध काली जिहि,
काली को झकोरयो मद मोरयो मघवंत को।
घोरानन घोरयो व्योम-वीथिनि विथोरयो
निरधूतकाय झोरयो कष्ट तोरयो सुर-संत को॥
माली को मरोरयो जम्बुमाली झकझोरयो
कवि 'मान' जस जोरयो छोरयो संकट अनंत को।
अरिन पै रुष्ट बज्र निरधुष्ट दुष्ट दारुन
सुपुष्ट बंदौं मुष्ट हनुमंत को ॥३२॥

चुटकी

खुटकी बुटो लौं नाग घुटकी उसक गटो
गुटकी गटकि गहि जाने वेज तुटकी।
फुटकी लौं फेंकि महा कुटकी विटप जाने,
समर में सुटकी सपूती सिया मुटकी॥
रुटकी है पुटकी प्रलै की पुटकी सी रोग
टुटकी हरनि 'मान' काल के लकुट की।
चुटकीन लंक घृटि घुटकी मसोसी चंड—
चुटकी सु बंदौं हनुमंत पानि-पुटकी ॥३३॥

अँगूठा

पावै जोम कुष्ट जपै मंच सर्व घुष्ट नष्ट,
ताको जुर कष्ट सुष्ट दाता बरदान को।
'मान' कवि तुष्ट देव दासन को, दुष्ट मीड़ि
मारै खल खुष्ट काल दुष्टन के प्रान को॥

जापै दीनबंधु सहित चढ़ाए ते वे
वंदौं जुग कंध दसकंधरि-प्रदूत के ॥ २८ ॥

भुजा

गिरि गढ़ ढाहन सनाहन हरन वार
क्रुद्ध ह्वै करन वार खल-दल भंग के।
'मान' कवि श्रोज उद्भूत मजबूत महा,
विक्रम अकूत धरै तूव सफजंग के॥
ठोकव ही जिन्हैं रन-ठौर तजि भाजैं अरि
ठहरै न ठीक ठाक उमड़ि उमंग के।
भारी बलवंत कालदंड ते प्रचंड वंदौं,
उदित उदंड भुजदंड वजरंग के ॥२६॥
पूजो जे उमाहै भारी बल को उमाहै लोक—
छाही महिमा है प्रभुकारज प्रभूत की।
अरि-दल दाहै काल-दंड को उजाहै सुर—
मेटती रुजाहै कै सनाहै पुरहूत की॥
'मान' कवि गाहै सदा जासु जस गाहै
ओज थाहै अवगाहै जे निगाहै रनतूत की।
खलन को ढाहैं करै दीनन पै छाहैं जोम—
जन को निवाहै धन्य बाँहै पौनपूत की ॥३०॥

पंजा

मीड़ि महि-मंडल कमंडल यौं खंडे कोपि
फोरै ब्रह्मांड,को समान अंड फूल के।
बज्र हूँ ते जिनके प्रहार हैं प्रचंड घोर
कालदंड दंड ते उमंड झला झलके॥
भनै कवि 'मान' सरनागत सहाइ करैं,
अरिन ढहाइ जे बढ़ाई बल खल के।

राम-रन-रंजा गज-कर्न-गल-गंजा रन—
अच्छ मुख भंजा धन्य पंजा महाबल के ॥३१॥

मुष्टिका

फोरयो कुंभ-मस्तक तयोरयो कंध काली जिदि,
काली की झकोरयो मद मोरयो मघवंत को।
घोरानन घोरयो व्योम-बीथिनि बिघोरयो
निरधृतकाय भोरयो कष्ट तोरयो सुर-संत को॥
माली को मरोरयो जम्बुमाली झकझोरयो
कवि 'मान' जस जोरयो छोरयो संकट अनंत को।
अरिन पैं रुष्ट वज्र निरधुष्ट दुष्ट दारुन
सुपुष्ट बंदौं मुष्ट हनुमंत को ॥३२॥

चुटकी

खुटकी चुटी लौं नाग घुटकी उसक गटी
गुटकी गटकि गहि जाने तेज तुटकी।
फुटकी लौं फेंकि मद्दा कुटकी विटप जाने,
समर में सुटकी सपूती सिया मुटकी॥
रुटकी है पुटकी प्रलै की पुटकी सी रोग
टुटकी हरनि 'मान' काल के लकुट की।
चुटकीन लंक घृटि घुटकी मसोसी चंद—
चुटकी सु बंदौं हनुमंत पानि-चुटकी ॥३३॥

अँगूठा

पावै ओम कुष्ट जपै मंच सबै घुष्ट नष्ट,
वाको जुर,कष्ट सुष्ट दाता बरदान को।
'मान' कवि तुष्ट देव दासन को, दुष्ट मीड़ि
मारे खल खुष्ट काल दुष्टन के प्रान को॥

जापै दीनबंधु' सहित चढ़ाए वे वे
वंदौं जुग कंध दसकंधरि-प्रदूत के ॥ २८ ॥

भुजा

गिरि गढ़ ढाहन सनाहन हरन वार
मुद्ध है करन वार खल-दल भंग के।
'मान' कवि ओज उद्भूत मजबूत महा,
विक्रम अकूत धरै तूव सफजंग के ॥
ठोकत ही जिन्हैं रन-ठौर तजि भाजै अरि
ठहरै न ठीक ठाक उमड़ि उमंग के।
भारी बलवंत कालदंड ते प्रचंड' वंदौं,
उदित उदंड भुजदंड वजरंग के ॥२९॥
पूजी जे उमाहैं भारी वल की उमाहै लोक—
छाही महिमा है प्रभुकारज प्रभूत की।
अरि-दल दाहै काल-दंड की उजाहै सुर—
मेटती रुजाहै कै सनाहै पुरहूत की ॥
'मान' कवि गाहै सदा जासु जस गाहै
ओज थाहै अवगाहै जे निगाहै रनतूत की।
खलन को ढाहैं करै दीनन पै छाहै जोम—
जन कौ निवाहै धन्य वाँहै पौनपूत की ॥३०॥

पंजा

मींड़ि महि-मंडल कमंडल यौं खंडे कोपि
फोरै ब्रह्मांड को समान थंड फूल के।
वज्र हूँ ते जिनके प्रहार हैं प्रचंड घोर
कालदंड दंड ते उमंड झला झलके ॥
भनै कवि 'मान' सरनागत सहाइ करैं,
अरिन ढहाइ जे बढ़ाई वल खल के।

रास-रन-रंजा गज-कर्न-गल-गंजा रन—
अच्छ मुख भंजा धन्य पंजा महाबल के ॥३१॥

मुष्टिका

फोरयो कुंभ-मस्तक लथोरयो कंध काली जिहि,
काली को झकोरयो मद मोरयो मघवंत को।
घोरानन घेरयो व्योम-वीथिनि विथोरयो
निरधूतकाय झोरयो कष्ट तोरयो सुर-संत को॥
माली को मरोरयो जम्बुमाली झकझोरयो
कवि 'मान' जस जोरयो छोरयो संकट अनंत को।
अरिन पै रुष्ट वज्र निरघुष्ट दुष्ट दारुन
सुपुष्ट बंदौं मुष्ट हनुमंत को॥३२॥

चुटकी

खुटकी बुटी लीं नाग घुटकी उसक गटी
गुटकी गटकि गहि जाने तेज तुटकी।
फुटकी लौं फेंकि महा कुटकी विटप जाने,
समर में सुटकी सपूती सिया मुटकी॥
रुटकी है पुटकी प्रलै की पुटकी सी रोग
टुटकी हरनि 'मान' काल के लकुट की।
चुटकीन लंक घूटि घुटकी मसोसी चंड—
चुटकी सु बंदौं हनुमंत पानि-पुटकी॥३३॥

अँगूठा

पावै जोस कुष्ट जपै मंच सर्व घुष्ट नष्ट,
वाको जुर कष्ट सुष्ट दाता बरदान को।
'मान' कवि तुष्ट देत दासन को, दुष्ट मीड़ि
मारै खल खुष्ट काल दुष्टन के प्रान को॥

विक्रम हि सो जु राखैं मुष्ट को सुपुष्ट तेज,
मुष्ट करै वज्रनि रघुष्ट मघवान को।
लंक रन रुष्ट हनै : बाज गज रुष्ट वंदौं
दुष्ट-दल-भंजन- अंगुष्ठ हनुमान को ॥३४॥

उँगली

खड्ग त्रिसूल खेट खट्वा अंग भिंडिपाल,
लिए गिरि लंक गर्भ आसुरी तुवन की।
मुदगर-बलित कमंडल कलित ज्ञान
मुद्र सो ललित फास नासन दुवन की॥
भनै कवि 'मान' फल-मानि के बिमान भानु,
भाहि जिन गंजि प्रभा काल ह्वी छवन की।
अंग करि मंडित अभंगुली कुलिश पाठ,
वंदौं साठ अंगुली- त्रै अंजनी-सुवन की ॥३५॥

चपेटा

तरनि के त्रासनि जे ग्रासनि -अकंपन की,
प्रासनि बिनासनि जो काम निरधूत की।
त्रिसिरा-तरासनि निकुंभ की निरासनि,
हिरासनि हुड़कि धूमलोचन अकूत की॥
भनै कवि 'मान' जो खखेटनि खलनि जो,
सुसेटनि ससेट भगी सेना पुरुहूत की।
लंकिनी लपेटनि दपेटनि दलनि वंदौं,
अच्छ की चपेटनि चपेट पौनपूत की ॥३६॥

अंजलि

संत-हित-वादिनी है प्रभु की प्रसादिनी है,
अरि-उतसादिनी है प्यारी पुरुहूत की।
अंजनी-प्रमादिनी है सिया-अहलादिनी है,

लंक-मनुजादिनी-विदारन के तूत की ॥
मीचु दसकंठ की सुकंठ की मिताई बाल-
कंठ की कटाई सितकंठ हित दूत की।
वंजुली-मुकुल कंज-कुंडमल मंजुली
सु बंदौं कर-अंजुली प्रभंजन की पूत की ॥ ३७ ॥

छाती

सेर जुत साहस सुमेरु की सिला है, किधौं
उपज इला है बाल विक्रम के तूत की।
किधौं दससीस-बल पीसवे की पेपनी है,
रेखनी है किधौं कोट वृत्र के अकूत की ॥
'मान' कवि किधौं कला काल के कपाटनि-की
अरि-उद्घाटनि को पाट मजबूत की।
वीर-मद-माती रन-रोस सौं धँधाती राम-
भक्ति-रस-राती धन्य छाती पौनपूत की ॥ ३८ ॥

उदर

भरयो जात जामें सिया-राम को प्रसाद जो
विषाद हरदाया को निधान वे गरज को।
प्रगटे त्रिलोक जाते नाग नर देव अद्य-
देव कुक्षि सातहू समुद्र के दरज को ॥
भनै कवि 'मान' नदी नाड़ी वहै आड़ी जोति—
जोग कल माड़ी तप तेज के तरज को।
प्रलै को अखंड ब्रह्मांड को पिठर लोह
लठर जठर बंदौं पौन-जठरज को ॥ ३९ ॥

कटि

मृगपति-लंक वंक रंक छवि लागे स-
कलंक लंक जारे कल किंकिनी के रट को।

भनै कबि 'मान' तेजपुंज मुंज मेखला को—
कोपीन वर्जे धर्जे ब्रह्मचर्य उत्तकट को ॥
अरि-दल-मेटन को सुजस-समेटन को
बंधी लखि फेंट रहै निर्भय निपट को।
लपटो निपट जामें पुरट को पीत पट,
बंदौं कटि विकट प्रकट मरकट को ॥ ४० ॥

लंगूर

सूलधर-सूल कै ससूल समतूल द्रोन—
सूल-उनमूल, मूल मंगल अनंत को।
मेरु-सम थूल बल-विक्रम अतूल, परै
लंकपुर हूल फूल-फल कर संत को ॥
सिया दुख भूल सुख रावन के धूल रिपु
रूल रोप भूल जै कबूल भगवंत को।
खल-प्रतिकूल हरिभक्त अनुकूल बंदौं
सिंधुकूल फूलन लंगूर हनुमंत को ॥ ४१ ॥
राखै निज कुच्छि व्यापि ब्रह्म लौं अतुच्छ कपि
रिच्छ-दल सुच्छ जो है कुच्छ कुलवंत को।
सुखद सुमुच्छ हेतु उच्च तर भुच्छ केतु
कंटक मुमुच्छ नाम दुच्छ रज पंथ को ॥
भनै कबि 'मान' महा गरभ को गुच्छ पेखि
पंचसत दुच्छ पूज्यो गुच्छ बलवंत को।
बच्चपति उच्च लौं रिपुच्छय को रुच्छ
घमसान मुख सुच्छ बंदौं पुच्छ हनुमंत को ॥ ४२ ॥
खल-दल-खंडन बिजै को धुज-दंड, कै
कराल कालदंड कालनेमि के निपात को।
लंक-दाह-देन धूमकेतु को निकेतु, कै

निसाचर-बिनास हेतु केतु उतपात को ॥
भनै कवि 'मान' रन-मंडप को खंभ, कैधौं
बंधन को रज्जु दसकंधर के जात को ।
संभु-जटा-जूट, कै अपार हेमकूट, कै
त्रिकूट-कूट-गंजन लंगूर बातजात को ॥ ४३ ॥

ऊरु

खलनि को खूँदि बज्र-बेग-मद मूँदि जे वै
सिंधु कूदि सुखद सिया को राम रंजनी ।
जीते इंद्रजीत की छड़ाई कै चढ़ाई बजी
विक्रम बड़ाई जे लड़ाई लाड़ अंजनी ॥
भनै कवि 'मान' बड़े बल के बिलास धूम-
नास को बिनास दसकंध-मद-भंजनी ।
धका की गरूरी करै धराधर धूर-धन्य
पौनपूत-ऊरु जे असुर-गर्भ-गंजनी ॥ ४४ ॥

जानु

कीन्हो धूमनास को बिनास जिन रौंदि खौंदि,
लाखन को खंडित जे मंडित समर के ।
ठोकर के लागे जासु मंच कै अचल कंपि
ससकै कमठ सेस बल के उभर के ॥
भनै कवि 'मान' महा-विक्रम-निधान, मल्ल-
विद्या के विधान प्रानप्यारे रघुवर के ।
पालत प्रजानि भंजि अरि की भुजानि ते वे,
बंदौं जुग जानु जानकी के सोक-हर के ॥ ४५ ॥

जंघा

मसक लौं जिनसों मसोस्यो खग रोम खंडि
खलन को खोम जोम जीते रन रंग की ।

कालदंड हू ते जे कराल, ववकाल जिन
कीन्हों अच्छ कील कालनेमि हू के अंग की ॥
भनै कवि 'मान' लंक जिनसौं प्रधान सो
प्रधान मीड़ि मारे बड़े विक्रम अडंग की ।
हरै जनु अंघै सिंधु सातहूँ उलंघै भरी
बल रंघै धन्य जंघै बजरंग की ॥४६॥

चरण

एक बार पार पूरि रहे पारावार है न
वारापार पार बल-विक्रम अकूत के ।
जिनके धरत डग धरनी उगत धिग
धाराधर धक्कनि सौं धूरि होत धूत के ॥
भनै कवि 'मान' करैं संतत सहाइ जे
ढहाइ खल-गर्व गंज गरुड़-गरूर के ।
चापि चूरे जिनसौं निसाचर उदंड ते वे
प्रबल प्रचंड बंदौं चरन पौन-पूत के ॥ ४७ ॥
गोपद-बरन तोयनिधि के तरन अच्छ-
दल के दरन जे करन अरि-अंत के ।
आपदुद्धरन देवा दीन पै धरन,
कालनेमि-संघरन उर-आभरन संत के ॥
औढर-ढरन 'मान' कवि के भरन चारौं
फल के फरन जय-करन जयवंत के ।
असरन-सरन अमंगल-हरन बंदौं
ऋद्धि-सिद्धि-करन चरन हनुमंत के ॥४८॥

नख

ऊरधवदन के धदन के कदन
विरदन के सदन गज रदन के अंत के ।

कालनेमि-तन के विदीरन-करन
  अवदीरन-करन धूमलोचन दुरंत के ॥
भनै कवि 'मान' हलाहल के समान
  मघवान के गुमान गंज भंजन दुखंत के।
सूल ते सखर अच्छ वच्छ के वखर (?) वंदौं
  वज्र हूँ ते प्रखर नखर हनुमंत के ॥४९॥

सर्वांग

राम-रज-भाल की जै रवि गिल गाल की जै,
  अंजनी के लाल की कराल छाँकवारे की।
वीर बरिवंड की उदंड भुजदंड की जै,
  महामुखमंड की प्रचंड नाकवारे की ॥
भनै कवि 'मान' हनुमान बजरंग की जै,
  अचनि अभंग की बँकैत बाँकवारे की।
जै जै सिंधु नाकुरे की, ढाल पग ठाकुरे की
  फाकिनि के बाँकुरे की बाँकी टाँगवारे की ॥५०॥

सर्व-शरीर

ज्वाला सों जलै ना जल-जोग सों गलै ना,
  अस्त्र-सस्त्र सों घलै ना जो चलै ना जिमी जंग की।
कालदंड ओट सत कोट की न लागै चोट,
  सात कोटि महामंत्र मंत्रित अभंग की ॥
भनै कवि 'मान' मघवान मिलि गीरवान,
  दीन्हें बरदान पवमान के प्रसंग की।
जीते मोह-माया मारि कीन्हीं छार छाया,
  रामजाया करी दाया धन्य काया बजरंग की ॥ ५१ ॥

रोमराजि

अरुन ज्यों भौम सो मदगलौ असोम सोम,
कोमल ज्यों छोम कर फेरै सियाकंत के।
कहा प्रलै-धोम मुनि लोमस के रोम रन,
वैरिनि-विलोम अनुलोम सुर-संत के॥
बज्र मृदु मोमद बिभानु सम सोम जे,
असोम ग्रह सोम कर ओमन के अंत के।
खलन के खोम हव्यजा में होत होम जोम
ज्वालन को तोम नौमि रोम हनुमंत के॥ ५२॥

ओज-बल-बलित ललित लहरत लखि
जाहिं हहरत किए सेना सुनासीर की।
कलप-कृसानु के प्रमानु ज्वालावान
कोटभानु के प्रमानु के समानु रनधीर की॥
भनै कवि 'मान' मालिवान-भट-भंजिनी है
अंजनी-सुखद मनरंजनी समीर की।
जापै राम राजी कोटि बज्र ते तराजी यह
बंदौं तेज ताजी रोमराजी महाबीर की॥ ५३॥

बाँचै डेढ़मासा सोक-संकट बिनासा, सात—
पैतप को तमासा वासा मंगल अनंत को।
बिभव बिकासा मनबंछित प्रकासा, दसौ—
आसा सुख संपति बिलासा कर संत को॥
महाबीर सासा पूजि बीरा औ बतासा, करै—
बिपति को ग्रासा तन-त्रासा अरि अंत को।
सिखनि सुखासा रिद्धि-सिद्धि को निवासा
यह दास-आस पूरै पै पचासा हनुमंत को॥५४॥

(१६) विविध विषय

[१] सावयधम्म दोहा

मूल-लेखक देवसेन; अनुवादकर्त्ता प्रोफेसर हीरालाल जैन एम० ए०, एल-एल० बी०; दोहा-संख्या २२४; पृष्ठ-संख्या १२५; मूल्य २॥); प्रकाशक सेठ गोपालदास चवरे, कारंजा, बरार।

यह 'अंबादास चवरे दिगंबर जैन ग्रंथमाला' का द्वितीय ग्रंथ है। चवरे संस्था का परिचय उसके प्रथम ग्रंथ जसहर-चरिउ की समालोचना करते समय इस पत्रिका में एक बार दिया जा चुका है। कारंजा के सेठ अंबादास चवरे ने पर्याप्त दान देकर जैन प्राचीन ग्रंथों के छपाने का प्रशंसनीय प्रबंध कर दिया है। कारंजा के जैन मंदिरों में अनेक प्राचीन ग्रंथों का संकलन है। प्रस्तुत ग्रंथ सेनगण मंदिर के भंडार से से लिया गया है और उसके संशोधन के लिये भारतवर्ष के अनेक स्थानों से सामग्री इकट्ठी की गई है जिसको श्रीयुत हीरालाल जैन ने छानबीन कर मूल-पाठ को स्थिर करने का कुशलतापूर्वक प्रयत्न किया है। उन्होंने मूल के सामने हिंदी अनुवाद देकर इस दसवीं शताब्दी की अपभ्रंश भाषा में लिखित पुस्तक का अर्थ सर्व-साधारण के समझने योग्य कर दिया है और भाषा-तत्त्वज्ञों के लिये सारगर्भित भूमिका लिखकर उस समय की भाषा और ग्रंथकर्ता पर विशेष प्रकाश डाला है। अंत में शब्दकोश और टिप्पणी लगाकर मूल के पूर्ण अध्ययन के लिये मार्ग सुगम कर दिया है।

अनुमानतः दोहा छंद का प्रचार इस ग्रंथ के कर्त्ता देवसेन के समय के आस-पास ही हुआ क्योंकि उसने इस ग्रंथ के पूर्व और एक ग्रंथ दोहों में लिखा था। उस समय एक मित्र के हँस देने पर

उसको गाथा में परिवर्त्तित करना पड़ा था। परंतु देवसेन की रुचि दोहे पर कदाचित् प्रबल थी, इसलिये उसने यह दूसरा ग्रंथ दोहों में फिर रच डाला। इसमें जैन-धर्म के आचार-विचार का वर्णन है और जैन श्रावकों के लिये विशेष उपयोगी है। मूल लेखक आदि ही मे लिखता है—णमकारे पिणु पंचगुरु दूरि दलिय दुहकम्मु। संखेवे पयडक्खरहि अक्खमि सावयधम्मु ॥" अर्थात्—"दुःखकर्मों का नाश करनेवाले पंचगुरु को नमस्कार करके मैं संक्षेप में प्रकट शब्दों द्वारा श्रावक धर्म का व्याख्यान करता हूँ।" इस ऊपर के उद्धरण में पाठक ग्रंथकर्त्ता की भाषा तथा छंद और अनुवादकर्ता के अनुवाद का नमूना भी देख सकते हैं।

हीरालाल

---

[२] वीर-विभूतिः

जैन युवक-संघ, बड़ौदा ने न्यायविशारद, न्यायतीर्थ श्री न्यायविजयजी के "वीर-विभूतिः" नामक संस्कृत सप्त-पंचाशिका का शुद्ध सरस गुजराती अनुवाद सज-धज के साथ प्रकाशित किया है। एक पृष्ठ में श्लोक तथा दूसरे में उसका अर्थ— इस प्रकार ११५ पृष्ठों में महाराज महावीर की मातृभक्ति, पितृ-सेवा तथा उनका उत्कृष्ट सदाचार वर्णित है। इसमें संदेह नहीं कि मूल-लेखक द्वारा अनुवाद शुद्ध हार्दिक भावों का विशिष्ट चित्रण कर देता है। इस अनुवाद में यही खास विशेषता है। नवयुवकों के लिये ही यह पुस्तक लिखी गई है। आशा है, इसमें वर्णित, कुत्सित वातावरण से बचकर अपना आदर्श जीवन बनाने में उन्हें खासी सफलता प्राप्त होगी। पुस्तक पठनीय है। जैन धनिकों की यह प्रवृत्ति स्तुत्य है।

साँवलजी नागर

---

[३] पदमावत की लिपि तथा रचना-काल

'पदमावत की लिपि तथा रचना-काल' (ना० प्र० प० भाग १२, अंक १-२) नामक लेख में हमने यह सिद्ध करने की चेष्टा की थी कि पदमावत की लिपि कैथी तथा उसका रचना-काल सन् ६२७ से सन् ६४८ हिजरी तक है। श्रद्धेय ओझाजी ने हमारे इस कथन को असाधु सिद्ध करने का कष्ट किया है। जहाँ तक हमसे हो सका है, हमने श्री ओझाजी की सम्मतियों पर विचार किया है; फिर भी हमें अपना मत ही साधु प्रतीत होता है। निदान, हमारा यह धर्म है कि हम एक बार फिर इस विषय पर कुछ विचार करें और देखें कि श्रद्धेय ओझाजी की बातें हमें क्यों अमान्य हैं। श्री ओझाजी की प्रथम टिप्पणी (पृ० १०५) में कहा गया है—"जायसी ने पदमावत हिंदी में लिखी या उर्दू में यह अनिश्चित है, परंतु हिजरी सन् ६४७ का ६२७ हो जाना यही बतलाता है कि यह भ्रम उर्दू लिपि के कारण ही हुआ हो।" आगे चलकर आप कहते हैं—"यदि मूल प्रति हिंदी लिपि में होती तो ४ के स्थान में २ पढ़ा जाना सर्वथा असंभव था, यदि हि० स० ६२७ में उसकी रचना हुई होती तो ६४७ लिखने की आवश्यकता सर्वथा न थी। हि० स० ६४७ में शेरशाह दिल्ली के साम्राज्य का स्वामी बन चुका था।······अधिकतर प्रतियों में सन् ६४७ हि० ही मिलता है वही मानने योग्य है।······यदि शेरशाह के राज्याभिषेकोत्सव के बाद उसने शेरशाह की वंदना लिखी होती तो वह रचना का सन् भी राज्याभिषेक के बाद का धर देता।"

साहस तो नहीं होता, पर सत्य के अनुरोध से गुरुजनों की सेवा में नम्र निवेदन न करना अपराध ही समझा जायगा; अतः कुछ निवेदन करना उचित जान पड़ता है। पदमावत की लिपि के विषय में हमारा कथन था कि वह कैथी लिपि थी। श्री ओझाजी का कहना है कि वह उर्दू लिपि थी। अपने मत के प्रतिपादन

में ओझाजी जो प्रमाण देते हैं वह स्वतः विचाराधीन है। आप एक प्रकार से यह निश्चित समझ लेते हैं कि ४ के स्थान पर २ हो जाने का एकमात्र कारण उर्दू लिपि ही है। कहने की आवश्यकता नहीं कि भ्रमवश ४ का २ या २ का ४ पढ़ा जाना दोनों पक्ष में तुल्य ही है। हमारी समझ में २ के स्थान पर ४ करने के लिये शेरशाह का दृढ़ आधार है, ४ से २ करने के लिये केवल अनुमान। यह नित्यप्रति की बात है कि संदिग्ध स्थल पर बुद्धि से काम लिया जाता है। हमको तो इसमें कुछ भी संदेह नहीं है कि यह ४ बुद्धि का प्रसव है, जिसकी कल्पना शेरशाह के शाहेवक्त में निहित है। पाठभेद का कारण यह नहीं कहा जा सकता कि स्वयं मूल-पदमावत की लिपि उर्दू थी; क्योंकि सभी प्रतियों का आधार वही नहीं है। स्पष्ट है कि सबसे प्राचीन प्रति जो बँगला में उपलब्ध है उसमें सन् ६२७ है। इसमें तो किसी को आपत्ति नहीं हो सकती कि यह अनुवाद यथाशक्य सावधानी से किया गया था। इसका एक मुख्य कारण यह है कि इसका संबंध एक विदेशी राजा से था, जो पदमावत का अद्वितीय भक्त था। संभवतः यह प्रति कैथी में ही रही होगी। अन्य अनूदित प्रतियों के विषय में हमारी धारणा है कि उनमें अधिकतर सन् ६२७ ही है। मिश्रबंधुओं तथा राय साहब श्यामसुंदरदास की सम्मति भी यही है। यदि उपलब्ध पुस्तकों की तालिका बने तो इस कथन में किसी को भी आपत्ति नहीं हो सकती। सन् ६३६ किसी किसी में मिलता है; पर वह त्याज्य समझा गया है। इस पाठभेद का कारण यह है कि धीरे धीरे उर्दू लिपि के प्रचार के कारण पदमावत भी उसी लिपि को अपनाने लगी। लोग एक लिपि से दूसरी लिपि में लिखने लगे। जब किसी को संदेह हुआ, शाहेवक्त के आधार पर २ के स्थान पर ४ को ठीक समझा। यही क्रम अब तक चला आ रहा है।

इस पक्ष के पंडितों की दृष्टि इस ओर तनिक भी नहीं मुड़ती कि इस सन् का संबंध शाहेवक्त से नहीं है। "सेरसाहि देहली-सुल्तानू" से "सन् नव सै सैंतालीस" तक पर्याप्त अंतर है। प्रथम १२ वें दोहे के अनंतर आता है और द्वितीय २३ वें के। स्पष्ट है कि इस सन् का संबंध शाहेवक्त से, जैसा भ्रमवश लोग समझते हैं, कदापि नहीं है। यह तो कथा के आरंभ का समय है— "कथा अरंभ बैन कवि कहा"।

कैथी लिपि के पक्ष में एक अकाट्य प्रमाण यह है कि स्वयं जायसी ने अपनी अखरावट में इसी लिपि के वर्णों का परिचय दिया है। अखरावट की रचना पदमावत से पहले की गई थी। इसका दृढ़ प्रमाण यह है कि कबीरदास का संकेत अखरावट में विस्तार के साथ किया गया है। कबीरदास की निधन-तिथि, किसी प्रकार भी, पदमावत के आरंभ के पहले ही रहती है। इस विषय पर हम पहले ही अधिक विवेचन कर चुके हैं। इस प्रकार अखरावट का रचना-काल किसी भी दृष्टि से सं० १५७५ के अनंतर नहीं जा सकता। यदि हम पदमावत की आरंभ-तिथि सन् ९४७ स्वीकार करते हैं तो इस २० वर्ष, या इससे भी अधिक समय तक जायसी का मौन रहना संगत नहीं जान पड़ता। इस दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि अखरावट के अनंतर पदमावत का आरंभ अवश्य ही किया गया होगा, क्योंकि उसके आख्यान में अखरावट के सिद्धांतों का मधुर व्याख्यान ही है। हम यह पहले ही लेख में कह चुके हैं कि धर्म तथा प्रचार की दृष्टि से भी कैथी लिपि का होना ही अधिक संभव है। यदि हम ओझाजी के इस कथन को मान भी लें कि शेरशाह के समय में उर्दू लिपि की सृष्टि हो चुकी थी तो भी हमारे कथन में विशेष बाधा नहीं पड़ती। यदि उस समय उर्दू का पर्याप्त प्रचार होता तो अकबर को फारसी की

शरण न लेनी पड़ती; शेरशाह की मुद्राओं पर हिंदी का विधान न होता; दक्षिण में हिंदी राज्य-भाषा न बनती। हमारी समझ में वर्तमान उर्दू-लिपि शाहजहाँ के समय में प्रस्तुत रूप धारण कर सकी थी। यह एक संकर लिपि कही जा सकती है। रही भाषा की बात। यह स्पष्ट ही है कि उस समय यदि उर्दू भाषा इसी रूप में प्रचलित होती तो जायसी अवधी में कदापि न लिखते। हमको तो एक भी कारण नहीं देख पड़ता जिसके आधार पर पदमावत की लिपि को उर्दू मान लें। वस्तुतः वह कैथी लिपि है।

लिपि की भाँति ही रचना-काल भी अनिश्चित है। अपने लेख में अनुमान के आधार पर जो कुछ हमने कहा है उस पर अब तक विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। स्वयं ओझाजी ने भी उस पर विशेष ध्यान देने का कष्ट नहीं किया है। आपका कथन है—"स्तुति-खंड पीछे से लिखा गया, मानना भी कल्पनामात्र है। दूसरे अर्थात् सिंहल द्वीप वर्णन खंड के प्रारंभ में ही वह लिखता है कि 'अब मैं सिंहल द्वीप की कथा गाता हूँ' जिससे स्पष्ट है कि पहले स्तुति-खंड को समाप्त करने के पश्चात् उसने द्वितीय खंड लिखना प्रारंभ किया था।" इस टिप्पणी को देखकर हमें तो यही भान होता है कि ओझाजी ने हमारे कथन पर—"हम इस संपूर्ण खंड को ग्रंथ की 'इति' के उपरांत की रचना मानने में असमर्थ हैं। 'सिंहल द्वीप कथा अब गावौं' का 'अब' ही हमें लाचार करता है"—कुछ भी ध्यान नहीं दिया। हम तो वंदना—शेरशाह की वंदना—को बाद की रचना मानते हैं। जान पड़ता है कि ओझाजी ने मिश्रबंधुओं से हमारे कथन में कुछ विशेषता न देखकर ही उन्हीं के रूप में हमारा खंडन किया है। हम यह मानते हैं कि जायसी ने अपना पदमावत में रचना-तिथि महीने में नहीं दी है; पर हम यह नहीं कहते कि हम उसके लिये अनुमान भी नहीं कर सकते। इसी कारण

के वशीभूत होकर हमने ग्रीष्म ऋतु का अनुमान किया है। इसके अतिरिक्त स्वयं ओझाजी इस बात को स्वीकार करते हैं कि शेरशाह की 'गद्दीनशीनी' का उत्सव सन् ६४८ में हुआ। हमारी समझ में इसी अवसर से वह वास्तविक शाहेवक्त कहा जा सकता है। इसके पहले तो उसका दिल्ली पर केवल अधिकार था। राज्य हाथ में लगते ही किसी को शाहेवक्त कहना युक्तिसंगत नहीं कहा जा सकता। शेरशाह के विषय मे जो कुछ पदमावत में कहा गया है उससे इसका स्पष्टीकरण भी नहीं हो पाता। सन् ६२७ मान लेने मे कुछ अड़चन नहीं है। शाहेवक्त की वंदना मसनवियों में अनिवार्य नहीं होती। इसको एक प्रकार से समर्पण समझना चाहिए। हमारी धारणा है कि जायसी ने अपनी पदमावत में शेरशाह की वंदना जोड़ दी है।

श्री ओझाजी ने एक और टिप्पणी की है। आपका कथन है—"लेखक महोदय ने पद्मावती के स्मरण किए हुए मालवदेव को जोधपुर का राठौड़ राजा मालदेव बतलाया है जो मानने योग्य नहीं है।······ पदमावत का मालदेव जालौर के चौहान राजा सामंतसिंह का दूसरा पुत्र था।" इस मालवदेव के विषय में हमारा कहना है "अत. यह वह मालवदेव नहीं हो सकता जिसको अलाउद्दीन ने जीतकर चित्तौर दिया था।" स्पष्ट ही है कि इस मालवदेव को पदमावती ने बड़े ही आदर के साथ स्मरण किया है। स्वयं ओझाजी के प्रतिपादन से स्पष्ट है कि जालौर के मालदेव को लगभग सन् १३१३ ई० में अलाउद्दीन ने चित्तौर का राज्य दे दिया। यही नहीं, जिस समय पदमावती उसका स्मरण करती है उस समय उसकी कुछ ख्याति भी नहीं थी। हम यह नहीं कहते कि जायसी के समय के मालदेव में कालदोष नहीं है। हमने स्पष्ट कह दिया है कि उन्होंने पदमावत में जिन रजवाड़ों का वर्णन किया है उनकी संगति प्रायः शेरशाह के समय में ही ठीक ठीक बैठती है। सारांश यह है कि जायसी ने इतिहास की उपेक्षा

की है। स्वयं ओझाजी सिंहल द्वीप की पद्मिनी तथा गोरा बादल के विषय में यही कहते हैं। जालौर का मालदेव एक अप्रसिद्ध व्यक्ति था। यदि जायसी को इतिहास की छानबीन से उसका पता चला होता तो वे उसको पद्मावती के मुँह से इस प्रकार सम्मानित न करते। इतिहास इस बात का साक्षी है कि गोरा बादल का महत्त्व इस मालदेव से कहीं अधिक था। फिर इस मालदेव ने किसको शरण दी थी; क्या काम किया था? इसका नाम तो सन् १३११ के अनंतर आता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जायसी की पदमावत में तत्कालीन मालवदेव का ही संकेत है। आशा है, श्रद्धेय ओझाजी हमारी धृष्टता पर ध्यान न दे सत्य का प्रकाशन करने का कष्ट करेंगे।

—चंद्रबली पांडेय

---

[४] पुरातत्त्व

(१)

विक्रम संवत् का वर्णन आरंभ में कृत संवत् के नाम से आता है। लोग मानते हैं कि विक्रमादित्य सन् ई० से ५७ वर्ष पूर्व हुए। पर इस विश्वास के लिये कोई प्रमाण अभी तक नहीं मिला है। खिष्टीय पाँचवीं शताब्दी के पूर्व संवत् वर्षों का नाम कृत वर्ष लिखा है और उन लेखों में किसी प्रकार का संकेत भी नहीं है कि इन वर्षों का संबंध विक्रमादित्य से किसी प्रकार रहा हो। तो फिर कृत वर्ष का—"कृताः वत्सराः" का—अर्थ क्या है। राजपूताना के उदयपुर राज्यांतर्गत नंदासा ग्राम में इस संवत् का अति पुराना शिलालेख मिला है। उसमें मिती इस प्रकार लिखी है—कृतयोर्द्वयोर्शतयोद्व्यशीतय =कृत २००+८०+२। ऐसे लेखों में कृत शब्द का संबंध सदैव वर्ष से रहता है। इस विषय में डाक्टर डा० आर०

भंडारकर ने जून १९३२ के इंडियन ऐंटीकेरी में एक लेख लिखा है। शुंग-वंश के महाराजा ब्राह्मण जाति के थे। इनके समय में, विशेषकर पुष्यमित्र के समय में, ब्राह्मण धर्म ने फिर बहुत उन्नति की। इनका मत है कि पुराणों और महाभारत में जो विष्णुयशस् ब्राह्मण के यहाँ कल्कि अवतार होने का वर्णन है वह इसी पुष्यमित्र के विषय में है। कलियुग का वर्णन पुष्यमित्र के पूर्व की स्थिति से बिलकुल मिलता-जुलता है। कलियुग के पीछे कृत युग होनेवाला था। इसलिये पुष्यमित्र ने ही कृत संवत् ५७ ई० पू० में चलाया, ऐसी कल्पना उक्त महाशय की है।

इतिहासज्ञों के मत से पुष्यमित्र का काल १८० ई० पू० माना जाता है। आप इस मत का खंडन करने का प्रयत्न करते हैं, पर आपके मत के समर्थन में कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता।

(२)

मोहेंजोदरो और हरप्पा में जो मुहरें मिली हैं उनके पढ़ने का प्रयत्न जून १९३२ की इंडियन हिस्टारिकल क्वारटरली में डाक्टर प्राणनाथ द्वारा जारी है। इस विषय का कुछ वर्णन श्रावण १९८६ की नागरीप्रचारिणी पत्रिका (१३–२) में दिया जा चुका है।

ऐसा मालूम पड़ता है कि सिंधु नदी की तरैटी में लोग जिन देवताओं को पूजते थे उनमें से कुछ तो देशी और कुछ विदेशी—जैसे बेबिलन प्रांत के—थे। गौरीश, नागेश, नगेश, शिभ, ह्रों, श्रीं, क्ष्रीं इत्यादि नाम उन लोगों के देवताओं के हैं और ये स्थानीय देवता जान पड़ते हैं। इन्नी, इनी, सिन्, नन्ना, गग, गे इत्यादि सुमेरियन देवताओं के प्रसिद्ध नाम हैं और सिंधु के लेखों में अक्सर पाए जाते हैं। डाक्टर साहब का मत है कि चामुंडा देवी के विषय के ग्रंथ में आपको इन नामों का पता मिलता है। ऐसे ही कुछ नाम दक्षिण भारत में पाए गए पुराने मिट्टी के बर्तनों पर भी मिलते हैं। इसलिये

आपका मत है कि सिंधु देश के कुछ देवताओं की पूजा दक्षिण भारत में बहुत प्रचलित थी। आपने नाना देशों और कालों के अक्षरों की समानता की जाँच इस लेख में बड़ी योग्यता से की है। इसके सिवा ठप्पे से अंकित पुरानी मुद्राओं (punch-marked coins) को पढ़ने का प्रयत्न आपने किया है। इन मुद्राओं का विषय निराला है। उनके लेखों और संकेतों को अभी तक किसी ने नहीं समझ पाया है। ऐसी मुद्राएँ बहुत मिली हैं। उनके पढ़ लेने से भारतवर्ष के पुराने इतिहास पर बहुत प्रकाश पड़ेगा, क्योंकि वे मुद्राएँ तीसरी या दूसरी शताब्दि ई० पू० के पूर्व ही प्रचलित थीं। सिंधु नदी की तरैटी के पूर्व लोगों की भाषा एकाक्षरी विशेष मालूम पड़ती है। इन मुहरों के पढ़ने के विषय में अभी अंतिम निश्चय नहीं हुआ है।

पंड्या बैजनाथ